

प्रसाद के नाटकों

का

ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक
विवेचन

डा० अगदीश चन्द्र शोरी

प्राध्यापक हिन्दी-विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय

जयपुर

आत्माराम एण्ड संस

प्रकाशक—
उपमा प्रकाशन
जयपुर

© — लेखक

वितरक—
धातमाराम एण्ड संस दिल्ली
कास्मीरी गेट, दिल्ली-६

साधारण—
बीड़ा पारवा जयपुर
हीन वास, मई दिल्ली
विश्व-विद्यालय क्षेत्र, चण्डीमढ़
१७-अशोक मार्ग, लखनऊ

मूल्य १०-००

मुद्रक—
उज्जयिनी प्रिंटर्स,
जयपुर ।

विशंगत

प्राचार्य श्री मोहन वल्लभ जी पंत को—

साह्यद

भूमिका

प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों पर यदि ऐतिहासिक-सांस्कृतिक दृष्टि से फिर विचार करने का अवसर मिले तो समझता हूँ कुछ भी नया न कह सकूँ, यही सोचकर कई बयों के घन्टाराज के बाद अपने शोध-ग्रन्थ को उसी रूप में पुनः प्रस्तुत करते हुए मुझे असंतोष नहीं है। नये प्रश्न उठाने या सकलते से घोर उन पर स्वतन्त्र रूप से विचार कर सकता हूँ। यद्यपि इन सभी प्रश्नों को एक घोर प्रश्न में देना उपयोगी समझ कर एक गया है।

आज भी मेरी मायता यही है कि प्रसाद के नाटकों के रचना-रूप के पीछे भारतीय नाट्य-शास्त्र का प्रभाव बहुत ही कम है। जितना है वह भी सीधा नहीं है। संस्कृत नाटकों से प्रेरित है। भारतीय-सुगीत नाट्य परम्परा से भी वे जुड़े हैं। किन्तु इन पर सर्वाधिक प्रभाव रोमन-पियर की नाट्य-शैली का है, जो कहीं पर सीधे घोर कहीं पर पारसी बियेटर के माध्यम से उनके नाटकों को प्रभावित करती रही है। पारसी बियेटर का प्रभाव उनमें कम नहीं है। इन सभी पर विचार करना आवश्यक है किन्तु यहाँ चाहते हुए भी मैं ऐसा कर नहीं सकता था।

ऐतिहासिक-सांस्कृतिक दृष्टि से इन्हीं प्रसाद के नाटकों पर बहुत विचार हुआ है। लेकिन कोई नई बात कही गई हो ऐसा नहीं लगता। रामगुप्त के सम्बन्ध में पुण्डरीक ने नई खोजें की हैं और उनके आधार पर रामगुप्त का राजत्व प्रमाणित हो चुका है। किन्तु प्रसाद के नाटकों के संदर्भ में इन खोजों से नया प्रकाश नहीं पड़ता। स्कंदगुप्त के बाद गुप्त शासकों ने सुधीय काल तक राज्य किया फिर भी यह सिद्ध नहीं हो सका है कि स्कंदगुप्त के पुत्रों ने उसकी मृत्यु के उपरांत शासन सुरू किया, अतः प्रसाद की ऐतिहासिक दृष्टि नवीन अनुसंधानों के आसक्त में भी पूर्णतः प्रामाणिक प्रतीत होती है।

साहित्यिक युग में सिद्धे गये नाटकों का ऐतिहासिक-सांस्कृतिक विश्लेषण क्यों किया जाय, यह चिन्त्य है। कई बार गुन्ठले पूछा भी गया है। नाटक का सम्बन्ध घोर अभिनय से संबंध है। इतिहास घोर संस्कृति तो उसके लिए कथा-स्रोत घोर पीठिका का ही कार्य कर सकते हैं। प्राचीन नाटकों के ऐतिहासिक-सांस्कृतिक अनुसंधान से इतिहास को सहायता मिलती है, अतः उस तरह का अध्ययन तो फिर भी उपयोगी हो सकता है। इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार कर, मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि प्रसाद के कवि नाटककार घोर कथाकार में भारतीय इतिहास घोर संस्कृति का इतना गहरा घोर व्यापक प्रभाव है कि उनके इतिहास के किसी भी रूप का सही मूल्यांकन कर

सकना तब तक संभव नहीं जब तक सनकी रचनाओं की उस विस्तृत पीठिका को स्वतन्त्ररूप से न समझा जाय। शिन्धी के प्राबुद्धिक रचनाकारों में प्रसाद सर्वाधिक प्रतीतीग्युक्त है। प्रतीत उनके लिए पनावन का साधन नहीं है उनके अनुसंधान का क्षेत्र है उन्होंने एक इतिहासकार की शोध परक दृष्टि से इतिहास का अध्ययन किया है प्रतीत उनकी मुक्ततात्मक प्रतिभा इतिहास के क्षेत्र में जा कर अपनी रचनाओं के लिए उपकरण चुटाने में समर्थ रही है। ऐसे रचनाकार का मूल्यांकन ऐतिहासिक सांस्कृतिक संदर्भों की ज्ञानमीन के बिना नगम्य संभव है।

रचना-विधि प्रयत्न प्रकाशन-विधि के आधार पर नाटकों का विवेचन न कर, ऐतिहासिक काल क्रम के अनुसार विवेचन करने के पीछे यही उद्देश्य रहा है कि प्रनाद की ऐतिहासिक दृष्टि एवं उनके अध्ययन को भारतीय इतिहास के परिच्छेप में देखा जा सके। प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक बौद्ध-काल से हर्षवर्द्ध न तक बार्द्धक के ही रूपों के भारतीय इतिहास की परिधि में आते हैं। 'विद्यालय' को मैं छोड़ बना हूँ क्योंकि वह इस परिधि के भीतर होते हुए भी भारत के हिन्दू सम्राटों के इतिहास से संबद्ध नहीं है, लेखीय इतिहास की प्रत्यक्ष सीमाओं से संयुक्त है। प्रसाद का भारतीय इतिहास का जो विराट् अभिवर्तन था, विद्यालय सम्बन्धी इतिवृत्त की उसमें समाप्ति नहीं जुड़ती।

यहां मैं अपने ही एक कथन को पुहराने का सोच संवरण नहीं कर पा रहा हूँ—प्रसाद के नाटकों में भारतीय इतिहास और संस्कृति का समावेश बनायात ही नहीं हो गया है। उनके एक एक शब्द के पीछे प्रसाद का गहरा अध्ययन है। इससे सिद्ध होता है कि भाद्र्य रचना करते समय प्रसाद ने इतिहास के साधारण तथ्यों परित्त की सामान्य विशेषताओं और बातावरण के छोटे से छोटे स्वरूप को भी नहीं मुनामा है। जका नाटककार इतिहास के प्रति पूर्ण सम्यक रहा है और इतिहास कार ने सर्वत्र नाटककार के प्रति सम्मानना और सहानुभूति रखी है।

सुसत प्रकाशकों के हाथ पड़ जाने से कितनी कृति को बना हो जाता है, इसका पर्याप्त अनुभव कर चुका हूँ। क्यों बाव भाव उस प्रकार के संतोष का अनुभव कर रहा हूँ जैसे धनी धनी पहली कृति का प्रकाशन हुआ हो। मूल्यांकन के रूप में अन्तिम परिच्छेद बिकर सप रहा है कि प्रक ज प्रक पुण्ड हुआ है। 'आत्माराम एव च सम्म' जमपुर के श्री नरेन्द्र ने जिस उत्पलता से इसका प्रकाशन किया है उसका अनुभव ही किया जा सकता है।

धार्चार्य मोहन बस्नम की पंथ आज अपने पाणिक शरीर को छोड़ चुके हैं किन्तु अपनी विध्य परम्परा में धार्चार्य धमर रहता है। यह ध ध अपने मनीष संस्करण में, इस मूलत रूप में जहूँ को समाप्ति करता हूँ।

दिग्बरानि

९ मार्च, १९७०

जगदीश चन्द्र जोशी

विषय-सूची

	पृष्ठ
भूमिका	क-ख
१ इतिहास का स्वरूप और उसके मूल धारस-----	१-१९
— ऐतिहासिक नाटककार और इतिहास	
— ऐतिहासिक नाटकों का उद्देश्य	
२ ऐतिहासिक नाटक इतिहास और कल्पना-----	१७-१०
— इतिहास और ऐतिहासिक नाटक	
— भारतीय मठ	
— पाश्चात्य मठ	
३ ऐतिहासिक नाटकों का रचना सूत्र-----	११-५१
— ऐतिहासिक वातावरण	
४ ऐतिहासिक नाटकों का वर्गीकरण-----	४४-४७
— कुछ ऐतिहासिक	
— मध्य ऐतिहासिक	
— काल्पनिक ऐतिहासिक	
— स्वच्छन्द ऐतिहासिक	
५ ऐतिहासिक नाटक और उसमें सत्य का स्वरूप-----	४८-५४
— कला का सत्य	
— ऐतिहासिक नाटक का सत्य	
— इतिहासकार का सत्य	
— नाटककार के स्वामुख का सत्य	
— नाटकीय परम्पराओं का सत्य	
६ ऐतिहासिक नाटक और काल—कम होय-----	५२-६०
— परिमित इतिहास ज्ञान	
— नाटकीय सत्यों में परस्पर विरोध	
— प्रतीत में वर्तमान समस्याओं का समाधान	
— कामकम दोष के दो स्वरूप	
७ प्रसार के ऐतिहासिक नाटक-----	६१-७२
— इतिहासकार प्रसार	
— नाटकों का वर्गीकरण	
— कथानकों की विशेषताएँ	
— देश काल योजना	
— पात्र-योजना और चरित्र	
— ऐतिहासिक चरित्र	
— काल्पनिक चरित्र	
— वातावरण	
८ प्रसार के ऐतिहासिक नाटकों का उद्देश्य-----	८०-८१
— इतिहास का चित्रण	
— प्रतीत का वर्तमान पर प्रभाव	
— राष्ट्रीय महत्व	

अपने युग की समस्याओं का समाधान
नैतिक और आर्थिक शिक्षा

६. अजातशत्रु का कथानक

६२ ११३

अजातशत्रु की कथा
प्रसेनजित की कथा
राज्य की कथा

१०	अश्वघुप्त मौर्य का कथानक	११४—१४२
११	द्रुपदस्वामिनी का कथानक	१४३—१४७
१२	स्कन्दगुप्त का कथानक	१४८—१७८
१३	राज्यभी का कथानक	१७९—१८७
१४	अजातशत्रु नाटक की काल-योजना	१८८—२०१
१५	'अश्वघुप्त' नाटक की काल-योजना	२०२—२१७
१६	द्रुपदस्वामिनी नाटक में काल-योजना	२१८—२२१
१७	स्कन्दगुप्त नाटक में काल-योजना	२२२—२३३
१८	राज्यभी नाटक की काल-योजना	२३४—२३७
१९	ऐतिहासिक वातावरण सामान्य भौगोलिक अर्थ	२३८—२५३
	विभिन्न राज्य और उनकी सीमाएँ	२५४—२८१
	: नगर और ग्राम	२८२—२९५
	यातायात के साधन	२९६—३०१
	सामाजिक परिस्थितियाँ	३०२—३११
	, प्रचलन धर्म एवं बेबी बेवता	३१२—३१७
	भोक विस्थापन	३१८—३३१
	प्रणय—विवाह	३३२—३३३
	ज्ञान-दान	३३४—३३८
	वस्त्र और आभूषण	३३९—३४३
	उत्सव	३४४—३७१
	कीड़ा-विभोव	३७२—३८२
	दण्ड-मुद्र	३८३—३८७
	शिक्षा और कला	३८८—३९६
	संघीय कला और साहित्य	३९७—४०५
	राजनीति और शासन-प्रबन्ध	४०६—४१६
	राज्याभिषेक	४१७—४२१
	परिवर्त	४२२—४३२
	: धर्म कर्मचारी	४३३—४४३
	श्राद्ध एवं श्राद्धाधिकार	४४४—४४८
	राजनीति	४४९—४६४
	सैन्य-योजना और युद्ध	४६५—४७३
२०	प्रसार के माध्यमों में सत्य का स्वरूप	४७४—४७७
२१	प्रसार के माध्यमों में काल कम शेष	४७८—४८०
२२	सूक्ष्मांकन	४८१—४९१

इतिहास का स्वरूप और उसके मूल उत्स

इतिहास का सामान्य अर्थ घूट कास की बटनाघों और उन बटनाघों से सम्बन्धित स्त्री पुरुषों के चरित्रों का निरिबद्ध स्वरूप है। इसलिये सदा ही इतिहास का सम्बन्ध नाम घटना और विचारों से जोड़ा जाता है। अत्यन्त प्राचीन काल से 'इतिहास' शब्द अपने इसी सामान्य अर्थ में प्रयुक्त होता आ रहा है। किन्तु मूल रूप में उक्त अर्थ देने पर भी इतिहास रचना के स्वरूपों और उनकी व्याख्या में समय समय पर परिवर्तन होते रहे हैं। युगो-युगों की विचारधाराएँ अपने बहुमुखी स्रोतों में मिश्र-मिश्र रूपों में प्रकाशित होती रहती हैं। उनकी अभिव्यक्ति के स्वरूपों और उसकी प्रणामियों में भी अन्तर होता रहता है। प्राचीन इतिहासकार के सम्मुख इतिहास प्रचलित व्यक्तिपरक होता था वह महत्वपूर्ण व्यक्तियों, सम्राटों और साम्राज्यों, सेनापतियों तथा राजनीतिज्ञों एवं क्षेत्रस्थी राजपुरुषों तथा धार्मिक मठाधीशों के अन्धे अन्धे हुए शिष्या-कसापो का सिला जोना मात्र था। उसमें दुर्बल राजनीतिक पद्धतों, धार्मिक बिद्रोहों, इत्यादि की सूचना भर होती थी। यही कारण है कि जान रिचार्ड ने इसको 'डोल और दुर्बल का इतिहास'¹ कहा है। उक्त इतिहास टोस टम्पों का इतिहास था। उसमें व्यक्तिपरक दृष्टियों की पर्चा के साथ प्रेम और प्युछा असफलता महत्त्वहीना अन्ध-पतन एवं मैत्री और विरोध की कहानी शानी थी।

परन्तु कालान्तर में इतिहास के दृष्टिकोण में भी एक महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। धार्मिक इतिहासकार के लिये इतिहास का सम्बन्ध केवल व्यक्तियों से नहीं है। नये इतिहास का भी एक दर्शन है जो एक घोर तो विश्लेषणात्मक एवं तर्कपूर्ण विवेचना के ढोंगों को स्वयं करता है और दृढ़री घोर मस्तिष्क प्रभाव की व्यक्तता को। मानव समाज के असंख्य पात्र प्रतिपाठ में धार्मिक इतिहासकार ऐसे चिरमन निरपेक्षों का अन्वयण करता है जिसका सम्बन्ध व्यक्तिविशेष और काम विनय से न डोकर मानव सम्यता के चिरतन एवं शाश्वत सत्यों से है। आज का इतिहासकार इतिहास को काम सद्यो में निमाजित करके ही संतुष्ट नहीं हो जाता। उसका दृष्टिकोण उक्त धार्मिक का ना होता है जो मानव जीवन के इतिहास के

१ 'हिस्ट्री आफ़ डम एन्ड ट्रुगेट इन्डिग हिस्ट्री इन गवसपीयर मैग्जिन' पृ० १११५।

साहि मध्य धोर पाठ को स्वतंत्र न मान कर काम की अभिव्यक्ति द्वारा के रूप में देखा है। वह इस तथ्य को स्वीकार नहीं कर सकता कि किसी भी ऐतिहासिक युग में मरित महत्पूर्ण परिवर्तन घटना अतिमी एकाएक हो जाती है। उसकी दृष्टि में ऐसे किसी भी परिवर्तन का कारण उस युग से पूर्व क युगों में प्रचलित निहित होता है इसीलिए काम का इतिहासकार एक सख्त वैज्ञानिक एवं शार्सनि की तरह कार्य कारण परम्परा के सूक्ष्म विवेचनों द्वारा प्रत्येक घेस और काल के ऐतिहासिक स्वक्यों और परिवर्तनों पर विचार करता है।

इतिहास के इन दोनों दृष्टिकोणों पर विचार करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि मूलत इन दोनों में विरोध नहीं है, प्रथम प्रकार का ऐतिहासिक विवेचन व्यक्ति और काम सापेक्ष है और द्वितीय प्रकार का व्यक्ति और काल विरोध। इसमें सन्देह नहीं कि विद्येय काम में विद्येय प्रकार के व्यक्ति घनामास ही सम्म नहीं सेते मूलत वे युगों के प्रचल प्रवाह की एक सहर की तरह होते हैं जो काल की प्रचल वायु में एक बार ऊँचे उठकर पुन विमीन हो जाते हैं। वास्तव में उक्त दोनों पद्धतियाँ एक दूसरे की पूरक हैं। इतिहासकार एक के आधार पर दूसरे को समझने का प्रयत्न करता है। मोटे रूप से इतिहास के इन दोनों स्वक्यों में से एक को इतिवृत्तात्मक इतिहास कह सकते हैं और दूसरे को सांस्कृतिक इतिहास। इतिवृत्त का सम्बन्ध विवेक व्यक्तियों एवं काम विद्येय से होता है परन्तु सांस्कृतिक इतिहास किसी भी सम्मता का अभिव्यक्ति प्रवाह है जो समक्षपरक और व्यक्ति विरोध है।

उक्त विवेचन के आधार पर किसी इतिहासकार के पास दो प्रकार की सामग्री होती है। किसी भी काल के महत्पूर्ण व्यक्तियों एवं उनके क्रियाकलापों के आधार उस काल के इतिहासकारों के प्रथम मुद्रायें विनायेक तात्पर्य अभिलेख मूर्तियाँ स्तम्भ इत्यादि ही हो सकते हैं, परन्तु किसी भी काल की सम्मता के इतिहास के लिये वे प्रमाण पर्याप्त नहीं होते। इतिहास विसे तथ्य प्रमाण कहता है वह इतना कम है कि केवल उसके आधार पर इतिहास की रूप देना ही नहीं बन सकती। विश्व की प्राचीनतम सम्मताओं में से भारत सिन्ध यूनान रोम और चीन के इतिहास का आधार केवल विनायेक इत्यादि नहीं है बल्कि प्राचीन साहित्य और पौराणिक कथाएँ और किंवदन्तियाँ लोक विश्वास एवं रीतिरिवाज भी हैं। यदि इसी कथन को धोर स्पष्ट शब्दों में कहा जाय तो सिन्धु घाटी की सम्मता के अनिश्चित शय्य सभी प्राचीनतम सम्मताओं का ऐतिहासिक आधार प्राचीन कथायाँ सिन्धु और ऐसी लोक-कथाएँ ही हैं जिनको कालान्तर में सिद्धिबद्ध कर ऐतिहासिक मान लिया गया।

कोई भी इतिहासकार अपने इतिहास के लिए सर्वप्रथम 'साठ इतिहास' का आधार लेता है। आज इतिहास का सम्बन्ध इन घटनाओं एवं व्यक्तियों से है जो एक

विशेष बाधाकरण और देश काल की सीमा में रहते हुए भविष्य के लिए अपने जीवन एवं युग के कुछ न कुछ बिन्दु छोड़ जाते हैं। उनके ये स्मारक ही ज्ञात इतिहास के उपकरण होते हैं। ये बिन्दु कभी तो प्रामाणिक होते हैं कभी केवल धानुमानिक। इस 'ज्ञात इतिहास' को भी हम 'ग्रन्थ' और 'वस्तु' इतिहास नाम के दो भागों में बाँट सकते हैं। अब इतिहास तो ज्ञात इतिहास का वह भाग कहा जा सकता है जिसमें कालान्तर में कभी भी किसी प्रकार का महत्वपूर्ण अन्तर नहीं किया जा सकता क्योंकि प्राचीन युग के स्मारक उनके लिए मूर्त प्रमाण हैं। वस्तुतः इस ही प्रामाणिक इतिहास ही कहा जा सकता है। "वस्तु इतिहास" का सम्बन्ध ज्ञात इतिहास के उस स्वरूप से है जिसके लिए घूतकासीत प्रामाणिक स्मारक उपलब्ध नहीं हैं किन्तु धानुमानिक होते हुए भी उसमें इतिहास की पर्याप्त सम्भावनाएँ हैं। साथ ही उसके प्रभाव में ज्ञात इतिहास की धारी कड़ियाँ कुछ भी नहीं पायीं। कालान्तर में कभी भी अन्तर् प्रमाणों के उपलब्ध होने पर 'वस्तु इतिहास' में पर्याप्त परिवर्तन किया जा सकता है। अब इतिहास के आधार सब कार्यों के लिये सन्ध है क्योंकि उसके सम्बन्ध में निश्चित प्रमाणों का अभाव नहीं होता। 'वस्तु इतिहास' के आधार प्राचीन प्रमाण लोक विश्वास और रीति रिवाज होते हैं जिनको समाज शास्त्रीय और ऐतिहासिक दृष्टियों से विचार करने के उपरान्त अनुसन्धान द्वारा इतिहास के समकक्ष मान लिया जाता है। इसी 'वस्तु इतिहास' को कभी सुधारने और कभी अन्वेषण करने में अन्वेषणार्थी (सीजम्ब्स) का बहुत बड़ा हाथ होता है। प्राचीन युग के सम्बन्ध में जो कुछ ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है वह कितनी ऐतिहासिक है और कितनी नहीं यह कहना असम्भव है। होमर ने 'ट्राबल इतिहास' पर जो काव्य लिखे उनमें उत्कामीन नामकों के असम्भव बिना कथाओं की कमी नहीं है परन्तु प्राचीन लेखकों ने काव्यिक कृतियों को भी जोड़ा सा संतुलित कर इतिहास का स्वरूप दे दिया।^१ एनपुसिलस (५०० ई पू) ने ग्रीस के राजकुलों के इतिहास के लिए हेजियस की कविताओं को प्रमाण मान लिया। हेमेनिकस (४०० ई पू) ने होमर की मूल कथाओं को निश्चित पठितयोजितियों मानकर मानव वीरों और उनके विलक्षण किशोरियों को मानवोचित स्तर पर उतार कर इतिहास का स्वरूप दे दिया। हेरोडोटस और थ्यूसीडायडस न अपनी पुस्तकों में इतिहास और किस्म कहानियों का ऐसा सम्मिश्रण किया कि बाद के इतिहासकारों के सम्मुख इतिहास का कोई निश्चित स्वरूप नहीं रह सका। कुछ इतिहासकारों ने कल्पना और कहानियों से परिपूर्ण उन लेखकों के कृतियों को प्रामाणिक इतिहास मान लिया और कुछ इनके विरोध में उठ पड़े हुए। परन्तु इनमें कम्बोह नहीं कि अन्ततः संसार का प्राचीनतम इतिहास अधिकांश अन्वेषणों में ही है। सिकन्दर के सम्बन्ध में प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत

१ हिस्ट्री पाठ रि ड गविस लोबन बैकर पृष्ठ २३

करने वाले डायोडोरस साइब्युलस डीनस पापीयास तथा क्विंटस कर्नियस सभी ने बिन प्रमाणों के धारण पर अपना इतिहास प्रस्तुत किया वे प्रमाण वस्तुतः कल्पना प्रसूत और अस्वाभाविक कथानको पर आधारित हैं।^१ उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ मूल इतिहास पर बल कल्पनाओं के आरोप से नये धारणानो की सृष्टि होती है वही जम कल्पनाओं पर इतिहास का आरोपण कर मया इतिहास भी बन सकता है और बनता भी रहा है। लोक-कथाएँ वास्तव में साधारण जनता की चीजें हैं। भारतवर्ष में भी लोक कथाओं का स्वरूप धारण प्रचीन है और इसमें संशय नहीं कि जिस प्रकार सिकन्दर के इतिहास के निर्माण में भारतीय लोक कथाओं (इस्टर्न फैंडलस^२) का हाथ रहा है उसी प्रकार सम्भव है यूनान के प्राचीन इतिहास सम्बन्धी हेरोडस और ट्राय के विवरणों के निर्माण में भी रामायण महाभारत जैसे आख्यात कथ्यों (एपिक्स) से उद्भूत जन कथाओं का हाथ रहा हो। स्वयं रामायण और महाभारत ग्रन्थों में यह अनुमान लगाना कठिन है कि उनमें इतिहास और कल्पना का क्या अनुपात है। दोनों को लोक विश्वासों और लोक कथाओं न इतना प्रभावित किया है कि उनमें असम्भव घटनाओं को सत्य के रूप में चित्रित किया गया है। उक्त कथन से इस मान्यता पर कोई जाया नहीं पड़ती कि सभी असम्भव प्रतीत होने वाली घटनाएँ प्रतीकात्मक हैं। सम्भव है ऐसी ही हों परन्तु ये घटनाएँ घाई कहीं से ? इनके स्वरूप का ऐसा निर्माण किस प्रकार हुआ ? स्पष्ट है कि मूल इतिहास कुछ भी रहा हो उस पर कम से कम लोक कथाओं और लोक विश्वासों ने अपना प्रभाव डालना धारण किया और कल्पनाओं पर आधारित मया इतिहास बनता रहा। राम और युधिष्ठिर ऐतिहासिक व्यक्ति है या नहीं इस प्रश्न को छोड़े बिना भी इतना ही कहा ही जा सकता है कि उनका ऐतिहासिक होना सम्भव सम्भव है। यद्यपि उनके धार्मिक कथा कथानों की बौद्धिक व्याख्या कर उनको ऐतिहासिक सिद्ध करने के प्रयत्न सभी भी बल रखे हैं तथापि उस धार्मिकता को इतिहास की सीमा के भीतर लाना कठिन है। इतिहास में कल्पना के समोच का यह कार्य एक व्यक्ति का नहीं होता। सहस्रों वर्षों तक लोक मानस की बहुमुखी प्रतिमा अन्तर्गत इस कार्य को करती रहती है और वैदिक इतिहास की धारण को जल गत धाराओं में बाँटकर समग्र जनता की वस्तु बना देती है।^३ भारतवर्ष के राम कथन और युधिष्ठिर, यूनान के हेरोडस और सिकन्दर मिथ की विनयापेक्षा इसी

१ हिस्ट्री आफ़ दी इ गलिज नौबस : बीजर पृष्ठ २१

२ वही पृष्ठ २४ २१

३ 'सीजैड इन ए फ़मुइड बिग इन ए कम्प्लिगुल स्टेट आफ़ इक्सपेंस। क्विंटस इमेजिनरिय बर्बे प्रोप्रीरिस मस ऐज ए फ़ॉटिनाइजिय सीबन'

क्रिया से इतिहास से किबर्दती घोर किबर्दतियों से पुन इतिहास बन गये। इस क्रिया-प्रक्रिया के स्पष्ट स्वरूप से कथाओं के जिस विस्तृत भंडार की प्राप्ति हुई है उसके मबस में यह ही कहना ही पड़ेगा कि वह निरल्प्य ही लोकमानस से उद्भूत किबर्दतियों घोर कथाओं का एक व्यक्ति भवता कई व्यक्तियों द्वारा किया हुआ सघन मात्र है। परन्तु जैसा ऊपर कहा जा चुका है इस प्रकार की लोक कथाओं का भी कुछ न कुछ ऐतिहासिक आधार बरस्य होगा है चाहे वह मात्र कथा के आधारों में पूर्वतया प्रकटन क्यों न हो गया हो। लोक मानस मौलिक पर जात इतिहास पर ही कल्पनाओं की गई पर्व समाता चलता है। यही कारण है कि आज का इतिहासकार उक्त कथाओं की बाह्य पर्वों को प्रभावित कर उनमें से ऐतिहासिक साध हूँने का प्रयास करता है। लोक कथाओं के आधार पर भारत के प्राचीन इतिहास के सुप्त एवं अज्ञात स्थलों को गवेषणा का कार्य गया नहीं है। लोक कथाओं और किबर्दतियों का इतिहास न कितना गहरा संबंध है इसका अनुमान भारतीय इतिहास की विक्रमादित्य और कामिदास संबंधी समस्या से भी लगाया जा सकता है। उज्जयनी के अकारि विक्रमादित्य के मरुतों में कामिदास ने इस जनघृति में २० ई० पू० के मानव मल्पनि विक्रमादित्य की बचपणा के बिने इतिहास को ब्राम्य कर दिया। उक्त लोक कथा का सिद्धि रूप 'बिहासन बत्तीसी' और 'बैताम पन्नीसी' की कथाओं में स्पष्ट है और आज इतिहास की इतनी गवेषणाओं के उपरान्त भी कामिदास और विक्रम के संबंध में इतिहासकारों की मान्यताओं का एक बहुत बड़ा नाम किबर्दतियों जनघृतियों और लोक कथाओं पर ही आधारित है।^१

इतिहास से लोक कथा का और लोक कथा से पुन इतिहास का सृजन पौषाधिक उपाख्यानों में भी देखा जा सकता है। इतिहासकार के पास ऐतिहासिक तथ्यों को सिद्ध करने की सामग्री जो कुछ भी हो, इतिहास के लिए और अचक्रपूर्ण स्थलों की पुष्टि वह अपने स्वयं की कल्पना से नहीं करता। प्रुन इतिहास के एक और जन-जीवन में प्रचलित किबर्दतियाँ एवं दल कथायें हैं तो इनकी घोर विभिन्न कास में तिनके पमे मामिक और पौरालिक उपाख्यात। मूलत देला जाय तो पुराण (माइबोलोजी) और बंत कथा (सीजैट) में महत्वपूर्ण अन्तर नहीं है क्योंकि अपने मूल रूप में दोनों का उद्भव लोक मानस से होता है। इनमें अन्तर केवल विषय का है। पुराणों का सम्बन्ध प्रतिमानबीज या बीबी चरितों से बाँड़ा जाता है। उनका प्रधान क्षेत्र बर्म है। दल कथाओं का नामकों का कोई सीमित क्षेत्र नहीं होता। वह लोक मानस की स्वतंत्र कल्पना शक्ति पर निर्भर रहता है। बंत कथाएँ मानकों की प्रतिमानबी बीमाओं तक ले जाकर भी मानव बनाए रखती है परन्तु पौषाधिक कथाएँ प्रतिमानकों से मानकों के कार्य करवा कर भी उन्हें प्रतिमानबी स्तर पर

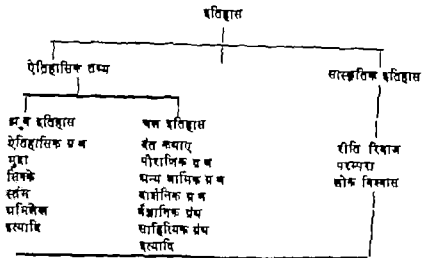
ही रखती है। इतना होते हुए भी दोनों के बीच कोई लक्ष्मण रेखा नहीं खींची जा सकती। पुराणों की कथाओं का आधार बत कथाएँ होती हैं और वत कथाओं का आधार पुराण। इतना धारण है कि वत कथाओं में वहाँ प्रत्येक युद्ध में नये नये रथ बढते रहते हैं और उनके बाह्य स्वर्णों में घन्टर होता जाता है, वहाँ पुराणों के प्रत्येक रूप में या जाने के कारण यह घन्टर नहीं सा पाता। दोनों के मिलित रूपों में भी बामिक और धारण दो दृष्टिकोणों के होने से घन्टर सा जाता है। होमर इत्यादि के संबंध में प्राचीन यूनान की बिन घटनाओं का पहले जन्म कथा या युद्ध है वे अपने पूर्व रूप में तो वत कथाएँ ही रही होंगी परन्तु जब उनके उपलब्ध और मिलित रूपों में एक ओर बुपिटर मेण्डून ऐपोलो आयोनिमस हरक्यूमीज और बरकस जैसे विषय पुरुष और बूसरो और बुपन, हाइड्रा और निम्न जैसे धमानवीक पात्र एक ही स्वस पर एक ही घटना में एकत्र हो गये तब हीर देवों के समान उनका पूजन होर्म सगा और वे निरन्तर ही पुराणों की कोटि में आ गये। द्वावन युद्ध सम्मिलित एक ऐतिहासिक घटना भी परन्तु उस पर कल्पना के धारण न सकड़ों वत कथाओं की जन्म दिया और कालान्तर में उन कथाओं में भी देवी मासुरी नक्षत्रों और नक्षत्रों का आरोप कर उसे भी पुराणों के समीप सा दिया गया। भारतवर्ष में पुराणों का विस्तृत इतिहास है। उनमें बामिक परिवर्तनाओं की सीमा के भीतर प्रतिमानवी कृतियों और चरित्रों की सृष्टि ही नहीं, बल्कि इतिहास के ज्ञात घटनाओं और महत्वपूर्ण व्यक्तियों से संबंध रखने वाले स्पष्ट प्रसंगों एक संकेतों का भी धारा नहीं है। बड़ा विषय यह तो है ही मार्कण्डेय मुकुरेव और ध्यास भी हैं परन्तु सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि नन्व ब्रह्मपुत्र और ब्राह्मण्य भी उसी में हैं। वत ये पुराण एक ओर तो प्रक इतिहास की मुक्त घटनाओं और विषयों की श्रुतियों को जोड़ने में सहायक होते हैं और दूसरी ओर उस इतिहास के प्रामाणिक बातावरण को नैतिक रूप रग देने का काम करते हैं।

इतिहासकार के पास इतिहास के निर्माण के लिए सतथ्य प्रमाण वतकथाएँ और पुराणों के सांस्कृतिक बृहत् और भी उपकरण होते हैं। ये उपकरण महापुरुषों के बामिक एवं सामंजस्य प्रवचन समाज के नियमनों के धारण इस एवं प्रतिभाशाली राजनीतिज्ञों के विचार तथा प्राचीन कवियों एवं नाटककारों की रचनाओं के रूप में उपलब्ध हैं। साहित्यिक कृतियों के प्रतिरिक्त धर्म धर्मों का संबंध व्यक्ति और घटनाओं से प्रत्यक्ष नहीं होता। उनके द्वारा इतिहासकार तत्कालीन बामिक राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों से अपने इतिहास को धारणक बातावरण देता है। वस्तुतः ये उपकरण सांस्कृतिक इतिहास के धारण हैं। कभी कभी बामिक धर्मों द्वारा 'जातकों' की सृष्टि करके विशेष के व्यक्तियों में संबंध प्रक इतिहास को सामग्री भी मिला जाती है धर्मका उस नाम विशेष की महत्वपूर्ण भावना तो ये दे-ही देते हैं। भारत के मुहुर ऐतिहासिक काम की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के लिए देवों

उपनिषदों एवं शास्त्र ग्रन्थों के प्रतिरिक्त ग्रन्थ कोई साधन नहीं। कालांतर में समाज और राजनीति के घाटनों को धामने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ स्मृतियाँ हैं धर्मशास्त्र और कामसूत्र जैसे ग्रन्थों के आधार पर ही प्राचीन धर्म व्यवस्था और सामरिक जीवन के संरक्षण में इतिहासकार कुछ कह सकने की सामर्थ्य रखता है। यूनान के प्लेटो और अरस्तू और सुकरात ने अपने ग्रन्थों में जो राजनीतिक सिद्धांत, धर्म संबंधी तर्क और ब्रह्मान्तिक विचार लिये हैं उनके द्वारा ही इतिहासकार को यूनान की सांस्कृतिक महत्ता का सामान्य विमलता है। साहित्यिक ग्रंथ का अपना स्वतन्त्र मूल्य है। होमर इत्यादि के साहित्य के संबंध में कहा जा चुका है कि प्राचीन साहित्यकारों ने इतिहास और दस्त कथाओं के सहारे अपने स्वतन्त्र इतिहासों का निर्माण किया था। इसके अथवा इतिहास को चाहे कितनी ही दाति क्यों न पहुँची हो और चाहे उनके पूर्व अद्विष्ट इतिहास के स्थिते ही भ्रष्ट सकेत क्यों न मिले हों इसमें संदेह नहीं कि उनकी कृतियों द्वारा उनके स्वयं के युग के वातावरण एक सांस्कृतिक इतिहास की जानकारी इतिहासकारों का प्रबल्य हुई है। प्राचीन भारत की संस्कृति का स्वरूप कितना नाट्य शास्त्र अष्टाध्यायी और महाभाष्य से विमलता है उतना ही मास कालिदास कूटक हर्ष चरित और विद्यालक्ष्मण जैसे कवियों और नाटककारों के नाम्य और नाटकों से भी। इन सब कवियों और नाटककारों के ग्रन्थ अपने अपने युगों की सांस्कृतिक परम्पराओं और लोक जीवन के स्वरूपों की ओर तो स्पष्ट संकेत करते ही हैं अभी अभी अथवा इतिहास को पूर्ण ऐतिहासिक बमाने अथवा जो सामान्य ऐतिहासिक सामग्री देने में भी सहायक होते हैं। विद्यालक्ष्मण के 'मुद्राराक्षस' एवं 'दिवी चन्द्रगुप्तम्' के कथानकों के आधार पर ही इतिहासकारों ने यौवकाल एवं गुप्त काल के विषय में विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की एवं कुछ प्राचीन अथवा इतिहास में रामगुप्त एवं अश्वामिनी संबंधी तथा परिच्छेद जोड़ा।

इतिहासकार के उपकरणों को संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है इतिहास के दो स्वरूप हैं ऐतिहासिक तथ्य और सांस्कृतिक इतिहास। ऐतिहासिक तथ्यों को भी हम दो कोटियों में विभक्त कर सकते हैं। इन में प्रथम का 'अथवा इतिहास' एवं द्वितीय को 'अथवा इतिहास' कहा जा सकता है। इतिहासकार के पास अथवा इतिहास के लिए ऐतिहासिक धर्म मुद्रा स्तम्भ एवं पवित्र इत्यादि उपकरण होते हैं। अथवा इतिहास के लिये उसे बत कथा पौराणिक धार्मिक सामरिक ब्रह्मान्तिक एवं साहित्यिक ग्रन्थों से नामही लेनी पड़नी है। प्राचीन स्मृतियों तथा धर्म कलाकृतियों ने दोनों को अपनी अपनी सामग्री मिल सकती है। सांस्कृतिक इतिहास एक ओर तो अथवा इतिहास के उपकरणों से स्पष्ट साक्षरी ग्रहण करता है और दूसरी ओर प्राचीन रीति रिवाज परम्पराएँ और लोक विश्वास उनका निर्माण में सहायक होते हैं।

इतिहास की इन सब सामग्रियों पर इतिहासकार अपनी संश्लिष्ट समझाव्यता का प्रयोग करता है और तभी वे उपकरण इतिहास का रूप धारण कर पाते हैं।



इतिहासकार की संश्लिष्ट समझाव्यता

उपरोक्त कृत्त में सबसे धन्तिम निर्देश इतिहासकार की संश्लिष्ट समझाव्यता है। संश्लिष्ट समझाव्यता इतिहासकार की मौलिक प्रतिभा है जिसका प्रयोग वह ज्ञात तथ्यों के बीच की धन्नात कश्चियों का जोड़ने में करता है। त उद्भावना में इतिहासकार को उक्त दोनों ज्ञात तथ्यों द्वारा निश्चित 'समझाव्यता' का धाधार मान कर बसना पड़ता है। वास्तव में इतिहासकार बसत तथ्य सग्रहकर्ता मात्र नहीं है। जैसा हम पहले कह चुके हैं काल की कार्यकारण परम्परा को जोड़ना भी उसका ही काम है और इसके लिये उसे अपनी मौलिक प्रतिभा का प्रयोग करना पड़ता है। जोड़े से ज्ञात तथ्यों से संपूर्ण इतिहास का सूजन करना सन्लेपण शक्ति द्वारा संभव है और यह संश्लेषण बिना विश्लेषण के संभव नहीं। विश्लेषण-संश्लेषण की यह किन्ना धन्नात तथ्यों में समझाव्य निष्कर्षों का धारण करनी है। इतिहासकार की यही संश्लिष्ट समझाव्यता साहित्यकार की 'बल्बना शक्ति' के धन्नात मधीन है परन्तु हम इसे कल्पना शक्ति' नहीं कह सकते क्योंकि इतिहासकार की समझाव्यता ज्ञात तथ्यों तथा नवीन गन्नेयसाधो की सीमा में इतनी कसो रहती है कि उसे मौलिक उद्भावनामें करने का धन्निहार ही नहीं होता। उम अपनी प्रत्येक उद्भावना के लिये प्रमाण देने होते हैं। यहाँ यह स्पष्ट कर देना धावश्यक है कि यह संश्लिष्ट समझाव्यता ही इतिहासकारों के दृष्टिकोणों में निश्चितता का कारण होती है। यही इतिहास में निश्चल निश्चल धाम्यताओं को जन्म देती है।

ऐतिहासिक नाटक, इतिहास और कल्पना

इतिहासकार के मूल उरसों की चर्चा हम कर चुके हैं। इसमें सम्यक् नहीं कि इतिहास में पुष्पतत्व बत कया मोरु कया श्राव ऐतिहासिक घटनाएँ और पौराणिक उपाख्यान सभी का समाहार हो जाता है और इसमें भी सम्यक् नहीं कि उक्त समाहार इतिहासकार की 'संभाव्यता' के माध्यम से ही होता है परन्तु यहाँ प्रस्तिन

कथ से यह निश्चित कर लेना होगा कि इतिहासकार किस

इतिहास और सीमा तक पुराणों और लोक कथाओं के क्षेत्र में प्रवेश कर ऐतिहासिक नाटक इतिहास की सामग्री खोज सकता है। पहले कहा जा चुका है

इतिहास घृतकाल के तथ्यों का संग्रह मात्र नहीं है।^१ मुग्धी

इतिहास को साहित्य की एक कलात्मक दृष्टि कहते हैं और इतिहासकार की 'स्वानुभव' से प्रेरित सरसता को इतका करछ मानते हैं।^२ हेरोडोटस, पुसिडाइटिस गिबन मैकोले कार्लाइस के इतिहास उनके अनुसार प्रादर्भ हैं और इन सबमें कथन की रसिकता और 'मावनारमक' अपूर्वता का आनन्द होने के कारण वे इनको कलात्मक दृष्टि मानते हैं।^३ बिसे मुग्धी इतिहासकार का 'स्वानुभव' कहते हैं उसे हमने 'संक्षिप्त संभाव्यता' कहा है। इतिहास को विज्ञान माना जाय या नहीं इसमें मतभेद हो सकता है परन्तु इतिहासकार की दृष्टि वैज्ञानिक होती है यह निश्चय है।

कल्पना के सहारे घञाठ युगों के कथानकों को लेकर उप-भ्यास भले ही भिषा जाय, पर उसे इतिहास तो नहीं कहा जा सकता। इतिहासकार मात्र बतकथा और पुष्पणों से कहानियाँ लेकर ऐतिहासिक पात्रों और घटनाओं की सृष्टि नहीं कर सकता, न केवल स्वानुभव के आधार पर इतिहास की घटनाओं और पात्रों की स्पष्ट शब्दों में आलोचना ही कर सकता है न उनके कर्तव्याकर्तव्यों पर मनमानी टिप्पणियाँ ही कर सकता है और न इतिहास को एक काल्पनिक कथा का स्वरूप ही दे सकता है। हमारे शब्दों में कथन इतना ही कहा जा सकता है कि इतिहासकार विभाण नहीं कर सकता कात्र भन ही

१ 'बट दे धार मो मोर हिन्दू देन बटर एन्ड सोस्ट एन्ड हर्ब्स धार ऐन थोमसेट।

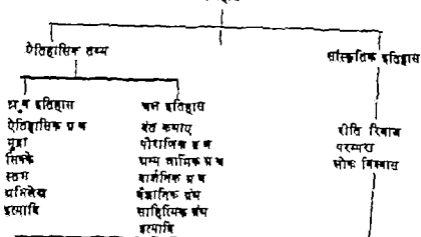
पोट्टर इस इन मिनिण्कर लिटन स्टु की पृ० १६०।

२ धारि कथनों पृ० १६० 'ऐतिहासिक पात्रो घने पैम नु विरूपण।

३ वही पृ० १६०।

इतिहास की इन सब सामग्रियों पर इतिहासकार अपनी 'संश्लिष्ट संभाव्यता' का प्रयोग करता है और तभी वे उपकरण इतिहास का रूप धारण कर पाते हैं।

इतिहास



इतिहासकार की संश्लिष्ट संभाव्यता

उपरोक्त सूत्र में सबसे अंतिम निर्देश इतिहासकार की संश्लिष्ट संभाव्यता का है। संश्लिष्ट संभाव्यता इतिहासकार की मौखिक प्रतिभा है जिसका उपयोग वह ज्ञात तथ्यों के बीच की अज्ञात कड़ियों को जोड़ने में करता है। इस उद्भावना में इतिहासकार को ज्ञात दोनों ज्ञात तथ्यों द्वारा निश्चित 'संभाव्यता' को धारण मान लेना पड़ता है। वास्तव में इतिहासकार केवल तथ्य संप्रहर्कता मान नहीं है। वैसे इन पहले कड़ चुके हैं काल की कार्यकारण परम्परा को जोड़ना भी उसका ही काम है और इसके सिधे उसे अपनी मौखिक प्रतिभा का प्रयोग करना पड़ता है। जोड़े स ज्ञात तथ्यों से नए नए इतिहास का सृजन करना सम्भव है अतः द्वारा संभव है और यह संश्लेषण जिन विज्ञानों के संभव तरी। विशेषतः-संश्लेषण की यह क्रिया घसात तथ्यों में संभाव्य निष्कर्षों का धारण करनी है। इतिहासकार की यही संश्लिष्ट संभाव्यता साहित्यकार की 'अस्यना अति के अत्यन्त समीप है परन्तु हम इसे सम्भवता अति' नहीं कह सकते क्योंकि इतिहासकार की संभाव्यता ज्ञात तथ्यों तथा नवीन उपकरणों की सीमा में इतनी कसी रहती है कि उसे मौखिक उद्भावनाएँ करने का अधिकार ही नहीं होता उसे अपनी प्रत्येक उद्भावना के सिधे प्रमाण देने होते हैं। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि यह संश्लिष्ट संभाव्यता ही इतिहासकारों के इच्छिकोनों में विनिश्चिता का कारण होती है। यही इतिहास में निम्न निम्न संभाव्यताओं को जन्म देती है।

ऐतिहासिक नाटक, इतिहास और कल्पना

इतिहासकार के मूल उद्देश्यों को जवाब हम कर चुके हैं। हमने समझे नहीं कि इतिहास में पुरातत्व बत कवा सोच कवा मात्र ऐतिहासिक कल्पना और पौराणिक उपाख्यान सभी का समाहार हो जाता है और इसमें भी समझे नहीं कि जलक समाहार इतिहासकार की 'समाख्यता' के माध्यम से ही होता है परन्तु यहाँ धर्मिन कथ स यह निश्चित कर लेना होगा कि इतिहासकार किस इतिहास और सीमा तक पुराणों और लोक कथाओं के क्षेत्र में प्रवेश कर ऐतिहासिक नाटक इतिहास की सामग्री खोज सकता है। पहल कहा जा चुका है इतिहास घुनकाल के कथों का समग्र मात्र नहीं है।^१ मुन्नी इतिहास को साहित्य की एक कलात्मक कृति कहने हैं और इतिहासकार की 'स्वा-नुभव' से प्रेरित सरसता को इनका कारण मानते हैं।^२ हेरोडोटस सुनिवाइस गिबन, मिचोमे कार्नाइफा के इतिहास उनके अनुसार प्रायः हैं और उन सबमें कथन की रसिकता और 'भावनात्मक अनुभूता' का प्रात्यक्ष होने के कारण वे इनको कलात्मक कृति मानते हैं।^३ किन्तु मुन्नी इतिहासकार का 'स्वानुभव' कहने हैं उस हमने 'अविश्लिष्ट समाख्यता' कहा है। इतिहास का विज्ञान माना जाय या नहीं इसमें मतभेद हो सकता है परन्तु इतिहासकार की दृष्टि वैज्ञानिक हाती है यह निश्चार है। कल्पना के सहारे घत्रात युद्धों के कथानकों को लेकर उपाख्यान भग ही सिखा जाय पर उसे इतिहास तो नहीं कहा जा सकता। इतिहासकार मात्र इतकमा और पुराणों में कहानियाँ लेकर ऐतिहासिक पात्रों और घटनाओं की सृष्टि नहीं कर सकता न कथन स्वानुभव के आधार पर इतिहास की घटनाओं और पात्रों की स्पष्ट अर्थों में घासाधना ही कर सकता है, न उनके कथ व्याकृत कथों पर मनमानी टिप्पणियाँ ही दे सकता है और न इतिहास का एक काल्पनिक कथा का स्वरूप ही दे सकता है। दुसरे शब्दों में कथन इनका ही कहा जा सकता है कि इतिहासकार विनाग नहीं कर सकता मात्र मत हो

१ 'र' दे धार तो मार हिन्दी देन बटर एन्ड सीस्ट एन्ड इन्ड धार ऐन धोमसेट।

कर ले ।^१ प्रत्येक होने के कारण ही इतिहासकार का दृष्टिकोण वैज्ञानिक कहा जाता है । अपने इतिहास के लिए पुराणों और लोक कथाओं से वह उतना ही प्रवृत्त कर सकता है जितना अन्य उत्यों से प्रमाणित इतिहास के अनुकूल हो भवना कम से कम जिसकी स्मरणा प्रमाणित ऐतिहासिक तथ्यों से प्राप्त हो सके । वह उन पुराणों और कथाओं की व्याख्या किस रूप में करे इसका निश्चय उसकी संस्मिष्ट संभावना करती है । इतिहास को कलाकृति मानते हुए भी स्वयं मुन्शी को इतिहास में कल्पना उत्पन्न की सीमा स्वीकार करनी पड़ी है । 'इतिहासकार बिना किसी आधार के किसी पात्र के कृत्यों का सृजन नहीं करता और न काव्यमय भाषाकरण द्वारा चरित्र का निरूपण ही कर सकता है— -----इतिहासकार को कल्पना और सर्वकथा को प्रतीत ऐतिहासिक प्रमाणों का कठिन बन्धन स्वीकार करना पड़ता है' ।^२ यदि ऐसा न होता तो लोक कथा और पुराण इतिहास ही माने जाते । मुन्शी इतिहास को भी साहित्य की एक कलाकृति मानते हैं । तब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि साहित्य की एक कलाकृति 'इतिहास' तथा अन्य कलाकृति 'ऐतिहासिक नाटक' में मूल अन्तर कहाँ पर है । 'कलाकृति' विशेषण के प्रयोग से तो ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों के कार्यों में कोई अन्तर नहीं । परन्तु कलाकार की सर्वक कल्पना प्रतीत को प्रत्यक्ष और पुनर्जीवित कर सकती है जब कि इतिहासकार अपनी सीमा के भीतर कल्पना का उपयोग करने पर भी प्रतीत को पुनर्जीवित नहीं कर सकता बुद्धिबन्ध बनाने पर भी प्रत्यक्ष नहीं कर सकता क्योंकि इतिहास का प्रतीत मृत प्रतीत है । इसी प्रकार यदि कोई नाटककार केवल इतिहासकार के चरित्र चित्रों पर अपने चरित्र कलात्मक प्रतिभा का प्रयोग न करे तो उसके नाटक निष्प्राण होंगे इसमें सन्देह नहीं ।^३ इतिहासकार छोटे छोटे और बिखरे हुए रंग बिरंगे टुकड़ों को बड़ी सतर्कता और सावधानी से जोड़कर एक ऐसा आकार दे देता है जिसका स्वरूप उन छोटे-छोटे अवयवों में नहीं रहता है । अब, इसी ही इतिहासकार की कला है परन्तु उन रंग बिरंगे टुकड़ों

१. आई इन्वेलन पाइ विमीन, इच जगरनी घण्डस्टु ड ए क्विटिब फेरस्टी प्लिच एच इन्वीड मूब मोस्ट रोमांस राइटर्स टु हेव बि हामेस्ट प्रिटेक्सस टु इट ऑर ऐज बाइ इन्वेलन इच रिचामी मेंट मो मोर (एंड सो बि बर्ड सिमि फार्ब) बीन डिस्कवरी और फोइबिम घाउट और टु इक्सप्लेन इट ऐट सार्ब घु बिचक एंड सेवेसस पीनिडु लम इगु दि टू ऐसेस थीफ पीस घौबजबटस थीफ अवर कर्टेजेलम ।
रोम जोन्स ११ १

२. 'आदि कथनों अपने बीजा व्याख्यानों' ।

कहूयासास माबिकलास मुनी : पृ० ११२

३. डिबिड लारक टेनीसन्स ड्रामाज सेन्सपीयर्स रोमन्सीज

को बिलो गान से ही ऐतिहासिक माटकर के मन्त्रधनुषों के सामने एक सम्पूर्ण कलात्मक रूप प्रवेश हो जाता है । वे बिलो हुए टुकड़े उसकी भोरछा के लिए बाह्य उपकरण माने जाते हैं । इतिहास ही इतिहासकार अपनी 'बिम्ब-संभाषणा' का प्रयोग करता है । यही माटकर अपनी 'सर्जक कल्पना' का । ऐतिहासिक माटकर इतिहास के विषय एक सैकड़ पर अपनी सर्जक कल्पना की विद्युत् से चितायी ही नहीं-नई धाड़ी निराली बिलो ही बनता है । यैष मन्त्र इतिहास का है । वेगामों से जो सारे विश्व माटकर के सपने हैं , निष्कलक इतिहास का है । रंग माटकर के सपने हैं । इस प्रकार माटकर की कला के लिए इतिहास साधारण मान रहा जाता है ।

यही एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि कोई भी ऐतिहासिक माटकर कितना शीघ्र तक सपने, मान और आशाकरण के सुप्नों में इतिहास का समुत्पन्न करे और कहीं तक अपनी हर्षण कराना वा उपयोग । विचारक इस विषय में एक सत नहीं भारतीयों के समुत्पन्न कला-सहित पूर्व-संसार को ही इतिहास कहते हैं ।^१ माटकर इतिहासकार नहीं बल्कि नमि है । सातत्य-संभावना से कि कब और ऐतिहासिक वा सातत्य इन सपनों में रचना कर दिया है । परन्तु सातत्य माटकर और इतिहास में सतार भी बताया गया है । नमि का काम कला कहना नहीं बल्कि तो शौरालिक^२ वा कार्य है ।

कवि कथाकार को लम्बी करता है और रोता करता सपनों और सतों भारतीय सत की सन्निहित सन्निहित से संघर्ष है ।^३ 'न हि कविरितिमुत्तमान् निर्वहणो यो 'मान् मन्त्र धरणा मन्त्र का है, कवि का कार्य इतिहास का निर्वाह करना तो है ही उनके सन्निहित और भी है । इतिहास का निर्वाह यही एक मन्त्र करे इनका सन्निहित विभिन्न-संयोग में हुआ जा सकता है । इतिहास का साधारण तो उते रोता ही पड़ता है परन्तु उनका ही अितना उनके उद्देश्य के लिए आवश्यक हो । इस प्रश्न का समाधान बहुरूपकार ने किया है, उनके समुत्पन्न माटकर को कथाकार उचाना 'उत्पाद घनना विश्व तीन सतार की ही सन्निहित है ।' इसमें सन्देह नहीं कि प्रश्नान कथाकार का साधारण एक और तो इतिहास से जोड़ा जा सकता है और दूसरी ओर उनके ही सहायक पुराण घनना लोक कथाओं से । फलतः सन्निहित और निम्न कथाकारों में सन्निहित ऐतिहासिक सामग्री वा सन्निहित साधारणक है । 'यस कथाकार ने सन्निहित और निम्न सपनों को रिकर माटकर रचना करने वाले नमि

१ पूर्वमुत्त कथाकार इतिहास सन्निहित ।
 २ सन्निहित इतिहासकार ।
 ३ 'न हि कविरितिमुत्तमान् निर्वहणो यो विभिन्न-संयोगान् इतिहासस्येव तस्मिन्ने
 सन्निहित मन्त्र १०० म

कर ले ।^१ ध्वंसेपक होने के कारण ही इतिहासकार का दृष्टिकोण वैज्ञानिक कहा जाता है । अपने इतिहास के लिए पुराणों और लोक कथाओं से वह उठना ही प्रवृत्त कर सकता है बितना धम्म उत्यों से प्रमाणित इतिहास के अनुकूल हो अपना काम से कम जिसकी क्यरेखा प्रमाणित ऐतिहासिक तथ्यों से प्राप्त हो सके । वह उन पुराणों और कथाओं की व्याख्या किस रूप में करे इसका निश्चय उसकी संस्मिष्ट संभावना करती है । इतिहास को कलाकृति मानते हुए भी स्वयं मूग्गी को इतिहास में कल्पना तत्त्व की सीमा स्वीकार करनी पड़ी है । 'इतिहासकार बिना किसी धावार के किसी पात्र के कृत्यों का सूत्रन नहीं करता और न काल्पनिक वातावरण द्वारा चरित्र का निरूपण ही कर सकता है-----इतिहासकार को कल्पना और सजकता को अतीत ऐतिहासिक प्रमाणों का कठिन बन्धन स्वीकार करना पड़ता है'^२ ।^३ यदि ऐसा न होता तो लोक कथा और पुराण इतिहास ही माने जाते । मूग्गी इतिहास को भी साहित्य को एक कलाकृति मानते हैं । तब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि साहित्य की एक कलाकृति 'इतिहास' तथा धम्म कलाकृति 'ऐतिहासिक नाटक' में मूल अन्तर कहाँ पर है । 'कलाकृति' विशेषण के प्रयोग से तो ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों के कार्यों में कोई अन्तर नहीं । परन्तु कलाकार की सजक कल्पना अतीत को प्रत्यक्ष और पुनर्जीवित कर सकती है जब कि इतिहासकार अपनी सीमा के भीतर कल्पना का उपयोग करने पर भी अतीत को पुनर्जीवित नहीं कर सकता बुद्धिमत् बनाने पर भी प्रत्यक्ष नहीं कर सकता क्योंकि इतिहास का अतीत मृत अतीत है । इसी प्रकार यदि कोई नाटककार केवल इतिहासकार के चरित्र चित्रों पर चले, उसमें कलात्मक प्रतिभा का प्रयोग न करे तो उसके नाटक निरप्राण होये इसमें शक्य नहीं ।^४ इतिहासकार छोटे छोटे और बिचारे हुए रंग बिरंगे टुकड़ों को बड़ी सतर्कता और सावधानी से जोड़कर एक ऐसा धाकार दि बेता है जिसका स्वरूप उन छोटे-छोटे अवयवों से रहता है । बस इतनी ही इतिहासकार की कला है परन्तु उन रंग बिरंगे टुकड़ों

१. बार्ड इन्वेसन बाइ बिनीम, इज अजरनी धग्गस्टु ड ए क्रिप्टिव केकस्टी स्ट्रिच एड इग्गीड मूव मोल् रोमाथ एडर्य टु हेव बि इमेस्ट प्रिटेणन्स टु इट रूँर ऐज बाइ इन्वेसन इज रिमलो पैट मो मोर (लैंड तो दि बर्ड लिम्फ-कार्ज) डेन डिस्कवरी और फोर्डिम प्राउट और टु इवसपेन इट ऐट माव ए निवक एंड सेवेसस पैमिट्ट नम इग्गु रि टू ऐसेंस धीफ धीम धीबजपटस धीफ धावर कस्टेपेसन ।
डोम बोन्स ११ १

२. 'धादि बचनों धने बीजाँ व्याख्यानों ।

कम्प्यूतालास माबिकनाल मुम्ती पृ० १५५

३. क्रिश्चि साइक टेमीसन्स ड्रामाज सेनघपीयर्स रोमनपेज

को बंधने मात्र से ही ऐतिहासिक नाटककार के मनबनुषों के सामने एक सम्पूर्ण कलात्मक हस्त प्रत्यक्ष हो जाता है । वे बिखरे हुए टुकड़े उसकी प्रेरणा के लिए बाह्य उपकरण मात्र हैं, इसीलिए वहाँ इतिहासकार अपनी 'विरिष्य संभाव्यता' का प्रयोग करता है वहाँ नाटककार अपनी 'संनक कल्पना' का । ऐतिहासिक नाटककार इतिहास के किसी एक मेष लक्ष्य पर अपनी सर्जक कल्पना की बिद्युत् से कितनी ही नई-नई घाड़ी तिरछा रेखाएँ खींच सकता है । मेष लक्ष्य इतिहास का है रेखाओं से बने सारे विश्व नाटककार के अपने हैं । बिषयमक इतिहास का है रंग नाटककार के अपने हैं । इस प्रकार नाटककार की कला के लिए इतिहास आधार मात्र रह जाता है ।

यहाँ एक महत्वपूर्ण प्रश्न घट्टा है कि कोई भी ऐतिहासिक नाटककार किस सीमा तक वस्तु, पात्र और वातावरण के चुनावों में इतिहास का अनुपमन करे और कहीं तक अपनी स्वतंत्र कल्पना का उपयोग । विचारक इस विषय में एक मत नहीं भारतीयों के अनुसार कथा संहित पूर्व ब्रह्मान्त को ही इतिहास कहते हैं ।^१ नाटककार इतिहासकार नहीं बल्कि कवि है, धान्यदशरथनाथार्य ने कबे और ऐतिहासिक का अन्तर इन शब्दों में स्पष्ट कर दिया है परन्तु अन्वय नाटक और इतिहास में अन्तर भी बताया गया है । कवि का काम कथा कहना नहीं यह तो पौराणिक^२ का कार्य है ।

कवि कथावस्तु को मञ्जीव करता है और ऐसा करना भाषों और रंगों भारतीय मत्त को अनोचित स्पन्दना से संभव है ।^३ 'अ हि कविरितिबुल्लमात्र निबहृत्तेन' में मात्र लक्ष्य परमन्त महत्व का है कवि का काम इतिवृत्त का निर्वाह करना तो है ही उसके अतिरिक्त और भी है इतिवृत्त का निर्वाह कहीं तक यह करे इनका संकेत 'कविन् प्रयोजनम्' में हुआ जा सकता है । इतिवृत्त का सहारा तो उसे लेना ही पड़ता है परन्तु उतना ही बितना उसके उद्देश्य के लिए आवश्यक हो । इस प्रश्न का समाधान इसरूपककार ने किया है 'उमके अनुत्तर नाटक की कथावस्तु 'प्रख्यात 'उत्पाद्य' धर्मना मिथ' तीन प्रकार की हो सकती है ।^४ इसमें सबसेह नहीं कि प्रख्यात कथावस्तु का सम्बन्ध एक और तो इतिहास से जोड़ा जा सकता है और दूसरी और उसके ही सहायक पुराण अपना सीक कथाओं से । कथन प्रख्यात और मिथ कथावस्तुओं में अनेकित ऐतिहासिक सामग्री का प्रयोग आवश्यक है । इस रूपककार ने प्रख्यात और मिथ वस्तुओं को लेकर नाटक रचना करने वाले 'कवि

१ पूर्ववृत्त कथायुक्त इतिहास प्रचलते ।

२ वस्तुतः 'इतिहासकार' ।

३ 'अ हि कविरितिबुल्लमात्र निबहृत्तेन कविप्रयोजनम् इतिहासादेव परिमन्ते

धान्यदशरथ न पु ८

कर ले ।^१ ध्वंसेपक होने के कारण ही इतिहासकार का इष्टिकोण वैज्ञानिक कहा जाता है । अपने इतिहास के लिए पुराणों और लोक कथाओं से वह उतना ही प्रसन्न कर सकता है जितना ग्रन्थ उससे संप्रमाणित इतिहास के समुद्र में प्रथमा कम से कम जिसकी कल्पना प्रमाणित ऐतिहासिक तथ्यों से प्राप्त हो सके । वह उन पुराणों और कथाओं की व्याख्या किस रूप में करे इसका निश्चय उसकी संश्लिष्ट संभावना करती है । इतिहास को कलाकृति मानते हुए भी स्वयं मुग्धी को इतिहास में कल्पना उत्पन्न की सीमा स्वीकार करनी पड़ी है । 'इतिहासकार बिना किसी भाषा के किसी पान के कुरवों का सृजन नहीं करता और न काल्पनिक वातावरण द्वारा चरित्र का निष्कर्ष ही कर सकता है.....इतिहासकार को कल्पना और सर्जकता की अतीत ऐतिहासिक प्रमाणों का कठिन बन्धन स्वीकार करना पड़ता है'^२ यदि ऐसा न होता तो लोक कथा और पुराण इतिहास ही माने जाते । मुग्धी इतिहास को भी साहित्य की एक कलाकृति मानते हैं । तब यह प्रश्न उत्पन्न स्वभाविक है कि साहित्य की एक कलाकृति 'इतिहास' तथा ग्रन्थ कलाकृति 'ऐतिहासिक नाटक' में मूल अन्तर कहाँ पर है । 'कलाकृति' विशेषण के प्रयोग से तो ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों के नाओं में कोई अन्तर नहीं । परन्तु कलाकार की सर्जक कल्पना अतीत को प्रत्यक्ष और पुनर्जीवित कर सकती है जब कि इतिहासकार अपनी सीमा के भीतर कल्पना का उपयोग करने पर भी अतीत को पुनर्जीवित नहीं कर सकता । कुटिलम्य बनाने पर भी प्रत्यक्ष नहीं कर सकता क्योंकि इतिहास का अतीत मृत अतीत है । इसी प्रकार यदि कोई नाटककार केवल इतिहासकार के चरण चिह्नों पर चले, उसमें कलात्मक प्रतिभा का प्रयोग न करे तो उसके नाटक निष्प्राण होये इसमें शंका नहीं^३ इतिहासकार छोटे छोटे और बिसरे हुए रंग बिरंगे टुकड़ों को बड़ी सतर्कता और सावधानी से जोड़कर एक ऐसा आकार दे देता है जिसका स्वरूप सन छोटे-छोटे अवयवों न रहता है । बस, इतनी ही इतिहासकार की कला है । परन्तु उन रंग बिरंगे टुकड़ों

१ बार्ड इन्वेसन प्राइ विन्नीप, इव जनरली अगस्टुड ए क्रिप्टिव फेक्टरी स्थित जब इन्वीड मून मोस्ट रोमांस राइटर्स टु हेव बि हायेस्ट प्रिटेगमस टु इट अर्दर ऐव बाइ इन्वेसन इव रिपनी मेंट गो मोर (एंड सो दि बर्ड सिमि फार्ज) देन डिस्कवरी और फाइविंग प्राइड और टु इन्वेसन इट ऐट सार्ब ए निवट एंड सेनेसस पैमिड्रेसन इस्टु दि टू ऐसेस थीफ मीन प्रीजनसट मीक अवर कर्मेन्सेसन ।
होम जेन्स १११

२ 'भावि बचनों अने बीजा व्याख्याओं' ।

कन्यासात माचिकतात मुग्धी : पृ० ११२

३ फिजिक लाइक टेनीसस ड्राबाइ सेक्सपीयर्स टोयनजेन

कल्पना को ही अपने नाटक का विषय बना सकता है। वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। नामक (ट्रिबिटी) नाटकों और मुक्तान्त नाटकों में अन्तर करते हुए धरन्तू इस बात को स्वीकार करता है कि वास्तव नाटककार 'ऐतिहासिक नामों' को नहीं पढ़ता। यहाँ संभवतः 'ऐतिहासिक नामों' से धरन्तू का अभिप्राय 'ऐतिहासिक घटना व पात्र' दोनों से है। जो कार्य सब तक नहीं हुए उनका हम घटनात्मक नहीं मान सकते और जो कार्य पहले कभी हो चुके हैं वे सबकथ्य घटनात्मक हैं अथवा घटनात्मक हैं वे सबकथ्य विश्वसनीय भी हैं। यही कारण है कि नामककार अपने नाटक में इतिहास का पन्ना नहीं छोड़ सकता। ऐसा प्रतीत होता है कि धरन्तू केवल उसी ऐतिहासिक घटना को नाटक में स्थान देना स्वीकार करता है जो ऐतिहासिक सत्य होने के साथ संभाव्य और घटनात्मक भी हो। यह स्पष्ट है कि धरन्तू नाटककार और इतिहासकार के बीच सम्बन्ध ही मीन संबंध की दृष्टि करता है। उसके नाटककार को पूरी स्वतंत्रता है कि वह 'एक दो ऐतिहासिक पात्रों' के प्रतिरिक्त अन्य सभी का 'संभाव्यता' की सीमा में मूक कर ले अपना परंपरा से प्रचलित नामक नाटकों की आधारभूत लोक कथाओं में ही संधा परिवर्तन कर ले। उसकी माय्मता है कि 'ज्ञान विषय भी बहुत कम स्थितियों के लिए आते हैं'। नामक और इतिहास में इतना संबंध बतलाने पर भी धरन्तू ने 'दी कलाकर प्रोड कमाया' नामक एक पुस्तिका लिखित नामक की भी प्रत्यक्ष प्रशंसा की है। स्पष्ट है कि कि धरन्तू के नाटककार का घटना पात्र और संभवतः कालांतरण में भी मनानुसृत परिवर्तन कर अपने का अभिप्राय है। एकमात्र घटनात्मक संभाव्यता^१ को ध्यान में रखकर वह चिंतना ही परिवर्तन कर सकता है।

होरेम में नाटक में इतिहास और कल्पना के प्रयास में 'संभाव्यता' के स्थान पर 'संभव्यता' को प्राथमिक माना है। लोक प्रचलित कथा को अपना बना लेना ही कवि (नाटककार) का कार्य है। घटनाओं के सम्पूर्ण इतिहास का ज्ञान जान नाम कवि का कार्य अल्पिन दुष्ठा उत्पन्न करना नहीं, पुण्ड्र से अल्पि निवारण लेना है जिसे वह धरन्तू के साथ साथ मुन्दर का मूक कर सके। इतिहास की घटनाएँ नाम और विषयों उसके लिए मूल्य की नहीं होती, वह तो हीरकता से घटनाओं की धोर करछा है और अल्प, पाठकों को मनोरंजक स्वभाव की धोर इस प्रकार से जाता है, जैसे उनका उम्र घटनाओं से पूर्व परिचय हो। जिस परिस्थिति का वह अपने रूप में अपने में अन्तर्गत होता है, उसके

१ 'इस समय ट्रेजेंटीज देयर धार बन और ट्रिबिटी एंड रि ग्रेट धार केय'

२ 'इसमें मीन सबकीवटन् धार मीन बट टु ए क्यू'।

३ पीसिबिल बोड प्रोबेविजिलिटी।

की सीमाओं का भी संकेत कर दिया है। यदि नाटककार क्यात वृत्त लेकर रचना कर रहा हो तो यह आवश्यक है कि वह घटमात्र कल्पना द्वारा उसके प्रभाव को नष्ट न होने दे। उसे अपनी मौक्तिका केवल बीए कल्पनाओं तक ही सीमित करनी पड़ेगी, धर्मशा परम्परा के प्रतिद्वन्द्व हो जाने से दर्शकों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। परन्तु इसके साम ही यह स्थिति ही नहीं आवश्यक भी है कि यदि नाटककार के नाटक के सामान्य चरित्र के विरोध में कई परम्परा भी हो तो वह उसका प्रतिद्वन्द्व कर अपने नाटक के चरित्र की उदात्तता स्थापित करे, १ उपर्युक्त विवरण से निम्न बातें स्पष्ट हैं।

१. नाटककार ऐतिहासिक इतिवृत्त को लेकर नाट्य रचना करते हैं।
२. ऐसी नाट्य रचना में मुख्य घटना में कल्पना का समावेश नहीं किया जा सकता।
३. कल्पना का समावेश केवल पौरुष कथागत ('हापसोब'—कीव) में ही किया जा सकता है।
४. ऐसे नाटककार के लिए इतिवृत्त केवल माध्यम मात्र हैं, उनका मुख्य कार्य मायो धीर रसों की मनोचित व्यंग्यता द्वारा कथावस्तु को धनीय और सप्राण बनाना है।
५. नाटककार इतिहास धर्मशा परम्परा से प्राप्त कथावस्तु में प्रसंग से विभक्त वस्तु को अपने नाटक में स्थान न दे और कथा सज्ज होने पर भी ऐसे प्रसंगों का स्थान न दे जो मूल कथा के नायक तथा धर्म पात्रों के चरित्र के अनुकूल न हों।

उक्त सभी बातों से यह स्पष्ट है कि नाटककार की घटना धीर पात्र में परिवर्तन धर्मशा नाटक के नियमों का निर्वह करने के लिये क्या वस्तु में हेर फेर यदि करना ही पड़े तो नाट्य इतिहास की घटनाओं की परिणति से नहीं किन्तु उसके कम धर्मशा कार्य-कारण संबंधनाओं में परिवर्तन द्वारा ही वह ऐसा कर सकता है।

नाटक में इतिहास धीर कल्पना के सम्मिश्रण के संबंध में धरस्तू 'संभाव्यता' पर विशेष बल देते हैं धीर उनका मत भी बहुत कुछ भाग्यवर्द्धनायक के मत से मिलता जुलता है। उसके धनुमार, इतिहासकार गद्य मिश्रता है धीर कवि(नाटककार) पद्य। इन दोनों में केवल इतना ही अंतर नहीं है। इतिहासकार भीती हुई घटनाओं का वर्णन करता है धीर कवि (नाटककार) ऐसी ही घटनाओं का वर्णन करता है जो किसी भी काल में संभव हों। इतिहास का संबंध धर्मशा से है धीर कवि पाश्चात्य मत का समष्टि है। धरस्तू के उक्त कथन से यह भ्रम हो सकता है कि कवि (नाटककार) इतिहास के स्थान पर केवल संभाव्य

कल्पना को ही अपने नाटक का विषय बना सकता है। वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। आसक (ट्र जिन्दी) नाटकों और सुलान्त नाटकों में घट्टर करते हुए भरसू इस बात को इकीकार करता है कि आसक नाटककार 'ऐतिहासिक नामों' को नहीं पता। यहाँ समझत 'ऐतिहासिक नामों' से भरसू का अभिप्राय 'ऐतिहासिक घटना व पात्र दोनों' से है। जो कार्य अब तक नहीं हुए उनका हम घटनीय नहीं मान सकते और जो कार्य पहले कभी हो चुके हैं वे घटनीय घटनीय हैं। घट जो घटनीय है वे घटनीय विषयवस्तु भी हैं। यही कारण है कि आसककार अपने नाटक में इतिहास का पन्ना नहीं छोड़ सकता। ऐसा प्रतीत होता है कि भरसू केवल उसी ऐतिहासिक घटना को नाटक में स्थान देना स्वीकार करता है जो ऐतिहासिक सत्य होने के साथ संभाव्य और घटनीय भी हो। यह स्पष्ट है कि भरसू नाटककार और इतिहासकार के बीच घटपट ही भीने संबंधों की सृष्टि करता है। उसके नाटककार को पूरी स्वतंत्रता है कि वह 'एक दो ऐतिहासिक पात्रों' के अतिरिक्त अन्य सभी का 'संभाव्यता' की सीमा में सृजन कर से अपना परम्परा से प्रभावित आसक नाटकों की आधारभूत लोक कथाओं में ही संबंधों परिवर्तन कर ले। उसकी मामूली है कि 'आत विषय भी बहुत कम व्यक्तियों के लिए आत होते हैं'। आसक और इतिहास में इतना संबंध बतसाने पर भी भरसू ने 'दी फूसाबर घोफ अयाबा' नामक एक पुर्णतया कल्पित आतव की भी घटपट प्रमंसा की है। स्पष्ट है कि कि भरसू के नाटककार को घटना पात्र और समझत आताकरण में भी ममोमुक्त परिवर्तन कर सकने का अधिकार है। एकमात्र घटनीय संभाव्यता^३ को ध्यान में रखकर वह कितना ही परिवर्तन कर सकता है।

हौरस ने नाटक में इतिहास और कल्पना के प्रयोग में 'संभाव्यता' के स्थान पर 'संबद्धता' को आधारभूत माना है। लोक प्रचलित कथा को अपना बना लेना ही कवि (नाटककार) का कार्य है। घटनाओं के सम्पूर्ण इतिवृत्त को ग्रहण करने बात कवि का कार्य अन्तिमे कुछ उल्लेख करना नहीं, हुए से अन्ति निवास लेना है जिससे वह घटपट के साथ साथ सुन्दर का सृजन कर सके। इतिहास की घटनाएँ नाम और विविधा उसके लिए महत्व की नहीं होतीं वह तो सीधता से घटनाओं की घोर बढ़ता है और अपने पाठकों को अनोखक स्वयं की घोर इस प्रकार से जाता है जैसे उनका उन घटनाओं से पूर्व परिचय हो। जिस परिस्थिति को वह अपने रंज के रूप में प्रममक होता है, उसके

१ 'इन सम ट्र जेडीज देवर धार कम और ट्र नेम्स एंड दि ग्रेट धार केम्ब'

२ 'इवन मीन सबडीबटम् धार मोन बट ट्र ए एम्।

३ पौसिबिल सोट घोफ प्रोबेबिलिटी।

छोड़ देता है और इस प्रकार कल्पना और सत्य का ऐसा मिश्रण प्रस्तुत करता जिसमें कथा का मध्य । उसके प्रारम्भ और अन्त दोनों से संबन्ध रहता है ।^१

होरेस के उद्धरण से ज्ञात होता है कि वह भी इतिहास और कल्पना सम्मिश्रण में इतिहास के रूप, बटना अथवा पात्रों के यथासम्भ्य चित्रण को प्राथमिकता नहीं देता । ज्ञात बटनाओं को सम्यक् सम्यक् ग्रहण करना वह प्राथमिकता मानता । उसकी कलाकृति की कसौटी कलात्मक और पात्रों की सम्बद्धता मात्र है । होरेस भी ऐतिहासिक इतिवृत्त लेकर रचना करने की कठिनाइयों को स्वीकार करता है । परन्तु वह इतिहास के बोझ से ज्ञात प्रबन्धों से (बुझ से) सम्पूर्ण और सुगम चरित्रों को (अग्नि को) निकालने में विश्वास करता है । उन चरित्रों के निर्माण लिए उसने काल्पनिकता की सीमा भी बांधी है । नाटककार का कार्य यह है कि अपने नाटक में किसी भी ऐतिहासिक पात्र के ज्ञात चरित्र की विशेषताओं को प्रतिरक्षित क बिभित कर । यदि किसी पात्र में कुछ उड़ बटा हो तो उसे अत्यन्त श्रेणी और तात्पर्य प्रदर्शित किया जाना चाहिए । इसी प्रकार किसी चरित्र के प्रति किसी कुमारी के बोझी सी उबासीगता को उसकी अनैतिकता के रूप में बदल देना चाहिए ।^२ होरेस ऐतिहासिक पात्रों के ज्ञात स्वभावों में एक निश्चित प्रकार की प्रतिरक्षा की प्राथमिकता तो मानता है किन्तु वह अन्य किसी भी प्रकार के परिवर्तन की प्राथमिकता नहीं समझता । जहाँ तक ऐतिहासिक बटना के परिवर्तन किए जाने का प्रश्न है, वह 'नाटकीय संबद्धता के साथ साथ लोक विश्वासों के अनुकूल किए गए परिवर्तनों का ही उचित समझता है ।^३

१ ए पब्लिक स्टोरी बिज बिफ्रम मुझर घोन प्रीपटी इफ यू डेंट इविस अघोन वि होल सफल थोक ईवेंट्स, थिच इज पैस्ट्री एंड भोजन टु ऐसीबल, और मस्ट यू बी सो केबफुल ए ट्रांसमेटर और टु टेक वि वेस थोक रैडरिंग वि प्रीपटिजनम बई फौर बर्ड । वि घार्ट थोक पोयट्री— होरेस

२ इफ ऐज ए पायट यू हिव टु रिप्रजेंट वि रिनाउन्ड ऐबिलीज नेंट हिम बी इग्नीफैटीमबल रैकफुल इनइकजीरेबल अरेजम नेंट हिम बिनाइ बेट सोज बीर मेड और हिम, नेंट हिम ऐरेन्डेट एसीबिल टु फोर्थ प्राफ धार्म्य नेंट मीडिया बी फिमस एंड इन्डस्टेबल ईनो वेज थोकजक थोक पिटी, धाइनियमन परफैडिवा, धायो बागडरिंग थोरेस्टीज इन बिस्टुस'

वि घार्ट थोक पोयट्री होरेस :

३ 'ही घाट इन स्टोरी टु फोसा वि कोमन रिनीज्ज थोपोलियन धार ऐट बीस्ट टु इवैट बिज बेट में बी एज कन्करमेनुस टु एट एज पीसीकुस'

'रुकेलिगर' का मत है कि इतिहास में कथानक को उल्लेख करने समय मास्टरकार को इतिहास के साथ मर्ती में बहुत दूर नहीं लेना जाना चाहिए। तुलना मास्टरकार 'साफ़ाइजिंग' में आज भी इतिहास की समझना के प्रीमियम के कथानक में परिवर्तन कर दिया। रुकेलिगर हम प्रकार के परिवर्तनों को धीरेधीरे समझता है इतिहास 'सुल्पाइवीज' में इतिहास के समझ में भी इतिहास के बिना बिना सुल्पाइवीज को लड़ा है, यह जल्दी ही धारणा करना है। रुकेलिगर का मत है कि मास्टरकार का मास्टरकार समझ लिया जाना चाहिए जो समय के अर्थ में परिवर्तन मानी है।

इतिहास हमें (समय मर्ती का प्रयोग किया है, रुकेलिगर का मत उचित सिद्ध है। प्रथम यह कर्मी ही इतिहास मर्ती किता है कि कथानक और इतिहासिक समय का सामान्य बिना सामान्य लक्ष्य होना चाहिए। प्रथम हमें समझ मर्ती कि यह इतिहासिकता का अर्थ समझ देना है। साफ़ाइजिंग और सुल्पाइवीज मर्ती के मास्टरकार में भी मत प्रयोग प्रयोग किया है। प्रयोग यह भी जाना है कि यह कथानक एवं इतिहास मर्ती में बिना समय परिवर्तनों का अनुकूलनीय मर्ती मानना। रुकेलिगर के अनुसार मास्टरकार के साथ इतिहास का अनुकूलनीय मर्ती है। प्रयोग परिवर्तन का प्रभावित करने एवं प्रथम मर्ती/रत करने की भी धारणा होनी चाहिए। प्रथम परिवर्तन को प्रभावित करने एवं प्रथम मर्ती/रत करने की यह इतिहास के सिद्ध है इतिहास मास्टरकार का मत है एवं प्रयोग अर्थव्यक्ति पर ही निर्भर है। इतिहास यह मर्ती लक्ष्य या मत है कि रुकेलिगर की इतिहास में कथानक का कोई प्रयोग ही मर्ती।

क्या का सुविधा धारणा 'रुकेलिगर' सामाजिक कथानक में ही मर्ती धारणा/रत प्रयोग में परिवर्तन करने का धारणा मास्टरकार का मत है। मास्टरकार इतिहास साफ़ाइजिंग मर्ती को ही कथानक की समझना की धारणा मर्ती होनी धारणा के इतिहासिक मर्ती, के मर्ती लक्ष्य के धारणा प्रयोग मर्ती मर्ती मर्ती प्रयोग कर लक्ष्य लक्ष्य

- १ 'रुकेलिगर' का मत है कि इतिहास में कथानक को उल्लेख करने समय मास्टरकार को इतिहास के साथ मर्ती में बहुत दूर नहीं लेना जाना चाहिए।
- २ 'सुल्पाइवीज' में इतिहास के समझ में भी इतिहास के बिना बिना सुल्पाइवीज को लड़ा है, यह जल्दी ही धारणा करना है।
- ३ 'रुकेलिगर' का मत है कि मास्टरकार का मास्टरकार समझ लिया जाना चाहिए जो समय के अर्थ में परिवर्तन मानी है।
- ४ 'प्रयोग परिवर्तन को प्रभावित करने एवं प्रथम मर्ती/रत करने की भी धारणा होनी चाहिए।
- ५ 'इतिहास मास्टरकार का मत है एवं प्रयोग अर्थव्यक्ति पर ही निर्भर है।

घोड़ बेठा है और इस प्रकार कल्पना और सत्य का ऐसा मिश्रण प्रस्तुत करता है जिसमें कथा का मध्य । उसके प्रारम्भ और अन्त दोनों से संबन्ध रहता है ।^१

होरेस के उद्धरण से ज्ञात होता है कि वह भी इतिहास और कल्पना के सम्मिश्रण में इतिहास के कम बटना घबना पार्श्वों के परातत्त्व विचरण को अधिक महत्त्व नहीं देता । ज्ञात बटनाओं को नब्ब शब्द ग्रहण करना वह आवश्यक नहीं मानता । उसकी कसाकूति की कसौटी कबालक और पार्श्वों की सम्बद्धता मात्र है । होरेस भी ऐतिहासिक इतिवृत्त लेकर रचना करने की कठिनाइयों को स्वीकार करता है । परन्तु वह इतिहास के बोझ से ज्ञात अवशेषों से (बुझ से) सम्पूर्ण और सुन्दर चरित्रों को (अग्नि को) निकालने में विश्वास करता है । उन चरित्रों के निर्माण के लिए उसने कास्मिकता की सीमा भी बांधी है । नाटककार का कार्य यह है कि अपने नाटक में किसी भी ऐतिहासिक पात्र के ज्ञात चरित्र की विशेषताओं को प्रतिरिञ्चित कर चित्रित करे । यदि किसी पात्र में कुछ उड़ बग़ा हो तो उसे प्रत्यक्ष बोधी और ताइसी प्रदर्शित किया जाना चाहिए । इसी प्रकार किसी चरित्र के प्रति किसी कुमारी की बोधी सी उदासीनता को उसकी अनैतिकता के रूप में बरस देना चाहिए ।^२ होरेस ऐतिहासिक पात्रों के ज्ञात स्वभावों में एक निश्चित प्रकार की प्रतिरिञ्चना की आवश्यकता तो मानता है, किन्तु वह धर्म किसी भी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता नहीं समझता । जहाँ तक ऐतिहासिक बटना के परिवर्तन किए जाने का प्रश्न है, वह 'नाटकीय संबद्धता के साथ साथ लोक विश्वासों के अनुकूल किए गए परिवर्तनों को ही उचित समझता है ।'^३

१ ए पब्लिक स्टोरी जिम विकम बुपर ओम प्रीपटी इक यू डौट इवेल अपोन दि होम सर्किस ओफ इन्ट्रिक्स् विच इन पस्ट्री ए व ओगन टु ऐबीवन गौर माट यू बी ओ केवकुल ए ट्रांसलेटर और टु टेक दि वेस थीफ रेडरिच दि थोरिजिनल बर्ड फौर बड । दि घार्ट ओफ पोयट्री— होरेस

२ इफ ए व ए पोयट यू हैव टु रिप्रजेंट दि रिगाउण्ड ऐथिनीज लैज हिम बी इग्नीफेटीगबल रेवकुल इनइवबीरेबल करेजस नैट हिम डिगाइ ईट लीज बीर मेड फौर हिम नैट हिम ऐरोवैट एबीविम टु फोर्स घाफ घामर्स नैट मीडिना बी फिमर्स एंड इस्ट्रुक्टेबल ईगो ऐन थोबबक थीफ पिटी घाइविजयन परफेडियस, घायो वाग्जरिन थोरेस्टीज इन डिस्ट्रैस'

दि घार्ट ओफ पोयट्री होरेस

३ 'ही घौट इन स्टोरी टु फौसा दि कौमन रिनाण्ड थोनीविजय घार ऐट सीस्ट टु इम्बैट पिग्न ईट में बी ए व कन्फरमेबुल टु इट ए व पोसीबुल'

वही एक इतिहासकार क उरकरगुं का विवरण जमा । यह देखना यह है कि ऐतिहासिक साक्ष्यकार के पास अपने नाटकों के लिए सौंदर्य में उरकरगुं प्राप्त है । ऐतिहासिक नाटक के दो मूल लक्ष्य 'इतिहास' और 'काल' स्पष्ट है । वही एक इतिहास का प्रत्यक्ष साक्ष्यकार और काल के लिए साक्ष्यकार के सम्मुख नीचे ही मूल उरकरगुं प्राप्त है जो इतिहासकार के पास प्राप्त है । नाटककार का मुख्य इतिहास की सम्मुखता में ही हाकर इतिहास के साथ विचार करना विचार और पात्र विचार में ही होता है । साथ करना और पात्र का प्रस्तुत प्राप्त हुए भी दोनों के ऐतिहासिक उरकरगुं में बाई प्रस्तुत नहीं होता । साक्ष्यकार इतिहास के साथ दोनों में सीमा ही अपनी सामान्य में करता है और यह वह बाहे का सम्मानना इतिहासकारों के प्रती में भी में करता है । प्रथम स्थिति में नाटककार इतिहासकार का सम्मुख कार्य स्पष्ट ही करता है इसी स्थिति में ऐतिहासिक उरकरगुं इतिहासकार की संक्षिप्त सम्मुखता प्राप्त करना पूर्ण सम्मुखता का लक्ष्य है । यह उसक लिए करके नाटककार का ही कार्य प्रस्तुत रह जाता है । इतिहासकार का कार्य करके हुए ही नाटककार और इतिहासकार में प्रस्तुत है । इतिहासकार अपने अपनी उरकरगुं के साथ जो सृष्टि करता है वह एक साथ करना और सम्मुख के उरकरगुं पर कालिक परिवर्तनों की प्रभाव मुकी प्रभाव इतिहास होता है । नाटककार उस मुखा क पात्र विचार को प्रस्तुत कर उस नाटक के मूल स्थिति में इस प्रकार सम्मुखता कर रहा है कि वह साक्ष्य का उरकरगुं प्रभाव बन जाता है ।

इतिहासकार और ऐतिहासिक साक्ष्यकार के मूल प्रस्तुत का सम्मान क लिए शान्त क उरकरगुं को और भी स्पष्ट करना जाता है । प्रत्यक्ष है कि काल की नाटककार अपने काल का कालिक परिवर्तन के लिए सम्मुखता का उरकरगुं इतिहास ऐतिहासिक साक्ष्यकारों की सीमा में काली बनाता जा रहा है ? अपने दो प्रस्तुत की का उरकरगुं हा करते कि किसी भी प्रकार कालिक का प्रभाव उरकरगुं प्रभाव का प्रभाव क हस्तों को प्राप्त कर उनके सम्मुखताओं को निर्माण करना प्रथम उनमें एक ही सम्मान करता है । नाटककार की शान्त उरकरगुं क लिए अपने सम्मुखता का प्रभाव करता है । उस शान्त का एक सम्मुखता रूप को को प्रभाव पूर्ण करके कालिकों को प्राप्त है और एक प्रकार क सम्मुखताओं की शान्त के लिए नाटककार स्पष्ट ही प्रार्थना इतिहास की प्रभाव प्रस्तुत प्राप्त है । सम्मुखता में प्रभाव साक्ष्यकारों के लिए ऐतिहासिक साक्ष्यकारों के लिए प्रभाव का प्रभाव प्रभाव है कि एक दिनों प्रभाव सम्मुखता में को कालिकों का देखने को उरकरगुं प्रभाव की । सम्मुखता एक एक इतिहास के साथ सम्मुखता प्राप्त क उरकरगुं कालिक सम्मुखता नहीं लिए

में परिवर्तन कर लेते हैं, नाटककार का उद्देश्य दर्शकों को इतिहास के तथ्यों का ज्ञान कराना नहीं है। यद्यपि नाटककार नाटक के नियमों के बन्धुन कथा में बाधित परिवर्तन कर सकता है।^१ एक ही इतिहासकार महाकाव्यकार और नाटककार की रचना पद्धतियों के अन्तर को भी स्पष्ट कर दिया है। इतिहासकार के लिए इतिवृत्त मात्र ही पर्याप्त है, उसे उस पर निर्भर होने की आवश्यकता नहीं। महाकाव्यकार का इतिवृत्त लोक-कथाओं में निहित विरलत सत्य की परिवर्तित अभिव्यक्ति है। ऐतिहासिक नाटककार उसी के इतिवृत्त को उचित सम्मान्य और मनोरंजक रूप में रखता है।^२ परन्तु यदि कोई ऐसा कथानक मिल जाय जिसमें ऐतिहासिकता के साथ साथ नाटकीयता भी हो तो नाटककार को अवश्य ही ऐतिहासिक सत्य को रक्षा करनी चाहिए।^३ अतएव वह ऐतिहासिक कथावस्तु में कबूट परिवर्तन कर सकता है किन्तु कथा चरित्रों के चित्रण एवं ऐतिहासिक वातावरण की दृष्टि में मनमाना परिवर्तन करने का उसे अधिकार नहीं। उदाहरण के लिये कोई भी नाटककार 'सीडर' को कायर एवं भिडमिता को साधु के रूप में चित्रित नहीं करेगा।^४

एतना अब कुछ निश्चय ही है एवं उस बात ऐतिहासिक कथा में प्रतिक परिवर्तन करने की सम्मति नहीं देता जो जन मानस में बाधित हो। इसलिये जिन कथानकों में किए हुए परिवर्तन जन साधारण के विश्वासों में आघात पहुँचाते हैं उन्हें बहु अपाह्न मानता है। यही मान्यता परस्पर की भी थी। प्राचीन कवियों और नाटककारों ने कथानक के सम्बन्ध में धरा ही स्वच्छरता से काम लिया है। मूरीपाइडीज, सोफोक्लीज इत्यादि यूनान के प्रसिद्ध नाटककारों ने एक ही कथानक में अल्पानुसूत परिवर्तन किया है। एके का अनुमान है कि इतिहासकारों ने कालान्तर में उनके नाटकों के आधार पर प्राचीन यूनान के इतिहास का अन्वेषण करना चाहा तो इतिहास में भी विकृति या तर्क और उसके भी मित्र-निमिष स्वरूप बन गए।

उपरोक्त विचारों से कुछ मास्यार्ण स्पष्ट हो जाती है, उसकी दृष्टि में इतिहासकार महाकाव्यकार एवं नाटककार का अन्तर स्पष्ट है परन्तु महाकाव्यकार

१. 'वे टेक फाउट प्रोफ दि स्टोरी थो मच ऐज सर्भ रैपर टर्न एंड रैज दि रैस्ट, नोट इनसर्पिबिटा रैट ऐबीबीबी कुड भी सी रैडिबयुलस एज टु बम टु दि विप्टर टु बी इस्टुबैड इन दि ट्रूथ प्रोफ हिस्ट्री।

२. दि होम पार्ट प्रोफ स्टैज फंकाइज हैबेसिन

३. वही

४. वही

यहाँ तक इतिहासकार के उपकरणों का विवेचन हुआ। अब देखना यह है कि ऐतिहासिक नाटककार के पास अपने नाटकों के लिये कौन कौन से उपकरण होते हैं। ऐतिहासिक नाटक के दो मूल तत्व 'इतिहास' और 'नाटक' स्पष्ट हैं। यहाँ तक इतिहास का प्रश्न है उसके ज्ञान के लिये नाटककार के सम्मुख भी वे ही मूल उपकरण होते हैं जो इतिहासकार के पास होते हैं। नाटककार का सबसे इतिहास की सम्पूर्णता से न होकर इतिहास के काम विशेष बटना बिना ही पात्र विशेष से ही होता है। काम बटना और पात्र का घन्टार होते हुए भी दोनों के ऐतिहासिक उपकरणों में कोई घन्टार नहीं होता। नाटककार इतिहास के मूल तत्वों से सीधा ही अपनी मायगी न सकता है और यदि वह चाहे तो समझावण इतिहासकारों के ज्ञान से भी ले सकता है। प्रथम स्थिति में नाटककार इतिहासकार का सम्पूर्ण कार्य स्वयं ही करता है दूसरी स्थिति में ऐतिहासिक उपकरण इतिहासकार की सखिल्य संभाव्यता द्वारा अपना पूर्ण स्वरूप पा चुके होते हैं। अतः उसके लिये कबम नाटककार का ही कार्य प्रकटित रह जाता है। इतिहासकार का कार्य करते हुए भी नाटककार और इतिहासकार में घन्टार है। इतिहासकार अपने सभी उपकरणों के द्वारा जो मूर्ति बनाता है वह देश का बटना और संस्कृति के उत्तरोत्तर एवं अधिकाधिक परिवर्तनों की यथासंभवी घबर्ती इतिहास होता है। नाटककार उस मूर्ति को धर्म विशेष को प्रथम कर उसे नाटक के मूलम स्तर में इन प्रकार सुमंगित कर देता है कि वह साहित्य का रस-युग धर्म बन जाता है।

इतिहासकार और ऐतिहासिक नाटककार के मूल घन्टार को समझने के लिये बालों के उद्देश्यों को धीरे भी स्पष्ट करना होगा। प्रश्न यह है कि कोई भी नाटककार अपने कथानकों के लिये बतमान का धाड़कर इतिहास की सीमा में क्यों जाना चाहता है? इसमें दो मूल गद्दी का उद्देश्य हो सकते हैं कि किसी भी प्रकार के नाटक का प्रथम उद्देश्य धर्मक या नाटक के हृदयों को स्पष्ट कर धर्मक मनोविकारों को नियंत्रण करना धर्मका धर्ममें रस का मंचार करना है। नाटककार इन्हीं धर्मक उद्देश्यों के लिये अपने समस्त जीवन का प्रयोग करता है। इन जीवन का एक महत्त्वपूर्ण रूप धर्म के प्रभाव पूर्ण कथानकों को सोच है और इन प्रभाव के कथानकों की सोच के लिये नाटककार स्वयं ही प्राचीन इतिहास की धीरे प्रेरित होता है। ऐकमयीय के प्रथम नाटकों के लिये ऐतिहासिक नाटक बच्चों लिये इनका कारण मेरियट यह बतलाते हैं कि उन दिनों जनता अपना मनब नये नये नाटकों को देखने का उत्सुक रहती थी। इसलिये तब तक इतिहास के पत्नी पत्रों के जान के जब तक उन्हें कोई उपयुक्त कथानक नहीं मिल

जाता था^१। सभार के प्रायः सभी देशों के प्राचीन नाटक इस कथन की पुष्टि करते हैं। भारतवर्ष के नाटककारों का तो धारणा ही 'क्यास बुत' रजा है। यूनान राम प्रभृति देशों के प्राचीन नाटककारों ने भी अपने बुब से पूर्व पठित इतिहास का ही आधार ग्रहण किया है। कथानकों की विभिन्नता के अतिरिक्त संनकन^२ इससे एक धीर भी नाभ होता है। नाटककार को इतिहास में कथानकों की रूप रेखाएँ बनी बनाई मिल जाती हैं।

परन्तु कबस नये नये कथानकों की खोज के लिये नाटककार इतिहास का प्रनभोक्तन करता हो ऐसी बात नहीं। इसके नार महत्वपूर्ण नहोस हो सकते हैं।

- १ राष्ट्रीय महत्व के उद्देश्य से राष्ट्र के महापुरुषों धार उनके शिवा कथाओं का विनसु,
- २ प्राचीन जीवन संरुहति एवं समाज का यथासम्भ्य विवरण
- ३ ऐतिहासिक मुषों में अपने बुब की समस्याएँ खोजकर सहाय परिनिर्वातियों में संनक सथागत का प्रयत्न एवं अग्रत्यक्त रूप से अपने मुन की समस्याओं का विवरण धीर
- ४ महान् ध्यतियों के महत्वपूर्ण शिवाकताओं एवं धारणों द्वारा नारिनिक्त शिखरु।

भरत विश्वनाथ मम्मट प्रभृति सभी धाधारों ने काव्य के अनेक उद्देश्य गिनाये हैं। उनमें अतप्राप्ति नन प्राप्ति धर्मगत से रता धर्म धर्म नान मोस की प्राप्ति अहानन सहोदर 'रस की प्राप्ति, एवं कातासमित उपदेस इत्यादि मुख्य हैं। अस्तुतः यन धन धर्मगत परिहार एवं धर्म धर्म नान मोस तो ऐसे उद्देश्य हैं जो काव्य के अतिरिक्त धीर उपायों से भी सिद्ध किये जा सकते हैं। यदि उन्हें उद्देश्य नान भी निया न्याय तो ये कवि न लिये हो सकते हैं। पाठक थोटा या एतक को तो नन, धन धादि की प्राप्ति हो नहीं सकती^३। रस द्वारा अनीकिक धानन की प्राप्ति एवं साहित्य द्वारा 'कातासमित उपदेस' साहित्य के प्रधान उद्देश्य माने जा सकते हैं। किन्तु ये उद्देश्य साहित्य के सभी प्रकारों के लिये समान हैं। अहाँ तक नाटकों का प्रन है भरत ने उनक उद्देश्यों की विस्तृत नर्चा की है। नाट्य धर की उरगति ही ईप्या अनीकिक की नानना से विरक्त मनुष्यों की सात्त्वना के लिये हुई है। देशों के अथ उपदेस क स्थान पर नाट्य रंन में हुरवसर्धी उपदेस की स्वाभ नित्ता धीर तत्त्वत बड़ा ने धर्म धर्म यन देने वाले इतिहास के साथ साथ उपदेस से मुक्त, नोनों को सोक ध्यवहार का धारण सिखाने वाले धीर सभी नलों के लिये धानन

१ इ ननिक्त हिस्ट्री इन वेकनरीवर : ने इवस्यु देनियट पृ० ४

२ धातोचना धारन पृष्ठ २४

रूप से उपमोगी 'नाट्य' नामक पञ्चम वेद की रचना की^१। स्पष्ट है कि भारतीय मय से नाटक का उद्भव मनोरंजन उपरिम धीरे धीरे लोक व्यवहार के साथ साथ धर्म धर्म धीरे धीरे प्राप्ति भी है।

जैसे पूर्व कहा जा चुका है सभी नाटकों में 'स्वात कृत' का स्वाम महत्वपूर्ण भाग मया है। 'स्वात कृत' की परिभाषा इतिहास पुराणाम्याम्^२ है। मूलत इतिहास धीरे पुष्प दोनों ही इतिहास के लिये सामग्री है। अतः ऐतिहासिक कृतों से संबन्ध रखने वाले नाटकों का साधारण उद्भव मनोरंजन धीरे विवेक उद्भव मनुष्य का मार्गभूमि विकास है^३। ऐतिहासिक नाटक के उपरिनिमित्त धार उद्भव का अतिरिक्त यह सबम महत्वपूर्ण उद्भव प्रतीत हाता है। अतः यह उद्भव धर्म प्रकार के नाटकों के सम्बंध में भी ठीक है तथापि ऐतिहासिक नाटकों के सम्बंध में यह अस्तुतः सर्वाधिक ठीक है। पारबाल्य विचारकों ने भी ऐतिहासिक नाटकों के इन महत्व का ठीक इसी प्रकार के अर्थों में उल्लेख किया है। येकर्मस्य के अनुसार ऐतिहासिक नाटककार का एक भाग उद्भव नामक के जीवन धीरे उसके वेद काम की चुनी हुई घटनाओं एवं परिस्मितिओं की ठीक ठीक एवं कलात्मक अभिव्यक्ति है जो एक दूसरे से इस प्रकार संबद्ध है कि मानवता धीरे उसके अविष्य पर मया प्रकाश पड़ सके^४। मानवता का वर्तमान धीरे उमका संवर्धन धर्म धर्म धीरे काम में निहित है। मोक्ष में उसकी परम मूलि स्पष्ट है। यदि मोक्ष की धार्मिक धर्म से बाधा हटाकर देते तो उसे मानवता के चरम विकास की संभावना मया जा मचना है।

धर्म ऊपर निरिष्ट धार उद्भवों का विवेचन करना प्रथम प्राप्ति है। ऐतिहासिक नाटककार के प्रथम उद्भव को मान्यता देन वालों में कालरिज का स्थान महत्वपूर्ण है। कालरिज के अनुसार मध्य ऐतिहासिक नाटक बही है जो लक्ष्युक्त उम मानव मयका का इतिहास हो अितके लिये यह सिद्धा मया है^५। हमारे प्राचीन साम्राटा धीरे उनके राज्य काम की घटनाएँ घाबाम के लक्ष्यों की तरह हैं। आते उनका बीच कितना ही धार्मिक अन्तर क्यों न हो वे एक दूसरे के अत्यन्त मनीय सिद्धाई होते हैं। वे मध्य कपी घटनाएँ जान की सीमाओं से ऊपर उठकर हमें प्रभावित करती हैं धीरे उनका प्रकाश हमारी धार्मिकों में निरन्तर अित-मिताता उठता है^६। कालरिज

१ नाट्य शास्त्र १ = ८, ११ १२ १४, १५, १९ १०.

२ इगातर्ता ममातर्ता मोहातर्ता उपस्वीनाम् ।

विधायजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति ।

धर्मं धराम्यमापुष्य हिन बुद्धि विवर्धनम् ।

लोकोलोके जननं नाट्यमेतद् भविष्यति ।

नाट्य शास्त्र १११, ११३

३ केल्लपिपरमः रोमन प्लेज कृष्ण ३३ ६०

४ मिटर्ली रिसेम्, बोस्नुम २

५ बही बाप्नुम २

ऐतिहासिक नाटकों का लिखना और खेल्ना इसीसिधे आवश्यक मानते हैं कि उनके प्रभाव से राष्ट्रीय भावना और राष्ट्र तथा व्यक्तिगत भावना और व्यक्ति के मध्य एक सामंजस्य स्थापित हो सके ।

ऐतिहासिक नाटकों का दूसरा वह ब्य प्राचीन जीवन संस्कृति एवं समाज का यथा उच्च चित्रण इतना अधिक माननीय नहीं किन्तुता पहिमा है । सम्भवतः इतका कारण यह है कि उक्त कार्य इतिहास और संस्कृति से सम्बन्ध रखने वाले बन्ध भी कर लेते हैं । ऊपरी हृदि से प्रथम और द्वितीय उद्देश्यों में कोई महत्वपूर्ण घटना नहीं है, यदि घटना है तो केवल इष्टियों का । प्रथम उद्देश्य को लेकर चलने वाले नाटककार को राष्ट्रीय महत्व की झंकी दिनाता घनीष्ट है, क्योंकि वर्तकों की राष्ट्रीय और देश मक्ति की भावना ऐसे नाटकों की बांध रखती है । मैक्सपियर के नाटकों के सम्बन्ध में कहा गया है कि उन विनों इ धर्मस्थ को यह ज्ञान हो गया था कि वह एक महान राष्ट्र है । उनकी देशमक्ति बाग रही थी । अंग्रेजों को अपने देश का समिमान हो गया था । वे अपने राष्ट्र के इतिहास और अपने देश को महान बनाने वाली घटनाओं को जानने के लिए बिकल थे । सामाजिकों की इसी तीव्र इच्छा की पूर्ति करने के लिए मैक्सपियर और उनके समकालीन नाटककारों ने ऐतिहासिक नाटक लिखे । परन्तु दूसरे उद्देश्य को हृदि में रखकर नाटक रचना करने वाले के लिए इतिहास का कलापूर्ण एवं नाटकीय चित्रण ही घनीष्ट है । नाटककार राष्ट्रीय भावनाओं के लिए नहीं बल्कि ऐतिहासिक विशेषता और वैशुहन के लिए इस प्रकार की रचना करते हैं । डूमास के सिकम्बर महान की घटनाओं को नाटक का रूप देते समय पीस डेमेबी^१ अपना ऐतिहासिक कालीन इ धर्मस्थ पर निकले समय "वे इमिजल हरमन कमीजल" के रूप में राष्ट्रीय भावनाओं की उमिमतता सम्भव नहीं है क्योंकि दोनो धर्म की साहित्यिक प्रतिभाएँ हैं । किन्तु इसके ठीक विपरीत नेपोलियन के चरित्र पर नाटक लिखते हुए "पीस रेजल" पर सोइस्य राष्ट्रीयता का धारोप प्रकल्प किया जा सकता है । अंग्रेजी साहित्य से भी दो महत्वपूर्ण नाटक उदाहरणार्थ मिले जा सकते हैं जो केवल इतिहास के चित्रण के उद्देश्य से ही लिख गये हैं । उनमें से एक है "रेजिनाल्ड बर्लिन" का "बी लडी विद ए मैग्" और दूसरा है "विमफर्ड बोस्स" का "सोक्रिटीज" । अंग्रेजी ऐतिहासिक नाटककारों के संबंध में लिखते हुए "मिडल" स्वयं यह स्वीकार करते हैं कि समग्र रूप में अंग्रेजी नाटककारों ने ऐतिहासिक धून द्वारा वर्तमान को प्रभावित करने का प्रयास

१ : बी डु पियरी घाफ एमेकबेडर

२ : मैक्सपियर और बी कमीडी घाफ एमेकबेडर :

३ : बी बय एगड बी घोनली नेपोलियन

नहीं किया। उन्होंने या तो मूल को पुनर्जीवित करने के लिए प्रथम वर्तमान के समान से भाग पाने के लिए ऐतिहासिक नाटकों की रचना की।^१

उपर्युक्त वाक्य में ऐतिहासिक नाटकों की रचना की दो बातें स्पष्ट हैं। यदि कोई नाटककार देश में राष्ट्रीय भावना विकसित करने के लिए प्रतीक का चित्रण करना चाहे तो नाट्य रूप ही परम रूप है। यदि वह एक घोर तो कलाकार का प्रारम्भिक ध्यान प्राप्त करने के लिए घोर रूप ही घोर जीवन के समक्ष से प्रभावित करने के लिए ऐतिहासिक प्रतीक को राष्ट्रीय रूप है तो निश्चय ही उसके सामने राष्ट्रीयता या देश प्रेम का उद्देश्य नहीं रह सकता। वह तो इतिहास और संस्कृति का चित्रण उस चित्रण के ध्यान के लिए ही करेगा। बहुत सम्भव है कि पात्रों की रूढ़ि के साथ जो सम्मान की भावना रहती है वह भी इसमें महत्वपूर्ण प्रभाव डालती हो।^२ इस प्रकार के नाटकों में नाटककार का प्रभाव उद्देश्य कितनी काम विशेष की प्रतीकात्मकता को ही अभिव्यक्त करना होता है और जब वह प्राकृतिक काल के विपरीत नाट्यीक रहस्य-सहस्र ज्ञान-पान धारि के नियम ही वातावरण में धपने को पाता है तब उस विशेष ध्यान में निरत है।

ऊपर घेरेगी नाटकों के सम्बन्ध में निम्न में जो कुछ कहा है उसमें ऐतिहासिक नाटकों के विशेष उद्देश्य की चर्चा प्रभावित ही पा गई है। ऐतिहासिक पुस्तकों में धपने हुए भी समस्याओं का चित्रण ऐतिहासिक नाटककार का प्रारम्भिक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। महत्वपूर्ण इतिहास कि प्रत्येक साहित्यकार अपने युग का ही निम्न होता है।^३ पीन स्टेकर का कथन है प्रत्येक महाद कलाकार अपने युग से इनकी प्रतिक्रिया घोर इतन स्पष्ट रूप से प्रभावित होती है कि कला व साहित्य की बढ़ कृति उस युग के सबसे महत्वपूर्ण घोर मन्त्रे इतिहास की सजा पा सकती है।^४ साहित्य को यदि अनुकरण कहा जाय तो कलाकार केवल उसी वस्तु का अनुकरण कर सकता है जिसे वह प्रत्यक्ष देख सकता है। इतने प्रथम ऐतिहासिक इतिहास उसे काव्य रूपों के बीच उचित अनुवाद बनाने में सहायता करती है।^५ उनमें कथन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ऐतिहासिक नाटककार जो कलाकृति प्रस्तुत करता है, वह वास्तव में कलाकार की ही अनुकूलि होती है। उसका इतिहास अपने ही ऐतिहासिक है। मूलतः उपर्युक्त इतिहास ऐतिहासिक मन्त्रण का है। इसमें इतिहास को इतिहास के लिए नहीं बल्कि प्राकृतिक समस्याओं के लिए

१ बर्लिंगहाम निम्न पृष्ठ ८६२।

२ "दि ए टर् दि डिस्टेंस घे टर् दि रेवर्न्स" जेम्स गीवर्ण एण्ड क्लासिक लेटिनिटी।

३ सी पीट इव सी टू चार्ल्स फाक हिव एण पीन स्टेकर पृ० ११७

४ वही पृ० ११७

५ वही

पहल किया जाता है। "पट्टीपठा" को यदि पहला उपयोगितावादी दृष्टिकोण माना जाय तो "भुग की समस्याओं का चित्रण" इसी प्रकार का दूसरा दृष्टिकोण होगा।

उपर्युक्त दृष्टिकोण को सर्वाधिक महत्व देने वालों में हीमल का स्थान प्रमुख है। 'सौन्दर्य शास्त्र' पर विद्य गये अपने भाषण में यह कहता है "एक महान साहित्यकार न केवल दृष्टपूर्व सौन्दर्य का घनावरण करता है, बल्कि वह मानवता का बला भी होता है। वह अपने चारों घोर के लोगों के प्रस्पष्ट स्वर्णों को सुनता है, उन्हें एकत्र करता है ठोठ प्रकार देता है घोर प्रसन्न में लोगों के मीन घाबेणों को ऊ भी घोर स्पष्ट वाली देता है।^१ यहाँ हीमल का स्वर एक घोर ता मानवतावादी है घोर दूसरी घोर उपयोगितावादी। "मूठ क गायक" कवि के लिए भी उपर्युक्त सीमाएँ निर्धारित कर उसमें ऐतिहासिक नाटककार के उद्देश्य को स्पष्ट कर दिया है।

इसमें सन्देह नहीं कि ऐतिहासिक नाटककार के सम्मुख भी अपने युग के पीछे-बागठे प्रश्न बराबर उठते रहते हैं। यह सम्भव है उन प्रश्नों का समाधान उठे वर्तमान में न मिल सके। यह भी सम्भव है कि वर्तमान उसके इतने समीप है कि घाँस के बिस्कुल पास रखी हुई बस्तु की तरह उबक ठीक ठीक स्वरूप का अनुमान यह न लगा सके घोर ऐतिहासिक भूत को दूर से लही-संतुलित रूप में देख सकने के कारण यह उसकी प्रत्यक्ष प्रिया-प्रतिप्रिया उनके कारण-कार्यों के लाल देख जाने से लज्जत हो घोर इसी कारण से घाब की समस्याओं से मिलती-जुलती भूतकास की समस्याओं को उनके लही इन्हीं के साथ लोगों के सम्मुख रखने में ऐतिहासिक नाटक की अपना माध्यम बनाये। बस्तुतः काल घोर प्रकृति की समातन गतिशीलता घोर संबन्धता में मनुष्य के मूल स्वभाव में महत्वपूर्ण अंतर नहीं होता। कलक उसकी मूल समस्याएँ भी प्राप्त एक-सी ही रहती हैं। यद्यपि उनके बाह्य स्वरूपों में अंतर होता ही रहता है। ऐतिहासिक नाटककार उस मूल की प्राचीन में लोभकर उठे धातुनिक से लोड़ देता है, यद्यपि धातुनिक के प्रयास के लिए इतिहास की विरलत लक्ष्यों को काम में लाने का मोह संवरण न कर सकने के कारण वर्तमान की भूत के लक्षि में लाल देता है। ऐतिहासिक नाटक लिखने वाला नाटककार की प्रकार से इस उद्देश्य की प्राप्ति कर सकता है यह या तो वर्तमान की भूत के लोड़ में रल कर देवेँ यद्यपि भूत को वर्तमान के लक्षि में लाल द।

इसी लक्षि उद्देश्य की लेकर धातुनिक युग में क^१ ऐतिहासिक नाटक लिख गये। इमर्षक में 'डिक्टरी' १ घोर "वर्नई गा २ के युग नाटक इस लक्षि में

१ मैक्सम घाल ईरानिक हीमल पृ० ११६

२ धातुनिक लिखन डिक्टरी

३ मल लोन : गा

रखे जा सकते हैं। अमेरिका में अधिकांश ऐतिहासिक नाटक निकल^१ के कथना
नुसार इसी उद्देश्य को लेकर बने हैं^२। वेबस्तीयर के नाटकों के सम्बन्ध में कहा
गया है कि "उसने प्राचीन का पुनरुद्धार किया मानव हृदय के धारणत तत्वों की
घोर निर्यस किया और उनकी आधुनिक जीवन की उन विषयवस्तुओं के माध्यम से
साक्षिप्राय बनाया जो प्राचीन आदर्शों की घोर अस्मिमुख थीं। यहाँ तक कि कभी
कभी बनवाने ही पर्याप्त नहीं को भी उसने प्रकृत किया।"^३

ऐतिहासिक नाटक लिखने का अन्तिम उद्देश्य नैतिक और शिक्षात्मक है।
१२ वीं शती के इंग्लैंड में जिन "मीरेसिटी प्लेज" का जन्म हुआ था उनमें १६ वीं
शती तक घाटे-भाटे ऐतिहासिकता का समावेश भी हो गया था। क्रुजर के नाटकों
में नैतिक नाटकों और ऐतिहासिक नाटकों का सम्मिलन देखा जा सकता है। बरन्नु
यह निश्चित है कि इन नाटककारों का उद्देश्य शिक्षा देना था ऐतिहासिक नाटक सिखाना
नहीं। बल्कि "ये नैतिक नाटक राजनीति और इतिहास के घोर ही स्पष्ट कर सके
थे। यहाँ एक प्रश्न उठता है कि कोई भी नाटककार इतिहास को अनागत कर कैबल
दिया देने के उद्देश्य से किसी कलाकृति का मुद्रण क्यों करे ? "कान्ता सम्मिलितयो-
पदेतमुदे" की बात बुरी है क्योंकि यह सम्भव है कि बनवाने ही किसी कलाकृति
से पाठक या दर्शक कुछ महत्वपूर्ण शिक्षा ग्रहण करले। इसमें भी कुछ संदेह नहीं
कि इतिहास के प्रभावशाली माध्यम से इस प्रकार का कार्य सरस हो सकता है।
जहाँ धारकों के निर्माण का प्रश्न है वह काय ऐतिहासिक नाटक कर सकता
है बरन्नु यदि जिला देने का ध्य ही नैतिक और चारित्रिक शिक्षा से है तब
यह कहना पड़ेगा कि सामान्यतया नाटककारों ने इस उद्देश्य से ऐतिहासिक नाटक
नहीं लिखे। भारतवर्ष में तो "मनोरंजन के साथ साथ मुपार करने के उद्देश्य से ही
नाट्यवेद की उत्पत्ति हुई अथवा बेरी और पुराणों के होते हुए इसकी कोई आवश्यकता
न थी।"^४ इस सम्बन्ध में पारचात्य लेखकों में स्कासिजर के विचार इत्यर्थ हैं।
उनका कथन है कि ऐतिहासिक नाटकों का उद्देश्य हमलों को आश्चर्य से भरकर
प्रभावित कर देना मात्र न होकर दर्शकों को प्रभावित करना, प्रकृत करना और

१ "वेदर एक दम कलरन रि द वलिन राइस ईडेड टु एचोइड वूजिन मंटीरिपल
कीन पाइरिंग कमीटी कीन रि प्रोबैट अमेरिकन वापर्स ईव ईडेड टु वर्ड्स ए
वाव इन्डिगनीटी प्रीयोग टु रिम एन्ड टु सीक और बीज्ज श्लिच माइट एडवैज
इन इन्डिगनीटी सोबिजन अजवैटस् कीन रि ईन्वटिपल सैन्चुरी

शिक्षा देना भी है।^१ इसमें सन्देह नहीं कि नाटकों में नैतिक शिक्षा होती है और नैतिक मान्यताओं के लिए नाटककारों ने इतिहास तक में परिवर्तन कर दिया है। मेरियट ने भी जेक्सपीयर के नाटकों में चारित्रिक और नैतिक तत्त्वों की खोज की है।^२ सच्चे और असच्चे चरित्रों के संघर्ष में एक भाटककार के काम्य-ध्याय में उपर्युक्त दोनों का विभक्त प्रयाग ही हो जाता है। इस संघर्ष में पौराणिक नाटकों में सदा ही सच्चे की विजय दिखाई गई है। पाश्चात्य ऐतिहासिकों में भी नाटककारों ने इस बात का ध्यान रखा है कि बहो कहीं भी ऐसे सम्राटों का वर्णन हो बिनाही छल बल से राज्य प्राप्त किया उनका शासन प्रजाति और संघर्षों के प्रभावित दृष्टों से परिपूर्ण विधित किया जाय।^३

अगर हम उन चार उद्देश्यों पर विचार कर लेंगे हैं जिनको सामने रखकर कोई भी नाटककार अपने कथानक के लिए इतिहास की बुद्धि-बुद्धि मिसमिलाती हुई यथार्थता के पीछे भागने का प्रयत्न करता है। परन्तु यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि ऐतिहासिक नाटकों के मायने ही ऐसे उदाहरण मिल सकते हैं जहाँ नाटककार एक प्रकृति उद्देश्य को रखकर नाटक रचना करने बैठता हो। जेक्सपीयर के उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि उसके ऐतिहासिक नाटकों में प्रायः सभी उद्देश्य दिखाई देते हैं। मार्गोव दृष्टिकोण से भी "बर्नार्डकान्मोस" में भी सभी उद्देश्यों की धार संकेत मिल जाता है। नाटककार किसी भी उद्देश्य से नाटक सिधे उसी ऐतिहासिक गान्धीयता में इतिहास व संस्कृति का विभक्त उतना ही महत्वपूर्ण बन जाता है जिसका देश प्रेम राष्ट्र प्रेम प्रकृति नैतिक धारणों का। यह सम्भव है कि किसी विवेक नाटक में एक उद्देश्य प्रधान हो जाय और किसी में दूसरा परन्तु इसमें संदेह नहीं कि एक से दूसरा स्वतः ही ध्वनित हो जाता है भव इन उद्देश्यों की प्रधानता प्रप्रधानता पर विचार किया जा सकता है परन्तु इनके बीच किसी प्रकार की लक्ष्मण रेखा नहीं खींची जा सकती। अतएव मे इसका ही कहा जा सकता है कि जिस प्रकार समस्त साहित्य का कार्य मानवता के विकास में योग देना है, उसी प्रकार उससे एक घण ऐतिहासिक नाटक का कार्य मानव के अतीत से प्रेरणा लेकर वर्तमान की प्रभावना करना और भविष्य की रूप रेखा प्रस्तुत करना है।

•

१ फौर दि जे इज मीड ऐक्वेड गोमती दु स्ट्राइक दि स्पेक्टेटर विद एडमिरेलन और कौस्टरनेशन ए पोस्ट थिच एकोडिंग दु विटिबल ऐस्पाइलन वन पीपल गिस्ती बट कुड थोस्सी टीक मूव एण्ड प्सीज।

मूगारियन थ्योरीज आफ ड्रामा पृ० ९२

२ इल्लमिग डिस्ट्री इन जेक्सपीयर मेरियट : पृ १४

३ "मो लकन की धार तो हैत विन देयर"

कार एव नाटककार के बीच कोई विशेष अन्तर उत्पन्न नहीं किया है । कल्पना का समावेश दोनों में हो सकता है । यदि हम दोनों में अन्तर है तो केवल इतना ही कि एक में प्रतिरजता को महत्त्व दिया गया है अन्य में नहीं । नाटक के तीन मूल घौचित्य सम्भाव्यता और मनोरंजन महाकाल्यकार के लिए भी उत्पन्न ही प्रासंगिक है । ऐतिहासिक इतिवृत्त की दृष्टि से एव ने महाकाल्य और नाटक में जो अन्तर किया है वह महत्त्वपूर्ण और समुचित है ।

सारांश यह है कि एव नाट्य कला को महत्त्व देता है इतिहास को नहीं इतिवृत्त के सम्बन्ध में वह नाटककार को मनचाहे अधिकार दे देता है । किन्तु उसके नाटककार की कल्पना ऐतिहासिक चरित्र और वातावरण में सीमित हो जाती है । नाटकों में प्रासंगिक घुट घुबि का सही स्वाध एव ने ही निर्धारित किया है ।

अन्य घालोचक सैधिय ऐतिहासिक उन्म को नाटककार का उद्देश्य न मान कर उसकी प्रति का साधन मानता है । उसके अनुसार नाटककार एक 'अन' की सृष्टि करता है और उस 'अन' के हाथ हयारे हुरपों को स्पष्ट करता है ।

सैधिय परम्पु का समर्पण करते हुए 'सम्भाव्यता' को ही महत्त्व देता है । घटनाओं की प्रातरिक 'सम्भाव्यता' ही इतिहास को इतिहास बनाती है । अतः सम्भाव्यता का मूल तत्व चाहे घात कथावस्तु से ग्रहण किया जाय घमवा उत्पाद से इनमें कोई अन्तर नहीं पड़ता ।^१ महान् जीवन चरित्रों के प्रदर्शन के लिए नाटक नहीं लिखे जाते । नाटक का उद्देश्य यह नहीं कि घमुक घमुक व्यक्ति ने क्या किया करद यह है कि कुछ विशेष घात परिस्थितियों में एक विशेष चरित्र का प्रत्येक व्यक्ति क्या करेगा । सैधिय संभवतः इसे ही नाटक की प्रातरिक सम्भाव्यता मानता है अतः स्पष्ट ही उसकी दृष्टि में नाटककार के लिए कथानक की ऐतिहासिकता का कोई महत्त्व नहीं । परम्पु एव की तरह वह भी यह स्वीकार कर लेता है कि यदि इतिहास में उसके विषय का वैयक्तिकता एवं सजाबद की संभावनाओं से युक्त कथानक मिल जाय तो नाटककार इसे ग्रहण कर सकता है ।

१ 'इस्टोरिकलनेचुरली इन मोड हिज एम बड घोषी दि मीम्स बाद् विव ही होम्स टु ऐटन हिज एम ही विवेक टु इस्टूड अथ एंड टच अवर हार्द रिज इत्सुजन' । ईम्बरीय जामादरी पीटहान्द ऐडम्ब सैधिय

सरसु यदि वह ऐसा नहीं करता तो यह उसका अपराध नहीं और न ऐसा कर लेना कोई विशेष महत्व की ही बात है ।^१

इतिहास की अपूर्ण और असंमाम्य बटनाओं को नाटककार किस प्रकार परिचित एक परिचयित करके पुनः समाप्त बनाता है इसका एक सुन्दर उदाहरण मैसिंग ने दिया है नाटककार को इतिहास में एक बटना मिसती है कि एक भी ने अपने पति और पुत्रों की हत्या कर दी बटना करखापूर्ण हत्य को दहनले जाती है, प्रथम नाटककार इस कथानक पर 'नाटक' लिखने का विचार करता है, परसु इतिहास इतनी समझ और अप्रत्याशित बटना की रूपरेखा के अतिरिक्त और कुछ भी दे सकने में असमर्थ है । नाटककार के लिए एक बटना की असंमाम्यता सबसे बड़ा शोच है अतः वह सबसे पहलें ऐसी कार्य काय्य रूपपरिस्थितियों का सूचन करता है जिनमें एका कथानक अपराध भी स्वाभाविक लगने लगे । इतिहास जैसे अरिज के समझ में सतोप नहीं दे सकता अतः वह अपने व्यक्तियों के अरिज बढ़ना प्रारम्भ कर देता है इन अरिजों को वह एक के बाद एक ऐसी परिस्थितियों और बटनाओं के बीच रखता जाता है कि वे अतिभीत हो जाते हैं । इस प्रकार न प्रारंभ अरिज में आरंभ के अरिज विकास को योजना करता है ये आरंभ बटनाओं को स्वाभाविक और साधारण विकास की ओर स्वतः ही ले जाते हैं । अब हम समझने लगे हैं कि जिन परिस्थितियों से उत्पन्न आरंभों के अरिज प्रवाह में अब अरिज इतना अपराध कर जना ठीक जहाँ परिस्थितियों में हम में से किसी के लिए भी ऐसा अपराध कर बैठना सम्भव हो सकता है, मैसिंग जिसे 'अच्छस व्यवस्था' कहता है वह वस्तुतः ऐतिहासिक कथानक की नाटकीय सम्माम्यता है जिसे पश्चात् पान पर नाटककार अतिष्ठ कथानक का भी अपेक्षित विकास कर सकता है ।

मैसिंग न तो अरिज के विकास के लिए इतिहास को ग्रहण करता है न अरिज के लिए ही वह कथानक के लिए भी इतिहास का विषय महत्व स्वीकार नहीं करता ।^२ उसके नाटककार के लिए ऐतिहासिक कथानक की नाम रहित काम

१ इस इट नोट ए मेटर जोक इग्निफरैन्स बेबर किस प्रोबेविस्टी की कम्पराइज्ड बाइ गो बिबनेस और टु डीसन्स और बाइ सच ऐज हूब नेबर कम बिदिन अबर मोमेन्ट, हैम्बर्गन क्रोमाटर्जी फोटोहोस्ट एफेम मैसिंग

२ एक दि गोपट फाइ इस इन हिस्ट्री सरकम्स्टान्सेज डैट आर कनडीनिण्ड फोर दि ऐडोनमण्ट और इडिबिदुएमाइजिज जोक हिज सबजेक्ट वन नेर हिम पुत्र डैम, घोम्बी बिस बुड की काउन्टेज ऐज लिटिल ए मेटिट ऐज दि कोन्ट्री इन ए बाइम

रहित चरित्र रहित घोर नाटकचरम रहित काररेखा ही पर्याप्त है सर्वत्र ही कल्पना धरणा व्ययमयकार कर सकती है यह मान चरित्र बेध काम घोर यहाँ तक कि मूक बटना तक यह सकती है केवल उनमें प्रायःकिक सम्भाव्यता का होना प्रासङ्गिक है ।^१

द्वितर बासव धनुकरण घोर ऐतिहासिक धनुकरण में स्पष्ट धनुतर स्वीकार करता है बटनामों का ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से जो धनुकरण किया जाता है उसे वह ऐतिहासिक धनुकरण कहता है घोर बटनामों द्वारा लोगों को प्रभावित करने घोर उनके प्राणों में ध्यान का सिचन करने के उद्देश्य से जो धनुकरण किया जाता है उसे काम्पात्मक (या बासव) धनुकरण है ।^२ ज्ञान प्राप्ति के उद्देश्य की पूर्ति को ध्यान में रखते हुए इतिहासकार ऐतिहासिक सत्य से विमुख नहीं हो सकता परन्तु बासव का उद्देश्य कलात्मक होने के कारण नाटककार को धनुकरण की स्वतंत्रता है । नाटककार को स्वतंत्र कल्पना का अधिकार तो है ही साथ ही वह काम्य के नियमों के अनुसार ऐतिहासिक सत्य में परिवर्तन करने के लिए भी बाध्य है । काम्य का चरम लक्ष्य माहात्म्य है अतः वह केवल प्रकृति के नियमों से बाध्य है इतिहास के नियमों से नहीं ।^३ कलाकार को यह अधिकार है कि वह इतिहासकार को धरने म्पायात्म्य में बुला सके घोर उसके इतिहास पर काम्य का अधिकतम नियंत्रण दे सके । नाटककार को इतिहास की कसीटी पर कतना प्रभुत्व है ।^४

द्वितर ने नाटककार पर इतिहास का कोई बंधन नहीं रखा । नाटककार कबानक घोर पार्श्वों में जैसा भी चाहे वैसा परिवर्तन कर सकता है । ऐसा प्रतीत होता है कि द्वितर नाटकीय नियमों के साथ-साथ नाटक के प्रभाव को ही अधिक महत्त्व देता है । भारतीय इतिहास काम्य का लक्ष्य ही 'रस' मानता है घोर द्वितर 'माहात्म्य' । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए चाहे किस प्रकार का भी परिवर्तन बाध्यता हो किंवा या छूटा है । भारत ने 'त' हिरमाहते कश्चिदप्यर्चं प्रकृतये कहकर

१ 'नाट रीट ही ह्य विस्फूर्ण इदं द्विज घोरयेनाइवेसन'
हृत्परीमं ज्ञानाटवीं कोटहीण्ड ऐंठेन केसिन'

२ 'हारमनो कोर नयिय ह्य रि कंरेकर मस्ट जो कोम्प्रे डिक्ली'

३ 'इत बुध घौननी की ए हिस्नोरिक इमिटेसन इक इत प्रीरोग ए इस्नोरिक एग इक इदं प्रिथिम घोरैण्ड बीर टु टीथ भस रीट गिण ह्य टेकन प्लेस ए क हाउ इट टुक प्लेस — बट ट्रेजेडी ह्य ए पीपलिक ऐ क रीट इक टु से इट रिट् अगून ऐन ऐरहन टु मूक पथ ए क टु चार्मे अवर सीस बाइ दि मीडियम पीठ रिच इमोजन । — रेजेव एन्टिडकन ऐ क डिपीसीडिकल द्वितर

४ 'इत ह्य वेयर कोर बिई इ क वेरी नैरो घाइदिवाय घीन टेचिक घाटै घोर उअर घीन पोइनी ह्य अनरण टु कुंम रि ट्रेचिक पोपठ बिकोर रि डिग्नूनन पीक हिस्नो ऐ क टु रिचमवर इ स्कुंशन पीक रि घीन ह्य बाइ हिज वेरी टाहटिण ह्य घीननी बाउ क टु मूक ऐंठ चार्मे मू ।
सिद्धः

नाटक के मूल तत्व की धीरे संकेत करके प्रत्येक सब तत्वों को उसके प्राप्ति बना दिया है। गितर का दृष्टिकोण इससे मिलता जुलता है। कथानक धीरे पात्रों में ऐतिहासिक सत्य को उसने विशेष महत्व दिया ही नहीं धीरे न वह बातावरण की ऐतिहासिकता को ही महत्व देता है। वह उस नाटक को अत्यन्त साधारण कोटि का गिनता है, जिसमें देसकाल का ऐतिहासिक चित्रण होने पर भी नाटकीय प्रभाव आसने की क्षमता नहीं होती।^१ परन्तु वहीं यह प्रश्न पड़ाया जा सकता है कि वह निर्णय तो प्रत्येक नाटक के लिये समान है ऐतिहासिक नाटक की अपनी विशेषता की दृष्टि से चित्रर के इस मत का क्या अभिप्राय है। चित्रर के स्वयं के विचारों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जहाँ तक इतिहास रस प्राप्ति (भावना) में नाटक का सहायक बन सकता है वही तक उँसका यथा तथ्य स्वीकार्य भयना उसमें परिवर्तन करना आवश्यक है और वह परिवर्तन काल के साधारण सत्य के अनुकूल किया जाना चाहिए। चित्रर नाटक के समस्त प्रभाव को ही नाटककार के इतिहास सम्बन्धी निर्णय का मूल मूल मानता है, ऐतिहासिक चरित्र कथानक बातावरण या देसकाल उसके लिए महत्वहीन है।

इस सम्बन्ध में अनेकी आलोचक कालरिज के विचार भी महत्वपूर्ण हैं।^२ आलोचक नाटक में इतिहास नाटकीय सम्भाव्यता और आख्यायिका दोनों का होना आवश्यक मानता है। जिन लोगों के लिए नाटककार नाटक प्रस्तुत रखे हो उन्हीं के इतिहास से उसे कथावस्तु ग्रहण करनी चाहिए^३ कर नाटककार के यथार्थ को सीधे बिना किसी तर्क के स्वीकार कर लेते हैं। इसलिये सम्भाव्यता भी आवश्यक है।^४ आख्यायिका से उसकी आत्यन्त मानक स्वभाव के उन आस्वत तत्वों की अभिव्यक्ति से है जो तत्त्व सब को सब कालों में एक समान ही प्रभावित कर सकें।^५ कालरिज के लिए भी विविष्ट चटनाओं का प्राथमिक महत्व नहीं^६ उनमें परिवर्तन किया जा सकता है। कथानक धीरे चरित्रों के

१ वही चित्रर

२ इन घोडर ईट ए ज़ामा की प्रीफ़री हिस्टोरिकल इट इन नीससरी ईट इट बी दि हिस्ट्री ऑफ़ वि पीपुल टु हूम इट इन ऐडरड—

३ वही आलोचक

४ इट मस्ट लाइकबाइज बी पीपुलिकल—विश्व इज वि चर केनेनु इन नेबट विश्व इज कोमन ऐ इ देयर फोर बीवनी इस्टैटिम टु प्रीज ऐज—

बाह्य परिवर्तनों से नाटक के बाह्य घम में तो कुछ अभ्यवस्था उपस्थित हो सकती है परन्तु समस्त नाटक में एक घातक और महान् व्यवस्था या घाती है जो घटनाओं को जोड़कर एक स्पष्ट नार्थकारण ऋतु बना देती है, घाय ही वह जो को भी स्पष्ट करती जाती है।^१ परन्तु इसके लिए नाटककार को केवल ऐसे कथानक लेने चाहिए जिसके मूल ऐतिहासिक रूप का ज्ञान अधिक लोगों को नही हो। इसी प्रकार के इतिहास के मूल कथन में नाटककार प्राणप्रतिष्ठा कर सकता है।^२

कातरिज ने ऐतिहासिक नाटक की व्याख्या भी की है। उसका कहना है कि ऐतिहासिक नाटक इतिहास से ग्रहण की हुई घटनाओं का एक ऐसा संकलन है, जिसमें घटनाओं के काल कारण संबन्ध की अन्विष्टि नाटकीय कल्पना द्वारा काव्यात्मक रूप से जोड़ी जाती है।^३

ऐतिहासिक नाटकों के सम्बन्ध में कातरिज के विचारों को हम निम्नोप रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं जिसकी भूनाए कमला इतिहास नाटकीय संभाव्यता और वाक्यात्मकता हैं। इतिहास का इन कथन मानें तो नाटकीय संभाव्यता को मन और वाक्यात्मकता को नाटक की धारणा कह सकते हैं। इन दोनों के सम्यक निर्वाह को ही कातरिज नाटककार के लिए बाध्यता समझता है। घटनाओं को अधिक महत्व न देते हुए भी अज्ञात ऐतिहासिक कथानकों को स्वीकार्य मानना ही इस बात को सिद्ध कर देता है कि वह इतिहास में अधिक परिवर्तनों को अचित नहीं समझता। उसका यह ठक विचार और आलाचरण के संबन्ध में भी उतना ही सही है, जिसका कथानक के संबन्ध में। कातरिज ने नाटककार की कल्पना को स्पष्ट नहीं बनने दिया अतः उसे एक सुन्दर सामंजस्य के निर्माण में सहायक बनाने का प्रयत्न किया है। उसने ऐतिहासिक नाटकों के राष्ट्रीय महत्व को स्वीकार किया है।

प्राथमिक भारतीय विचारकों में ऐतिहासिक पात्रों का निरूपण करते हुए कर्णभद्र नाम बुद्धि सबसे अधिक महत्व कवि नाटककार या उपन्यास के स्वरूप को देते हैं। वे इतिहास के चार प्रकार मानते हैं (१) मोक्षकथा (२) कथा (३) नवन कथा और (४) इतिहास। हमने वे इतिहास

१ इट टैमन वेयरपोर्ट, डेट पाट्टे चौक रियस हिस्ती ह्विच इन दि सीस्ट नोन ऐंड इन्ट्रोज ए प्रिनिपल चौक साइक ऐंड धीरर्वगाइजेसन इन्टु दि नैकेड वेक्ट ऐंड मेसस देव चौस दि अवेवर्क चौक ऐन ऐनीयेटेड होन।

सिटररो रिमैन्स' बोस्तून २' कातरिज'

२ ऐन हिस्टोरिक ड्रामा इन वेयरपोर्ट, ए कलरगन चौक ईवीडुस बोरोड थोम हिस्ट्री बट कनेक्टेड दुर्गवर इन रीसर्व चौक बीच ऐंड टाउन पोपटिकपी ऐंड बाइ ड्रामेटिक प्रियन।

को के विज्ञान न मानकर एक साहित्यिक कलाकृति मानते हैं । इतिहास संबंधी उपर्युक्त चार प्रकार के साहित्य में समझे कलाकृति में इतिहास की सीमा निर्धारित कर दी है । कलाकार इतिहास से उल्लेख चरित्रों की रूप रत्ना को पूर्णतया छोड़ नहीं सकता उनके स्वानुभवों में प्राण भर कर उन्हें जीवन्त प्रकाश कर सकता है परन्तु इन पात्रों में भी मनुष्य स्वभाव के मौखिक रंगों का पूर्ण समावेश होना चाहिए ।^१ वह कलाकार भूकालीन पात्रों उनके कृत्यों और प्रसंगों में स्वानुभवसिद्ध एकतामया द्वारा प्रपूर्वता की सृष्टि करता है । मु भी उसे नवीन पात्रों कृत्यों और प्रसंगों की स्वतन्त्र उद्भावना करने का पूर्ण अधिकार प्रदान करते हैं । वह ऐतिहासिक कृत्यों के प्रसंगों के कास्मिक सेतु की संरचना कर सकने के लिए भी स्वतन्त्र है और यदि चाहे तो साधनों के निरूपण में भी परिवर्तन कर सकता है ।^२ यदि कलाकार अपनी कलाकृति में स्वानुभव की सरस अभिव्यक्ति में समर्थ हो सके तो मु भी उसे इतिहास में स्वतन्त्र कल्पना के उपयोग की पूर्ण स्वतन्त्रता देते हैं ।

ऐतिहासिक नाटकों का रचना तंत्र

इतिहास ऐतिहासिक नाटक और कल्पना तत्व के संबंध में निम्न निम्न काल और निम्न देशों के विचारकों के तर्कों पर विचार किया जा चुका है। इसमें सन्देह नहीं कि भारत से लेकर यूरोपीय तक सभी प्रायः अपना-प्राप्त विचारकों में पर्याप्त मतभेद है। परन्तु वस्तुतः यह मतभेद केवल बाहरी है और इस मतभेद में भी साम्यता है। साम्यता इतिहास के प्रति प्रतीत होता है कि कुछ विचारक इतिहास को महत्व देते हैं और कुछ नहीं। परन्तु एक बात सब स्वीकार करते हैं कि 'मूलतः' ऐतिहासिक नाटक इतिहास न होकर साहित्य है। एक बार इस मौलिक एकता को स्वीकार कर लेने पर मतभेद में विवेक शक्ति नहीं रह जाती। इतिहास को स्वीकार ही न किया जाय ऐसा किसी विचारक ने नहीं कहा क्योंकि इतिहास को प्रत्यक्ष किसे बिना ऐतिहासिक नाटक का महत्व ही क्या रह जायगा। यह भी किसी ने नहीं कहा कि कल्पना का समावेश नहीं होना चाहिए क्योंकि कल्पना के बिना नाटक बन ही नहीं सकता। इतिहास में अनावश्यक परिवर्तन किया जाय यह किसी की भी मान्यता नहीं रही और आवश्यकता पड़ने पर बिस्तृत ही परिवर्तन न किया जाय यह भी किसी ने नहीं माना है। विद्युत् इतिहास के परिवर्तन को किसी ने भी उचित नहीं समझा। इन महत्वपूर्ण विषयों में सभी एक मत हैं। मतभेद की संभावना केवल इस बात में है कि इतिहास में कितना परिवर्तन किया जा सकता है। अतः को मानने वाले विचारकों ने इसकी भी सीमा बतलवाई है। जहाँ मूल ऐतिहासिक घटना की 'संभाव्यता' का प्रश्न उठता है वहीं यह सिद्ध हो जाता है कि समस्त परिवर्तनों में 'संभाव्यता' का स्थान रहेगा, अर्थात् संभाव्यता कल्पना की एक सीमा निर्धारित कर सकती है। इससे सन्देह नहीं किसी भी नाटककार के लिए कल्पना और इतिहास की नयी नयी सीमाएँ नहीं बनाई जा सकती। वह तो किसी भी ऐतिहासिक घटना परिस्थिति और पात्रों के प्रति नाटककार की प्रतिभियाँ और अखण्ड कलात्मक संवेदना पर निर्भर करता है। यहाँ कल्पना अपने निम्न स्वयं बनाती है। यह निम्न कलावृत्ति विवेक के लिए ही बनता है और फिर बदल जाता है। सामान्य विवेकताओं के आधार पर यह विचार किया जा सकता है कि ऐतिहासिक नाटक के रचनात्मक वाक्य रूप है तथा अन्य प्रकार के रचनात्मक से इसमें क्या विवेक है।

जिन प्रकार घटना और विषयों को एक स्थान पर एकत्रित कर देने मात्र से इतिहास नहीं बन जाता वही प्रकार इतिहास से कुछ पात्रों और कुछ कल्पनाओं

को लेकर एक स्थान पर रख देने से ऐतिहासिक नाटक सही बन सकता है। इतिहास को वास्तविक इतिहास बनाने के लिए ऐतिहासिकता की आवश्यकता है। काल की धारा घनादि धीरे घनस्त है। इस में जीवन की क्रिया प्रतिक्रिया होती रहती है। इतिहासकार को जिन बटनाओं और तथ्यों का इतिहास लिखना होता है उन्हें वह उस काल की पृष्ठ भूमि में रखकर उनमें कार्य कारण की स्थापना करता है। यही ऐतिहासिकता है। इसी ऐतिहासिकता में इतिहासकार का दृष्टिकोण भी प्रतिबन्धित होता है। यही इतिहास के मूल्यों की बनाती है। इतिहास को इतिहास बनाने के लिए जिस प्रकार ऐतिहासिकता अनिवार्य होती है ठीक वही प्रकार ऐतिहासिक नाटक को बनाने के लिए जिस गुण की आवश्यकता होती है उसे हम ऐतिहासिक नाटक की 'ऐतिहासिक नाटकीयता' कह सकते हैं। नाटक के इतिहास और नाटक इन दोनों अर्थों के समन्वय समन्वय की जो परिस्थिति दर्शकों के हृदय में भावोद्देक करने में समर्थ होती है उसे ही 'ऐतिहासिक नाटकीयता' कह सकते हैं। यह वास्तव में नाटककार के मानस बहुधाओं द्वारा दृष्ट निर्जीव एवं पद स्पष्ट प्रतीत की एक मनोरम झंकी है जो नाटक के माध्यम से दर्शकों के सम्मुख मूर्तिमान हो जाती है। इस नाटकीयता की क्रिया के तीन स्पष्ट रूप हमारे सम्मुख आ जाते हैं। (१) निर्जीव प्रकृति की और प्रभावित प्रतीत (२) उस निर्जीव और प्रभावित का नाटककार के मानस बहुधाओं में जीवित करीब और प्रभावित दर्शन (३) नाटककार द्वारा नाटक की रचनाओं में प्रवेश इस प्रतीत का रंगमंच में पुनर्दर्शन। प्रतीत के प्रत्यक्षीकरण की उक्त क्रिया वस्तुतः नाटककार की भावना करने की शक्ति पर आधारित है, जो कल्पना के द्वारा सुन्दर और प्रभावित रूपों में प्रकट होती है। भावना करके विन्म प्रहृण करना कल्पना द्वारा उसे नवीन रूपों में गढ़ना और अंत में उसकी सरस परिस्थिति करना प्रत्येक प्रकार की कला का कार्य है। प्रकट इसमें सम्येह नहीं कि कलात्मक होना ही ऐतिहासिक नाटक का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। प्रथम तत्व उसके कला स्वरूप के सम्मुख मौस हो जाते हैं। ऐतिहासिक नाटक सर्व प्रथम साहित्य का एक स्वरूप है और बार में कुछ और।

ऐतिहासिक नाटक एक विशेष प्रकार की साहित्यिक कृति है वह नाटक तो है परन्तु 'ऐतिहासिक' विशेषण उसके एक विशेष स्वरूप की ओर संकेत करता है अतः यह आवश्यक है कि ऐतिहासिक नाटक में उसके विशिष्ट स्वरूप की समस्त विशेषताएँ प्रतिबन्धित होनी चाहिए अन्यथा नाटक के साधारण स्वरूप के साथ उसका अन्तर स्पष्ट नहीं हो सकता और सामान्य से उसे विभिन्न करने के लिए उक्त अन्तर का होना अनिवार्य है।

इतिहास ऐतिहासिक नाटक की सबसे बड़ी विनयता है और इतिहास से हमारा तात्पर्य प्रमाणिक इतिहास से है, किन्तु दर्शकों अथवा पाठकों से नहीं। इतिहास के मूल उद्देश्यों पर विचार करने समय हम यह देख चुके हैं कि इतिहास अपनी

सहायता के लिए पुराणों एवं लोक कथाओं से प्रामाणिक इतिहास के संग्रह को प्रयास करता है। हम यह भी स्वीकार कर सकते हैं कि इतिहासकारों ने पुराणों तथा लोक कथाओं के प्रमाणों द्वारा तब प्रतीकों का आधार पर धीरे-धीरे धीरे-धीरे समझे हुए मूल इतिहास को प्रत्यक्ष करने की चेष्टा की है। ईरोडोटस से पूर्व का यूनानी इतिहास प्रामाणिक नहीं है यहाँ तक कि स्वयं ईरोडोटस ने भी पौराणिक उपाख्यानों से प्रमाण हीन और अतिहासिक सामग्री को ग्रहण किया है। पारश्यास्य नाटककारों ने यूनान के व्यूथ इत्युत्पत्त मकरी घोसो इतो इमेन्टा प्रावि पौराणिक पात्रों को अपने नाटकों में स्थान दिया है। पीछे के सभी लोगों ने उनकी ऐतिहासिकता प्रतिपादित करने की चेष्टा की यद्यपि वे ऐतिहासिक नहीं थे। प्रारम्भिक का इतिहास प्राचार्यता बरिच काल से प्रारम्भ होता है परन्तु वैदिक-सम्प्रदाय के कुछ मुन्तर चिन्तों के अतिरिक्त जिनका स्वल्प वेदों में उपलब्ध है इमें अधिक सामग्री नहीं मिलती। स्वयं वेदों के काल निर्णय के संबंध में पर्याप्त मतभेद है। कुछ भी हो कि वेद बाह्यतः उपनिषद् इत्यादि ग्रंथों से भारत के प्राचीन सांस्कृतिक इतिहास की करेण्य मत्त ही प्राप्त की जा सके, प्रामाणिक इतिहास का जतमें भी प्रयास है- क्योंकि मूलतः वे धार्मिक और दार्शनिक ग्रंथ हैं। रामायण और महाभारत की अत्यन्त ऐतिहासिक ही सकती हैं परन्तु वे महाकाव्य होने का कारण इतिहास एवं धार्मिकी की तरह काव्य रूपता में धारण करने हुए हैं। उनके प्रामाणिक मूल तथा अतिरिक्त अंश को अलग-अलग कर सकता भी संभव है। पुराण किसी एक काल में नहीं लिखे गए, इतिहासकारों का अनुमान है कि अतः, अतः तक ही नहीं उसके बाद तक भी पौराणिक ग्रंथों की रचना होती रही तथा ही पुराणों में अनेकानेक कल्पनाओं के साथ धार्मिक विश्वासों का इतना विचित्र सम्मिश्रण हुआ है कि मूल इतिहास का पता ही नहीं चलता। कहीं-कहीं इतिहास की छुट्टी सामग्री उपलब्ध ग्रंथ की गई है परन्तु यह कार्य इतिहासकार का है, नाटककार का नहीं। यदि नाटककार स्वयं ही इतिहासकार हो तो भी नाटकों की रचना के रूप में ग्रहण करने के पूर्व उसे पौराणिक उपाख्यानों एवं लोक कथाओं को प्रामाणिक इतिहास-मिथ्या करना बड़े-बड़े की मायता से वह इतिहास नहीं बन सकता। पौराणिक उपाख्यान और किंबदन्तियाँ अपने-आप में ऐतिहासिक नाटक के लिए अनुकूल इतिहास नहीं हैं- इतिहास मत्त ही अपने अहायता के लिए सामग्री ग्रहण करे।

कुछ पौराणिक नाटककारों ने इतिहास को नवीन इतिहास में ग्रहण किया है और पौराणिक पात्रों एवं कथानकों को मात्र ऐतिहासिक वातावरण में रखकर नाट्य रचना की है। इनमें और पौराणिक नाटकों में कुछ अंतर है। एक तो इनमें पौराणिक उपाख्यानों की अतिरिक्त अतिरिक्तों का अतिरिक्त-मिथ्या हुआ है और दूसरे कथानक पुराणों के होने हुए भी वातावरण प्रामाणिक इतिहास में लिया गया है। नाट्यरचना तथा इमे नाट्य अन्त दोष कहा जा सकता है परन्तु इतिहास पौराणिक

बटनामों की पुच्छमूर्ति को स्वीकार नहीं करता, घट यहि उन बटनामों घीर पात्रों को ज्ञात इतिहास के फलक पर रचकर चित्रित किया जाय तो उक्त फलक-कम होय मुखरित नहीं होने पाता घीर उन अप्रामाणिक बटनामों घीर पात्रों को एक धारा मिल जाता है । इस अंतर के कारण ही यूनान के पीरासिक उपाध्यायों पर लिखे गए नाटकों को निकस' मे^१ ऐतिहासिक नाटकों में स्थान दिया है परन्तु पीरासिक पात्रों पीरासिक कथानकों तथा पीरासिक वातावरण को लेकर लिखे गए नाटकों को हमें पीरासिक नाटकों की कोटि में ही रखना पड़ेगा ऐतिहासिक नाटकों की कोटि में नहीं ।

ऐसा प्रतीत होता है कि निकस किबदन्तियों तथा पुराणों में अन्तर नहीं करते परन्तु हम इस अन्तर को पहले स्पष्ट कर चुके हैं । किबदन्तियाँ प्रविष्ट ऐतिहासिक बटनामों घीर ध्वक्तियों के साथ जुड़ती बनी जाती हैं घीर प्रत्येक पीढ़ी अपने ऐतिहासिक ध्वक्तियों को महत्व देने के लिए अज्ञात रूप से ऐसा करती जाती है । कहानी कहने की इच्छा भी किबदन्ती के प्रसार में काम करती रहती है । यही किया साधारण को प्रसाधारण घीर विचित्र बना देती है । किबदन्तियों के ऐतिहासिक पात्रों को लेकर यदि नाटककार नामक सिखे तो संभव है पात्रों की विभूत ऐतिहासिकता के कारण नाटक में ऐतिहासिकता मान भी जाय । घट इस प्रकार के नाटक पीरासिक से मिल किबदन्तियों के क्षेत्र के हैं । इतिहास चाहे उन किबदन्तियों को स्वीकार करे अथवा न करे उनके पात्रों को अवश्य स्वीकार करता है । इस प्रकार के नाटकों में भी वातावरण पुरसुतता ऐतिहासिक होता है । विक्रमर सम्बन्धी किबदन्तियों को लेकर यूनान में ही नहीं प्रागुनिक योरोप में घीर इ मसैड में भी नाटक लिखे गए उन्हें ऐतिहासिक स्वीकार किया गया ।^२ इसके लिए उपयुक्त कारण के प्रतिरिक्त कोई अन्य कारण नहीं हुआ था सकता ।

इतिहास घीर कल्पना सम्बन्धी विवेचन में नासनों से भी उदाहरण दिए गए हैं । नासनों का ऐतिहासिक बटनामों एवं पात्रों से सीधा सम्बन्ध है । परन्तु ये नासनों घीर सुखान्त नाटकों में अन्तर यही बतलाया है कि नासद ऐतिहासिक बटनामों के धारा पर लिखे जाते हैं घीर सुखान्त सामान्य बटनामों के धारा । पर नासनों द्वारा ऐतिहासिक बटनामों एवं पात्रों को ही प्रह्वन करने की परम्परा मैक्सवीयर तथा उसके अनुवर्ती नाटककारों में भी परिचलित होती है । ईरोपीयन के इतिहास से पूर्व के नासनों के धारा भी विभूत कथानक ही से चाहे उन्हें किबदन्ती कहा जाय अथवा इतिहास । स्वयं मैक्सवीयर ने जितने भी नासद लिखे हैं वे अधिकतर रोम के इतिहास पर आधारित कथानक हैं । कथानक ही नहीं पात्रों

१ 'दि नोव घ्रीफ दि हिस्टोरिकस प्ले'

बरुड नामा एनर्वाइम निकस पृ० ५१५

२ 'बरुड नामा निकस पृ० ५१७

के नाम तक ऐतिहासिक हैं। जूनियस सीजर की समस्त कथा सीजर का बच घोर बृहत् तथा प्रम्य पात्रों के नाम सभी इतिहास में उपलब्ध हैं। परन्तु घासीचकों ने वहाँ सेक्वपीयर के 'इनरी बतुर्ने', रिचार्ड तृतीय इत्यादि को ऐतिहासिक नाटकों की कोटि में रखा है वहाँ 'जूनियस सीजर' को बास्रों की कोटि में। इस प्रश्न का कारण इन दोनों प्रकार के नाटकों में रचना उन्नत सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण विवेकता है। बास्रों का अर्थभय भय घोर कथनात्मक प्रसंगों की प्रभावना करक दर्शकों के हृदय में इन पात्रों को बाधित करना है, घोर इस अर्थभय की पूर्ति के लिए जिन घटनाओं को लिखा जाता है उनके कर्ता पात्रों के चरित्रों का निर्माण बास्रकार स्वयं करते हैं। किसी भी ऐसी घटना के दुष्प्रभाव होने का कारण बतलाने किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति के चरित्र की दुर्बलता होती है। घट घटना के पीछे मूल कारण का सूत्रन करना पड़ता है। वह पात्र या पात्रों की आर्थिक विवेकता है जिसका इतिहास से कोई सम्बन्ध नहीं। दूसरे दर्शकों में तो बास्रों में घटना तथा वातावरण दोनों चरित्र के प्रभाव से प्रभावित रहते हैं। वे चरित्र बास्रकार की सर्वक शक्ति के प्रभावित रहते हैं, घोर यह सर्वक शक्ति स्वयं बास्रों के 'आर्थिक दुर्बलता' के सिद्धान्त से परिचित होती है। पात्रों के ऐतिहासिक होने पर भी उनके से पूर्णतया कास्मिक चरित्र इतिहास की घोर ध्यान ही नहीं जाने देते घोर कबकी शक्तिहीन देखाए अक्षुचित घोर शीहीन पड़ी रहती है। इसके विपरीत ऐतिहासिक नाटक में इतिहास की देखाए स्पष्ट होती है घोर कास्मिक तत्व इतना प्रधान नहीं होने पाता कि ऐतिहासिक तत्व अन्तर ही न सके।

धमी तक हम ऐतिहासिक नाटक के जिन तीन प्रधान तत्वों को धनायास ही स्वीकार करते हैं वे हैं (१) इतिहास (२) ऐतिहासिक वातावरण घोर (३) इतिहास वा नाटकीय स्वरूप घटना एवं पात्र। इतिहास के स्वरूप के सम्बन्ध में वर्तमान विचार किया जा चुका है घट यहाँ प्रसंग प्राप्त दूसरे तत्व ऐतिहासिक वातावरण को स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है।

किसी विवेक ऐतिहासिक काल की सम्बन्धता रीति-रिवाज प्रचार्य आद-नाम केस मूपा ईनिक बोधन रहन-सहन उत्तम धार्मिक राजनीतिक सामाजिक धार्मिक स्थिति तथा उस काल के जन जीवन का ऐतिहासिक ऐतिहासिक ही स्वरूप ऐतिहासिक वातावरण है। इतिहास के सम्बन्ध में विचार वातावरण करते हुए इसे ही हमने "बल इतिहास" यथा "सांस्कृतिक इतिहास" की उभा की है। इसमें सम्येह नहीं कि नाटक में सांस्कृतिक इतिहास के विचार विचार की प्रभावनाएँ नहीं हो सकती क्योंकि नाटककार उभयार्थकार की तरह वातावरण वा प्रत्यक्ष विचार नहीं कर सकता। यह भी सच है कि नाटक में ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि केवल नाटककार ही नहीं करता। उपर्युक्त केस-मूपा

द्वारा पात्रों के मूर्त स्वरूप को अंशमूल में ऐतिहासिक बनाये का कार्य व्यस्तुत 'निर्देशक' करता है परन्तु अगमत्र की सन्धा के अतिरिक्त भी समस्त-नाटक में ऐतिहासिक वातावरण मूल की तरह विरोधा होता है और सर्वत्र उसकी इज्जत मिलती रहती है। ऐतिहासिक वातावरण की यह इज्जत ही ऐतिहासिक नाटक के स्वरूप को बनाये रखती है क्योंकि यही वह अंग है जिस पर ऐतिहासिक पात्र खड़े रहते हैं। यदि क्रम उपस्थासकार क्यूमा के शब्दों में यह कहा जाय कि "इतिहास वह बूटी है जिस पर वह अपने नाटकों को लटकाता है" तो यह कहना पड़ेगा कि ऐतिहासिक वातावरण वह बीजार है जिस पर नूटी-पात्री-गई है। ऐतिहासिक वातावरण को इतिहास से भिन्न मानने का कारण है। सामाजिक इतिहास से नाटककार केवल घटना की रूप रेखा पात्रों के नाम तथा चरित्र लेता है। वह घटनाओं और पात्रों को उनके ही युग में रख तक सीमित नहीं कर सकता जब तक उस युग के बीजाल सांस्कृतिक तत्त्वों से उसका स्वतन्त्र परिचय नहीं और इसके लिए नाटककार को ऐतिहासिक कल्पना से निम्न घस युग के सांस्कृतिक इतिहास की पूरी जानकारी होनी चाहिए। यदि ऐसा न हुआ तो इतिहास के पात्र सीमित होने पर भी घणों सारे कार्यों की समझान और समझ्यस्त व्यक्तियों की तरह करते क्योंकि जिस मूल वातावरण में उन्होंने के कार्य किये के वह वातावरण उन्हें उपलब्ध न होगा। वह बोध-चरित्रों की स्वामा विद्यता की अङ्ग में कुठाराघात कर देगा और सम्पूर्ण नाटक निष्प्राण हो जायगा।

ऐतिहासिक वातावरण का महत्व इसलिए भी है कि वह ऐतिहासिक नाटक का स्थायी अंग है। कोई भी नाटककार इसमें परिवर्तन नहीं कर सकता और परि प्रसाधबानी अथवा प्रज्ञान से परिवर्तन कर दिया जाय तो तुरन्त काय कम बोध का सबसे विद्वत् स्वरूप नाटक के सौंदर्य को लुप्त कर देगा। इसी वातावरण के प्रभाव से हमें लगता है कि नाटककार ने हमें मात्र के युग से उठाकर तुरन्त ऐतिहासिक काल में रख दिया है जहाँ का प्रत्येक व्यक्त, जहाँ की प्रत्येक वस्तु उन बड़े बड़े प्राचीन रंगों में निम्न है जो अज्ज होने के साथ ही साथ अत्यन्त आकर्षक भी है। जिस प्रकार मरुस्वन को पार कर किसी पार्श्व प्रवेश के समीप पहुँचते ही भीतल और मुमबुर समीर के भीषों से नारी को तबीन प्रवेश का आवास भिन्न जाता है उसी प्रकार ऐतिहासिक वातावरण द्वारा ही हमें मात्र से निम्न देत और काल के नूतन वातावरण का आवास मिलता है। यह हमें देय काल भी कहा जा सकता है।

ऐतिहासिक वातावरण का तात्पर्य इतना ही नहीं है कि पुराने रंगमंचों की तरह कुन प्रसाध लीरव तथा नगर भीषियों से चिहित पर सनाकर वातावरण का

१ "हिस्ट्री" सेत्र क्यूमात्र विर विनवरस्त्र ऐबरप्टीस इत्र दि पैय चीन विन
 पाह हीय माह कुमात्र"
 विनपीयर पृथ न्यासिकस ऐतिहासिकी चीन स्टैकर - पृ० ११५

सूत्रन कर दिया जाय। वस्तुतः ऐतिहासिक नाटक तो "प्रतीकात्मक रंगमंच" पर ही नहीं साधारण रंगमंच पर भी प्रस्तुत किए जा सकते हैं। अतः उनमें उपपुत्र बाह्य उपकरणों के बिना भी ऐतिहासिक वातावरण को किसी प्रकार की सति नहीं पहुँचनी। ऐतिहासिक वातावरण का अस्तित्व ऐतिहासिक नाटक से भिन्न नहीं है। उमका सबसे रंगमंच से न होकर नाटक की कथावस्तु एवं पात्रों से है और यह वातावरण नाटक के प्रत्येक अक्षर प्रत्येक काव्य प्रत्येक मञ्च प्रत्येक पात्र प्रत्येक घटना तथा प्रत्येक बार्तासाप में समाया रहता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि वातावरण से ही इतिहास के पात्रों और उनकी घटनाओं की पहिचान होती है। अतः ऐतिहासिक नाटक में उमका अत्यन्त महत्व होता है। यह अपरिवर्तनीय और स्थायी है। यही कारण है कि ऐसे नए ऐतिहासिक नाटककार की धमकलता का कारण मुख्यतः वातावरण एवं देसकाल में ढूँढा है। ऐतिहासिक साहित्यिक इतिमों के सम्बन्ध में प्रायः "इतिहास रस" की चर्चा की जाती है। आचार्य अनुरोध झास्त्री लिखते हैं कि ऐतिहासिक उपन्यास का सबसे महत्वपूर्ण काव्य "इतिहास रस" की सृष्टि करना है।^१ डा० रामरत्न मटनावर लिखते हैं कि ऐतिहासिक उपन्यास और नाटकों में हम अतीत का विश्व देखना पसन्द करते हैं। उनसे हम एक प्रकार का रस लेना चाहते हैं जिसे श्री रवीश्वरनाथ ठाकुर ने "ऐतिहासिक रस" का नाम दिया है।—प्रवाद के नाटकों में चाहे ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में जहाँ जहाँ थोड़ा सम्बन्ध भी हो। इन ऐतिहासिक रस की उपमन्त्रि के सम्बन्ध में अतः भी सन्देह नहीं है।^२ परन्तु यह ऐतिहासिक रस वस्तुतः है क्या वस्तु इसके सम्बन्ध में क्या मौन है। वस्तुतः इतिहास रस का सम्बन्ध न कथानक से है न पात्रों से क्योंकि इनमें कल्पना का पर्याप्त समावेश किया जा सकता है। नाटक से इतिहास की भाँटो दिखाने वाला अपरिवर्तनीय तत्व यदि कोई हो सकता है तो यह ऐतिहासिक वातावरण की चित्रमय अस्मिता है। इसे ही हम इतिहास रस कह सकते हैं अथवा इतिहास रस जैसी किसी रस की कल्पना नहीं की जा सकती।

नाटक में वातावरण का महत्व जो कस भी है, वह ऐतिहासिकता से सम्बन्धित है परन्तु नाटककार की कल्पना कथानक और चरित्रों से ही ऋद्धा कर पाती है, मरुपि इनका भी सम्बन्ध इतिहास से है। वातावरण जिस प्रकार ऐतिहासिक नाटक में कथानक और चरित्रों की ऋद्धा के लिए निरिक्त पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है उसी प्रकार घटनाओं का भी चरित्र से एक निरिक्त सम्बन्ध होता है। सविग के द्वारा प्रस्तुत विद्ये मये उदाहरण में हम देख सकते हैं कि इतिहास के

१ बंगाली की नगराधु अनुरोध झास्त्री भूमिका

२ प्रवाद के नाटक रामरत्न मटनावर - पृ० ३३

एक घटना और उस घटना से सम्बन्ध रखने वाले दो तीन सामान्य पात्रों को लेकर नाटककार उन चरित्रों को अपनी कल्पना के सहारे जीवन्त कर घटना की चरम परिस्थिति को सम्भाव्य बनाने के लिए कार्य कारण परम्परा की संयोजना करता है। एक स्त्री अपने पति और पुत्रों की हत्या कर देती है। ऐतिहासिक से केवल इतनी घटना को लेना पर्याप्त मान लेता है। इस कथानक की अन्य सामान्य पात्रों पर भी उसने ऐतिहासिक नाटक के दृष्टिकोण से ही विचार किया है। केवल सामान्य नाटकों के रचनात्मक स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए बने हुए उक्त उदाहरण पर्याप्त मान लिया जाय परन्तु ऐतिहासिक नाटक की विशेषताएँ इससे परिमणित नहीं होतीं। सद्यः की किसी भी भाषा के ऐतिहासिक नाटकों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रायः सभी नाटककार इतिहास से विषय ग्रहण करते समय इस बात का ध्यान रखते हैं कि इतिहास से "क्यात वृत्तों" को ही नहीं "व्यात पात्रों" और "क्यात चरित्रों" को भी नाटक में स्थान दिया जाय। सभी पात्र और चरित्र बने ही क्यात न हों कष्ट तो अवश्य ही प्रसिद्ध होते हैं। इसका एक कारण यह है कि ऐतिहासिक नाटक के व्यक्तित्व उद्भवों की पूर्ण "क्यात वृत्त" और "व्यात चरित्र" ही कर सकते हैं और दूसरा कारण यह कि नाटककार को फिर परिचित पात्रों के परिचय देने का प्रयत्न नहीं करना पड़ता और नाटक के प्रारम्भ से ही वर्तक का भावपूर्ण उमकी ओर स्वतः ही हो जाता है घट-वृत्तमा समय दर्शकों को पात्रों और घटनाओं द्वारा इतिहास के पुनर्लेखनीय में घातकों को सम्मिलित करने में सज्जता है जतने समय में घटीत उनके मानस में प्रतिबिम्बित होकर ठग्गयता और तज्जय माबोत्र क जल्पन करने में सफल हो जाता है। घट-रमोत्र क क लिए नाटककार और दशक दोगो के बीच एक पूर्व वादात्म्य की मुष्टि हो जाती है। ज्ञान चरित्रों के साथ हमारी सहानुभूति एवं पूजा तीव्र और प्रखर हो जाती है।

यहाँ रसायन के मन पर भी विचार कर लेना अप्रागमिक न होगा। उसने भासव नाटकों के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किए हैं। किन्तु प्रायः सभी घातों बको से विषय साहचर्य के कारण प्रायः और ऐतिहासिक नाटकों में कोई घन्तर नहीं रता है और इसलिए ऐतिहासिक नाटकों का विशेषण करते हुए भासवों के ही उदाहरण उपस्थित किए हैं। सुत्र रूप में रसायन का मत है "जितनी दूर उवभी भडा" धर्मात् उनके मत से पासवों का कथानक इतिहास के जितने ही मुनुर लीत प्रत्य ज्ञान कानों से लिया जाय घषवा मित्त देशीय इतिहास से लिया जाय लना ही घषवा है। इसी नियम के कारण वह मनीनतम इतिहास से कथानक दृग्ग करने की सम्मति नहीं देता बिगारतः यदि वह घटना उपी देन की हो जहाँ : दर्शकों के लिए नाटक मित्त जा रहा है। वह ऐसे चरित्रों को भी नाटक में लान की राय नहीं देता जिनसे व्यक्तित्व दर्शक परिचित है। वापारण दर्शक के

लिए नाटक का कथानक या तो सहज रूप पूर्व का होगा चाहिए अथवा एक सहज मीन दूर की घटना हानी चाहिए ।^१

रेसाइन क 'बिजनी दूर उठनी घटा' के चिन्ताओं को सामान्यतः स्वीकार करते हुए भी उनके अन्य विचार विवादास्पद हैं । बिजनी नर के ऐतिहासिक नाटकों के साहित्य से ऐसे सहज उदाहरण जोड़ जा सकते हैं जिनमें नाटककारों ने अपने काम से बोड़े ही पूर्व के काम का इतिहास और उस इतिहास के मूर्तिरचित चरित्रों को लेकर अनेक सहज ऐतिहासिक नाटकों की रचना की है । जिनमें से प्राथमिक यंत्र की नाटक प्रवाहम निकन^२ रि सीडी विद् द सीप^३ (१९२६) तथा प्रसिद्ध साहित्यिक चोरे परिवार पर लिखा गया नाटक 'बी बीतन' (१९३१) केवल ये तीन उदाहरण स्वल्प यिनाए जा सकते हैं । इसलिए रेसाइन क हम अनुमान का बंध धारण नहीं मानूँ पड़ता कि महीन इतिहास नाटकों के लिए उचित आधार नहीं ही सकता । रेसाइन का दृष्ट्य ठर है कि बगल सहज रूपों तथा सहज मोहों में धरन नहीं करता । यह तर्क स्वय ही धरपट्ट है । हम पहले यह चुके हैं कि किसी भी देश की कुछ सांस्कृतिक परम्पराएँ हानी हैं जो इतिहास के वर्तमान को उनके धारण मून न हो मही प्राचीनतम मून से भी विमनी हैं । यदि बोड़ी देश के लिए परम्पराओं का बिनिधन मान में ठर मी देश का परिचित घटीत भावनाओं में एक स्वाभाविक सरसता जा सकन में धरन होगा । इसक बिपरीत एक सहज मीन के अठर का बिन न बिबिधय के द्वारा मनोरंजन धर कर सकना । रेसाइन का महम धमन तर्क यह है कि ज्ञान चरित्रों से घटात चरित्र धरिध उपयुक्त होते हैं । इसक बिरोध में ऐतिहासिक नाटकों का समुचा इतिहास ही रखा जा सकता है । धारण ही ऐसा बोड़ी प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक हो बिनका कथानक पूगतया अरिचित ऐतिहासिक धरता हो अथवा जिनके पात्र ऐतिहासिक चरित्रों से रचित महत्वहीन धरिध हैं । एक उदाहरण में 'म बाठ को धीर मी स्पष्ट किया जा सरता है बोड़ी देश के लिए कणना कोबिए कि इतिहास किसी निजापेत अथवा धारण अथवा किसी धर्य धरम में एक लमी कटमा का धरमेक करता है जिनमें किसी रूपी न धरने पति तथा धरने तीन पुत्रों की हत्या कर दी धार इस धरराध में १० ई० पू० उसको धर्यु रण दिया गया । इतिहास न तो उस रूपी क नाम का

१ रेसाइन इन ही प्रीथिम चोरे बिजायेत'

देवनागरीपर ले ड कनामिकन एटिबिनी पीम स्टेकर १० ११०

२ बीन विकुवाटर

३ रेजीनारुड ककल

४ एम्प्टीध संधर

उल्लेख करता है और न उस स्त्री प्रथवा उसके पति या पुत्रों का सम्बन्ध किसी प्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्ति प्रथवा घटना से ही जोड़ता है। यदि नाटककार १०० ई० पू० के बाठाबरमा का सृजन कर उक्त घटना को इसी रूप में अपने नाटक का कथानक स्वीकार कर न तो वह उक्त घटना के प्रतिहासिक नाटक की मूर्ष्टि नहीं कर सकता। एक अत्यन्त साधारण ऐतिहासिक बाठाबरमा प्रथम नाटक जैसे ही पढ़े। ऐतिहासिक नाटकों का समस्त इतिहास तो इसी सत्य की ओर संकेत करता आता पढ़ता है कि ऐतिहासिक नाटक की रचना करने के लिए इस प्रकार के सामान्य चरित्रों से चुड़ी घटनाओं का सम्बन्ध विभूत ऐतिहासिक चरित्रों से प्रथम ही जोड़ना पड़ेगा। उक्त घटना के ऐतिहासिक होने पर भी नाटककार उसमें कल्पना के किन्तों ही रच नयों में भर से प्रथम किन्तु ही अल्प मनोबन्धा निक कार्यकारण परम्परा बूझ से वह उसे ऐतिहासिक मूल्य नहीं दे सकता क्योंकि नाटक का कल्पना तत्त्व महत्वहीन ऐतिहासिक तथ्य को दबा देता है और इससे या तो नाटक ऐतिहासिक हो नहीं पाता या 'क्यामी ऐतिहासिक की कोटि में आ जाता है जिसको हम ऐतिहासिक नाटकों की सामान्य कोटि में स्वीकार करते हैं। यह सम्भव है कि तबक ऐसे नाटकों को इतिहास की सीमा में रचना ही प्रस्वीकार कर दे।

प्रश्न यह है कि ऐतिहासिक नाटक के रचना रूप की वह कौन सी विवेकता है जिसके कारण प्रामाणिक इतिहास से कथानक बाठाबरमा और चरित्र होने पर भी प्रख्यात ऐतिहासिक नामों तथा चरित्रों के अभाव में ऐतिहासिक नाटक वस्तुतः ऐतिहासिक नहीं बन पाता ऐसे क्या कारण हैं जिनसे प्रभावित होकर अधिकार नाटककारों ने प्रख्यात ऐतिहासिक पात्रों एवं चरित्रों से सम्बन्ध घटनाओं को ही अपने नाटक का विषय बनाया। इतिहास की विस्तृत सीमा में वस्तुतः जन्मी व्यक्तियों के नाम एवं चरित्र का स्पष्ट उल्लेख होता है जिन्होंने या तो इतिहास की घटनाओं को स्वयं प्रभावित किया प्रथम जो ऐतिहासिक परिस्थितियों की ठोकरों से घनायास ही लक्ष्यों की ऊँचाई पाकर इतिहास के महाद व्यक्तियों में गिने जाने लगे वही एक साधारण व्यक्ति एवं उसके जीवन का प्रश्न है वह या तो सांस्कृतिक इतिहास की व्यापकता में तो आता है प्रथम प्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्तियों से सम्बद्ध परिस्थितियों एवं घटनाओं की कार्यकारण परम्परा की सामूहिक क्रिया प्रति क्रियाओं में अन्तर्गुण हो जाता है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण की व्यापकता में सामान्य व्यक्ति एकान्त जीवी स्थिति में स्वतन्त्र सत्ता बनाकर नहीं रह सकता और न रहता ही है। वह काल की प्रथम चारा की एक लकी बूद रह जाता है जो पाठ या प्राथमिक अंग तो है परन्तु चारा के प्रवाह में जिसकी स्वतन्त्र सत्ता देखी नहीं जा सकती। चारा के प्रवाह और उसके मोड़ दिने जा सकते हैं। पहाड़ों से टकरा कर

ध्वजवाही हुई उसकी सहरी को नी स्पष्ट देखा जा सकता है पर उसकी प्रत्यक्ष रूप को चित्र बनाना असंभव है। यही कारण है कि साधारण एवं नाम रहित चरित्रों की विविध से विविध ऐतिहासिक घटनाएँ भी विभूत एवं विख्यात नामों एवं घटनाओं व सम्पर्क के अभाव में बूटों से अधिक अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को प्राप्त नहीं कर पाती अतः ऐतिहासिक नाटक में स्वतन्त्र रूप से उनको स्थान नहीं मिलता। ऐसा करने के लिए नाटककार को उन्हें उक्त सम्बन्धों से दृष्ट कराना ही पड़ेगा। अतः विचारों में हम ऐतिहासिक नाटककार को आधुनिक नियमों के लिए बाधे किन्तु ही स्वतन्त्रता प्रदान करें, नाटक का रचना तब उसकी स्वतन्त्रताओं की आवश्यकता स्वतः ही कर मता है। भारत के 'स्वातन्त्र्य युद्ध' का महत्त्व यही स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

इतिहास जैसा नुही न कहा है। सही सही विज्ञान नहीं है। मनुष्य के ज्ञान के साथ साथ उच्च विकास ही नहीं होता बल्कि उसके मूल्य और मूर्खता की पद्धतियाँ भी परिवर्तन होता जाता जाता है। कई कई परिवर्तन, ऐतिहासिक तथ्यों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने में समर्थ होती हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक इतिहासकार की भावनाओं में भी अन्तर होता है। एक ही व्यक्ति अथवा एक ही घटना के अथवा एक ही काल के सम्बन्ध में विद्वान-विद्वान इतिहासकारों के निम्न-निम्न मत होते हैं। कामिनास की प्रायोगिक विधि के अभाव में इतिहासकारों में अन्तर उक्त अनेक स्थापित नहीं हो सका। इतना ही नहीं प्रत्येक इतिहासकार एक विशेष दृष्टिकोण से इतिहास की रचना करता है और उक्त दृष्टिकोण अपनी समझता में इतिहास के अत्यन्त तथ्यों को महत्त्वहीन अथवा महत्त्वहीन तथ्यों का बहुमूल्य बना करने में समर्थ होता है। जैसा हम अब कह चुके हैं कि इन सब बहुमूर्खी कर्तों का कारण इतिहासकार की 'संश्लिष्ट संभावनाएँ' होती हैं अथवा मुझी के शब्दों में कहा जा सकता है कि दृष्टिकोणों की यह विभिन्नता इतिहासकार के 'स्वानुभूत मूल्य' का परिणाम है। अतः यह उचित है कि एक दूसरे से निम्न दृष्टिकोणों में नाटककार मूल्य-का कौन सा स्वरूप ग्रहण करे किम भीमा तक करे और किन स्थलों पर अपनी मौलिक प्रतिभा का समावेश करे। नाटककारों की स्वतन्त्रता इस क्षेत्र में महत्त्व अतिरिक्त है। नाटककार को पूर्ण अधिकार है कि वह अपने युग के इतिहासकारों के किसी भी उच्च संभाव्य (नाटकीय दृष्टि से) भावना को अपने नाटक के लिए स्वीकार कर सके। वह चाहे तो सर्वाधिक मान्य दृष्टिकोण को ले सकता है और यदि वह दृष्टिकोण नाटकीय स्वरा तथा अन्य संभावनाओं की दृष्टि में अनुपयुक्त हो अथवा उसके अन्दर उच्च रूप से मूल्य न जाना हो तो वह अपने कम मान्य दृष्टिकोण का भी ले सकता है और अतिरिक्त व निम्न अतिरिक्त भावनाओं के परिस्थितियों का निराकरण कर सकता है। नाटककार को यह भी अधिकार है कि वह किसी भी इतिहासकार की भावनाओं को स्वीकार न कर ऐतिहासिक समस्याओं पर अपनी अतिरिक्त संभावनाओं का निर्माण कर सके। हमें उम्मेद नहीं कि यही कर वह

रचयें इतिहासकार के क्षेत्र में अपना पांव बढाता है। हम पहले यह चुके हैं कि ऐतिहासिक नाटककार के लिए यह प्राबल्यक है कि वह इतिहास की धारणा में प्रवेश कर उसके सत्य का साक्षात् दर्शन करे। यद्यपि इतिहास के क्षेत्र में पैर रखना उसका अधिकार ही नहीं उसके लिए प्राबल्यक भी है। परन्तु यहाँ यह ध्यान रखना प्राबल्यक है कि व्यक्तित्व संभावनाओं का महत्व बही होता है जहाँ इतिहास प्रस्पष्ट हो। 'इतिहास के प्रथम युग इस दृष्टि से नाटककार के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। यदि इतिहास कोई ऐसा कथानक है जो नाटक में भावोद्भूत उत्पन्न कर सकें जिसमें नाटकीय संभावनाएँ हों और जिसमें कथा पात्रों की परिस्थितियों से ऐसी क्रिया प्रतिक्रिया ही कि घटना में प्राबल्यक कुतूहल प्रभावोत्पादकता और हृदय स्पर्श करने की शक्ति उत्पन्न हो सके तो नाटककार की सृजनात्मक कल्पना का कार्य कम हो जाता है। वह इसके रच को और गहरा करने के लिए नए पात्र और कथानक और कल्पनाशील कार्य कारण परम्पराओं की सृष्टि तक ही अपनी कल्पना को सीमित कर लेता है। अथवा नाटककार किसी भी संभाव्य ऐतिहासिक कथानक को लेकर उसमें कुछ कथा पात्रों के नाम और उनके चरित्रों की बाह्य रूप रेखाओं का समावेश करता है इतिहास के रिक्त स्थानों में कल्पनाओं का धारण बढाता है कारण और परिणाम के बीच कुतूहलों के साथ साथ नाटकीय स्वर को संयोजन करता है, कास्मिक चरित्रों को कथा चरित्रों के समानान्तर बढा करता है उनको कास्मिक ऐतिहासिक प्रदान करता है कथा पात्रों में नवीन चारित्रिक विशेषताओं का इस प्रकार सृजन करता है कि विशेषताओं के साथ उनका विरोध न हो समस्त नाटक को ऐतिहासिक संभाव्यता प्रदान करता है और सबसे ऊपर नाटक के सम्पूर्ण प्रभाव में भावोद्भूत या रसोद्भूत की शक्ति भर कर उसे काम्य का प्रथम बना देता है।

एक अंतिम प्रश्न और यह जाता है नाटककार मूल एवं कथा ऐतिहासिक कथानक में कम और कितना परिवर्तन कर सकता है। यहाँ यह कहा जा सकता है कि यदि मूल कथानक में केवल थोड़े से ऐसे मोड़ देने हों जो सरलता से लक्षित न हो सकें अथवा नाटक के उद्देश्य से काम कम से थोड़े से ऐसे परिवर्तन करने हों जिससे इतिहास की मूल श्रुति का द्विगुण मिश्र न हो तथा प्रख्यात सत्य को चोट न पहुँचे तो नाटककार जब चाहे उक्त परिवर्तन करने का अधिकारी है। परन्तु यदि मूल कथानक में कल्पना के प्रभाव से प्रामाण्य परिवर्तन उद्विग्न करना हो तो ऐसा केवल तभी किया जा सकता है जब प्रख्यात ऐतिहासिक चरित्रों में नाटककार इतनी शक्ति का सृजन कर सके कि उसके प्रभाव से कथानक धमिलूत हो जाय और उक्त परिवर्तन में केवल स्वाभाविक लपके लपके बरत पूरा सम्भाव्यता लिए हुये हो। यदि कथा चरित्रों में इस प्रकार का परिवर्तन करना हो तो ऐतिहासिक कथानक में इतनी शक्ति होनी चाहिए कि कथानक की शक्ति पात्रों को धमिलूत कर अपने प्रभाव में समेट ले सके। ऐसे परिवर्तन उपास्वित करने में जो कुछ भी ऐतिहासिक तत्व ही उसकी प्रदानता

होना आवश्यक है तभी वह नाटक का इतिहास गुरु (ऐतिहासिकता) को नष्ट किए बिना समय-तर्कों को अपने प्राचीन कर सकता है। ऐतिहासिक नाटक के उद्योग स्वयं एक रचनात्मक की विद्युत्ता को ध्यान में रखते हुए यदि उसकी परिभाषा की जा तो यह कहा जा सकता है कि 'ऐतिहासिक नाटक नाटक के क्षेत्र में इतिहास के प्रसंगों का समूह है।

ऐतिहासिक नाटकों का वर्गीकरण

नाटक में ऐतिहासिक घटना पात्र प्रवेश वातावरण की प्रभावता की दृष्टि से ऐतिहासिक नाटकों का एक वर्गीकरण किया जा सकता है। कहीं नाटकक कथानक को महत्व देता है कहीं चरित्र को और कहीं केवल ऐतिहासिक वातावरण को। एक दृष्टि से साधारण नाटकों की तरह घटना प्रधान चरित्र प्रधान भी वातावरण प्रधान ये तीन वर्ग बनाये जा सकते हैं। परन्तु उपरोक्त वर्गीकरण सामान्य है और ऐतिहासिक नाटक के ऐतिहासिक और नाटकीय इन दो मिलावट से इसका विशेष सम्बन्ध नहीं जुड़ पाता। ऐतिहासिक युगों के आधार पर नाटकों का वर्गीकरण किया जा सकता है परन्तु इस प्रकार के वर्गीकरण का सफलता से ही कि उसे सर्वव्यापी नहीं बनाया जा सकता। कई देशों के नहीं एक ही देश की कई जातियों और वर्गों के इतिहास मिला-मिला युगों और कालों में बँटे होते हैं। अतः उक्त वर्गीकरण सार्वभौम नहीं हो सकता। इसके अनिश्चित इस प्रकार के वर्गीकरण इतिहास की दृष्टि से ही हो सकता है नाटकीय दृष्टि से नहीं। अतः ये वर्गीकरण एकदली होकर रह जायगा। नाटकों के उद्देश्यों को लेकर भी ऐतिहासिक नाटकों का वर्गीकरण किया जा सकता है और उसके राष्ट्रीय ऐतिहासिक आन्दोलन, ऐतिहासिक तथा विमुक्त ऐतिहासिक जैसे धेर किए जा सकते हैं। परन्तु इन नाटक के सम्बन्ध में विचार करते हुए हम नुके हैं कि किसी भी नाटक में उक्त सर्व उद्देश्यों को एक साथ नूना जा सकता है। ये सभी उद्देश्य नाटक में इतिहास के प्रभाव पर निर्भर करते हैं और किसी भी नाटक में ये सभी बात प्रवेश प्रजात रूप से अनुपस्थित रहते हैं।

ऐतिहासिक नाटकों का सबसे प्रमुख वर्गीकरण यह हो सकता है जिनके इतिहास के साथ समस्त नाटक का सम्बन्ध प्रतिदर्शित हो। इस प्रकार का वर्गीकरण रचना-तन्त्र पर ही आधारित होगा और इसकी सबसे बड़ी बिन्दुयता यह होगी कि यह न केवल इतिहास के आधार पर हुआ बरन् साहित्यिक गुणों रचना-तन्त्र के सामान्य स्वरूपों कथानक पात्र और वातावरण के आधार पर सम्बन्धों तथा काल्पनिक तथ्यों के आधारों को भी ध्यान में रखते हुए होगा। अतः रचना-तन्त्र के आधार पर हम ऐतिहासिक नाटकों को चार भागों में बाँट कर सकते हैं—

१. शुद्ध ऐतिहासिक
२. अर्द्ध ऐतिहासिक
३. काल्पनिक ऐतिहासिक
४. स्वच्छन्द ऐतिहासिक

यदि नाटककार मूल कथानक प्रागाणिक इतिहास से से प्रायः सभी प्रधान पात्र भी इतिहास वियुक्त हों और उन सभी पात्रों के नामों को ही नहीं चरित्रों को भी ज्यों का त्यों स्वीकार कर लो इस प्रकार के ऐतिहासिक नाटक को कुछ ऐतिहासिक की श्रेणी में रखा जा सकता है। बातावरण की प्रवेतिहासिकता का तो प्रश्न खड़ा ही नहीं। इसमें प्रागणिक रूप में प्रप्रधान पात्र और गौण

युद्ध काल्पनिक कथानकों की नियोजना धरम्य की जा सकती है, परन्तु ऐतिहासिक उनका नाम प्रधान पात्रों तथा मूल कथानक की विशेषताओं को प्रकाश में लाना ही होता है। नाटककार का कार्य इस प्रकार के

नाटक में घटीत का पुनर्जन और पुनश्चित्रण है। वह घटीत में गग भरता है, उसके विरोध को स्पष्ट करता है और सामंजस्य को समीप लाकर पात्रों को जीवित करता है। यहाँ नाटककार मृत घटीत में कला के प्राण भरता है। कुछ ऐतिहासिक नाटक के सभी प्रधान तत्व ऐतिहासिक होते हैं घट चरित्र और कथानक एक दूसरे से संतुलित और आनुपातिक रहते हैं। यहाँ एक बात और स्पष्ट कर देना आवश्यक है कभी-कभी कुछ ऐतिहासिक नाटक में नाटककार प्रधान ऐतिहासिक पात्र के चरित्र को स्पष्ट करने के लिए उसके समाप्तांतर एक और प्रधान पात्र की सृष्टि करता है जो ऐतिहासिक तो नहीं होता, परन्तु पात्र और परिस्थिति अन्य पूर्ण ऐतिहासिक संभाव्यता लिये होता है। वह पात्र न केवल ऐतिहासिक पात्रों के चरित्र को ही निपारता है बल्कि घटना क्रम में भी पूर्ण योग देता है। यदि इस प्रकार का प्रधान काल्पनिक चरित्र नाटक के ऐतिहासिक तत्वों को नष्ट न करे, तो उसकी प्रारम्भ संभाव्यता जसे ऐतिहासिक बना देती है। बगला में डिरेक्टरलाम राय के और हिन्दी में प्रमार के ऐतिहासिक नाटक इसी कौटि में पाते हैं। कर्णुयालाम मुन्गी के बुझराठी नाटक "प्रबन्धामिनी देवी" भी कुछ ऐतिहासिक नाटक है। उदयमकर मट्ट का "बक विजय" और लक्ष्मीनारायण मिश्र का "विनस्ता की महर्षि" कुछ ऐतिहासिक है यद्यपि इनमें दोनों नाटककारों ने इतिहासकार बनने के प्रयाम में मूल इतिहास की भाग्यताओं में फेरफार करने का प्रयाम भी किया है।

यदि नाटककार मूल कथानक इतिहास से से और कल्पना से प्रधान पात्रों का चुनन कर उनका इतिहास पर आरोप करे तो, ऐसे नाटक को घट्ट ऐतिहासिक नाटक की श्रेणी में रखा जा सकता है। परन्तु यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि मूल कथानक का सम्बन्ध जिस कथा व्यक्तिमों से कहीं

घट्ट ऐतिहासिक पर भी जुड़ा हो यहाँ उन कथा व्यक्तिमों का गौण पात्रों

के रूप में ही नहीं, नाटक में आना आवश्यक है। यदि जल कथानक का सम्बन्ध किसी कथा चरित्र में न हो तो नाटककार के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह प्रधान पात्रों का कथानक में आगोचर करे। प्रयथा त्रैमा इय बह बुद्ध है ऐतिहासिक घट्टों को अंक ऐतिहासिक स्वीकार करने में मरुच करने। घट्ट ऐतिहासिक नाटक में योग्य रूप में ऐतिहासिक पात्रों का रहना अनिवार्य है। इन प्रधान के नाटक में

पूरी ऐतिहासिक तत्व कथानक है। अतः यह आवश्यक है कि कथानक से पात्रों व सम्बन्ध हो सम्बन्ध पात्र ऐतिहासिक सम्भाव्यता को न पा सके। इस प्रकार नाटक में कथानक की प्रधानता रहती है ऐतिहासिक रचनातन्त्र की दृष्टि। वातावरण तो सर्वत्र ऐतिहासिक होता है। श्री गुन्धारनाम बर्मा ने "इस मधुर नाटक के अर्थ" ऐतिहासिक कथानक को लेकर इन्डोस नामक कल्पित पात्र को उसका नायक बना दिया है।

इस प्रकार के नाटकों में नाटककार कथानक तो काव्यमय या 'उत्पाद' ग्रहण करता है किन्तु उसके पात्रों में ऐतिहासिक चरित्रों का आरोप करता है। प्रामाणिक इतिहास से भिन्न सभी कथानक काव्यमय कहे जा सकते हैं। यह सम्भव है कि नाटककार एकदम मौखिक कथानक का निर्माण न कर बर कथाओं अथवा पुराणों से ही अपनी समस्त सामग्री से ले ऐसी स्थिति में कथानक पात्रों से अपनी सम्भाव्यता बहुर करेगा और ऐतिहासिक तत्व पात्रों में होने के कारण चरित्र कथानक को प्रभावित करते रहेंगे। वातावरण की ऐतिहासिकता से अनिवार्य है ही। हिन्दी में इस प्रकार के ऐतिहासिक एकदमियों की रचना पर्याप्त मात्रा में हुई है। मिनिन्ड के नाटक 'वीरम नन्द' को हम इसी श्रेणी में रख सकते हैं। वीरम नन्द का कथानक कल्पित है किन्तु उसके पात्रों में वीरम बुद्ध और बुद्धोपम जैसे ऐतिहासिक पात्रों के उल्लेख से ऐतिहासिक सम्भाव्यता नाई गई है। उनके प्रभाव में नाटक स्वच्छन्द ऐतिहासिक की कौटि में आ जाता।

ऐतिहासिक नाटकों का अन्तिम प्रकार 'स्वच्छन्द ऐतिहासिक' है। इसमें नाटककार का कथानक ही नहीं पात्र और चरित्र भी काव्यमय होते हैं। तारे पात्र अपने कार्य विधुत ऐतिहासिक काल एवं वातावरण में ही करते हैं परन्तु वे ऐतिहासिकता भिन्ने नहीं होते। पात्रों का नाम नाटककार की कल्पना द्वारा स्वच्छन्द ऐतिहासिक वातावरण में होता है और उनके चरित्रों का निर्माण भी उसी वातावरण में होता है। अतः इस प्रकार के नाटक में ऐतिहासिक वातावरण प्रधान रहता है और वह वातावरण पात्र एवं चरित्रों को प्रभावित करता है स्वयं उनसे प्रभावित नहीं होता। यहाँ भी पात्रों का सम्बन्ध किसी न किसी ऐतिहासिक स्थिति से जुड़ना आवश्यक है चरित्र अपने ही ऐतिहासिक न हो। यह सम्भव है कि ऐसे विधुत चरित्र न पात्रों व सम्बन्ध का कही न कही उल्लेख भरकर दिया जाय। अिसे भेसिंग ने इतिहास का ध्यान कहा है। उस ध्यान के लिए इस प्रकार के सम्बन्धों की दृष्टि आवश्यक है अथवा यह ऐतिहासिक नाटकों में रखा ही न जा नकेगा। ऐतिहासिक वातावरण

प्रधान ऐतिहासिक तत्व नहीं है। हिन्दी में इस प्रकार के नाटक अधिक नहीं लिखे गए किन्तु हिन्दी का प्रथम ऐतिहासिक नाटक मारतेशु रचित 'नीलदेवी' इसी कोटि का है इसमें ऐतिहासिक नहीं है। विद्यारामचरण का 'पुष्प पत्र' नाटक भी इसी श्रेणी का है।

नाटक में कल्पना और इतिहास इन दोनों के सम्मिश्रण की भांति और उसके स्वल्प के-माध्यम पर ऐतिहासिक नाटकों के उत्तम हो भेद हो सकते हैं बिना नाटक के। परन्तु मुद्रिका की दृष्टि से उपर्युक्त बर्गीकरण स्पष्ट एवं अपने में परिपूर्ण है-। यही वह कहेंगे भी अनुचित न होगा कि निरन्तर विक्रमशील कला को क्यों भी सीमा में बाधित नहीं किया जा सकता। स्वतन्त्र रूप से कथानक एवं पात्रों को कमी-कमी-स्वल्प-तु-के-जा सकते हैं जो ऐतिहासिक होत हुए भी इतिहास की पूर्ण अनुकूलि-नहीं-कहे-जा सकते। ऐसे स्वल्पों के सुदृढ प्रसर को धूलकर हम उन्हें भी भी उपर्युक्त-नहीं-में-रख-सकते-हैं। उदाहरण स्वल्प कमी-कमी-न-टकर-इतिहास के दो-तीन-या-उसके-अधिक-छोटे-छोटे-कथानकों-को-माध्यम-कार्य-कर-परि-स्थितियों-से-बोझकर-एक-सूत्र-में-पिरो-देते-हैं-और-उसे-पूर्ण-ऐतिहासिक-सम्मा-न्यता-में-अनुपाणित-भी-कर-देते-हैं। इसी प्रकार कमी-कमी-दो-पात्रों-को-मिलाकर-एक-चरित्र-भी-बना-दिया-जाता-है। इस प्रकार कई ऐतिहासिक चरित्रों को जोड़कर एक-नया-चरित्र-भी-बना-दिया-जाता-है। कमी-कमी-एक-ही-कथानक-में-अथवा-एक-ही-पात्र-में-इतिहास-के-साथ-कल्पना-का-भी-पूर्ण-सम्मिश्रण-कर-दिया-जाता-है। इसमें समझ नहीं कि कठोर ऐतिहासिकता की दृष्टि से विचार करते पर ऐसे समस्त कथानक एवं पात्रों को अति-इतिहासिक या अति-ऐतिहासिक स्वीकार करना पड़ेगा और वह नाटककार का दोष माना जायगा परन्तु यदि इस प्रकार के पात्र या कथानक नाटक की ऐतिहासिक संभाव्यता को बनाए रखते हों और अज्ञान एवं पीछे हों अथवा अल्प परिचित एवं अपरिचित हों तो उक्त दोष को नाटककार की प्रजातीय प्रतिभा के अन्तर्गत मानकर काल्पनिक तत्व कहा जा सकता है। अल्प-अल्प-प्रकार-के-नाटकों-में-से-इन-प्रकार-के-पर्याप्त-उदाहरण-हूँ-के-जा-सकते-हैं-इसका-विवेचन-आगे-अन्य-कर-किया-जायगा।

ऐतिहासिक नाटक और उसमें सत्य का स्वरूप

सत्य शब्द सापेक्ष है। मूलतः सत्य की सापेक्षता का कारण व्यक्ति है। उसके स्वयं के अनुभवों की समझता और उसका प्रभाव जीवन के प्रति जिस दृष्टिकोण को जन्म देता है वह दृष्टिकोण ही उसके लिए सत्य की परिभाषा का निर्माता करता है। यह भी संभव है कि वही व्यक्तिगत दृष्टिकोण समष्टिगत हो जाय और

सत्य का एक व्यापक स्वरूप बन जाय। परन्तु यहाँ पर भी व्यापक कला का सत्य सत्य व्यक्ति सापेक्ष या व्यक्ति समूह सापेक्ष है। शार्शनिकों ने निरपेक्ष सत्य की कल्पना की है। निरपेक्ष सत्य व्यक्ति, समूह समाज जाति देश और कला विशेष से ऊपर है। परन्तु वहाँ हम कला के जित सत्य का विश्लेषण कर रहे हैं वह कला का लोक जीवन के प्रति ठीक बँता ही एक दृष्टिकोण है वैसे एक व्यक्ति का अपने चारों ओर के वातावरण के प्रति होता है। अतः यह भी सापेक्ष इन अर्थ में है कि कवि या कलाकार के मानस पर जीवन और जन की प्रतिक्रिया एक विशेष प्रकार की होती है इतिहासकार पर एक विशेष प्रकार की वैज्ञानिक पर अन्य प्रकार की और शार्शनिक पर उससे भी भिन्न।

कवि (या नाटककार) का जीवन का प्रति संक्षिप्त दृष्टिकोण होता है। यह संक्षिप्त दृष्टिकोण नैसर्गिक जन्म है क्योंकि कवि का उद्भव स्वानुभूत सौंदर्य की प्रतिबिम्बित द्वारा पाठकों या दर्शकों को प्रभावित कर उनमें सौंदर्यानुभूति का ध्यान उत्पन्न करता है। जिसके विचारों का विश्लेषण करते हुए हम देख चुके हैं कि वह काव्य के ऐतिहासिक उद्देश्य से भिन्न काव्यात्मक उद्देश्य की कल्पना करता है और कवि को काव्य सत्य के निघर्मों में बँधा हुआ मानता है। अतः जिसके दृष्टिकोण से काव्य का सत्य इतिहास के सत्य से भिन्न काव्य के उद्देश्य धर्मात् स्वानुभूति का सत्य है। काव्य की व्यापक परिभाषा में ऐतिहासिक नाटक का भी स्थान है। ऐतिहासिक नाटक में नाटककार के स्वानुभूत सत्य का बाह्य कितना ही महत्व नहीं है जो ऐतिहासिक सत्य का भी जन पर महत्व प्रभाव पड़ता है। अतः ऐतिहासिक नाटक की सीमाएँ जिसके काव्य सत्य या प्राकृतिक सत्य से ही नहीं काव्य सत्य से भी बनी हुई हैं।

विचारकों ने कला में सत्य के संबंध में दो प्रश्न उठाए हैं। (१) क्या कला में कला के संबंध का प्रश्न प्राधान्य है? (२) क्या सत्य का कला में वही संबंध है जो सत्य का जीवन से है?

प्रथम प्रश्न में सत्य और कला के संबंध को दो कारणों से धनात्मक माना गया है। एक कारण यह है कि कला का उद्देश्य भावों को जागृति देना अतः

मन्य में कोई प्रत्यक्ष सबब नहीं। सत्य या असत्य में भाषों की जायति में किसी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ता। भाषों की जायति के लिए कला स्वयं ऐतिहासिक (मन्य) भी हो सकता है और काल्पनिक (अमन्य) भी। यहाँ बस्तुतः कला के मूल्य का प्रश्न उठ सकता है कला के मन्य का नहीं। सीश्य का दृष्टिकोण सत्य और असत्य के प्रश्न को लेकर नहीं चलता। बस्तुतः किसी भी कलाकृति की प्रत्येक श्रमणता हममें या समग्र प्रभाव डालती है उसके हमारा ध्यान बला के सत्य प्रभाव असत्य में न आकर कलाकृति की सम्पूर्णता में केन्द्रित हो जाता है और उससे हम ध्यानहीन को प्राप्ति प्राप्ति है। बरन्तु यदि किसी कृति के ध्यानहीन (समग्र प्रभाव) को छोड़कर उसका बिस्लेषणात्मक मूल्यांकन करना हो तो या यह निर्णय नहीं दिया जा सकता है कि वह कलाकृति सत्य है या असत्य है। ही इतना प्रबन्ध कहा जा सकता है कि समुक्त इति पर्यन्त महत्त्वपूर्ण है और समुक्त निरर्थक। इन दोनों प्रकार की कलाका का अन्तर सीश्य शास्त्र की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्व का है क्योंकि इस अन्तर को सामग्न रखकर ही प्रत्येक व्यक्ति माटे मन्य से साधारण बस्तुओं में लेकर महान् कलाकृतियों तक के लिए अपने अपने मानक मद्द सकता है। सीश्य में प्रथम प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि कृति के माध्यम से ही कला में सत्य को महत्त्व दिया जा सकता है पर कला सर्वधी निष्पत्ति के लिए सत्य का प्रश्न अनावश्यक है।

हमारे प्रश्न के उत्तर में इतना ही कहना पर्याप्त थाया कि किसी भी कलाकृति का मूल्य जीवन के उन भागों पर निर्भर करता है जिनको वह कलाकृति प्रतिबिम्बित करती है। अतः सत्य या कला और जीवन में समन्वय संबन्ध है।

किसी भी कलाकृति में सत्य कई रूपों में प्रतिबिम्बित होता है

(अ) कलाकार के अन्तर्गत विचारों के अनुक्रम मन्थ। या० जानसक के अनुसार यह भावनाओं का मन्थ है जिसकी प्रतिबिम्बित प्रत्येक दृश्य में सुनाई पड़ती है।

(आ) जीवन के अनुक्रम सत्य। इसी दृष्टिकोण से कला का जीवन का अनुकरण या प्रतिबिम्बित मानने में सहायता भी। हमें हम कला का बाह्य सत्य ही कह सकता है।

(इ) धार्मिक समन्वय का अन्तः। मन्य के इस स्वयं को उन विद्वानों से माना है जो किसी कलाकृति को परिपत्र (डोसुवैट) और केवल तथ्यों के बिबरण को काय्य नहीं मानते।

कला में सत्य के इन तीनों स्वरूपों का समन्वय होता है। कला का मन्थ यह है या किसी कलाकृति के अन्तर एतन्मिन्न मिन्न मूल्यों का समन्वय और बिबरण बिबरण को स्वयं प्रदान करना है। मन्य के उक्त तीनों स्वरूपों को (१) कलाकार का सत्य (२) प्रकृति और जीवन का सत्य (३) कला में लोगों की अनुभूति धार्मिक का मन्य कहा जा सकता है।

ऐतिहासिक नाटक में भी मध्य कलाकृतियों की तरह प्रभाव की समरता न ही महत्व है, उसके घ गों का नहीं। कलाकृति होने के कारण उसके सत्य और प्रभाव का नहीं बरद उसके मूल्यों का प्रकृत उठता है। जब हम किसी ऐतिहासिक नाटक में

ऐतिहासिक नाटक
का सत्य

प्रभाव की विवेचना करते हैं तब प्रथम ही उसके जीवन मूल्यों के आधार पर उसके महत्व प्रभाव उसकी निर्भरकृत का निर्धारण प्रामाण्य कर लेते हैं परन्तु यदि इसकी परीक्षा करनी हो कि इतिहास कल्पना प्रभाव का सत्य के

प्रति ऐतिहासिक नाटककार का दृष्टिकोण क्या है तो नाटक की सम्पूर्णता और उसके समग्र प्रभाव को धोड़ी दूर के लिए धूम कर उसके एक एक घट पर पृथक् पृथक् विचार करना पड़ेगा। ऐसी दशा में हमारे विवेचन का दृष्टिकोण विद्वान्मनात्मक हो जाना और इस प्रकार के विवेचन में सत्य को भी गूँड लड़ करके बलना पड़ेगा।

सामान्य कला में सत्य का स्वरूप ऐतिहासिक नाटक में सत्य के स्वरूप से कुछ भिन्न होता है किन्तु इनमें मौलिक अंतर नहीं है। ऐतिहासिक नाटक में सत्य के स्वरूप का निम्न वर्गीकरण किया जा सकता है —

- १ इतिहास का सत्य
- २ नाटककार के अपने विश्वासों का एवं उसके स्वानुभव का सत्य
- ३ नाभ्य परम्पराओं का सत्य
- ४ लोक मानस का सत्य

ऐतिहासिक नाटककार के सम्मुख सर्वप्रथम इतिहासकार का सत्य है।

जीवन एवं जगत के प्रति इतिहासकार का एक विशिष्ट दृष्टिकोण होता है। वह दृष्टिकोण होता है तथ्य सचाहक का तथ्य विवेचक का और तथा सत्य का।

उमका सत्य मूल्य कभी किसी धनीत में होने वाली घटनाओं इतिहासकार और उम काय के व्यक्तियों का सत्य है। यदि वह सार्थक का सत्य इतिहासकार है तो उमका सत्य का स्वरूप विर प्रकाशित काय

की घटनागुणों धारा में कार्य कारण परम्परा इ इने में प्रति कल्पित होना है। इतिहासकार को ऐतिहासिक सत्य के लिए ज्ञान और विद्वान्मनात्मकताओं के अनिरिक्त घट सिद्ध प्रदका धमिद्ध किन्तु सभाम्य कथाओं पुत्रों इत्यादि से भी तथ्य ग्रहण करने पड़ने हैं। ऐतिहासिक नाटककार इतिहास के सुपरिचित सत्य का विरोध नहीं करता। इतिहास की सुपरिचित सत्यताओं का विरोध करने में उसे स्वयं इतिहासकार का स्वयं प्रमाण करना पड़ेगा और संभव है कि इन विद्या में वह मात्तकार ही न रहे। इतिहास के घट विद्वान्मनात्मक सत्य को बड़े परिचित कर सकता है। बलगत इतिहास की घट विद्वान्मनात्मक इतिहासकार और नाटककार दोनों के समान घट हैं। इतिहास को श्रुतता को जाड़ने में वह इतिहासकार घट विद्वान्मनात्मक सत्यताओं का साधन होता है तो वह नाटककार

के समान ही ज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश करने लगता है। इसे हम इतिहासकार की मरिचक सम्भावना का क्षेत्र कह सकते हैं। नाटककार इतिहास की सुनिश्चित मान्यताओं में कोई भी परिवर्तन नहीं कर सकता और न इतिहासकार की मरिचक सम्भावना से कुछ इतिहास में ही कोई परिवर्तन कर सकता है वह इतिहास की छद्म विद्व या संभाव्य मान्यताओं में अज्ञानानुसृत परिवर्तन कर सकता है पर उनके बिना उसे इतिहास के स्वरूप का अर्थ करने परे—

१. सुनिश्चित इतिहास और

२. छद्म विद्व या संभाव्य इतिहास

यहाँ पर वह इतिहासकार की मरिचक सम्भावना के स्वरूप पर अपनी कल्पना का उदघाटन करेगा।

नाटककार के स्वयं के अनुभव और उनकी मान्यताएँ ही उसका स्वानुसृत स्वरूप हैं। जीवन का प्रत्यक्ष भाग्य या घटनाओं से टकराने के उपरान्त निम्न निम्न व्यक्तियों पर उन संवेदना का निम्न-निम्न प्रभाव पड़ता है। कोई उन व्यक्तियों में सामुप्यपूर्ण स्थिति पाता है कोई उनमें प्रभाव का अनुभव और नाटककार के कोई दोषों। कवि के समान नाटककार भी समाज की बीणा स्वामुखा का स्वरूप का सबसे अधिक गिना हुआ ठार होता है। अतः जीवन प्रवाह के हृदय में घाघात में भी वह अनन्तता उभरता है और घाघात के स्वरूप के अनुभव ही उनमें से स्वर निकलते हैं। वे स्वर दोनों दिशाओं को तराफ करत हैं। इसलिए उनकी व्यक्तिगत सभी हृदयों की प्रतिबन्धि बन जाती है। यही वे जिसे 'मातृ विषयों का स्वानुभव' कहा है और जिसे उल्लेखित इतिहासिक पात्रों की जीवन शक्ति कहा है वही नाटककार का स्वयं है।

नाटककार मानव का ही एक व्यक्ति है और उनका भी एक व्यक्तित्व होगा है। उन व्यक्तित्व के अनुभव ही उनकी मान्यताएँ होती हैं। ये मान्यताएँ उनका जीवन स्वरूप बनाती हैं और इन मान्यताओं पर अन्तिम मानव सम्भावनाओं के प्रति उनका हस्तिकार निर्भर करता है ये मान्यताएँ सरकार अन्य विज्ञान अन्य अथवा अनुभव काय हो सकती हैं। बलुत्त से उनके विवरण हैं। प्रत्येक व्यक्ति जीवन का अपनी दिशा से दिग्दर्शक बनता है अतः वे नाटककार के क्षेत्र हैं। जिसमें वह संसार को देखने का प्रयत्न करता है। अगर हम कह सकते हैं कि इतिहास के विषय में वे न सही छद्म सत्यों में परिवर्तन करने का अधिकार नाटककार को है। अतः व्यक्तिगत सभी अनुभवनाओं की शक्ति भी वह कर सकता है। आकाशवाणी में कलात्मक वाचन करने के लिए आवश्यक है। ये परिवर्तन प्रत्यक्ष जीवन अनुभवनाएँ अन्तिम के न व्यक्तिगत स्वयं है जो या तो अनुभवों में अथवा उनके स्वयं की मान्यताओं से बनते चले जाते हैं। अतः यह सम्भव नहीं कि इतिहासिक नाटककार की रचनाएँ उन स्वयं के स्वयं से प्रभावित न हो।

ऐतिहासिक नाटककार के लिए इन दोनों के प्रतिरिक्त सत्य का एक और स्वरूप भी है। उसको हम नाटकीय परम्पराओं का सत्य कह सकते हैं। भारतीय नाट्यशास्त्र में नाटक के किसी भी स्वरूप में सुखान्त या नाटकीय परम्परा का अवकाश नहीं है। कारण चाहे कुछ भी रहा हो रामों का सत्य पर इसमें संदेह नहीं कि संस्कृत का समस्त नाट्य साहित्य उक्त नाटकीय परम्परा से प्रभावित है। इसी प्रकार यूनान में ऐतिहासिक कथावस्तु का उपयोग साधारणतः आसन्न के लिए ही किया जाता था और सुखान्त नाटकों में कथावस्तु तरफापीन जीवन से चहुँप की जाती थी। उक्त परम्परा का निर्वाह समस्त यूनानी नाटकों में ही नहीं कालांतर में लिके यण्ड यण्ड और फ्रांस के नासनों में भी देखा जा सकता है। प्रश्न यह उठ सकता है कि इस नाटकीय परम्परा का 'सत्य' क्यों कहा जाय। इसका कारण यह है कि इन परम्पराओं के सत्य के निर्वाह के लिए नाटककारों ने ऐतिहासिक सत्य में परिवर्तन ही नहीं किया बल्कि उसके विपरीत सबंधा महीन माध्यमों का ही प्रयोग किया। उत्तर रामचरित म नाटकों को सुखान्त ही बनाने की भारतीय नाट्य परम्परा के निर्वाह के लिए विद्युत् चमकना में तब परिवर्तन करके घट में सीता और राम का संयोग दिया गया। साधारणतः नाटककारों ने इस बात का ध्यान रखा है कि ऐसे ही कथानक लिए जाय जिनमें उक्त परम्पराओं का निर्वाह सहज हो सके कथानकों में स्वतंत्र रूप से काट छाँट भी करनी पड़े। अपने नायकों को नाट्यशास्त्र के अनुकूल 'बीरोदात्त' बनाने के लिए कामिबास ने पौराणिक दुष्मन्त के चरित्र में ही परिवर्तन कर दिया और बहुमुक्ता रमान के प्रीक्षित को मित्र करने के लिए 'जुर्बासा' के भाव और सभी चीजों में घबूठी खोजने की कल्पना की। एस्काइसस ने नासन्न प्रभाव की बुद्धि के लिये प्रीमीयस सम्बन्धी इतिहास में कई परिवर्तन किए^१। यूरिपाइडीस ने ईगन सम्बन्धी प्रतिष्ठ इतिहास में कई नास्तनिक बदलाएँ जोड़कर फेडा कोस्टा सिनेटा तथा वैसिफि जैसी वृत्तित स्त्री पात्रों की मूर्ति की^२। अतः स्पष्ट है कि परम्पराओं का सत्य भी ऐतिहासिक नाटककार की नाट्य रचना को प्रभावित करता है^३।

ऐतिहासिक नाटककार पर एक और 'सत्य' अपनी छाया डालता है जिसे हम 'नाक जीवन' का सत्य कह सकते हैं। उक्त सत्य के दर्शन एक और ता हम नाट्य ध्याय (पोएटिक जस्टिस) में होते हैं और दूसरी धार ध्याय साधु विन्यास में। काव्य ध्याय नाटकीय ध्याय भी कहा गया है। 'नाटक महाकाव्य प्रकृति उन्मत्त सभी में सिव और अस्मिन्न सत घोर धमक के संघर्ष में सदा ही सिद्ध हो

१ पोएटिकस स्क्रिप्टर पृ १२

२ वही

३ ट्रेडेटीव साउ दि साउट एंड धामस राइडर

घोर सृष्टी ही विषय होनी चाहिये, जिससे प्रत्येक व्यक्ति जिस घोर सृष्टी की घोर प्रेरित हो करे व्यक्ति उदसीन हो। भारत का सांस्कृतिक हृष्टिकाण मया ही मानवोन्मुख पुस्तकों के विकास के लिए प्रयत्नशील रहा है। समस्त कलाएँ समस्त विज्ञान घोर मयी मूर्त मानव के सर्वांगीण विकास को ही अपना करन सत्य मानन प्राये हैं। "म मय का नाट्यनाम्नकार न समाजकामाशासाम् म अभिषेक कर दिया है। भारतीय नाटकों में नायिका का सर्वांगीण घोर प्रत्येक बाह्य पर धरना" इमी "काव्य स्याम" की धार संकलन करती है। धरन्तु क समाजमीन विचारका की मापना भी कि बही चामर मय प्रकृत है जिसमें काव्य स्याम का निर्वाह किया गया है। परन्तु धरन्तु ने इस मापना को स्वीकार नहीं किया।^१ कामान्तर म यद्यपि सिद्धान्तक म काव्य स्याम का मयक बाधा रहा तथापि यह काव्य स्याम ऐतिहासिक नाटकों के माय माय भावनों म भी प्रकृत म से किमी न किमी रूप म बनता रहा।^२ चौकेना नाटक म बेसिडिमोन की हत्या करने पर न ही घादता ही जीवन रह मका घोर न इयागा ही। तीव्र को ठबिठ दह मियता काव्य स्याम का हीणकम्बध है। 'काव्य स्याम' के उद्देश्य म भी ऐतिहासिक कथानकों में समय समय पर परिवर्तन करिये गए। इनकी चतुर्थ क मय में सेरियट की एक ठबिठ प्रयत्न महत्त्वपूर्ण है कि 'नाटककार के लिए यह धारकरक है कि धारविचार साधारणकरन करन बाव साधक का समुल्ले मयनकाय धर्मीन चिन्तन किया जाय चाहे धरन्तु का यह धरहरण इतिहास की हृष्टि से निठना ही स्याम-मगत क्या न ही घोर विनता ही छात्रियुण क्यों न रहा हो। इस प्रकार का चित्रण निर्यात के प्रति कोई धरन्तु मही रहा या मकता^३ काव्यस्याम का मयक नाटककार में न जोड़कर सोक बावन या दर्शकों से जोड़ना चाहिये। माधारण धरन्तु साधारण परिस्थितियों म काव्य स्याम को किमी न किमी रूप में प्रकृत मोगन है। चाहे बहु रतिक जीवन में समक हो धरबा नहीं यदि नाटक म बहु काव्य स्याम मयी मिया चाहे प्रकृत म में क्यों न हो तो नाटक के प्रतिष्ठ जाने पर भी उसमें 'कृत्रिम भाव' मया ही रहता। धरन्तु नाटककार को धरन्तु मी भाव जीवन का मय मय स्वीकार करना ही पड़ता है।

कुछ माह विचार साधु विनय या मयुनि विनय क धरने हाथ है। चाहे भी ऐतिहासिक साधारण उदरत विनय म मयक नाटक रचता नहीं कर मकता। धरन्तु की प्रार्थना क्या 'साहित्य मय समस्त धारोपीय साहित्य में धरन्तु क्यों न स्वात या कुची है परन्तु यदि मी कथावस्तु का भारतीय बहुर धरन्तु

१ ईश्वरीय घोष वि मारट एन (बोमर साधु)

२ सर्वेष्टर मय म० ३०

३ धरौ (रुग्निन हृष्टी इन मसनी-पु०)

किया जाय, तो यह निश्चित है कि उक्त नाटक को घसील एवं बुल्लिट कहकर बहिष्कृत कर दिया जायगा। भारतीय पुराणों में चन्द्रमा और गुरु पत्नी तारा की प्रेम कथा प्रोडियस रक्स धीसी ही है परन्तु किसी भी पौराणिक नाटककार ने उक्त कथा को ग्रहण करने का साहम नहीं किया क्योंकि उसमें सोफाबर्स की छाप नहीं लगी है और ऐसी कथा भारतीय जाबमानस के सत्य के विरोध में पड़ती है। राजा मोक्ष और राजा विक्रम के अरिज इतिहास में कैम ही क्यों न रहे हों जनता नाटककार के भुल से उनके संबंध में पाप युक्त नीब घपया नृसंस वात मुनने के लिए तैयार नहीं भसे ही वह इतिहास का परम सत्य क्यों न हो। 'ऐसे सिसता है कि एक नाटक में भाई ने बहिन की हत्या करदी इसलिये उसके ऐतिहासिक सत्य होने पर भी बर्षकों को वह नाटक बहिष्कृत नहीं हुपा। एके के अनुसार ऐतिहासिक घटना की उचित नाटकीय परिणति इस प्रकार होनी चाहिए थी — अपने भाई को तलवार लीचे हुए घाते देलकर बहिन स्वयं ही तोड़कर उसकी घोर बाठी घोर अचानक तमवार पर गिर पड़ती। भाई के द्वारा ही उसकी मृत्यु होने पर भी उसका अघराय कम हो जाता और वह सबमुच बचा का पात्र समझ जाता' एके उपर्युक्त उदाहरण में 'संभाव्यता के नियम' का उल्लेख नहीं करता और न बर्षकों को घर्मभाव्य ही मानता है वह तो 'नाटकीय संस्कार (स्टेज डीसेंसी) के नाम पर उक्त घटना को उचित नहीं मानता। वस्तुतः नाटकीय संस्कार जोक विश्वास पर ही आधारित हैं। अरुत ने रंगमंच पर जिन हथों के आयोजन को अनुचित बताया है उन्हे प्रतीतिवता घपया घर्मभाव्यता के कारण नहीं बल्कि अरुचिकर अममसकर, डीढ़ाकर होने के कारण ही। यदि अमंजल घीडा आदि का संबंध जन परम्पराओं और लोक विश्वासों से ही अधिक होता है क्योंकि नाक यदि के निर्माण में सतका सबसे बड़ा हाथ होता है। अत मोक्ष मानस के इन सत्य की धारा को मोड़ देना गतिहासिक नाटककार के लिए दुःसाहस का कार्य होगा।

ऊपर जिन चार सत्वों का उल्लेख किया गया है उनमें साठ्ठ हा 'मय्य मरु का प्रयोग सापेक्ष सत्य हृष्टिबोग अरुका यकार्य के बिलेप स्वरूप के प्रति नाटककार की इतिविया के पर्य में ही किया गया है। कोई भी एतिहासिक नाटककार नाटक लिखते समय इनमें से सत्य के किसी भी स्वरुप की अक्षेत्रता नहीं कर सकता क्योंकि अपनी समग्रता में ये चारों सत्य 'नाटकीय सत्य' की मृष्टि करते हैं जो कथा का सत्य है अतः कथा के लिए प्रयोजनीय ही नहीं उसका प्राण है।

— — — — —

ऐतिहासिक नाटक और काल क्रम दोष

ऐतिहासिक नाटककार यदि ऐतिहासिक घटना के काल निरूपण में प्रथम उसके क्रम में किसी प्रकार की भूल करता है तो उसे काल क्रम दोष (एने क्रोनिस्म) कहा जाता है। 'क्रोमै' न काल क्रम दोष की एक व्यापक परिभाषा ही है निम्नलिखित सम्बन्धी भाँति से उत्पन्न दोष जब एक काल की बेमसूया रीतिरिवाज और भाषा का द्वितीय घन्य काल की बेमसूया भाषा और रीतिरिवाज में आरोप किया जाता है तो नाटककार कालक्रम दोष का शयराही होता है। कविता एवं चित्रण में कर्तव्य नियम की ग्राह्यति विनियम प्रथम उमके विशेष गुणों में कोई न्यूनता या बाधे से भी उक्त दोष माना जाता है। निम्नलिखित और बातावरण की मही सही संमोजना में नाम और स्वान के चित्रण का ग्राह्य दोर अपरिष्कार्य सम्बन्ध है।¹

अपरिष्कार्य परिभाषा में कुछ बाधें स्पष्ट हो जाती हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि काल क्रम दोष केवल काल प्रथम घटनाओं के व्यतिक्रम में ही नहीं होता बरन् बेमसूया भाषा रहन-सहन एवं बातावरण के व्यतिक्रम में भी हो सकता है। उक्त दोष का कारण या तो नाटककार का भ्रमण हुआ है प्रथम उसको भूल। परन्तु कभी कभी यह भी देखा जाता है कि मुकुट ऐतिहासिक काल के बातावरण के चित्रण में कुछ कुछ नाटककार के युग के बातावरण की छाया या छाती है और कभी-कभी नाटककार ने अपने नाटकों में जिन ऐतिहासिक चरित्रों को पुनर्जीवित किया है उनमें नाटककार के युग के जीवित व्यक्तियों का प्रतिदिन प्राजाता है। उदाहरण के लिए ईसा या महात्मा बुद्ध के जीवन पर नाटक लिखने वाले ऐतिहासिक नाटककार के मन में यदि महात्मा या ईसा की स्पष्ट छाया इच्छित्यार जाने मग तो निश्चय ही हमें भी काल क्रम दोष मानना ही पड़ेगा। यदि किसी गुप्त सामीप नाटक के सांस्कृतिक बातावरण में वास्तविक संस्कृति से प्रभावित प्राकृतिक संस्कृति के स्वरूप का प्राथम मिलने लये तो भी उक्त दोष ही मानना पड़ेगा। सामान्यतः काल और घटना के व्यतिक्रम के दोष भूल प्रथम भ्रमण के परिणाम हो सकते हैं। नाटककार जोका ध्यान है और जोका परिधम करे तो उन दोनों से अपने नाटक को सहज ही मुक्त कर सकता है। परन्तु प्राचीन बातावरण और पात्रों में प्राकृतिकता के आरोप के दोष से नाटककार बचनता से मुक्त हो सकता है क्योंकि

यह शोध नाटककार के समय मन से उद्भूत नहीं होगा। इस प्रकार के शोध का कारण मुख्य मनोवैज्ञानिक है। शेक्सपियर के नाटकों में इस प्रकार के काम कम शोध की धीरे धीरे प्रथम गटे में संकेत किया। जसने बताया कि शेक्सपियर ने अपने नाटकों के रोमन पात्रों का अध्ययन किया।

यहाँ यह प्रश्न यह उठता है कि ऐतिहासिक नाटकों में कामकाज शोध का मुख्य कारण क्या है। कुछ लोगों का अनुमान है कि इसका कारण केवल नाटककार का परिमित ऐतिहासिक ज्ञान होता है। यद्यपि, यदि नाटककार की रक्षा करनी हो तो यों कहा सकता है कि नाटककार के युग में ही ऐतिहासिक ज्ञान का प्रसार अधिक नहीं था। परन्तु वे शायद कारण कामकाज शोध की नींव तक न पहुँच कर समस्या की गहरी सतह ही छू पाए हैं। सामान्यतया ऐसा प्रतीत होता है कि ऐतिहासिक ज्ञान तथा कामकाज शोध में एक निश्चित अनुपात है यद्यपि ऐतिहासिक ज्ञान के साथ साथ कामकाज शोध कम होने लगता है धीरे धीरे कामकाज में अधिक। संसार के नाटक इतिहास पर एक निरंतर दृष्टिपाठ किया जाय ता स्पष्ट हो जायगा कि व्यापक ऐतिहासिक अध्ययन के युग में ही कलाकारों की प्रतिभा न प्रतीत के स्वच्छिन्न पृष्ठों को वर्तमान में सा खड़ा किया और अपनी सृजनात्मक कल्पना द्वारा मृत युवा को प्रमृत दान देकर सजावट लिए अभिव्यक्त कर दिया। कामकाज शोध ऐसे युगों में नाटककार में मजा इस बात का ध्यान रखा कि अपने के कारण नाटकीय पात्रों को इतिहास के पूर्णतया अनुकूल बनामूलक परिमित; पहिनाके और तथा उनके वास्तविक रूढ़न-सङ्ग एव व्यवहार में इतिहास ज्ञान कोई मूल न रहे। इसके ठीक विपरीत जिस-काल में ऐतिहासिक ज्ञान सीमित रहा समस्त नाटक न ता विभिन्न विवरणों की दृष्टि से धीरे न काम समोजना की दृष्टि में ही इतिहास के अनुकूल बन बन सके। परन्तु ऐतिहासिक ज्ञान का अभाव ही कामकाज शोध का कारण नहीं कहा जा सकता नाटककार की अभिव्यक्त भूँ में यद्यपि असतर्कता भी कामकाज के सामान्य शोध के मूल में होती है।

परन्तु प्रश्न उस मनोवैज्ञानिक कामकाज शोध का है जिसका कारण ऐतिहासिक ज्ञान की कमी यद्यपि नाटककार की असतर्कता नहीं है। ऐतिहासिक नाटककार के समय के सम्बन्ध में विचार करते हुए हमने यह बताया था उल्लेख किया है; नाटक रचना करते समय नाटककार उनको विस्मृत नहीं कर सकता। उक्त शोधों द्वारा

१. शेक्सपियर इन मैड इ मिनटिन प्रीफ़ हिव रोमन
शेक्सपियर एंड क्लासिकल ऐतिहासिक
नेक्वोलिज्म इन धर्मी एंड कन्स्टीट्यूटरी ग्राइस

यदि एक साम रखा जाय तो वे एक दूसरे के क्षेत्र में प्रवेश करते नाटकीय प्रतीत होते हैं, यहाँ तक कि कभी कभी एक का दूसरे से प्रत्यक्ष संघर्षों में विरोधनी प्रतीत होता है। नाटककार यदि ऐतिहासिक सत्य की रक्षा परस्पर विरोध करना चाहे तो बहुत सम्भव है, उसका स्वयं का सत्य, नाटकीय परम्पराओं का सत्य धरवा सौक मानस का सत्य उसे ऐसा करने में रोक वे धीरे उभे इच्छा न रहन हुए भी ऐतिहासिक सत्य में परिवर्तन करना चाहे। ऐसी स्थिति में यह संभव है कि इन परस्पर विरोधी सत्यों का प्रभाव नाटककार के मन को इन प्रकार घातित कर वे कि वह स्वतः ही विरोधों का सत्य बनकर कालक्रम बाध को बन्म दे दे।

सबसे कम कारण मनोवैज्ञानिक होते हुए भी नहीं कहा जा सकता कि सर्वथा इती कारण से ऐतिहासिक नाटककार कालक्रम बाध का भागी होता है क्योंकि नाटककार ऐसा मार्ग ढूँढ सकता है जिसके द्वारा कला में सभी सत्यों का सामना कर साहित्य के म्यायनम में बसीटे जाने से बच जाय। ऐतिहासिक नाटककार के उद्देश्यों पर विचार करते हुए हमने देखा कि ऐतिहासिक नाटक-
 अतीत में कार कई कारणा से घटीत में प्रवेश करता है। उनमें से एक वर्तमान कारण घटीत क माध्यम से वर्तमान की घालोचना करना भी है।
 समस्यार्यों का यही बात इत प्रेम धरवा राष्ट्र प्रेम के सम्बन्ध में कही जा समाधान तकनी है। कुछ विचारकों का मत है कि ऐतिहासिक नाटकों का विनाम किसी जाति धरवा राष्ट्र के अस्तुत्य काल में होता है।
 इतक विवरीत कुछ यह मानने हैं कि जाति धरवा राष्ट्र की निर्बलता एवं उस को संघर्ष से कयाचन की प्रकृति ऐतिहासिक नाटकों को बन्म देती है। चाहे कारण कोई भी मही हा इतमें मनेह नहीं कि जब कभी ऐतिहासिक नाटककार के मन में वर्तमान मनम्याएँ केन्डीमून हो जाती हैं तब वह इतिहास में धरवा समाधान ढूँढने सपना है और तभी वर्तमान धीरे ऐतिहासिक घटीत एक दूसरे में घुसने मिलने सपने हैं। घटीत घीरे वर्तमान के मिलन का यह उपक्रम सहर्यों बघों के अन्तर को पाटने का प्रयास करता है और दो धरवा अथवा ऐतिहासिक घुसों के घातार विचार, अरिभ नवा बाठाबरण एक दूसरे में कुल मिनकर घलाघास ही कालक्रम बाध की सृष्टि कर देते हैं। यह कारण भी मनोवैज्ञानिक है।

प्रग यह रह जाता है कि यदि कोई नाटककार घटीत में वर्तमान की समस्यार्यों क समाधान के उद्देश्य में नहीं बल्कि विमुक्त ऐतिहासिक या सांस्कृतिक विवश के उद्देश्य में नाटक रचना करता है तो क्या वह सत्य मनोवैज्ञानिक कालक्रम बाध में बचा रह सकता है। नाटककार मूनरान के अन्तरान में किसी भी कारण से बघों न बलता हो वह घाने धरवा नहीं मत सकता तमने अरिभन की बानी पठिबानी

रखाएँ मने ही भतीत के रंगों में बिराई न दे, उसका व्यक्तित्व तो उसमें रहता ही है। शैक्षणीयर के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसकी सबसे बड़ी विशेषता नाटकों में उसकी निर्ब्यक्तिकता है। परन्तु यह निर्ब्यक्तिकता किसी एक चरित्र के सम्बन्ध में ही स्वीकार की जा सकती है सम्पूर्ण नाटकों के सम्बन्ध में नहीं। शैक्षणीयर का व्यक्तित्व उसके नाटकों में जैस पया है प्रसार पा गया है परन्तु वह है प्रबन्ध शैक्षणीयर के सभी नाटकों में उसकी छाया है। भतीत के सम्राट साम्राजियों विधि बस्त्रामुपणों में मृसज्जित युवक धन्नात भावभ्य में इतराती हुई किशोरिनी ऊ-के-ऊ-के गगनकुम्भी राजप्रासाद और बैमन से परिपूर्ण नगर बीजिया नाटककार की पसकों के विस्मृति से कितना ही बोझिल क्यों न कर दें यह सम्भव नहीं कि इस विस्मृति में वह अपने युग के किशोरों और किशोरियों महापुरुषों और बाजारों को भूल जाय। उसकी कल्पना अब-अब भतीत के बैमन या संवर्ष पर नए-नए स्तंभों का निर्माण करेगी तब-तब वर्तमान का ईट पत्थर बूना उसके हाथों में स्वतः ही पा जायगा। हम पहले कह चुके हैं 'प्रत्येक कलाकार अपने युग की रेत होता है और प्रत्येक महात्वाभाकृति में अपने युग की इतनी गहरी छाप होनी है कि उस कृति को उस युग का सबसे अधिक मूल्यवान और प्राणाधिक ऐतिहासिक परिपन्न कहा जा सकता है। यदि यह सत्य है तो यह कहना पड़ेगा कि उक्त काल क्रम दोय ऐतिहासिक नाटक के स्वभाव में ही प्रत्यभिहित है वह बाहर से नहीं लाया गया है। 'उमका विषय प्राचीन हो सकता है पर आत्मा नाटककार के युग की होती है। यत स्पष्ट है कि इस युग काल क्रम दोय के नाटककार का बचना कठिन है।

उपयुक्त विवेचन से काल क्रम दोय के दो प्रधान स्वरूप हो जाते हैं। एक स्वरूप तो विधि क्रम बस्त्रामुपण भाषा रहन-सहन इत्यादि के व्यक्तिक्रम से सम्बन्ध रखता है। इस प्रकार के साधारण दोय धन्नात प्राति धपका प्रभाव के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने के कारण नाटककार की बुर्बनताया फालकम दोय के के सुबक है। दूसरा स्वरूप है प्राचीन साधारण और प्राचीन दो स्वरूप चरित्रों पर नाटककार के युग के साधारण और नवीन चार्थिक विशेषताओं का आरोप। कालक्रम दोय का यह स्वरूप स्वाभाविक है और ऐतिहासिक नाटक के लिए अपरिहार्य भी। उक्त दोय सभी

१ साधारण के अन्तर्गत बस्त्रामुपण भाषा रहन-सहन नब पा जाते हैं परन्तु पहले स्वरूप में हम उनका एक मूल धपका एकाकी दोय को से रहे हैं और दूसरे स्वरूप में उस काल की भाषा को धर्मान् उक्त काल की प्रवृत्तियों की समष्टि को सेते हैं।

ऐतिहासिक नाटकों में दूँडे जा सकते हैं। यदि नाटक केवल इतिहास न होकर ऐसी कथाकृति हो जिसमें नाटककार की सृजनात्मक प्रतिभा ने प्राण डालकर मार्बोईक धनबा रसोईक करने की शक्ति मची हो तो सम्भव है इस बोप की धीर ध्यान न जाने पावे। परन्तु 'बेन जोनसन' के नाटकों की तरह कालक्रम बोप से रचित इतिहास मात्र यह बापेमें उनको कथाकृति कहते में भी संकोच हागा क्योंकि वे नाटक सामाजिक के हृदय में रस संचार करने में समर्थ नहीं हो पायेंगे।

दूसरे प्रकार का कालक्रम बोप उन नाटकों में उतना मुखरित नहीं हो पाता जिनमें कोई नाटककार अपने ही देश के प्राचीन इतिहास से सामपी ग्रहण करता है, क्योंकि दूरस्थ कालों के समोप भा जाने से उत्पन्न बोप के उपरंत भी उसमें देश की बिभिधता नहीं रहती। यह भी संभव है कि राष्ट्र की सांस्कृतिक प्रबिन्धप्रता के फलस्वरूप कर्तव्य बोप भी लघित न हो पावे। परन्तु यदि नाटककार की देशकाल की इस कृत्रिम सीमा को तोड़ दें तो उक्त बाप का मयाकृति परिहार करने के लिए नाटककार को किसी भी देश के प्रहीत इतिहास के पात्र एक घटनाओं में उन सार्वभौम तत्वों को बिधिन करना चाहिए जो देश जाति धीर काल से परे मानव मात्र के प्राणों में एक समान प्रभाव उत्पन्न कर सकें। इन्ही सार्वभौम तत्वों को कर्तव्यतात्मक मुभी ने 'मानव जीवन के जीवन तर' कहा है।

यह मानने हुए भी कि कालक्रम बोप स्वाभाविक है धीर उनके मूल में पनोषन्नानिक परिस्थितियाँ हैं किन्ती भी ऐतिहासिक नाटककार को उक्त बोप क धनबाप से मुक्त नहीं किया जा सकता। उनके लिए यह धान्यक है कि वह ऐतिहासिक काल धीर क्रम के मान-धाय ऐतिहासिक बरिषों एक बाताबरण की पूर्ण रसा कर। यदि वह ऐसा कर सकतें न धनसम्ब धिद्ध होता है तो नाटक के ऐतिहासिक स्वरूप की सक्रमता में ध्यापाठ पहुँचाता है। यहा यह भी स्पष्ट कर देना धान्यक है कि कालक्रम बोप से कथन के लिए नाटककार का दिन बातों से साधनान रचना चाहिए।

- (अ) एक ही ऐतिहासिक बरिष में प्राचीन धीर प्राधुनिक वा कर्षों का सम्मिधियण नहीं होता चाहिए।
- (बा) यदि ऐतिहासिक बरिष प्राधुनिक बिचारों को धनिक्यन करे, तो उन बिचारों की प्राचीनता के साथे में इस प्रकार धान सेना चाहिए कि प्राधुनिक सधित न हो।
- (द) एक काल के सांस्कृतिक बाताबरण में उतने प्राचीन काल का बाता बरण नाया जा सकता है किन्तु उन दोनों कालों के बाताबरण में

विशेष धरतर न हो और संस्कृति की एक ही धारा बोलें वे ही परिवर्तनों के साथ दोनों कार्यों को बोलती हो। बिना काम का बातावरण चिन्तित करना नाटककार को घनीष्ट हो सबसे पीछे का बातावरण बहूष नहीं करना चाहिए। बातावरण मिलने ही पीछे के काम का होगा उतनी ही अधिक निश्चितता के साथ कालक्रम बोल उभर आएगा।^१

- (ई) सम्म रीतिरिवाजों के साथ साथ हाथ घसम्म प्रथाओं का चित्रण नहीं करना चाहिए, बिलेवकर बरि उसका सम्मन्न समाज के एक पल से हो ही।
- (उ) दो भिन्न सांस्कृतिक परम्पराओं को भी एक में नहीं जोड़ा जा सकता।
- (ऊ) कल के मूल्यों को धार के मापपंड से टालकर नहीं देखा जा सकता मत नाटककार यदि उत्र पर निर्भय देने लगे तो कालक्रम बोल का मद् से महा स्वल्प प्रकट हो सकता है।
- (ए) ऐतिहासिक सभाव्यता का तो कहीं भी घनाव नहीं होना चाहिए।



१ उपर्युक्त दोनों प्रकार के कालक्रम बोल का धरपल बिद्वत् रूप ऐतिहासिक। और पौराणिक दोनों प्रकार के नाटकों में बीज पड़ता है। बालकृष्ण मद् के 'केणु संहार' (सं० १९९६ वि०) नाटक में 'राजा केणु के मलय की राजनीतिक और सामाजिक बदलाव का वर्णन करते हुए मणि समीपवी शताब्दी का दृश्य इन मद् में बर्णन करने लगता है कि बालक बचका प्रेमाक की यह बोल स्पष्ट होकर रत बाबर हो जागा है।
(हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, डा० रजय घोषा पृ १७१)

प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक

हम इतिहास इतिहासकार, नाटक एवं नाटककार तथा इन दोनों के पारस्परिक सम्बन्धों पर पर्याप्त विचार कर चुके हैं। हिन्दी नाटक साहित्य में प्रमा से पूर्व ऐसा एक भी नाटककार नहीं दिखाई देता जो हमारे विवेचन की कमीटी पर बसा जा सके। एक बात तो यह है कि प्रसाद की प्रशिक्षण के उद्देश्य से पूर्व प्राथमिक ऐतिहासिक नाटक सिने ही नहीं पये। ऐतिहासिक अनुसंधान की दृष्टि से विचार करने पर प्रकाशित नाटकों में से बाबू हरिचन्द्र का 'मीनदेवी नाटक' ही सर्व प्रथम ऐतिहासिक नाटक प्रतीय होता है। यह नाटक भी कुछ ऐतिहासिक नहीं है। अपने कर्मीकरण के अनुसार हम इसे स्वच्छ ऐतिहासिक की श्रेणी में रख सकते हैं क्योंकि इसमें मूस कथा और प्रमान-पान दोनों ऐतिहासिक न होकर काल्पनिक हैं स्वयं मीनदेवी एक कल्पित पात्र है। इसके बाद नाटकों में प्रताप मारायण मिश्र का 'हठी हमीर' माता भीमबासदास का 'संयोगिता स्वयंवर' रामाचरण स्वामी का 'धर्मसिंह राठौर' कागोनाथ दासी के तीन ऐतिहासिक कर्णों में से प्रथम दो कर्ण रामाचरणदास के 'महाराणी परमावती और महाराणा प्रताप' एवं बसन्तप्रसाद मिश्र का 'मीराबाई' इतने ही मुख्य ऐतिहासिक नाटक हमें प्राप्त होते हैं।

उपर्युक्त सभी नाटकों पर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उन नाम के नाटककारों ने अपने नाटक के लिए पूर्णतया परिचित ऐतिहासिक कथानकों का सहारा लिया है बसन्त हमीर संयोगिता धर्मसिंह परमावती प्रताप और मीराबाई ऐतिहासिकता से ऊपर उठकर दम्तकथाओं के नायक बन चुके हैं। उपर्युक्त सभी नाटकों में से कथावस्तु ही कोई ऐसा पात्र हो उनके कार्यों से जोड़े गए लौकिक-मनोकिच तत्त्व भारतीय जीवन के अंग न बन चुके हों मग ही उनके जीवन में महत्त्व प्राप्त इतिहास से जन जीवन सर्वथा पररिचित रहा हो। संभव तर्क यह से प्रेरित होकर हिन्दी के पुराने नाटककारों ने इन महापुरुषों को अपने कर्णों का पात्र बनाया है। जहाँ यह परिस्थिति नाटकों की सचेरमगीमता और प्रेष लीपता में कृष्टि करती है वहीं इसके दोष भी स्पष्ट परिगणित हो जाते हैं। बसन्त हिन्दी के उपर्युक्त नाटककारों में से एक भी नाटककार ऐसा नहीं था जो इतिहासकार भी हो अपना विषय गहन ऐतिहासिक अध्ययन हो। परिणाम यह हुआ कि अत्यन्त प्रथम ऐतिहासिक कथानकों के लिए प्रकाशित-प्रकाशित इतिहास के अध्ययन की ओर इनका ध्यान ही न आ सके। दम्तकथाओं से निरचित यह इतिहास की जिस प्रकार की भी कथोना उम समय मिथो जनों को इतिहास

मानकर इन नाटककारों ने नाट्ययोजना करली। उपर्युक्त स्थिति का फल यह हुआ कि नाटक नाटक तो बन गये किन्तु उनमें न तो ऐतिहासिक घटना कम को स्थान मिला न ऐतिहासिक पात्रों की समुचित योजना ही हुई थीर न उनमें ऐतिहासिक वातावरण के रंग ही बोले जा सके। यह बात उपर्युक्त सभी ऐतिहासिक नाटकों के सम्बन्ध में सरय है।

प्रसाद नाटककार ही नहीं इतिहासकार भी हैं। पाठकों की सुमिकाओं तथा प्रसाद के अन्य ऐतिहासिक लेखों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि इतिहासकार प्रसाद के सामने इतिहास का एक निश्चित स्वप्न था। 'डोल और सूर्य' का इतिहास प्रसाद-कालीन युद्ध के लिए एक पुरानी नींव हो गई थी। काट की कारक-कार्य-परम्परा का इतिहास

भी हीनस के अज्ञातमक सिद्धांत के सम्मुख एक नवीन रूप में प्रकट हो चुका था। व्यक्ति-काम-साधन और व्यक्ति-काम निरपेक्ष इतिहास एक दूसरे के बुरक बनकर क्रिया-प्रतिक्रिया सिद्धांतों को जन्म दे चुके थे। प्रसाद के सामने भारतीय इतिहास के कई धासोक-स्तम्भ थे जिनकी धीर देखकर उन्हें वर्तमान से भागने की प्रेरणा नहीं मिलती थी बरन् कारक-कार्य और क्रिया-प्रतिक्रिया क सिद्धांतों को स्पष्ट समझने में जिनसे उन्हें बराबर सहायता मिलती थी। प्रसाद के लिए इतिहास का सम्बन्ध केवल व्यक्तिगतों से ही नहीं था—केवल सम्राटों के ऐतिहासिक क्रिया-कलाप उनकी प्रेरणा नहीं देते थे बरन् उन सबके पीछे मानव-जीवन के असंख्य पाठ प्रतिपादों में चिरंतन नियमों को ही ढूँढने का प्रयास किया हुआ था। ज्ञान ऐतिहासिक तथ्यों से मानव सम्पत्ता के चिरंतन और शाश्वत तथ्यों को ढूँढ निकालना प्रसाद को धर्मिष्ठ था यही कारण है कि प्रसार भारतीय इतिहास के उन युगों की धार बढ़े हैं जिनमें मानव-सम्पत्ताएँ एक दूसरे से टकराई हैं। उस संघर्ष के परिणामस्वरूप धन ही समस्याएँ लपट भी ही गई किन्तु उनके आरवत धन्य अपनी ध्वजाओं को चिरंतन काम के लिए खड़ा गये हैं। यज्ञातमसु का काम प्राचीन और नूतन कृत्रिम और विकासकार आह्वान और बोध धर्मों के संघर्ष का काम था। समाज की साधारणतः शक्तियों में परस्पर संघर्ष हो रहा था और उसी में नूतन और विकास की विजय निहित थी। 'बम्बुगुप्त मौर्य' के युग में भारत और यूनान की सम्पत्ताओं का संघर्ष हुआ और दोनों के सम्मिलन से जो निर्मल सौतस्विकी प्रवाहित हुई वह धारा थी भारतीय संस्कृति साहित्य एवं कला में अपनी धमिल छाप छोड़ गई है। गुप्त-काल युगस्वभाव का काम तो था ही कला साहित्य और संघर्ष के क्षेत्र में एक नवीन धम्मुरूप का सूचक भी था। नये सामाजिक नियम बन रहे थे और समाज का संस्कार हो रहा था। बर्बर हथों से भारत की रक्षा कर स्कंदगुप्त न भारत के इतिहास और भूमि को बरसने से बचा लिया। यह विष्णु गन और

प्रतिक्रियावादी तर्कों का विरुद्ध एषया की विषय थी। इसी प्रकार महात्त हर्ष का कास भी विकासमील गतिधरों का कारण था। प्रसाद ने इन सब ऐतिहासिक व्याख्याओं से एक प्ररणा ली है और वह है विकासमील तर्कों का प्रतिक्रियावादी तर्कों में चिररतन संघर्ष और उस में विकासमील तर्कों की विषय। प्रसाद के सभी ऐतिहासिक नाटकों की परिपति इस विषय की सूचक है। मये ही किर बहू पुछंतमा इतिहास सम्मत हा प्रबवा नहीं।

इसका यह अर्थ नहीं कि प्रसाद ने अपने इन चरित्र के लिये इतिहास को किसी प्रकार सम्मबन्धित किया हा प्रबवा उसे ठाढ़ा मरोढ़ा हो। अपने इतिहास के लिये प्रसाद के पास जो भी उरत ये, उन सबका उपयोग उन्होंने किया है। पाठ इतिहास के दोनों तरह—ग्रुव और बल दोनों प्रकार की ऐतिहासिक सामग्री उनके नाटकों की घटनाओं के मूल में रही है, और एक लक्षण इतिहासकार की तरह उन्होंने इन दोनों प्रकार क बीच सामंजस्य स्थापित किया है। ग्रुव इतिहास के लिये वहाँ उन्होंने ग्रीक इतिहास बौद्ध इतिहास गितालेल, धार्मिक धृतिपां लोह—संरम इत्यादि का सहारा लिया है वहीं बुद्ध कालिगत विषम इत्यादि के सम्बन्ध में चित्रकल्पों, कल्पकथाओं तथा पौराणिक व्याख्याओं की भी पर्याप्त सहायता ली है। अजातशत्रु अश्वगुप्त प्रबवामिनो स्वरपुत्र की धूमिकाओं में उन्होंने स्पष्ट ही इनका स्थान स्थान पर उपयोग किया है। अस्तुतः इनका उपयोग इतिहासकार के लिये महात्त ऐतिहासिक धर्मों की पुष्टि के लिये सर्वदा आधारक रहा है। बल इतिहास का सर्वाधिक उपयोग अजातशत्रु और स्वरपुत्र में किया गया है। किन्तु बौद्ध-वादी इतिहास के लिये उपयोग ही बौद्ध कथाएँ हैं और य इतिहास की मान्य है। स्वरपुत्र में अक्षय इनके उपयोग से नवीन ऐतिहासिक समस्याएँ लड़ी हुई हैं किन्तु उनको प्रसाद ने इतिहास के साथ इस प्रकार सम्बन्धित किया है कि कारल-कार्ल-वर्णन ही बराबर नहीं बन जाती बरत कई ऐतिहासिक समस्याओं पर नवीन प्रकाश भी पड़ता है। अजातशत्रु के रूप में 'राजतरंगिणी' के हर्ष-विजय और स्वर-विजय का एकीकरण लिया जा सकता है। कई पुष्ट प्रमाणों के आधार पर प्रसाद ने यहाँ ग्रुव और बल इतिहास की एक कड़ी को जोड़ने का प्रयास किया है। कालांतर में प्रती हा उनकी मान्यता स्वीकार न की गई हो किन्तु उस समय उजाग्र ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर हम इसे एक नवीन मयेपणा से कम नहीं मान सकते। इसमें प्रसाद की इतिहास सम्बन्धी प्रतिमा के दर्शन होत है। लोक कथाओं के लिये अतिरिक्त कथों तथा पुण्यों का पूरा उपयोग प्रसाद ने किया। अश्वगुप्त नाटक में केवल 'करा-नरिखावर' की घटनाओं से ही सामग्री नहीं ली गई है, बहू-बुद्ध तथा राम कर्म की लड़ी और सामान्य बौद्धता के लिये पुण्यों का भी प्रचुर उपयोग हुआ है। अस्तुतः 'अश्वगुप्त' की धूमिका एक सम्पन्न

चतुर इतिहासकार को कृति है जिसने इतिहास की सम्पूर्ण सामग्री का प्रयोग कर ठोस साम्यताओं के रूप में अपने निष्कर्ष निकाले हैं। चाहे फिर वह सामग्री द्रुव इतिहास की हो दम्प-कथानों प्रथवा पुरानों की हो प्रथवा धार्मिक, राजनीतिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक एवं दार्शनिक प्रश्नों की। यही हमें इतिहासकार प्रसाद की संक्षिप्त संभाव्यता के बर्नन होते हैं।

उपरोक्त सभ्य को धीरे स्पष्ट करने के लिये प्रसाद के नाटकों के कथानक, पात्र एवं वातावरण की विशेषताओं पर जोड़ा सा प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है। ऐतिहासिक नाटकों के वर्गीकरण की दृष्टि से प्रसाद के ये सभी नाटक

‘गुड ऐतिहासिक’ हैं। गुड ऐतिहासिक की परिभाषा देते

नाटकों का वर्गीकरण हम निम्न बुके हैं कि ‘यदि नाटककार भूत

कथानक प्रामाणिक इतिहास से में प्रायः सभी प्रधान पात्र भी

इतिहास-विभूत हों और उन सभी पात्रों के नामों को ही

नहीं चरित्रों को भी क्यों का क्यों स्वीकार करें तो इस प्रकार के ऐतिहासिक नाटक

का गुड ऐतिहासिक की श्रेणी में रखा जाता जा सकता है। इस दृष्टि से प्रजातन्त्र

चन्द्रगुप्त मौर्य-साम्रज्य की स्वरूप और राज्य की सभी गुड ऐतिहासिक हैं। इन

सबके कथानक प्रामाणिक इतिहास से लिये गये हैं। जोड़ इतिहास में प्रजातन्त्र की

सत्ता और उसके विचारधाराओं को ही प्रतीक कर करता है, नीचे-काम का

सम्पूर्ण इतिहास चन्द्रगुप्त से प्रारम्भ होता है। मौर्यसाम्रज्य संबंधी घटनाओं की

इतिहास स्वीकार कर चुका है और राज्य की घटनाओं के लिये पर्याप्त प्रमाण

उपलब्ध हैं। इन पाँचों नाटकों के नायक इतिहास विभूत व्यक्ति हैं प्रजातन्त्र के

तो प्रायः सभी पात्र ऐतिहासिक हैं चन्द्रगुप्त में भी प्रधान पात्रों में से चन्द्रा और

सिहरण को छोड़कर सभी पात्र ऐतिहासिक माने जा सकते हैं। राजस के सम्बन्ध

में जोड़ा-सा मठभेद समझ है किन्तु विशालयज्ञ की सारो उसे उसे भी ऐतिहासिक

की कोटि में बिठना सकने में समर्थ है। मौर्यसाम्रज्य में क्रोमा और मिहिरदेव के

परिचित सभ्य सभी प्रधान पात्र इतिहास से लिये गये हैं। स्वरूप के प्रधान पात्रों

में से अधिकांश ऐतिहासिक हैं। वही प्रथम एक प्रल उठ सकता है कि स्वरूप

की धार्मिक ‘देवसेना’ और दो सभ्य प्रधान पात्र बिजया और देवकी ऐतिहासिक

नहीं हैं। गुड ऐतिहासिक नाटकों पर विचार करते समय हम निम्न बुके हैं कि

कभी कभी गुड ऐतिहासिक नाटक में नाटककार प्रधान ऐतिहासिक पात्र के चरित्र

को स्पष्ट करने के लिये उसके समानांतर और पात्र की दृष्टि करता है जो ऐतिहा

सिक तो नहीं होना परन्तु पात्र और परिस्थितिसभ्य पूर्ण ऐतिहासिक संभाव्यता

लिये होता है। वस्तुतः देवसेना और बिजया के चरित्र इन्हीं कोटि

के हैं। देवसेना का चरित्र जहाँ स्वरूप का बीरत्व उसका अत्यन्त उसके

त्याग और उसके माय मंत्रिणा को निवारित है वही बिजया का चरित्र

उसकी क्वालिफिकेशन, विद्वानता, सहनशीलता और मरम एवं विराग को प्रकट करता है। य दोनों चरित्र नाटक के मरम में बराबर पात्र देते हैं और ऐतिहासिकता को मरम न कर घानी सभावना बराबर बनाए रखते हैं। बेवकी के चरित्र की सभावना तो स्फुरपुत्र के मिश्ररी के विशालेक में ही मिलती है, परन्तु ये ऐतिहासिक मान सेवा कठिन नहीं। राजपथी के दो गर्भो विकटपुत्र और मुरवा को छोड़कर अन्य सभी पात्र ऐतिहासिक हैं और ये दो पात्र नाटक की घटनाओं में महत्वपूर्ण होने हुए भी नाटक के मरमपूर्ण कथानक एवं मरम प्रभाव की दृष्टि में महत्व नहीं रखते, परत इन दृष्टि में प्रभाव नहीं, प्रभाव पात्रों के इच्छा-मरमक मान है। इतना होते हुए भी नाटक में इनके कारण सभावना की कमी नहीं घानी और ये ऐतिहासिक घटनाओं के बीच खर जाते हैं।

प्रभाव के कथानकों पर विचार करते ही एक महत्वपूर्ण बात की घोर ध्यान जाता है। नाटककार प्रभाव ने इतिहास में जो कुछ भी सामग्री ली है वह सामान्यतया प्रामाणिक ऐतिहासिक तथ्यों से ली है। उसके घटितक कथानकों की कथानकाओं मरमका पुराणों की सामग्री का उपयोग नहीं किया गया है वहाँ के या तो इतिहास के अनुकूल हैं मरमका जहाँ प्रामाणिक इतिहास की सामग्री पर्याप्त नहीं है। उदाहरण के लिये अमरपुत्र नाटक में शकटार के पुराणों की हत्या और उसके द्वारा मरम के मरम का प्रयोग किया जा सकता है। स्वतंत्र रूप से कथानकों पर विचार करते हुए हम देखेंगे कि वह कथानक कथानकित्वापर कर आधारित है। हम यह सकते हैं कि नाटक में शकटार की घातकता ही न थी किन्तु मरम के चरित्र को विराने और कथानक को कूटनीतिक प्रतिभा के विस्तार के लिए शकटार आधारक है। दूसरी बात यह है कि कथानकित्वापर इतिहास मले ही न हो किन्तु इतिहास के घातक घातों की मोरवा के लिए एक आधार तो है ही। इतिहास शकटार के सम्बन्ध में मौलिक है, पर प्रभाव ने उसके चरित्र का उपयोग प्रामाणिक इतिहास के विरोध में नहीं किया है। उसी प्रकार प्रभाव ने अमर-कथानकों के विराने और कथानक को दो विराने और दो कथानकों में बाँट दिया है। स्फुरपुत्र विराने का राजकवि कानिदास या या नहीं यह मरम सुमभावना नहीं गया है किन्तु इस सम्भावना को कई इतिहासकार स्वीकार करते हैं कि कानिदास मरम काल में हुआ और उसने मरमको घातों में मरम काल को सब महत्ता और उसका घातक होने देते हैं। अमर-कथानकों के अनुसार विराने ने कानिदास को मरमका याया राज्य दे दिया या और राज करमिणी के अनुसार उरममिणी के हुए विराने का मरमका मरमको कथानक को कथानक का राज्य दे दिया था—इन दोनों घटनाओं की प्रभाव ने सफुलक बड़े कथानक से मिला दिया है। यह दूसरी बात है कि मरम ऐतिहासिक प्रमाणों के प्रभाव में हम इसे

घत्नीकार कर प्रामाणिक न मानें किन्तु इससे उसकी समाज्यता पर कोई गहरा
 प्रसर नहीं पड़ता। कामिदास के सम्बन्ध में वह अत्यन्त प्रबलित मन हुआ है कि वे
 एक मासिक से प्रेम करते हैं। वह मासिक कुत्तों की माना बनाया करती थी और
 कामिदास उसके रूप पर मुरब होकर काव्य-कृतियों का मूजम किया करते थे। इन
 बन्ध-बन्धा का प्रसाद ने मासिनी नामक बन्धा के रूप में रम कर मानुष्य के कवि
 हृदय की कोमलता को निखारा है। नाटक की एक अन्तःप्रपञ्च घटना होने के कारण
 इससे ऐतिहासिक घटना में कोई बाधा नहीं पहुँचती। इसी प्रकार सिद्दह के राज
 कुमार ने कामिदास की पत्नी की घटना इतिहास सिद्ध नहीं हुई पर उसका उपयोग
 कर नाटक की घटनाओं में महत्वपूर्ण मोड़ तो प्रसाद हो ही सका है—रम से कम
 सम्पूर्ण बौद्ध-धर्मागुणधर्मियों को देस छोड़ के पाप से तो वे बचा ही गये हैं।

प्रसाद ने इतिहास में कल्पना के भी प्रचुर प्रयोग किए हैं। हम पहले जिन
 चुके हैं कि ऐतिहासिक नाटक इतिहास नहीं है। उनकी रूप रेखा तो ऐतिहासिक
 होती है किन्तु उसमें प्राण प्रतिष्ठा करने वाली इतिहासकार की 'सर्वक कल्पना'
 है। ऐतिहासिक नाटक साहित्य है साहित्य की एक विधा है। ऐसी रचना
 में केवल ऐतिहासिक घटनाओं का एकत्रीकरण ऐतिहासिक नाटककार नहीं करता।
 प्रत्येक वह इतिहास मात्र घटनाओं की सूची रह जाए। प्रसाद के नाटककार
 की यह विशेषता उस समय अत्यन्त परिलक्षित हो जाती है जब हम उनके नाटकों
 की भूमिकाओं से नाटक में प्रयुक्त सामग्री की तुलना करते हैं। अत्यन्त सफ़रमुल्ल
 और अजातशत्रु की भूमिकाएँ अत्यन्त विस्तृत हैं। वास्तव में वे इतिहासकार की
 वरपणाय हैं जिनमें बंद कुछ और त्रिभि नम से लेकर घटनाओं की कारण-क्रम
 परम्पराओं एवं ऐतिहासिक प्रमाणाओं की चर्चा की गई है। जब यदि प्रसाद इन भूमि
 काव्यों पर ही नाटक की बपरेखा खड़ी कर बैठे तो सायद नाटक नाटक न बन पाते।
 किन्तु अपने सभी नाटकों में प्रसाद ने भूमिका में से कम से कम सामग्री का उपयोग
 किया है। अत्यन्त की भूमिका में प्रीतों के इतिहास इनकी सामन पद्धति, धार्मिक
 घोर व्यापारिक स्थिति, मेगास्थनीज के विस्तृत विवरण सेनाओं की लक्ष्या नाटिक
 पुन नगर की विशेषताओं से लेकर उभय नगर की भौतिक स्थिति पर अत्यन्त
 विस्तार से विचार किया गया है किन्तु नाटक में इन सभी का प्रयोग नहीं के बरा
 बर हुआ है और यदि नहीं मोड़ा बहुत हुआ भी है तो वह महत्वपूर्ण नहीं प्रतीत
 होता। अत्यन्त की भूमिका में मानव जीवन के अंगवृक्ष पर विस्तार से विचार किया
 गया है जिनकी नाटक में प्राथम्यता न पड़ती यदि प्रसाद बालकूक कर एक स्वत
 पर उसका उपयोग न करते। इन सबके स्थान पर तो नाटकों में अजातशत्रु और

बाबिरा का पूर्वराग अश्रुगुण कार्नेगिया का धावण सिंहण प्रसका का प्रणय मानविका का प्रीति-अन्य त्याग आणव्य राज्य मुवासिनी के प्रणय का त्रिकोण कोमा शकरात्र का लोकाष्ट प्रणय स्फुट-बिजया मगके-बिजया प्रमगनेरी मत्रक धीर सब से महत्वपूर्ण देवसेना-कल्प का मजीब धाकवण धीर उनकी यशपूर्ण परिणति-से सब घटनाएँ महत्वपूर्ण हैं किन्तु ये इतिहास नहीं हैं। नाटक की ये सबसे महत्वपूर्ण घटनाएँ काल्पनिक हैं धीर ये ही नाटकों को कथा की कौटि में ले जाती हैं।

प्रसाद ने स्वच्छन्द कल्पनाओं का धाघय नहीं किया है। उनकी कल्पना में मन्त्र या तो कारण-कार्य परम्परा में रहित इतिहास की क्रिमी घटना में उनमें परम्परा को भरने का प्रयत्न किया है। प्रथम इतिहास के कथपुत्रों में प्राण पुत्रों का। इतिहास कालि को राजनीतिक घटनाओं या धार्मिक से धार्मिक सामाजिक धार्मिक घटनाओं की पृष्ठभूमि में रक्ता है। उमन क्या नाम किये जिनके फलस्वरूप यह इतिहास बन गया यही इतिहास का प्रभाव दृष्टिकोण होता है। नाटक में वही महत्वपूर्ण व्यक्ति मानवता के वैयक्तिक दुर्गों—ईर्ष्या द्वेष प्रणय बलह इत्यादि—को लेकर जाता है। नाटककार को इतिहास धीर नाटक का अन्तर भी बनना पड़ना है। नाटक के हृदय का भी मोमना पड़ना है। प्रसाद ने यह कार्य बड़ी सूबी से किया है। इतिहास हम धार में तहायजा नहीं कर सकना यह कवि का कार्य है। प्रसाद के पाशों में धीर उनके नाटकों को पन्नाओं में जो जीवन चकटा हुआ प्रतीत होता है उमन यही कारण है। कोई इतिहास यह नहीं बताना कि प्रजातन्त्र ने बाबिरा ने अश्रुगुण ने कार्नेगिया से चलका ने सिंहण से मानविका ने अश्रुगुण से आसक्य धीर राजस से मुवासिनी से स्फुट ने बिजया से धीर देवसेना ने स्फुट से प्रेम किया था, किन्तु ये मानव जीवन की वे मानव घटनाएँ हैं जिनको कोई ऐतिहासिक नाटककार छोड़ नहीं सकता धीर कोई इतिहासकार संशयना की बृहत् सीमा देना में बहिष्कृत नहीं कर सकता। इन उपरुबत घटनाओं में वे बुद्ध के कार्य ऐतिहासिक हैं पर कारण कल्पित धीर बुद्ध में कारण धीर कार्य दोनों ही कल्पित हैं किन्तु इनमें कहीं भी इतिहास पर धाब नहीं पाई है। अश्रुगुण का इतिहास नहीं बरसा प्रजातन्त्र बही बना रहा आणव्य धर्ममानव नहीं हुआ धीर स्वयं पुराण नहीं बन गया इतिहास के पात्र उसकी कल्पनाएँ सब पूर्णबन् रहीं पर इन कल्पनाओं में 'अंटेमेटिक एजेंट' की तरह इतिहास में एक नृपत एम उत्पन्न कर दिया धीर इतिहास नाटक बन गये। इनमें स्पष्ट नहीं कि प्रसाद ने इतिहास के तथ्यों को कल्पना से बन्सी अनुप्राणित किया है वे उनकी बिहति के कारण कदापि नहीं बने हैं। उन्होंने प्रथम कथाओं को ऐतिहासिक रखा धीर कल्पना का श्रेय धार्मिकतर गीण कथाओं में ही दिया है किन्तु 'स्फुट' की तरह जहाँ कथात्मक में कल्पना प्रथम बन गई, वहाँ उन इतिहास

से हटाकर व्यक्तिगत सीमाओं में रक्षित किया है। इसका परिणाम यह हुआ कि इन सभी नाटकों में कास्मिक तत्व इतिहास पर हावी होकर नहीं घाने पाया है। अभावतस्तु अग्रपुत्र और राग्यभी में तो कास्मिक तत्व अधिक है ही अथवास्वामिनी और स्वरूप में भी ऐतिहासिक बटनाय कहीं-कहीं स्पष्ट होकर सारे नाटक को घाने हुए है। अथवास्वामिनी के कथानक में ऐतिहासिक तत्व कम होते हुए भी ऐतिहासिक संभाव्यता के इतने प्रपाण उपलब्ध होते हैं कि वहाँ भी प्रसाद की कल्पना स्वच्छन्द कीजा नहीं करके पाई है। स्वरूप में प्रसाद ने प्रकृत कल्पना का प्रयोग किया है किन्तु वहाँ भी नाटक के प्रमाण कार्य ऐतिहासिक है और उनके कारण कल्पित। नाटक में वहाँ पर विजय और घातकिक इन्तों का परामर्श से दोनों बटनाएँ ऐतिहासिक हैं अतः सर्वत्र इन बटनाओं को ध्यान में रखते हुए अन्य ऐतिहासिक-कास्मिक बटनाओं के संयोग से उनके इन्तों की सृष्टि की गई है। यही सूत्रों की यह परिभाषा याद घा जाती है जिसमें कहा जा इतिहास यह सू ही है जिसमें मैं घाने नाटकों को सटकाता हूँ। ध्यान रखने की बात है कि कल्पना की इतनी प्रचुरता के बीच भी प्रसाद इतिहास के विरोध में नहीं मने हैं और न नरछते हटे ही हैं। फिर भी उन्हीने स्वरूप को कुछ ऐतिहासिक ही बनाये रखा है।

नाटकों में नाम और स्वान की घम्बित के प्रश्न पर भी चौड़ा-सा विचार कर लेना अपेक्षित है। इसमें संदेह नहीं कि काम-योग्यता को घबिकांक नाटककारों ने स्वीकार नहीं किया है और न घालोक ही इसके महत्व घेशा काळ घोजना को स्वीकार करते हैं। तबानि प्रभावाम्बिति को सभी ने एकमत से घावरयक माना है। यदि नाटक की प्रभावाम्बिति पर विचार किया जाय तो ऐसा प्रतीत होता है कि जहाँ उक्त प्रकार की घम्बिति के लिये घाओं की घनुसता और कथानक का बघाव घावश्यक है वहाँ किसी न किसी प्रकार के काम और स्वान की घम्बितियाँ भी घम्बित नहीं तो अपेक्षित घभव है। संसृत नाटकों में तो यह निबन्ध ही पाया जाता है कि एक घनु में एक दिन से घम्बित की घटना नहीं होनी (नामकदिनबति)। हम यदि इन नियम की न भी घाने तब भी यह एक सन्घोर्जातिक घाव है कि यदि नाटक के एक घनु में घपों की घटना ही घोर हजारी भीत की घुरी हो घुन दो हजरो के बीच कई घपों का घावर हो घोर इन प्रकार सन्घुर्ण नाटक में ४० या २० वर्ष की घटना या घाएँ तो नाटक का प्रभाव घम्बिता नहीं पड़ेगा। एक प्रभाव ता यह होगा कि नाटक में बिगु सतता प्रतीत होयी घोर घुसरे इतने घपों के घ्यवधान में नाटक के घाओं को घपरिबधित घाइतियाँ बिबलनीय नहीं होंगी तब ही बार-बार बलते हुए दर के हृष उपलब्ध की सीमाओं में घा ता रिघान ही न घा सके

या फिर उन पर बर्लक बिब्याम न कर सकेगा । वस्तुतः प्रत्येक नाटक में ऐस-काम की पूरी को बिब्याने के लिये हस्वों के बिबेप व्यवधान की योजना प्रावश्यक प्रतीत होती है ।

प्रसार की काम योजना इस दृष्टि से प्रत्यन्त दोषपूर्ण है । द्रुवस्वामिनी को छोड़कर अन्य सभी नाटक सुवीर्य कालों की प्रबन्धि करने प्रह्लों में समेटे हुए हैं । प्रजापराधु में सात बर्षों की, अत्रगुप्त में चौबीस बर्षों की स्फुरगुप्त में दस बर्षों की और राज्याधी में अठ्ठीस बर्षों की घटनाएँ हैं । एक एक हस्व के बीच में काम का बहुत अन्तर है । कहीं कहीं तो वह अन्तर सत्रह माह तक का है । अत्रगुप्त के पाँचवें और छठे हस्व के बीच ११ मास का अन्तर है जो सामान्यतः बिबिन्न प्रतीत होता है । ऐसी ब्रह्मा में प्रह्लों का कास-बिब्याजन भी ठीक नहीं रह सकता । अत्रगुप्त नाटक के २४ बर्ष और राज्याधी नाटक के अठ्ठीस बर्ष किस प्रकार उचित रूप से प्रह्लों में बिब्याजित किये जा सकते हैं ? अत्रगुप्त के प्रथम प्रह्ल की घटनाएँ एक बर्ष की हैं और चौथे प्रह्ल में ता सोनह बर्ष के सुवीर्य काम की घटनाएँ दू स दू स कर कर की गई हैं । इसी प्रकार राज्याधी के प्रथम और द्वितीय प्रह्ल एक ही बर्ष के अन्तर समाप्त हो जाते हैं पर तीसरे प्रह्ल में एक ऐतिहासिक मास्यता से ११ बर्ष की और चतुर्थे से १६ बर्ष की घटनाएँ घाटी हैं । तीसरे और चौथे प्रह्ल के बीच २३ बर्ष तक का अन्तर माना जा सकता है अथवा ७ बर्ष का तो है ही । इस प्रकार क अनियमित अन्तर और प्रह्लों की अनियमित काम योजना नाटक में प्रभावगिति जा सकने में असमर्थ हो जाती है । 'अत्रगुप्त' नाटक के संबर्ष में यह तो माना जा सकता है कि प्रसार भारत के उस अग्रतिम स्वर्ण-युग का सम्पूर्ण बिबिन्न प्रस्तुत करने के लोभ का संवरण न कर सके अतः इन्होंने 'अत्रगुप्त' के रूप में भारतीय इतिहास का एक महाकाव्य मेंट किया है । उक्त तक मास्य होते हुए भी नाटक की नाटकीयता में बुद्धि नहीं कर पाता । 'राज्याधी' के सम्बन्ध में तो इस प्रकार का तर्क भी नहीं दिया जा सकता । वह तो निश्चय ही अग्रीह नाटककार की अग्रतः सामान्य दृष्टि ही मानी जायगी । स्फुरगुप्त और प्रजापराधु हम दृष्टि से दृष्टने दोषपूर्ण नहीं किन्तु स्फुरगुप्त में स्वान-योजना बड़ी बिबिन्न है । प्रत्येक हस्व के बाद का हस्व प्रह्लों में घन्तर पर बटित हुआ है । प्रबन्धी मध्य सोरगुदु बरगौर, गान्धार इन सब स्वानों के बीच पूरी वा इतना अग्रिक व्यवधान है कि एक ही हस्व के बाद एक बर्ष का इकरे हस्व में अग्रतः बिब्याया जाना अग्रतः अग्रतः प्रतीत होता है । प्रसार ने नाटक सिधते समय इन बात-पर-ध्यान दिया ही नहीं कि कोई घटना कितनी बड़ी है उतनी कासाबिबि कम है या अग्रिन्न, इससे अग्रगुप्त अग्रतः घटना के पटित होने का स्वान प्रया प्रत्य स्वानों में बिबिन्न अग्रतः है और यह अग्रतः पात्रों द्वारा कितने समय में किये जा सकता है । सम्भव है यदि प्रसार इस

घोर पौड़ा भी म्यान देत तो नाटकों में बठनाए कुछ कम हो जातीं घोर एक कथा बट या नातो का एक नाटक की सुखनता के लिये पर्यस्त पावश्यक है । कथा के सम्बन्ध सूत्रों की जोड़ने के लिये काम घोर स्वान ही सहायक होते हैं घोर उगरी बिन्दु समता कथा को बिन्दु पल बना ही देती है ।

(पात्रों की योजना में प्रसाद को पर्याप्त सखबता मिली है । यदि प्रसार के पात्रों का बर्गीकरण किया जाय तो उनके पात्र ऐतिहासिक घोर काल्पनिक इन दो प्रबाध बर्गों में बटि जा सकते हैं । ऐतिहासिक पात्रों की पात्र योजना भी दो ग्रन्थ बर्गों में बांटा जा सकता है—

घोर चरित्र

(१) के पात्र जिनके नाम घोर चरित्र इतिहास में उल्लेख हैं घोर

(२) के पात्र जिनके उल्लेख भर इतिहास में मिलते हैं, चरित्र नहीं । इसी प्रकार काल्पनिक पात्रों के भी दो भेद किये जा सकते हैं—

(१) पूर्णतया काल्पनिक घोर (२) सांकेतिक ।

ऐतिहासिक पात्रों की प्रथम कोटि में बिम्बसाद, बावनी बावबयला बुद्ध धजातलड्ड, प्रचेनचित्त विद्वयक बभुन शीर्षकारायण धम्मपासी मरिचका मापेरी परयन चन्द्रमुत्त चाणक्य पर्वतेश्वर विक्रम्वर सेम्बुकत पर्वतेश्वर घाम्भीर शीर्ष बायल पलास बरबधि सफ्टार, ध्रुवस्वामिनी, चन्द्रमुत्त विक्रमाशित्य राजकुल विपारस्वामी (स्करमुत्त कुमारमुत्त, मातृमुत्त, पूर्णज्ञत, चक्रमाशित्य बंधुवर्मा) राम्भी हर्ष सुएनकाव राजबन्धन इन्द्रवर्मा मालदेव, नरेन्द्रमुत्त घोर विवाकरामिन सिंह का सकते हैं । दूसरी कोटि के ऐतिहासिक पात्रों में चाणक्य सखिनदी (भूम नाम वासमरवधिया) पद्मानवतो किलिचन एनीमाश्रीटीय साहबदिया चाणक्य-नरेय, कन्याखो कर्णेसिया मंडि भीषमवर्मा शर्वनाथ घोर पुरुषोत्तम हैं । प्रथम प्रकार के काल्पनिक पात्र विहरण घमका, सुबादिनी मालविका सावित्रय सुरमा जयभारता है घोर दूसरी कोटि के देवसेना, चित्रया घोर देवनी । चरित्रों का यह विचारन प्रत्यन्त महत्वपूर्ण है । उपर्युक्त बर्गीकरण में प्रसार के नाटकों के सभी नायक ऐतिहासिक पात्रों की इस कोटि में धाते हैं जिनके नाम व चरित्र दोनों ही इतिहास में सुप्रसिद्ध हैं घोर जिनमें घनिक चरित्रर्चन की सम्भावना नहीं होती । इसके अतिरिक्त ये चरित्र ऐसे व्यक्तियों के हैं जिन्होंने या तो इतिहास को घमनी कमेंटरीय संकल्प सखि घमबा जोषक्य-प्रतिमा से प्रभावित किया है घमबा जो ऐतिहासिक चरित्रव्यक्तियों की ठोकर से घनयायन ही मञ्जरी की क नाई पा गये हैं । घजातलड्ड बुद्ध, चन्द्रमुत्त चाणक्य ध्रुवस्वामिनी-चन्द्रमुत्त चन्द्रमुत्त घोर राम्भी-हर्ष ऐन ही पात्र हैं । ये सब ऐसे व्यक्ति हैं जो इतिहास की व्याख्या में एकान्त स्वतन्त्र तथा रहते हैं घोर कान की प्रस्ता बाण से जिन्होंने अपने स्वर्ण-चक्र घट्टा रिये हैं ।

यही कारण है कि प्रभाव के नाटक बसन्त मही पर्वों में ऐतिहासिक बन चुके हैं। कथानकों के सम्बन्ध में तो नाटककार को हम बात की पर्याप्त स्वतन्त्रता है कि वह अपने युग में प्रचलित कई इतिहासवाचों की मायमापों में से किसी भी एक सम्मान्य मायमाप को स्वीकार कर ले किन्तु चरित्रों के सम्बन्ध में वह इतना स्वतन्त्र भी नहीं है। प्रायः ऐतिहासिक चरित्रों में महीन चारित्रिक विशेषताओं की योजना तो यह कर सकता है किन्तु उमी सीमा तक जिसमें उन बिनापताओं का क्यात विशेषताओं से विरही न हो। देखना यह है कि क्या प्रभाव के क्यात ऐतिहासिक चरित्र इस कमी पर कसे जा सकते हैं प्रत्या नहीं।

अब तक नाटकों के नायकों का प्रश्न है व मही ऐतिहासिक ही प्रतीय होते हैं। उनके कर्तव्यों में पर्याप्त समाख्यता है और उन १ निम्न की बिनापताओं में कोई विशेष बिहति नहीं प्रतीय होती। धरातलनु और कुछ के सम्बन्ध में तो बौद्ध इतिहासकारों ने इतना निष्ठा है कि कुछ मिगाकर धरतलनु के ऐतिहासिक व्यक्तित्व की सम्पूर्ण रेखाए बन जाती हैं। प्रभाव न इस क्षेत्र में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया है। बौद्ध इतिहास वा धरातलनु कुछ धार्मिक कूरता सिम हुए हैं पर रैन इतिहास उसके प्रति पर्याप्त सहृदय है। प्रभाव न इन दोनों को मिगाकर धरातलनु में कुछ मानबोधित पुराणों की योजना कर दो है और धरतलनु सहायगुणितुर्ग-मेकनी से उसक चरित्र की रेखाए उभार दी हैं। अंडगुण्ट और चाणक्य के कथानक के जो उत्पन्न हैं, इनम इन दोनों चरित्रों की भी प्रचुर रूप रेखाए मिम जाती हैं। ऐतिहासिक चाणुण्ट स प्रभाव के अंडगुण्ट न केवल तो कुछ धार्मिक है और के है—चाणक्य स धरतलनु उतका स्वतन्त्र व्यक्तित्व एव उसकी मौख्य-विषयता किन्तु अंडगुण्ट का यह भीत्वणुण्ट एवं इतिहास बिरोधी नहीं है। मुझारामक से धरतलनु ऐतिहासिक अंडगुण्ट के सब पुराण वा मिगाकर देनक से हम बात पर बिगारा करना कठिन हो जाता है कि अंडगुण्ट चाणक्य के अपने एक मही के हाथ की कठनुनरी मान वा। जहां तक उनही सोमर्म विषयता वा प्रश्न है यह धरतलनु चरित्र की व्यक्तित्व बात है। हम पहिन यह चुके हैं कि इतिहास धरतलनु से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों को कार-बिधय की सामाजिक एव राजनीतिक परिस्थितियों के बीच रक्षकर देयता है उसकी व्यक्तियत्त मायमापों और आधेनों के उमी धरतलनु का यह स्वतन्त्र करता है जिसका प्रभाव तन्धानीन परिस्थितियों पर पड़ता है। परिणामस्वरूप ऐतिहासिक व्यक्तित्व का सामाजिक स्वरूप तो धरतलनु उपनयन हो जाता है वर उसके व्यक्तित्वत मुण-मुण प्रेम-बिरह धरतलनु-हास की इतिहास में कोई स्थान नहीं मिम पाता। नाटक के निय ऐतिहासिक व्यक्तियों के ये गुण धरतलनु महत्वपूर्ण हैं इमनिये नाटककार सामाजिक स्वरूप के सामंजस्य न एव रीपस्थिक पुराणों वा धरतलनु मूझनारामक कूरता कठिन से निहारा कर ऐतिहासिक

चरित्रों पर इनका आरोप करता है। उसी के व्यक्ति जीवित और सवाल बन पाते हैं। अतः चंद्रगुप्त की सौम्य-प्रियता का काल्पनिक गुण उसके ऐतिहासिक चरित्रत्व को पुष्ट ही करता है। रामकुमारी कस्यासी कान्तिया और मानविका तीनों का प्रथम चंद्रगुप्त के चरित्र को जीवन्त बनाता है। इसी प्रकार चाणक्य के चरित्र को भी प्रसाद ने अधिक मध्यम अधिक उदार, धर्मात्मा और मानवोचित बनाया है। चाणक्य सम्बन्धी जो कुछ भी विवरण इतिहास से प्राप्त होता है उसमें वह महान् कूटनीतिज्ञ, तेजस्वी पर हठी और श्रेणी बाह्यग है। प्रसाद ने उसके इस चरित्र में कूरता के स्वान पर कोमलता का समावेश भी कर दिया है। साथ ही मुवाकिनी से उसके प्रणय की योजना में उसमें विभूत समानकी शक्तियों के स्वान पर मानवोचित बुद्धिमत्ताओं को भी स्वागत दे दिया है। इनके इतिहास पर कोई बात नहीं समती इतिहास का सत्य बदनता नहीं है पर चाणक्य हमारे हृदय के अधिक पास था जाता है और वर्त्मन के लिये अधिक उपाय्य एवं अधिक बोधमय बन जाता है।

प्रबुद्धतामिनी के चरित्र की स्पष्ट रूपरेखाएँ इतिहास में नहीं मिलती पर उसके जीवन की घटनाओं के आधार पर उसके विश्व प्रकार के चरित्र की संभावना है। वही प्रसाद ने उसका चरित्र बनाया है। उसके पूर्वजन्म की व्यवहृतता पर एक कथन सम्राट ने उससे परिचय किया और उसी को पीन वाली की तरह मनु के पास भेज दिया। अंत में वह सामाजिक परम्पराओं के विरोध में बहुमपना पूर्व प्रथम पा सकी। भारत की ऐसी साम्राज्यी के दूत के प्रकार की चरित्र की कल्पना हम नहीं कर पाते। यह ठीक है कि प्रसाद की कल्पना में उसमें भवमाने रम भरे हैं पर उन रंगों की योजना का प्रतिपाद कोन कर सकता है। कि सुगर होने के साथ साथ चित्र के अनुकूल है अतः विश्वनीय है समाध्य है। चंद्रगुप्त के चरित्र पर योजना-सा अभियोग सब सकता है। इतिहास का चंद्रगुप्त साम्राज्य का सबसे महत्वपूर्ण सम्राट रहा है। वह अकारि विभूत जनधृतिवों के विभूत के समकक्ष रखा जाना है। कीरता कीर्तन साहित्य और राजनीति सब में जिस विभूतारित्य का महत्त्व उसके चरित्र को प्रसाद ने जोड़ी सी ही पाड़ी विरही रियाओं से बनने का प्रकाश किया है। प्रसाद का विभूतारित्य वर्त्मन भी और आत्म विवशान में हीन है। यह जानते हुए भी कि नाटक का नायक वह नहीं है, इतिहास एवं जन-मानस के मन में बसे हुए विभूतारित्य के चरित्र की रक्षा प्रसाद नहीं कर सके हैं। इन्हीं के चरित्र की जोड़ी की सामग्री जो अमर निवासियों इत्यादि से मिलती है, इतने बड़े नाटक के लिये पर्याप्त नहीं। प्रसाद ने स्वयं को इतनी अधिक बद्धताओं और परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में रखा है कि उनके चरित्र के प्रायः सभी प्रधान गुणों की योजना अर्थात् स्वयं करनी पड़ी है। इतिहास से जो कुछ मिलता है उसका विरोध अर्थात् नहीं किया, पर उस पर जोड़ा बहुत है। मूक और अज्ञ इतिहास—(हिमाचल तथा राजस्थान)

की दो विभिन्न पटनाओं को जोड़ने से दो विभिन्न पानी (स्कन्द व हर्ष) को भी प्रसार में एक मान कर जोड़ दिया है। इससे कबानक सम्बन्धी दोष तो मान्य पड़ता है पर चरित्र में कोई दोष नहीं प्रतीत होता। स्कन्द बिष्णुपारिषद् नहीं भी हो सकता पर इसमें रती नर भी सम्बन्धास्पदा नहीं कि स्कन्द उदार याचक या धीर तनिक-भी इत्यजता के लिये बहु एक राज्य तक हाथ कर सकता वा सूर्य धीर राज्यधी क चरित्रों न इतिहास से पारिक कुछ भी नहीं है उनसे कुछ कम मत ही हो।

उपरोक्त ऐतिहासिक चरित्रों क प्रतिरिक्त कुछ चरित्र ऐसे भी हैं जो ऐतिहासिक सिद्ध तो हैं पर बिनके चरित्रों में प्रसार में अपनी नवीन कल्पनाओं द्वारा महत्वपूर्ण परिवर्तन कर लिया है। इस प्रकार के परिवर्तनों से वे ऐतिहासिक चरित्र न केवल इतिहास बिरोधी बन गए बल्कि कला की दृष्टि से भी उनका कोई विशेष महत्व न रहा। उदाहरण के लिये पर्वतेश्वर धीर सम्बन्धी क चरित्र लिये जा सकते हैं।

इतिहास से पर्वतेश्वर के सम्बन्ध में जो कुछ भी जाना जा सकता है वह उसकी धीरता का धीर साहस से ही सम्बन्ध है। प्रसार में धीरे इतिहास पर्वतेश्वर (पोरव) की धीरता का पर्याप्त उल्लेख करता है। प्रसार में धीरे क पर्वतेश्वर के चरित्र को मुद्राप्रत्यक्ष क उस चरित्र में जोड़ दिया है जिसका बय आखण्ड में विषकम्पा के द्वारा करवाया था। पर्वतेश्वर का विषकम्पा क रूप पर मोहित होना उसकी बिलासी प्रभुति का मुक्क का था नहीं यह नहीं कहा जा सकता पर प्रसार में इसका यही धर्म मानकर विन्दुर से पञ्चद में धीरतापूर्वक टक्कर लने वाले महाद पर्वतेश्वर के चरित्र को इजता बिलासी बना दिया कि वह विषकम्पा पर तो नहीं पर नन्द दुहिना कल्याणी पर प्रत्याचार करने को तैयार हो गया। प्रसार में यहाँ सीबने की धारस्यकता नहीं समझी कि इनसे एक प्रकृत चरित्र बर ने ऐसा सांझत तथा रद्दे है जिसे धर्मक पस्वीकार कर सकते हैं। पर्वतेश्वर के चरित्र का यह नवीन रूप कित्ती प्रसार भी मने से लीचे नहीं उतर पाना विशेष कर जब पर्वतेश्वर धीर पर्वतेश्वर को इतिहास तक ने एक मानने का साहस नहीं किया। सम्बन्धी के चरित्र की रूप

रेखाएँ मिलती हैं। बँदासी के लिच्छवि मलयग्न की यह तगरयोभित्ती न केवल पश्चिम मुन्दरी की बल्कि पश्चिम बँसब शांतिनी धीर गुणवती की थी। वह नक्षत्र राज-पूजिता थी। स्वर्ण मयवात बुद्ध ने उनका प्राप्त स्वीकार किया था धीर अपने एक धारप्रदान भी बुद्ध व मंत्र को भेंट किया था। उस धारप्रदायी के कभी भी धाम नहीं देने कभी भी तड़कों के हाथ से परपर नहीं जाये वह न तो कभी जयवत की रानी की धीर न बुद्ध पर धारकण। हम यह मानते हैं कि प्रसार में ऐतिहासिक सामग्री इतना तथा धारप्रदायी के चरित्रों को बानभूम्बर विभागा है बर नया इस संविधारा में कही थी वीरुहल की मुद्रि

होती है ? उन्हे इस प्रकार के पूर्ण ऐतिहासिक नाटक में प्राप्तप्राप्ती जैसे विधुत ऐतिहासिक चरित्र के साथ मनमानी करने से नाटक खोपपूछा हो गया है । प्रसार द्वारा जानबूझकर किये गये इस चरित्र सम्बन्धी मिश्रण से उत्पन्न दोष को किसी प्रकार क्षम्य नहीं कहा जा सकता ।

प्रसार के नाटकों में ऐसे ऐतिहासिक चरित्र प्रचलित हैं जिनके नाम मर उन्हेने इतिहास से लिए हैं किन्तु हमारे वर्गीकरण के अनुसार इस प्रकार के पात्रों में तीन पात्र शक्तिमती कार्नेलिया और कस्यासी ही ऐसे हैं जिनके नाम ऐतिहासिक नहीं, प्रसार के प्रपने हैं । शक्तिमती का ऐतिहासिक नाम 'बास मसलिया' है । सिस्त्रुक्त कम्पा और गन्द-बुद्धिवा के नाम इतिहास में नहीं मिलते परन्तु उनका उल्लेख प्रचलित मिलता है । इनको इस वर्ग में रखने का कारण यह है कि इन तीनों चरित्रों की किसी प्रकार की मिलिष्टताओं का इतिहास को पता नहीं है । बासमसलिया की जीवन सम्बन्धी घटना—उसका महानाम की बासी पुत्री होना और प्रमेनजित से विवाह, कार्नेलिया सम्बन्धी एक घटना—उसका चन्द्रमुण्ड से विवाह, और कस्यासी सम्बन्धी एक घटना—उसका चन्द्रमुण्ड से प्रेम—के तीन ऐतिहासिक प्रसंग हैं पर इतिहास में इनका उल्लेख या तो भिन्न नामों से हुआ है प्रथमा के नाम रहित हैं । उनके चरित्र किस प्रकार के थे इसका इतिहास को पता ही प्राप्त है जितना सीमबर्मा अर्चनाग एवं पूम्बीसेन के चरित्रों का । इतिहास में उल्लेख मर पा लके ऐसे नामों से प्रसार ने प्रचलित संभाव्य और सर्वांग सुन्दर ऐतिहासिक पात्रों की सृष्टि की है । कार्नेलिया तो चन्द्रमुण्ड नाटक पर खूब छाई हुई है । बाजिरा और शक्तिमती का चरित्र इतिहास से कम नहीं प्रणीत होता और अर्चनाग तो जैहू, घषने नाम की शक्ति पर ही स्फुटगुण की घटनाओं को जोड़ देने का बत रखने गया है । प्रथम चरित्रों में भी किसी प्रकार का सम्भाव्यता सम्बन्धी दोष नहीं प्रणीत होता । सभी घटनाओं के प्रवाह में घुसते मिलते चले गये हैं और घषने नामों की सार्थकता बनाये हुए हैं ।

प्रसार के अधिकांश काल्पनिक चरित्र-प्रचलित और प्रचाली और महान हैं । सभी चरित्रों को प्रसार ने इतना पूर्ण और ऐतिहासिक पात्रों के अनुकूल बनाया है कि कहीं भी वे ऐतिहासिक घटनाओं के टेड़े टेड़े रालों में बच सकूँगे प्रष्ट नहीं हुए हैं । कहीं भी उन्हेने ऐतिहासिक पात्रों की गति को नहीं रोका । जहाँ तक संभव था इन चरित्रों ने उनकी महानता ही की है । घषने त्याग स्नेह बलिदान प्रथमा नीचता और दुष्टता से इन चरित्रों ने बरतकों व पाठकों का ध्यान अपनी ओर धाकूँट प्रचलित किया उनको प्रचलित रूप से प्रचलित की किया वे सम्पूर्ण नाटक के प्रारम्भ में प्रस्तुत चरित्रों

उसे किन्तु उनमें से दो पात्रों (शांतिदेव और मुरमा) को छोड़कर किसी ने ऐतिहासिक घटनाओं की बरतने परमात्रपरूप से माय सेने प्रयास नहीं किया । केवल इसलिये नाटककार द्वारा निर्मित किए गए कि ऐतिहासिक घटनाओं और पात्रों के बीच के मूल्य एवं रिक्त स्थान को उनके बिना मर ही नहीं जा सकता था और न उन स्थान को रिक्त ही छोड़ा जा सकता था ।

प्रथम प्रकार काल्पनिक पात्रों में से प्रथम और निहुरण तो अत्रगुप्त नाटक में एक मौल्य कथाक क नामक और नायिका ही है । भारतीय संस्कृति और भारतीय धारण के पुकारी प्रसार इस बात की सहज न कर सकते थे कि भारत के उत्तानकाम में भारत की सीमा में धार्मिक जैसा देव-श्रीदेी मिहुरण की सेवा का स्थापन करे और उस कुल में कोई भी ऐसा व्यक्ति न हो जो उत देव-श्रीदेी का उगुक्त विरोध कर सके । प्रसार यह नहीं मान सकते थे कि भारत में कोई भी उत कुल पन की इन सीमा तक जा सकता है । यही कारण है कि सीगर्भ स्वतन्त्रता एवं देवप्रम से परिपूर्ण विद्रोहिणी घनका को प्रसार ने उत कुल में काम दिया । ऐसी विद्रोहिणी के मूल्य प्रसुपी की धारणकता की पूर्ति निहुरण ने की किन्तु मिसकर धारणक की एकता के नाम पर तथाकालिका का राज्य तक अत्रगुप्त के धारण बनाने में संकोच न किया । निहुरण के प्रसार में अत्रगुप्त की ऐतिहासिक घटनाओं के अनुसार यह सब न होता कि वह मास-युद्धों की सम्मिलित सेवा का नैतृत्व कर सकता क्योंकि मास-युद्धों की सम्मिलित बाहिनी का उन्मिल करते हुए भी इतिहास यह नहीं बताता कि उन सेवा का सेनापति कौन था । मासक पण मूल्य क पुत्र और मासकों के संधि विचारक निहुरण ने घटना अरु म धारक इतिहास के इस मोल पर अत्रगुप्त की प्रतिष्ठा कर ही क्योंकि वीर निहुरण भी घनका की ही नाति धारणक की एकता का पक्षपाती था ।

गुधामिनी चालुक्य और राजस के बीच एक शरीर पर काल्पनिक कड़ी है । धर्याचारी मन्त्र के लिए यदि राजस जैसा धरित स्वामिमन्त्रि रणता है और उसके प्रत्येक कार्य का समर्थन करता है तो वह भी धर्याचार का भागीदार बन जाता है । केवल स्वामिमन्त्रि की भावना उमचो इस दोष से नहीं बचा सकती । क्या स्वामिमन्त्रि इतनी बड़ी मनु है कि वह बिके की धारणें भी कोड़ सने ? क्या मात्र इनके लिए राजस जैसा कूटनीतिज्ञ एवं कमाकुलम विज्ञान को धरिबैकी या प्रयासी बनाता उचित है ? यही कारण है कि प्रसार ने स्वामिमन्त्रि के नाम नाम व्यक्तित्वन संघर्ष की भी मृष्टि की है । बिकेकी राजस मन्त्र से बट्ट है पर मरुणर की कथा गुधामिनी और चालुक्य के बीच किमोर कोमन-संघर्ष को वह समझता है और अन्ततः मन्त्र की मृत्यु के नाम भी चालुक्य-अत्रगुप्त विरोधी

ही बना रहना पड़ता है । यहाँ उसके रूप का प्रश्न है । उससे अनुप्राण पर पड़ी हुई चोटें हैं । उन्हें विवेक और कूटनीति का उससे कोई भी संबंध नहीं । प्रणय इन सबकी प्रवृत्तिका कर सकता है और कोई भी इसको असमाध्य नहीं व्यूह सकता । बर्तकों की कड़ी से कड़ी दृष्टि भी प्रणय के नाम पर उसके बड़े से बड़े बोध को समा कर सकती है । बाणभय के चरित्र को मानवोचित बनाने के लिए भी मुवांसिनी की मानस्यकता पड़ी है । बाणभय की प्रतिभा से सम्पन्न असाधारण व्यक्ति हो सकता है पर दुःखना सब कुछ होते हुए भी वह मनुष्य वा । मुवांसिनी ने बाणभय के चरित्र को मानस्यता दे दी है उसको जीवन्त बना दिया है । यह वह अधिक सम्भाव्य और ऐतिहासिकता के अधिक निकट हो गया है । प्रति-हिंसा के अकार के विरुद्ध पर लड़े हुए मेघावी शैल्य के समागम वह नहीं है बल्कि महान् धारणों में प्रेषित अनुपम प्रतिभा से युक्त, ब्राह्मण की परिभा से परिपूर्ण एक कमठ महापुरुष है । इसी माय श्रुति पर हम सबसे भ्रम सकते हैं, उससे तादात्म्य स्थापित कर सकते हैं अत्यन्त नहीं । यही मुवांसिनी के चरित्र की अविचार्यता प्रतीत होती है ।

मानसिकता और अनुमाना क्रमसः अग्रगण्य और स्फुरणुत्त के लिए अधिक प्रावश्यक नहीं कड़ी जा सकती । मानसिकता प्रसार के लिए भी एक तात्त्विक बर कबल कल्पना है जो नाटक में धातु की एक बूद ही हो जाती है । उसके बिना भी नाटक का घटनाओं में अन्तर न होता अग्रगण्य वा चरित्र भी प्रायः बेसा का बेसा ही रहता पर साबर धातु की वह बूद न रहे पानी वा पानी और बर्तनों के मन में एक हल्की सी टीस पैदा करती है । अनुमाना का चरित्र देखनेवाला और अनुपम के चरित्रों को अपनी दृष्टिक पर आकर्षण प्राप्त हीनता से उत्कर्ष देता है । मॉडिरेष और सुरमा के चरित्र प्रसार की कल्पना के विविध और घड़ी-घड़ी हैं । 'धर्मधी नाटक की ऐतिहासिक घटनाओं के विकास में ये एक विविध प्रकार का योग देने हैं । कास्मनिक चरित्रों का कार्य ऐतिहासिक चरित्रों और घटनाओं का और अधिक समाय बनाने में सहायता देना है पर तात्त्विक और सुरमा धर्मधी लंबवी तात्त्विक ऐतिहासिक घटनाओं को कास्मनिक बनाने में योग देते हैं । सम्पूर्ण नाटक की यह माग साम्यवादी के केलनी माधुम पड़नी है जिसमें ऐतिहासिक पात्र तो निरन्तर (पैनिव) साम्यवाद और ये दोनों वाच सन्धि (एक्टिव) साम्यवाद प्रतीत होने हैं । उन्हीं प्रमुख घटनाओं के होने में दरकर हार है । दुर्भाग्यवत् हर्षकरीत स्थिति इतिहास में इसका धारण विचरणीयता और समायता दोनों के परे है । यही कारण है कि इन दो

प्राकारित होती है। चरित्र और नाम भी काव्यनिक होते हैं पर उनके पीछे कोई स्पष्ट ध्येय वा प्रस्पष्ट संकेत भी मिसरा है। उदाहरण के लिए 'स्फुरदुपुत्र' नाटक में स्वसेना विजया और देवकी के चरित्र हैं। स्वसेना के संबंध में विजयनाथ प्रसाद मिय का यह अनुमान ठीक प्रतीत होता है कि धन्य और इन्दुमती के संबंध में कही गई रघुवज की एक उक्ति से प्रसार में स्फुर के साथ स्वसेना नाम की योजना की है।¹ वे इस संबंध में धार्य निकले हैं—मित्र के 'कुमार' स्वामी काव्यिकेय 'स्फुर' सेनामी, और महासेन भी कहते हैं। वे किस सेना के सेनामी थे और इनकी महासेना क्या थी यह जिज्ञासा भी पुरन्त लांत हो जाती है कि ये 'देवी' क सेनापति के और इनकी महासेना 'स्वसेना' थी। पर क्या ये स्वसेना के बँते ही पति थे जैसे कोई 'समापति' किसी सेना' का 'पति' होता है ? नहीं। स्वसेना इनकी प्रियसी का नाम था, व्यक्तिसाधक नाम।² इस प्रकार मक्तिनाथ बाहुपुत्रण, देवी भागवत इत्यादि के प्रसार पर विजयी ने स्वसेना और स्फुर के पति-पत्नी संबंध के सिपू एक ज्ञान्य पृष्ठभूमि खोज निकाली है। प्रसार के नाटक में स्वसेना और स्फुरदुपुत्र के बीच प्रेम होते हुए भी धन्य में उन दोनों का विवाह नहीं किया गया है। स्फुर चिर कुमार रहने की प्रतिज्ञा करता है और स्वसेना मासक लौट जाती है। इस संबंध में मिय ने स्फुर के एक प्रप्य नाम कुमार को लेकर उनके बड़ाभाई होने के प्रमाण संग्रहित किए हैं। इस प्रकार स्फुर के पौराणिक चरित्र की पीठिका पर स्वसेना की योजना की गई है, इसमें खप भी सम्प्रेत नहीं।

विजया का चरित्र भी सार्थक है। इस सम्बन्ध में मियजी ने स्वयं कुछ संकेत किया है। नाटक में विजया के चरित्र की कुछ विशेषताएँ हैं। उनमें सर्व प्रथम विशेषता यह है कि वह ऐच्छिपुत्री है और स्वयं बचत स्वभाव की है। जब स्फुर उनकी ओर आकषित होता है तो वह उसकी राज्य के प्रति उदासीनता देखन ही बचपानित की प्रस्ता कर लेती है। बाद में स्वसेना की ईर्ष्या से मटाक से सम्बन्ध स्थापित कर लेती है। कालांतर में जब स्फुर उसके मुह कर स्फुर सेता है तो वह स्वयं मटाक और यहाँ तक कि पुरगुप्य तक से गाटा लौट कर स्फुर से प्रणय मित्रा मांगने के लिए स्वयं प्राचिनी बनकर जाती है। स्फुर से हुकूमते

- (1) धन्यापयंश सहसेनपुत्रा स्फुरेण साधारिण स्वसेनाम्
स्वासारयायाय विरभंताव पुस्त्र वेतामिमुको बभूव ।
- (2) नहीं—विजयनाथ प्रसार मिय पृ० ७१-७२
हिन्दी का साधयिक साहित्य—विजयनाथ प्रसार मिय

बापों पर वह जोर तो दे देती है पर स्कंद की विजय के लिये उसका जोर स्वतः ही
जुलन बापों है। स्कंदपुराण के ब्रह्माण्ड के विसालोक्त^१ की कुछ वीक्तियाँ इस प्रकार हैं।

‘कमेष्णु बुद्धया निपुण प्रचार्य
ध्यात्वा च कुरस्ताम्पुत्र-बोध-हेतुः ।
व्यपेक्ष्य सम्भ्रांममुजेश्वर-पुत्रां
सकमी स्वयं न परयाचकार ॥’^२

यहाँ स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सब राजपुत्रों को छोड़कर सकमी ने
(स्कंद) जिसका स्वयं बरस किया। इस विसालोक्त का प्रारम्भ ही विष्णु की वचन से
किया गया है^३ और ‘नरपतिं भुजमानां’ तथा ‘प्रतिवृत्ति गच्छा (जा) निविधी चाम
कर्त्ता’ जैसे प्रयोगों द्वारा विष्णु और स्कंद का रूप-मा-बाँधा गया है। अब यदि
इस पृष्ठभूमि पर विजया और सकमी को एक मान लें तो कई बातों में समानता
प्रतीत होती। सकमी की चञ्चलता प्रसिद्ध है, वह कभी भी एक व्यक्ति की होकर
नहीं रह सकती। ठीक यही बया विजया की है। महत्वाकांक्षा का सकमी न महदा
सम्बन्ध है विजया भी उसी की और भावकविक होती है जो महत्वाकांक्षी है। अन्य
सभी राजपुत्रों को छोड़कर सकमी ने स्कंद का स्वयं बर्णन किया था। विजया ने
मटार्क को छोड़ा, पुरपुराण को छोड़ा और अन्त में स्कंदपुराण के समस्त श्रम प्राचिनी
हुई। सकमी के सम्बन्ध में यह धारणा प्रचलित प्रचार है कि सकमी उनका पीछे
पीछे भागती है जो उसे ठुकराया रहता है और उससे वह डर सायनी है जो स्वयं
उसके पीछे भागता है। यहाँ स्कंद जब विजया के प्रति आकर्षित हुआ तो उसका
परिणाम यही हुआ कि विजया ने मटार्क का बर्णन किया पर जब स्कंद उसने
सहायता ही देवतेना की और सुका तो वह देव देव प्रकारेण स्कंद को पा लेने के
लिए उसके पीछे बौड़ती रही। यह भी अत्यन्त मार्फक है कि अन्त में विजया के ही
रत्न-गुह की सहायता से स्कंद ने हृत्त-मेता पर विजय प्राप्त की।

देवकी के अरिज को सांकेतिक जानने का कारण यह है कि मिटारी के
विसालोक्त में एक स्थान पर देवकी का उल्लेख हुआ है—

- (१) इसी को भी निम्न मिटारी वा सेम निगने है जो भ्रम है।
—वैश्विण्ड हिन्दी वा सामयिक मासिक-विज्ञानाचमारा त्रिष पृ० ७४
- (२) संज्ञकट इ स्किमनंत—संस्कार पृ० २११ नं० २२
- (३) कमल निलयनाया शरवर्तं धाम सभ्या
स अर्वाति विजिताविष्णुरत्यन्त-विष्णु —बही

‘त्रितमिति परिवोयात्मातर साम-नत्रा’

‘हतरिपुरिष कृष्यो दवकीमभ्युपेत ।’

उक्त पंक्ति में कृष्य के देवकी के सम्मुख बिजयी शत्रु परान से बिजयी स्कंद के धपनी माता के सम्मुख घाने की तुलना की गई। इसी आधार पर प्रसाद न स्कंद की माता का नाम देवकी मानकर स्कंद द्वारा उसकी बंदीगृह से मुक्ति जान का उल्लेख किया है। कंबज इस आधार पर देवकी को ऐतिहासिक नहीं माना जा सकता, चाहेक से अधिक उये सांकेतिक काव्यनिक की कालि में रखा जा सकता है।

इस सांकेतिक काव्यनिक पात्रों ने प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों में एक नवीन धीमत्त्व की मूर्ति को है। वे सांकेतिक पात्र एक और तो प्रत्यक्ष सामान्य हैं और दूसरी ओर पूर्ण जीवन्त। इतिहास स्कंद का उल्लेख करता है, दबसेना का नहीं, किन्तु यदि इतिहास कभी भी चाहे तो प्रसाद की देवसेना को मान कर धपने इतिहास में रख सकता है, और यह तिरस्कार है कि उसके इतिहास में धाकर भी देवसेना काव्यनिक नहीं मान्य पड़ेगी वह इतिहास की एक कबल कोमल करी बन जावगी और को उसके अस्तित्व को ज्योती नहीं देगा।

हमने इतिहास को ऐतिहासिक बातावरण में मिश्र माना है। क्योंकि वह ऐतिहासिक नाटक का स्वामी भय है। कोई भी नाटककार इतिहास में अये ही परिवर्तन कर ने पर ऐतिहासिक बातावरण में परिवर्तन नहीं कर सकता। प्रसाद के नाटकों की यह बिजयता धनेक रूपों में परिमलित होती है। इसी की मूर्ति के लिए प्रसाद ने संस्कृत प्रसाद भाषा का प्रयोग किया है। देव-काय से सम्बन्धित व्यक्तिगत और समाजगत विक्षिप्तताओं के निवारण में प्रसाद की इच्छा अत्यन्त सूक्ष्म है। प्राचीन वास में लोगों के अस्वाभूत लोकाभ्यन्तर अन्ध सांसायिक जीवन बार्मिक-विश्राम इत्यादि से लेकर सासन प्रबन्ध न्याय सेना तथा युद्ध सम्बन्धी सांस्कृतिक इतिहास के सूक्ष्म निवारण की ओर भी प्रसाद की प्रवृत्ति रही है। प्राचीन संस्कृति के अंध में ही उन्होंने धपने कथानकों को बिठाया है इसलिए वे कथानक पूर्णतया उमम सुन्दर और मान्य पड़ते हैं। धरातल अनु अम्रदुष्ट स्कंदमुष्ट ध्रुवस्वामिनी और गज्यधी की सफलता इस पर नहीं है कि धरातल अम्रदुष्ट स्कंदमुष्ट ध्रुवस्वामिनी और राज्यधी के कथानक भर ऐतिहासिक हैं बल्कि इस पर है कि इन कथानकों के माध्यम में इतिहास के वे सब सुय अम निरों की तरह धपनी विमिश्रता के माह हमारे सामने मूर्त होते असे जाते हैं। मूर्त होने की इस क्रिया के मूल में धनव्य छोटी छोटी बातें हैं, जो अम्रदुष्ट के ‘सरस्वती मगिर क समाज’ के अस्तित्व से लेकर ध्रुवस्वामिनी की पुत्री अहगधारिणी होने-मुक्के-हिजडे तक सभी में सन्निहित हैं। ये देव-काय पद विक्षिप्तताएं धीनोतिक मिलताओं से पूर्णतया सम्बन्ध हैं। प्रसाद ने सर्वत्र भौगोलिक निवारणों की सचार्थ का ध्यान रखा है।

प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों का उद्देश्य

'बिनास' की भूमिका के प्रसाद लिखते हैं 'मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकाश घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है, और जिन पर कि वर्तमान साहित्यकारों की दृष्टि कम पड़ती है। इसके ऐसा प्रतीत होता है प्रसाद अपने ऐतिहासिक नाटकों में एक निश्चित दृष्टिकोण लेकर चलते हैं। कम से कम 'बिनास' की रचना करते समय तो उनका

उद्देश्य 'भारतीय इतिहास के महत्वपूर्ण परन्तु अप्रकाशित अंशों का बिनास' रहा होगा परन्तु भारतीय इतिहास का बिनास केवल इतिहास के उद्भव से करना उम्हें अप्रीप्त न था। प्रसाद के लिए इतिहास 'होम और यूरॉप का इतिहास' (डुम एण्ड द ग्रेट हिस्ट्री) मान न होकर 'काँट वाली इतिहासकारों के अनुसार कार्य कारण परम्परा से युक्त काम की अभिव्यक्ति द्वारा का स्वरूप भी था।

अतीत का वर्तमान पर प्रभाव हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने वाली प्रतीत की घटनाओं से प्रसाद का अभिप्राय है कि भारत का वर्तमान युग स्वतः प्रयुक्त नहीं है एवं उसकी नवीनताएँ एकाएक उत्पन्न नहीं हुईं बरन् इतिहास और संस्कृति की एक अभिव्यक्तिपूर्ण कार्य

कारण परम्परा उसकी पुष्टभूमि के रूप में अभिव्यक्ति हुई है। कारण यह है कि प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों का एक उद्देश्य प्रतीत के महत्वपूर्ण प्रसंगों के साथ उनके महान व्यक्तियों एवं अन्य वातावरण के मनोरमा चित्र प्रस्तुत करना है और दूसरा इस बात को स्पष्ट करना है कि उन दूरस्थ प्रतीत होने वाले युगों का वर्तमान के निर्माण में क्या हाथ था।

इतिहास के प्रति प्रसाद का अपना दृष्टिकोण था। वे हमारे सामने राष्ट्रीय और सांस्कृतिक इतिहासकार के रूप में आते हैं। प्रसाद के नाटकों की दो ऐतिहासिक सीमाएँ अज्ञातमनु और हर्षवर्द्धन हैं। अज्ञातमनु को प्रसाद ने स्वयं इतिहासवास का प्रथम सम्राट् स्वीकार किया है और हर्षवर्द्धन मुसलमानों से पूर्व सबसे बड़ी भारत का अखिर एकलक्ष्य सम्राट् था। यदि इन १२०० वर्षों के इतिहास में अज्ञातमनु, अश्वमेध मौर्य अशोक गुप्तमित्र समुद्रगुप्त, बिष्णुवर्द्धन

संस्कृत घोर हृय केवल में ही स्मरणीय महान सभाट हुए हैं तो प्रसाद ने इनमें से प्रमोक्त पुष्पमित्र घोर समुद्रमुक्त को छोड़कर अन्य सभी सभाटों पर नाटक लिखे हैं। पुष्पमित्र घोर उसके पुत्र धर्ममित्र को लेकर 'इत्येतौ'

राष्ट्रीय महत्त्व उपन्यास की रचना तो प्रसाद ने प्रारम्भ कर ही थी परन्तु वह कहता कठिन है कि प्रमोक्त घोर समुद्रमुक्त को प्रसाद ने अपने नाटक या उपन्यासों का विषय क्यों नहीं बनाया। हो सकता है प्रसाद की कल्पना में ये नाटक भी रहे हों और वे अपनी कल्पना को मूर्त स्वरूप न बन पाये हों। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि इन दोनों सभाटों के सम्बन्ध में एक एक इतना प्रतिक्रिया या चुकावा कि प्रसाद को उनके सम्बन्ध में ऐसे प्रकाशित इतिहास के प्रकाश ही न मिल पाये हों जिन पर वर्तमान साहित्यकारों की दृष्टि कम पड़ती है। दूसरे कारण का विशेष उल्लेख नहीं किया जा सकता है क्योंकि प्रसाद ने अपने संकल्प के विपरीत इतिहास के अभाव व्यक्तियों तथा घटनाओं एवं अभाव यों ही अपने नाटकों के लिए चुना है। कुछ भी हो १२ • क्यों कि इतिहास के सबसे सुन्दर घोर अन्य ऐतिहासिक कालों की भारतीय संस्कृति और उसके ऊँचे से ऊँचे प्रादुर्भावों को नाटकों में उतारने का प्रयास राष्ट्रीय महत्त्व रखता है। पर राष्ट्रीय जीवन का सरस चित्रण इन नाटकों का प्रमुख उद्देश्य कहा जा सकता है।

ऐतिहासिक नाटक राष्ट्रीय पठन के युग के मुख्य होंघनवा राष्ट्रीय जागरण को घोर संकेत करें, प्रसाद के नाटकों में हमें यों ही परिस्थितियाँ दिखाई पड़ती हैं। प्रसाद का युग भारतीय राजनीति का संवित्तन था। १९१२ 'कम्पाणी परिषद' ने लेकर १९१२ प्रबुधस्वामिनी तक बीच क्यों कि इस दीर्घ काल में प्रथम महायुद्ध के सहायकारी स्वरूप के साथ-साथ भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रवृत्तात्मक हननन को भी देखा। प्रथम महायुद्ध में मित्र राष्ट्रों की विजय के विदेशी शासन की नींव को मिटाना ही रङ्ग कर दिया काँग्रेस ने उस शासन के प्रति उतनी ही घसतोप भावना उत्पन्न कर अपनी सामाजिक, संस्कृतिक और राजनीतिक हीनता के प्रति भी लोगों का ध्यान आकर्षित करना प्रारम्भ कर दिया। वस्तुतः साहित्य में सुधारकारी आन्दोलन की नींव बाबू हरिश्चन्द्र के जीवन काल में ही पड़ गई थी। उसमें कोरी सुधारकारी उपदेशात्मकता न होकर सरस व्यञ्जना की प्रभावता थी। उस काल के साहित्य में मुक्तपद्यों में बिदे हुए सृष्टियों के बीच विदेशी शासन के विरुद्ध जागते हुए विचारों का बुझा भी बीच पड़ता है। प्रसाद के नाटकों में यही बुझा चित्रकारियों के रूप में प्रकट हो गया है। प्रसाद ने वर्तमान के संघर्षों से भापकर भारत की प्राचीन संस्कृति की घोर पसावन नहीं किया बरन् अपने नाटकों द्वारा भारतीय के परे पर एक स्वतन्त्र और संघठित राष्ट्र की योजना को अपने का प्रयास

क्रिया । चन्द्रगुप्त का सम्पूर्ण कथानक 'एक धार्यावित' 'एक देश' 'एक राष्ट्र' का संदेश युवाता हुआ प्रतीत होता है। 'अच्छ भाव्य का' हिमासय से कुमारी अन्तरीप तक प्रसारित इस महादेश' का नया सपना हिन्दी साहित्य में पहली बार प्रसार में ही देखा और अपनी सारी कृतियों को उन्होंने इसी शीर्षक से चर दिया ।^१ स्कंदगुप्त में धार्यावित के गौरव के लिए भी बाह्य और देशता की रक्षा का जो स्वर प्रसार में उठाया वह राष्ट्रीय भावनाओं से सबामन भरा हुआ है। उठो स्कन्द, धानुगी कृतियों का नाश करो, सोने वाली को बगाओ और राने वाली को हंसाओ । धार्यावित तुम्हारे साथ होना और उस धार्य पताका के नीचे समस्त विश्व होना 'राष्ट्र के उदार के लिए स्कंदगुप्त बहुराज्य और बोधिलगुप्त जैसे महापुरुषों से जो त्याग किये, इतिहास तो उनका साक्षीमान है प्रसार के नाटकों ने उस महान् स्वयं को जीवन दे दिया, बाशी दे दी । राष्ट्रप्री में जिस देश दुर्लभ हस्व' को देखकर चीनी यात्री को यह विश्वास हो गया था कि धर्मिष्ठान की जन्मभूमि यही हो सकती है, वह भी राष्ट्रीय गौरव की ओर प्रवृत्त कर रहा है । परंतु इसमें तन्मह नहीं कि राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर भी प्रसार में राष्ट्र के महापुरुषों के क्रियाकलापों का चित्रण किया है मने ही उन्होंने स्पष्ट तथ्यों में इस चरित्र का उल्लेख नहीं किया है ।

(किसी भी उद्देश्य को लेकर मिल गए ऐतिहासिक नाटक में प्राचीन जीवन प्राचीन संस्कृति और तत्कालीन प्राचीन समाज का चित्रण स्वतः ही पा जाता है । प्रसार में जितनी सावधानी से ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक तथ्यों का चित्रण किया है उसे देखते हुए यही स्वीकार करना पड़ेगा कि उनका एक चरित्र प्राचीन समाज संस्कृति इत्यादि का वास्तविक चित्रण भी रहा होगा । यह चरित्र उनके स्वयं के सामने मने ही स्पष्ट न रहा हा परन्तु प्रचलित रूप से वे सदा ही इसके प्रति आकर्षक रहे हैं । प्रसार के नाटकों में विभिन्न चरित्र की धार्यावित धर्म एवं संस्कृतियों का नक्षत्र और उनका संमिश्रण इतिहास की दृष्टि से) गौतम बुद्ध ने जिस धर्म की नींव प्रजातन्त्र के काम में डाली थी उसका बुद्ध रूप प्रजातन्त्र नाटक में मिलता है । बहो कल्याण, दया और क्षमा का अक्षरमकार है । उसी बुद्ध धर्म का उत्तर युक्तकाल के प्रारम्भ में हुआ होने लगा था । महायान का धार्मिक पक्ष बज्रयान धर्मों के और संघ से प्रभावित होकर धर्मयान के विस्तृत स्वरूप में परिवर्तित हो गया । 'स्कंदगुप्त' नाटक में बुद्ध धर्म का यही विस्तृत स्वरूप साकार हो गया है ।)

प्रागे बसकर हर्ष के युग में इन बौद्ध धर्म के उग्रत और घबरात दोनों स्वरूप 'राज्यभी' में स्पष्ट हो गये हैं। सिक्खर के आक्रमण के उपरान्त उसके बोद्धों की टापों क विस्तृत होते ही भारत एकबार थोड़ा-सा तिर उठाकर पुन चाहे अपने दार्शनिक चिंतन में डूब गया हो तथापि भारत और यूनान के इस संपर्क से भारतीय और यूनानी संस्कृतियाँ एक दूसरे के अत्यन्त निकट आ गईं।' अश्वगुप्त और सिम्बुवस क बीच जिस वैज्ञानिक और बौद्ध संघ की स्थापना हुई वह दो संस्कृतियों की चिर मैत्री का प्रतीक भी था। प्रसाद न ठीक इसी बात को भारतीय वस्तु में कहने का प्रयास किया है कार्नेलिया बीच की होकर भी भारतीयता क रम में रही हुई है। बौद्ध कामीन मीर्य कामीन और गुप्त कामीन सामाजिक एव राजनीतिक जीवन के स्वरूपों में कई अन्तर क घोर उन अन्तरों को इतिहासकार की दृष्टि ही पकड़ सकती है। (अपने नाटकों में प्रसाद के इतिहास के विन विन कालों का लिया है उनके बातावरण क मुख्य अन्तर को ध्यान में रखते हुए उनका यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में वे सफल हुए हैं।)

प्रसाद अपने युग की समस्याओं के प्रति भी सचेत क घोर कभी नभी लेना प्रतीत होता है कि उन्होंने वस्तुतः अपने नाटकों की रचना अग्रवर्ध रूप क सम कामीन समस्याओं के हलों को प्राचीन इतिहास में खोजने प्राचीन इतिहास में के अर्थोप से ही की हो। इस अर्थोप के स्पष्टीकरण अपने युग की समस्याओं के पूर प्रसार के युग की एक भूलक दिशा देना प्रसार का समाधान निकल होमा।

'अश्वमेध' आन्दोलन के उपरान्त भारतीय राजनीति कीच म के हारों में आ गई घोर मापी ने एक नवीन परिष्कारक चर्चित के द्वार खोल दिये। अन्तत राष्ट्र को संनठित करने की आवश्यकता सामन आई परन्तु मुसलिम जीवन की स्थापना तथा हिन्दू मुस्लिम सम्बन्धों में कई समस्याएँ लड़ी कर बी। समाज गुबार की माधता इसके पहले ही काम चुकी थी। सभी समस्याएँ व्यक्ति मारी

१ मीर्य सभारों का केवल भारत वर्ष क अन्तरे भागों के राजाओं के साथ ही नहीं, बल्कि विदेशी राष्ट्रों क साथ भी अन्विष्ट राजनीतिक संबंध था। स्वयं अश्वगुप्त के दरबार में सीरिया के राजा सिम्बुवस का राजदूत मेवत्वमीत्र रहता था। अश्वगुप्त के पुत्र विम्बुसार के दरबार में सीरिया के राजा एटि सोफस बौद्ध और मिथ क राजा टालेमी बिसाईस्टम के राजदूत रहते थ। यबोक का लंका के साथ तथा सीरिया मिथ साहरीनी मसीओनिया घोर ह्विरह नामक पांच यूनानी शास्त्रों के साथ संबंध था।

स्वातंत्र्य विषय विचार और सामाजिक संगठन की कामनाएँ करने लग वे। कार्य-गमात्र में प्राचीन भारतीय आदर्शों की वैज्ञानिक और उन्नतपूर्ण बनाना-प्रारम्भ कर-
 िया या और प्रसार के फल तक उसका प्रमाण कम नहीं हुआ था। बायें और
 दायिन सङ्घर्षना और सांस्कृतिक समन्वय के प्रयत्न होने लग वे। कांग्रेस ने इस
 धोर महत्वपूर्ण प्रयत्न शिष्य ब और गाँधी की प्रार्थना समाजों में सभी वर्गों की
 प्रार्थनाएँ हुआ करती थीं। भारतीय संस्कृति को विश्व संस्कृतियों का केन्द्र प्रति-
 पारित कर 'विद्योद्योधिकृत समाज' बहुत पहले ही विश्ववर्चस्व का प्रसार करने में
 प्रयत्नशील था। इन समस्त मत्पनों के पीछे जो विचार धाराएँ एक-साथ काम
 करती प्रतीय होती हैं।

राजनीति के क्षेत्र में सब प्रकार के भेदभाव भुलाकर घ घेकी साम्राज्यवाद
 स मोर्चा सिरे के लिए संघटन धोर

भारत की प्राचीन संस्कृति के धारापर पर नवीन सांस्कृतिक निर्माण।

(प्रसार के माटको में भारतीय जीवन की यह धातुमत्ता स्पष्ट परिचितिधित है।
 नही होती उसमें लक्ष्युप की नवीन समस्याओं का समाधान भी मिलता है) अजात
 शत्रु में पारिवारिक कसहों की प्राति के प्रयास के साथ साथ पहिला धोर धाल्म-
 त्याप को प्रबुता भी प्रदान की गई है। अज्ञानुष्ट में बिदेसी धानमण
 कारियों धोर बिबेताओं को पराजित करने के लिए छोटे छोटे राज्यों धोर राज्यों को
 स्वतः ही एक दूसरे में अपना अस्तित्व मिलाकर एक हो जाने का धारित है। इसमें
 छोटे छोटे स्वार्थों के ऊपर उठकर एक अखण्डित राजनीतिक संगठन की प्रावश्यकता
 की धोर भी प्रसार में अंकित किया है। यह कार्य आत्मव्य में किया अज्ञानुष्ट में
 किया धोर गाँधी ने किया। अघ म के सभी रिष्यने प्रयत्न 'अखिल भारतीय काँग्रेस'
 के अधिक से अधिक तरस्य बनाकर एक सर्वभौम राजनीतिक संस्था की स्थापना की
 धोर ही हुए थे। कापी ने बिदेसी अहिकार के समय कहा था कि हमें बिटिय धारा
 व्यवहार से हटा हो सजती है बिटेन का घ घेजों में नहीं। उन्हें हम प्रेम से धीरये धोर
 हम सर्व्व में हमारा अस्त होया पहिला। यह अतिक स्वतः ही हमारा ध्यान अज्ञानुष्ट
 की उस महान् राजनीतिक विजय की धोर धाकूट करती है जिसमें अिकन्दर भारत
 छोड़कर एवा अक्षय परन्तु भारत के मीठी का हाप कड़ाकर, अिम्बूकस
 हार कर युवान मोटा सही परन्तु भारत को कर्मेतिपा के स्नेह बंधन में बांध कर।
 गाँधी का सपना गाँधी ने अपनी प्रायों से देस लिया। अघ वों को भारत छोड़कर
 जाने के लिए विवय होना पड़ा पर भारत ने बाब अवेस्य में अंधता से
 बांध लिया जो असीकृत स्वीकार कर उन घ घेजों को एक नवीन र्नेह बंधन के
 रूप में १०० वर्षों तक उन पर बाधन करते रहे। भारतीय एठ कर्मा

संस्कृत और ह्य कबल य ही स्मरणीय महान सप्ताह ह्य है तो प्रसार ने इनमें से
धगोक पुष्पमित्र और समुद्रगुप्त को छोड़कर अन्य सभी मन्त्राओं पर नाटक लिखे

राष्ट्रीय महत्त्व हैं। पुष्पमित्र और उसके पुत्र धन्निमित्र को लेकर 'हर्यश्वती' उपन्यास की रचना तो प्रसार ने प्रारम्भ कर दी थी परन्तु यह कहना कठिन है कि धगोक और समुद्रगुप्त को प्रसार ने अपने मातृक या उपन्यासों का विषय क्यों नहीं बनाया। हो सकता है प्रसार की कल्पना में ये नाटक भी रहे हों और वे अपनी कल्पना को पूर्ण स्वरूप न दे पाये हों। दूसरे कारण यह भी हो सकता है कि इन दोनों मन्त्राओं के सम्बन्ध में सब कुछ इतना अधिक लिखा जा चुका था कि प्रसार को उनके सम्बन्ध में ऐसे 'अप्रकाशित इतिहास के घट' ही न मिल पाये हों जिन पर बतमान साहित्यकारों की दृष्टि कर्म पड़ती है। दूसरे कारण का विषय समर्थन नहीं किया जा सकता है क्योंकि प्रसार ने अपने संक्षेप के विपरीत इतिहास के व्याप्त व्यक्तियों व्याप्त पटनाओं एवं व्याप्त युद्धों को ही अपने नाटकों के लिए चुना है। कुछ भी हो १२०० वर्षों के इतिहास के सबसे मुख्य और मध्य ऐतिहासिक कालों की भारतीय संस्कृति और उसके ऊँचे से ऊँचे व्यक्तियों को नाटकों में उतारने का प्रयास राष्ट्रीय महत्त्व रखता है। यह राष्ट्रीय गौरव का सरस चिह्न इन नाटकों का प्रमुख उद्देश्य कहा जा सकता है।

ऐतिहासिक नाटक राष्ट्रीय पठन के युग के मुख्य होंमयका राष्ट्रीय आगरण की ओर इतिक करें, प्रसार के नाटकों में हमें दोनों ही परिस्थितियाँ दिखाई पड़ती हैं। प्रसार का युग भारतीय राजनीति का संघिस्तत था। १११२' कल्याणी परिणय' में लेकर १११२' प्रवृत्तामिनी तक बीच वर्षों के इस बीच काल में प्रथम महायुद्ध के सहायकारी स्वरूप के साथ-साथ भारतीय राष्ट्रीय धाम्दोलन की परिष्कारक हलचल को भी देखा। प्रथम महायुद्ध में विश्व राष्ट्रों की विजय ने विदेशी शासन की नींव को बिठना ही हूँ कर दिया क्योंकि उस शासन के प्रति उतनी ही असंतोष मानना उत्पन्न कर अपनी सामाजिक संस्कृतिक और राजनीतिक हीनता के प्रति भी लोगों का ध्यात धावित करना प्रारम्भ कर दिया। वस्तुतः साहित्य में सुधारकारी धाम्दोलन की नींव बाबू हरिश्चन्द्र के जीवन काल में ही पड़ गई थी। उसमें कौरी सुधारकारी उपदेहात्मकता न होकर तरस ध्वंजना की प्रभावता थी। उस काल के साहित्य में मुन्कराहनों में बिपे हूँ स्तुतियों के बीच विदेशी शासन के विरुद्ध जागते हूँ विचारों का बुझा भी बीच पड़वा है। प्रसार के नाटकों में यही युँधों विनयारियों के रूप में प्रकट हो गया है। प्रसार ने वर्तमान के संघर्षों से जागकर भारत की प्राचीन संस्कृति की ओर पभावन नहीं किया बरन् अपने नाटकों - हाय-घटीत के परे पर एक स्वतन्त्र और समठित राष्ट्र की योजना को रचने का प्रभाव

किन्ना । चन्द्रगुप्त का सम्पूर्ण कथानक 'एक धार्यावर्त' 'एक देश' 'एक राष्ट्र' का संदेश या भाषा हुआ प्रतीत होता है । भारत का हिमालय से गुमारी प्रमत्तीय तक प्रसारित इस महादेश का नया सपना हिन्दी साहित्य में पहली बार प्रसार ने ही देश और अपनी सारी कृतियों को उन्होंने इसी दीप्ति से भर दिया । 'चन्द्रगुप्त' में धार्यावर्त के यौरव के लिए यी ब्राह्मण और देवता की रक्षा का जो स्वर प्रसार ने उदात्त-रूढ़ राष्ट्रीय भावनाओं से सजाकर बरसा हुआ है । उठो स्त्री, धार्यावर्तियों का नाय करो, सोते वालों को जगाओ और रोने वालों को हँसाओ । धार्यावर्त तुम्हारे साथ होगा और उस धार्यावर्त का के नीचे समस्त विश्व होगा 'राष्ट्र के उदार के लिए चन्द्रगुप्त बंधुवर्मा और योविन्दगुप्त जैसे महापुरुषों ने जो त्याग किये, इतिहास ही उनका साक्षीमान है, प्रसार के नाटक में उस महापुरुष त्याग को जीवन से दिया बाणी दे ही । राष्ट्रपी में विश्व 'देव दुर्जय हार्य' को देखकर भीने यानी को वह विश्वास हो गया था कि धर्मधाम की जगमभूमि यही हो सकती है, यह भी राष्ट्रीय यौरव की ओर प्रवृत्त कर रहा है । धनु इनमें समझे नहीं कि राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर भी प्रसार ने राष्ट्र के महापुरुषों के क्रियाकलापों का चित्रण किया है, भले ही उन्होंने स्पष्ट सधों में इन उद्देश्य का उल्लेख नहीं किया हो ।

किसी भी उद्देश्य को लेकर लिखे गए ऐतिहासिक नाटक में प्राचीन जीवन प्राचीन संस्कृति और उत्कामीन प्राचीन समाज का चित्रण स्वतः ही पा जाता है । प्रसार ने जिसने सावधानी से ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक तथ्यों का चित्रण किया है उसे देखते हुए यही स्वीकार करना पड़ेगा कि उनका एक उद्देश्य प्राचीन समाज संस्कृति इत्यादि का वास्तविक चित्रण भी रहा होगा । यह उद्देश्य उनके स्वयं के कामने मते ही स्पष्ट न रहा है परन्तु प्रच्छन्न रूप से के मरा

४ प्राचीन ही इसके प्रति जागरूक रहे हैं । प्रसार के नाटकों में विभिन्न संस्कृति की भाँसी धर्म एवं संस्कृतियों का मर्म और उनका समिन्धण इतिहास की देन है । सौतम बुद्ध ने जिस धर्म की नींव डाला धनु के काल में डाली थी उसका बुद्ध रूप महातन्त्र नाटक में मिलता है । वहाँ कल्याण, दया और क्षमा का अव्यक्तकार है । उसी नीचे धर्म का उत्तर गुप्तकाल के प्रारम्भ में ज्वाल होने लगा था । महापुरुष का दार्शनिक पक्ष राज्यायन धर्मवाद और लक्ष से प्रभावित होकर संन्यास के विरुद्ध स्वरूप में परिवर्तित हो गया । 'चन्द्रगुप्त' नाटक में बौद्ध धर्म का यही विरुद्ध स्वरूप ब्यक्त हो गया है ।

घरों बसकर हर्ष के युग में इन बौद्ध धर्म के उग्रतम और अवनत दोनों स्वका 'राज्यभी में स्थान ही पव है। सिन्धुसर के शासन के उपरान्त उसके बाह्य की टापों के विस्तृत होते ही भारत एकबार बोधा-ना गिर उठाकर पुनः बाह्य अपने दार्शनिक चिन्तन में डूब गया हो तथापि भारत और यूनान के इस सभ्य से भारतीय और यूनानी संस्कृतियों एक दूसरे के अत्यन्त निकट आ गईं।' चन्द्रगुप्त और सिन्धुसर के बीच जिस वैवाहिक और शैत्य संबन्ध की स्थापना हुई वह दो संस्कृतियों की चिर मैत्री का प्रतीक भी था। प्रसाद ने ठीक इसी बात को भारतीय बस्तु में बहान का प्रदान किया है। कालेजिया धीस की होकर भी भारतीयता का रूप में रही हुई है। बौद्ध कालीन मौर्य कालीन और गुप्त कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन के स्वरूपों में कई अन्तर से और उन अन्तरों को इतिहासकार की दृष्टि ही पकड़ सकती है। अथन नाटकों में प्रसार ने इतिहास के जिन जिन कालों को मिया है उनका आकारण का अक्षम अन्तर को ध्यान में रखते हुए उनका यथावत् चित्र प्रस्तुत करने में सक्षम हुए हैं।

प्रसाद अपने युग की समस्याओं के प्रति भी सचत से और कभी कभी गम्भीर प्रतीत होता है कि उन्होंने बस्तुतः अथन नाटकों की रचना अत्यन्त रूप में मम कालीन समस्याओं के हलकों को प्राचीन इतिहास में खोजने प्राचीन इतिहास में के उद्देश्य से ही की हो। हम उन्हें यह क स्पष्टीकरण अपने युग की समस्याओं के पूर्व प्रसाद के युग की एक अत्यन्त जिज्ञा सेना अग्रिम का समाधान निकल होगा।

'अथर्षण' धाम्नेशन के उपरान्त भारतीय राजनीति जीवन के हाथों-में आ गई और मानी न एक नवीन परिहात्मक जाति के द्वार खोल दिये। समस्त राष्ट्र को संघटित करने की आवश्यकता सामन आई परन्तु मुस्लिम जीवन की स्थापना तथा हिन्दू मुस्लिम सभ्यों ने कई समस्याएँ लड़ी कर दी। समाज-सुधार की भावना इन्होंने पहले ही जन्म बुझी थी। मनी समझदार व्यक्ति मानी । मौर्य सम्राटों का कबल भारत रूप के दूसरे भागों के राजाओं के साथ ही नहीं बल्कि विदेशी राष्ट्रों के साथ भी बलिष्ठ राजनीतिक संबंध था। स्वयं चन्द्रगुप्त के दरबार में सीरिया के राजा सिन्धुसर का राजदूत मेमस्वमीज रहता था। चन्द्रगुप्त के पुत्र बिन्दुसार के दरबार में सीरिया के राजा एन्डि प्रोक्लस सोटर और मिस्र के राजा टालेमी पितालेस्सस के राजदूत रहते थे। अथर्षण का संका के साथ तथा सीरिया मिस्र अथर्षणी मसीडोनिया और एपिरस नामक पांच यूनानी राज्यों के साथ संबंध था'

स्वातंत्र्य विजय विचार धीर सामाजिक संगठन की कामनाएँ करने लगे थे । पार्स समाज ने प्राचीन भारतीय धारणाओं को वैज्ञानिक धीर सर्वपूर्ण बनाना प्रारम्भ कर दिया था धीर प्रसार के काम तक उसका प्रभाव कम नहीं हुआ था । पार्स धीर धार्मिक सहिष्णुता धीर सांस्कृतिक समन्वय के प्रयत्न होने लगे थे । कांग्रेस ने इस धीर महत्त्वपूर्ण प्रयत्न द्विपक्ष के धीर गांधी की प्रारंभिता समाजों में सभी धर्मों की प्रार्थनाएँ हुआ काशी थी । भारतीय संस्कृति को विश्व संस्कृतियों का केन्द्र प्रतिपादित कर पियोलोकिज्म समाज बहुत पहले ही विश्वबन्धुत्व का प्रचार करने में प्रयत्नशील था । इन समस्त प्रयत्नों के पीछे जो विचार धाराएँ एक साथ काम करती प्रतीत होती हैं ।

राजनीति के क्षेत्र में सब प्रकार के मेदभाव मुझकर व प्रौढी साम्राज्यवाद से मोर्चा लेने के लिए संगठन धीर

भारत की प्राचीन संस्कृति के प्रसार पर नवीन सांस्कृतिक निर्माण ।

प्रसार के माटको में भारतीय जीवन की यह प्राकृतता स्पष्ट परिलक्षित ही नहीं होती उसमें नवयुग की नवीन समस्वाधों का समाधान भी मिलता है । समाज जन्म में पारिवारिक कसूरों की जाति के प्रवास के साथ साथ ग्रहिता धीर धार्मिक-त्याग की ध्रुवता भी प्रदान की गई है । चन्द्रगुप्त में बिदेसी धार्मिक कारिधों धीर बिदेसीयों को पराजित करने के लिए छोटे छोटे राज्यों धीर बलों की स्वता ही एक दूधरे में प्रयत्न अस्तित्व मिलाकर एक ही धारणा का धारण है । इतने छोटे छोटे स्वार्थों के ऊपर उठकर एक अद्विष्टित राजनीतिक संघटन की प्रावस्था की धीर भी प्रसाद में संकेत किया है । यह कार्य आवश्यक है किया चन्द्रगुप्त ने किया धीर गांधी ने किया । कांग्रेस के सभी विद्यने प्रयत्न अस्तित्व भारतीय कांग्रेस के धार्मिक से धार्मिक सदस्य बनाकर एक सर्वधर्म राजनीतिक संस्था की स्थापना की धीर ही हुए थे । गांधी ने बिदेसी बहिष्कार के समय कहा था कि हमें ब्रिटिश साम्राज्यवाद से पूरा हो सकती है ब्रिटेन या अरबों से नहीं । उन्हें इन प्रेम से जीतेंगे धीर इन सर्वधर्म में हमारा अस्तित्व होगा ग्रहिता । यह बलि स्वतः ही हमारा ध्यान धार्मिक की उस महात्मा राजनीतिक विजय की धीर प्राकृत करती है जिसमें सिकन्दर भारत छोड़कर बना अस्तित्व नरमु भारत से मीठी का हाथ बढ़ाकर, विन्मुक्त हार कर मृतान मीठा तही परन्तु भारत को कर्नेलिया के स्नेह बंधन में बांध कर । गांधी का सपना गांधी ने अपनी धारणा से देन दिया । अरबों को भारत छोड़कर जाने के लिए विवश होना पड़ा नर भारत ने काम लक्ष्य में । बिदेसी में बांध दिया जो उत्तीर्ण स्वीकार कर उन अरबों को एक नवीन स्नेह बंधन के रूप में १०० वर्षों तक उस नर साहन करते रहे । भारतीय मुक्त कला

मानते हैं 'वेप नहीं' इन वर्षों में प्रसाद ने भारत के राजनीतिक भविष्य को देख लिया था।

प्रसाद ने 'बिभाल' को सबसे बहना ऐतिहासिक नाटक माना है। किन्तु विभूत एवं प्रामाण्य ऐतिहासिक बस्तु न होने के कारण हमने उसका बिबचन नहीं किया। 'राज्यधी' का प्रकाशन १९१४ में हुआ। प्रथम महापुरुष प्रारम्भ हो जाने के कारण उस समय कांग्रेस में कांग्रेसियों के विरुद्ध अपना आन्दोलन स्पष्ट कर दिया था। कांग्रेसियों और उनके साथी राष्ट्रों ने यह घोषित किया था कि यह युद्ध जनतंत्र स्वतंत्रता और नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए लड़ा जा रहा है। कांग्रेसी न इस आशा में देख को उन मन बन स कांग्रेसी की सहायता करने की उम्मीद ही कि जो युद्ध स्वतंत्रता और जनतंत्र की रक्षा के लिए लड़ा जा रहा है उसके अन्त में भारत को भी अपनी स्वतंत्रता प्राप्त होगी। 'राज्यधी' में इसी आशावादिता का स्वर व्याप्त है। ठीक उन्हीं दिनों मुघलसर बाहर उर्दों ने भी अपनी स्वतंत्रता के लिए कांग्रेसियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। कांग्रेस ने इनका समर्थन किया और फलस्वरूप मुस्लिम लीग और कांग्रेस में पारस्परिक सहयोग की संभावना बड़ी और इस ऐतिहासिक एकता में भी राजनीतिक बाधावरण आनाप्रब हो उठा। 'राज्यधी' में समस्त उत्तराध्याय में एकता की स्वात्मता और बहिष्कार से उसकी मिस्री में यही आशावादिता मुक्ति है। राजनीतिक आशावादिता का स्वाभाविक परिणाम सांस्कृतिक पुनर्जागरण की चेष्टा थी। 'राज्यधी' में हर्ष के गौरव की प्रतिष्ठा और भारत की बय बयकार में बही भावना साकार हुई है और उसका भरतवाक्य 'कल्याण कादिकिनी बरसों' भविष्य के लिए मनीष आशावादिता से अनुभावित ही तो है।

दूसरा ऐतिहासिक नाटक 'अज्ञातपुरु' १९२२ में प्रकाशित हुआ था। कांग्रेस में १९२० में जिम अज्ञातपुरु आन्दोलन को प्रारम्भ किया वह १९२२ में अपने अन्त में अज्ञातपुरु पकड़ कर बुझा था। १ मार्च १९२२ को कांग्रेसी को ६ वर्षों का कारावास दंड मिला और इसके साथ ही अज्ञातपुरु आन्दोलन बापन से खिया गया। इतने बड़े राजनीतिक संघर्ष के युग की घटनाओं का कोई भी प्रभाव 'अज्ञातपुरु' में नहीं रहा। 'अज्ञातपुरु' का कथानक बौद्ध इतिहास से ज्यों का त्यों ले लिया गया है और उसमें प्रसाद ने लीन हृष्टिकाम्य का प्रतिपादन करने की चेष्टा भी नहीं की। अधिक से अधिक इतना ही कहा जा सकता है कि आधुनिक इतिहासकारों ने उन युग में कांग्रेसी के नेतृत्व का जो विश्व की भाँति है वह 'अज्ञातपुरु' का जीवन के बिना से मिलता जुलता है। उन्हींने प्रथम कांग्रेसी आन्दोलन के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए सत्य और अहिंसा का मार्ग अज्ञातपुरु

की समाहृत्ती । धन्याय धीर विवेची सत्ता का विरोध करने के लिए उन्होंने सत्ता
 बहू का मार्ग अपनाते के लिए कहा । इस पद्धति द्वारा महात्मा गांधी स्वाधीनता
 संग्राम में भारतवासियों के नैतिक स्तर को उठा देना चाहते थे । सत्य धीर अहिंसा
 के सतियों का, पान्थिक शक्ति द्वारा निर्भय रूप से, बहुत समय तक बचाए रखना
 असंभव था ।-----गांधीजी का व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली
 था । उनके कार्यक्रम में कायरता स्वार्थ धीर भोग के स्थान पर साहस
 त्याग धीर बलिदान था । उनके प्रभाव में आकर बिसाल की बोह में उसे हुए बहुत
 से व्यक्तियों ने भी स्वाधीनता संग्राम के लिए अपना सर्वस्व निष्ठाकर कर दिया
 (सितम्बर १९२०के असहयोग आन्दोलन में) तकनी धीर बरखा, भारतीय राष्ट्रीयता
 के मूल मंत्र धीर सत्य अहिंसा उसके प्रमुख अस्त्र बने । यही से भारतवर्ष में गांधी
 युग का प्राविर्भाव हुआ । १

बहू गांधी के व्यक्तित्व के प्रसार का युग था धीर उतका प्रभाव युग वर्म
 कर कमल बढ़ता जसा जा रहा था । अज्ञातबन्धु का नायक बाहे कोई ही इसमें
 सदेह नहीं कि प्रारम्भ से लेकर अत तक उसकी समस्त बटनाओं की मोड़ने की
 बुद्धी बुद्ध के स्वयं के व्यक्तित्व में धरवा उसकी मूर्तिमान बिद्या मल्लिका के
 व्यक्तित्व में पाई जाती है । यहाँ पल पल पर बुद्ध के सिद्धान्त कसीटी पर उतारे
 गये हैं धीर अत्येक इह के उपरान्त के करे उतरे हैं । अन्त में बिरुद्ध के यौव
 राज्याधिकार की पुनः प्रतिष्ठित समस्त पामिक रुद्धियों एव अ बलिभारों के दिग्द
 बुद्ध सत्त्वगुण प्रभाव प्राचीन भारतीय विचारों की विजय ही नहीं बुद्ध के प्रकाशमान
 व्यक्तित्व की विजय भी है । गांधी की दंडी भाषा धीर उनका सातक्यारियों की
 पद्धति के विपरीत अहिंसात्मक असहयोग आंदोलन तकनी राजनीतिक विजय का ही
 नहीं आध्यात्मिक विजय का भी सूचक है ।

रचनाकाल की दृष्टि से अन्नमुत्त स्कन्दगुप्त से पहले का नाटक है, उसे
 ही उत्तका प्रकाशन स्कन्दगुप्त के प्रकाशन के तीन वर्ष बाद १९३१ में हुआ ही ।

प्रवाद के नाटकों के सर्वप्रथम प्रकाशन दिनोन्नीर व्यास के
 अन्नमुत्त धीर अनुमार स्कन्दगुप्त का प्रथम प्रकाशन १९२५ में हुआ था^१
 स्कन्दगुप्त में 'अन्नमुत्त' का अनुपम एक 'अस्याखी परिणय' के रूप में
 'राज्यधी के भी पहले एव बुद्ध या धीर अन्नमुत्त सम्बन्धी भोग
 पूर्ण निबंध, अन्नमुत्त नाटक की क्रमिका तो १९०९ में ही नाबरी प्रकाशित परिणय
 में एव बुद्धा था । इनमें बहू तो स्पष्ट है कि 'अन्नमुत्त' नाटक की योजना १९०९

१ भारत का इतिहास—डा० ईस्वीप्रसाद पू० ३७३ ७४ बोलूम २

२ प्रवाद धीर उनका साहित्य—दिनोन्नीर व्यास पू० ११९

के घामपास बन चुकी होगी। १९१७ में डिज्ज इत्याल राय का 'बम्बेयुल' नाटक प्रकाशित हो गया। प्राचीन भारत को लेकर लिखा गया यह सर्वप्रथम नाटक एवं नाटकमय नाटक सिद्ध हुआ। कथन प्रसार की पर्याप्त समय तक 'बम्बेयुल' मिलने का विचार स्वगित कर देना पड़ा। प्रग साध्य के आधार पर भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'बम्बेयुल' विचार रूप में और सम्भवतः लिखित रूप में भी 'स्कन्दयुल' के पुनर्जीवना है।

हम पहले सिद्ध हुए हैं कि १९१८ के घामपास भारतीय राजनीति में घामावादिता का स्वर था। उस समय गांधी स्वतन्त्रता की घामा में काँग्रेस ने विभिन्न घोर विज्ञता के घामर को मुलाकर घामरों का समर्थन प्रारम्भ करने दिया था। मोदी ने एक एम. एम. मनीषमनिक घामावरण की मृष्टि कर दी कि संकुचित राष्ट्रीयता को पीछे कर जनतन्त्र की रसा के नाम पर भारत में राष्ट्रों के साथ घाम घाम प्रकैरण कर राष्ट्र के परामावक लिए कठिबड हो गया। १९२० से पूर्व काँग्रेस में जो घामावादिता थी वह अटिब सबघों के कारण निराघा वाद की घोर भूक बनो थी। १९१९ में एक घोर तो 'घामेयु बम्बेयुल' मुधार हो रहे थे घोर दूसरी घोर रोडट एण्ट के विरोध में ६ घामेस को सत्याग्रह घामोहन की भीषण पड़ गई। इसके परिणाम स्वरूप 'अलिघावाला बाग का मुंस हत्या कांड' हुआ। २० मितम्बर के कनकता के विधेय घामिघेसन में काँग्रेस ने 'ससहयाग घामोहन' की नीति स्वीकार कर ली। फरवरी १९२२ में कोरीकोरा के हत्याकांड ने उस घामघन बना दिया। इसी बीच मुस्लिम लीग ने काँग्रेस से पूणतया विच्छिन्न होकर साम्प्रदायिक बगों को जन्म दिया। साहोर काँग्रेस ने २६ जनवरी १९२० को पूण स्वतन्त्रता की घामणना की थी। डितीय मोलमेज परिषद का परिणाम जयंकर साम्प्रदायिक निर्णय हुआ जिसके फलस्वरूप पुन साम्प्रदायिक बगों ने घोर कड़वा घोर हिन्दु, मुसलमान मित्र घोर परिषदित जाठियों के बीच ही नहीं स्वयं हिन्दुओं में घामघम में भी बड़ी बड़ी दीवारें लड़ी हो गई। १९२२ में काँग्रेस ने पुन सचिनय घामजा घामोहन प्रारम्भ कर दिया। यह स्थिति १९३४ तक चलती रही।^१ इस प्रकार १९१९ में १९३४ तक का नाम भारतीय राजनीति के क्षेत्र में घामा नियता के डड का नाम माना जा सकता है। घामल ही रूप १९३५ में जो विधान सभल को दिया गया उसकी १९३५ तक कोई कर्क ही लगी थी।

'बम्बेयुल' घोर 'स्कन्दयुल' दोनों में राष्ट्रीय हलचलों का पर्याप्त विघमस हुआ है। बम्बेयुल में घामघी मेवभाष को मुलाकर घामठरिब संघटन की घामजना डाय एक विदेशी घामावाता को बाह्य निकाल दिया गया घोर इसवेउपरत

धार्मिक तर्कों पर विजय प्राप्त कर एक राष्ट्र एक संस्कृति एवं धार्मिकता की घोषणा की गई। अतः में दो विभिन्न संस्कृतियों के सम्मिलन द्वारा एक नवीन आजादीवादिता के स्वर के साथ इस नाटक की समाप्ति होती है। धार्मिक संघटन मनु पर विजय और पूर्ण आजादीवादिता का आतावरण १९१९ से १९३४ तक कहीं भी नहीं दिखाई पड़ता फलतः इस काम में चन्द्रगुप्त की रचना सम्भव नहीं प्रतीत होती चन्द्रगुप्त का रचनाकाल १९११ के आस पास तो ही ही नहीं सकता और जिस ऐतिहासिक आतावरण की हम ऊपर चर्चा कर चुके हैं उसके अनुसार तो १९१९ के पूरे इसकी रचना हो ही जानी चाहिए। चन्द्रगुप्त एक प्रोड मेकर की मूर्ति है जब कि राष्मधी (१९१४) और अजातशत्रु (१९२२) का रचनाकाल इसकी अवस्था पर्याप्त लिखित है। इसका कारण यही कहा जा सकता है कि १९१९ में जिस चन्द्रगुप्त की नींव डाली गई थी उसमें १९३१ तक पर्याप्त परिवर्तन किए गए। चन्द्रगुप्त का रचना काल १९२० है और १९२० से लेकर १९२८ तक की राजनीतिक परिस्थितियाँ इस नाटक में घनी भाँति प्रतिबिम्बित हो गई हैं। धार्मिक राजनीति के क्षेत्र में बौद्ध-आन्दोलन सचय, हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगों की घोर संज्ञित करता है। धार्मिक रूप ही इन दोनों सचयों का मूल कारण है इतिहास के ज्ञात होता है कि बौद्धों ने देहद्रोह कर हुएों का स्वामत केमम इसलिए किया कि वे भी आचार रूप में बौद्ध धर्म को मानते थे। देहद्रोह करने के लिए ठीक यही बहाना मुस्लिम भीग ने भी बुद्ध निकाला। मुसलमान और अरब दोनों एक ही 'सुरा' और एक 'रसूल' को मानते हैं इनके मूल भी दोनों को मान्य है। मुस्लिम भीग का कहना था कि मुसलमान और अरबों में धार्मिक समानता है और हिन्दू काफिर और बुतपरस्त है अतः मुसलमानों को हिन्दुओं के विरोध में अरबों की सहायता करनी चाहिए। इस प्रकार के देहद्रोही मुस्लिम भीग में ही नही काँव ल में भी बरे पड़े थे। देव में ऐसे लोगों की कमी नहीं थी। सामन्तधर्म कमी बार और बिदेसी उपाधिपारी सभी इस धेधी में थे। अन्तर्देशी और अटार्क ने राज्य लोग और पर मानसा के लिए चन्द्रगुप्त के प्रति नही राष्ट्र के प्रति विद्रोह किया और इस राष्ट्रद्रोह के लिए हुएों की घोर से पुरस्कार को 'महाराज की उपाधि मिली और अजन्तुकी को रत्नमञ्जुषा। १९२२ में श्रीचोरा के साथ देव के मनी प्रमूय नेता जमा में टूट कर दिए गए और देव में अचकर निराशा फैल गई। इनके का कारण थे। एक तो मुस्लिम भीग के विराय में साम्प्रदायिक संघटन को पुनर्न कर दिया था दूसरे, अजन्तु में जो जालिदारी आन्दोलन बना वह देव घर में फैल गया और उसने बौद्धों की अधिनात्मक नीति का प्रबल विरोध किया। हुएों के प्रथम आक्रमण को रोकने में स्वयंसेवकों का जो अक्षयता मिली उसमें इनमें उपर्युक्त दोनों कारणों का स्पष्ट प्रतिबिम्ब मिलता है। अटार्क के देहद्रोह में प्रजासत्ताकी नवी

प्रतिगामी शक्तियों का देगरोह कहा जा सकता है। कुभा के तट पर अकामित नटाक को बन्धी बनान का प्रायश्च करवा है पर स्कंदगुप्त बोधी की भांति हउय परिवतन धीर समा भावना पर विवकास रकता है। फलत दोनों स्थलों पर घसपलता ही प्राय बाली है। अकामित के उभ राजनीतिक विचार मानकवादियों के विरोध के स्वर से मिनत उपाय कहे जातत है।

मुसूर ऐतिहासिक काल में पाबुनिक सामाजिक समस्याओं के समाधान हू बने के प्रदलों के फलस्वरूप अश्वस्वामिनी की सप्टि हू है। पाय अितन मुधार या समाज धास्व क परीधारनक प्रयोग कैसे या मुने जाते हैं उन्हे अचिन्तित धीर नशीन समझकर हम बहुत भीम्र धमारीय कह देन हू किन्तु अश्वस्वामिनी में मेरा ऐसा विश्वास है कि प्राचीन धार्मिकत न समाज की दीय काल ध्यापिनी परम्परा में प्राय प्रत्यक विधानों का परीया रनक प्रयोग किया है। तात्कालिक बस्याणकारी परिवतन हुए है ? प्रसा के इस कल्पन में का महत्वपूर्ण निष्पन्न निराल का मकडे है। प्रथम यह कि प्रसाद का ध्यान विवाह माक्ष सबन्धी समकालीन मुधार की धोर या धीर डुमरे के उक्त मुधार को बांधनीय मानने हुए, नारतीय मिड करना जातन थे। स्मृति प्रथों में दिए यल निर्णय माधारण बनता क लिए यदि पापद्व नही तो कड़ होने के कारण अचित्त्य प्रथय हो जात है। सामाजिक परम्पराओं को मुधार चाहती है वह केवल धार्मिक प्रथों के धाधार पर सम्भव नहीं। उनके लिए प्राचीन काल में ऐसे मुधारों की प्रस्तावना उनके प्रति मकाए एव प्रम्त में उनकी विजय का नाटकीय विधान धाबन्धक है। यही कार्य प्रमाद ने अश्वस्वामिनी सम्बन्धी इतिहास को लेकर किया। यहाँ यह ध्यान रकता धाबन्धक है कि प्रमा के अस्तित्वगत वैवाहिक जीवन न उन्हें विवाह माक्ष उभ महत्वपूर्ण प्रश्न पर सोचने के लिए बाध्य किया। इसके अतिरिक्त प्रसाद का समकालीन युग नारतीय जीवन क प्रत्यक क्षेत्र में मुधारबाधी युग था। राजनीतिक क्षेत्र में १९०१ १९१९ और १९२२ में वैवाहिक मुधार हुए। सामाजिक मुधारों की धोर साधारण रकता का ध्यान धाकपित करने का प्रयास कांप स भी कर रही थी। अष्टोत्थार, अतिवाह शिक्षा, नारी धावरण धीर प्राय मुधार काय स के मुख्य उद्देश्य थे। जोध ऐसा पत्रिकाए नारी स्वातन्त्र्य धीर नारी धाम्कोनन की धोर प्रगतिशील कबन उठा रही थी धीर सरल्यती के प्रकाशन के साथ साथ महावीर प्रसाद द्विवेदी साहित्य धीर भाषा के परिवर्तन में लय भुके थे। इसी समय अश्वर धर्मा मुधरी न रामगुप्त धीर अश्वदेवी संबंध ऐतिहासिक धोय पर एक लेख लिखा धीर रामन एनियानिक सोसायटी की पत्रिका में अक्टेकर ने इनी विषय पर एक विज्ञाप पूर्ण लेख प्रकाशित किया। इतिहास के इस अग्रकाशित अक्ष पर सिस्वों लेखी धीर का राधकन ने भी विभिन्न हृत्तियों से विचार किया। राधकन

वास बनबी ने उक्त कथानक पर प्रुवा उपन्यास प्रस्तुत किया। प्रुवस्वामिनी का पुनर्जन्म इस उपन्यास की मूल समस्या थी और इतिहास भी केवल पुनर्जन्म का उल्लेख करता है। धर्म समाज के कारण विधवा विवाह पर्याप्त रूप से प्रचलित हो चुका था। विवाह मोक्ष की समस्या अभी तक क्यों की रवों की बनी हुई थी और उधकी भारतीयता को स्वीकार करने के लिए संभवतः कोई भी प्रस्तुत न था। धर्म की हिन्दू कोड के विवाह मोक्ष के प्रस्ताव को भारतीय जनता शंका की दृष्टि से देखती है। धर्म प्रथा ने मूल समस्या पुनर्जन्म के महत्व को कम कर अपने माटक में विवाह मोक्ष के प्रश्न को छठाने का प्रयास किया। प्रुवस्वामिनी सम्बन्धी कथानक इसके उर्ध्वगत उपयुक्त था। यही कारण है कि प्रुवस्वामिनी इतिहास की पृष्ठभूमि में एक समस्या नाटक बन गया।

गांधी ने चारित्रिक सुधार के उद्देश्य से प्रत्येक सुधारक को हृदय परिवर्तन करने का आदेश दिया था। कोई भी व्यक्ति मूलतः बुरा नहीं होता। उसमें चारित्रिक पुर्नकटाए होती हैं। धर्म सुधारक के लिए सबसे महान् मार्ग हृदय परिवर्तन करना है। हृदय परिवर्तन करने से पूर्व सुधारक के लिये अपने धर्म में धार्मिक परिवर्तन कर लेना आवश्यक है और इसके लिए धर्म-बलिदान तक की अपेक्षा की जा सकती है। वस्तुतः इस सिद्धान्त का महत्वा संकल्प 'अहिंसा' से है, धर्म अपने मूल रूपमें इसकी शक्ति भी कुछ धर्म में दूर तक चली गई है। प्रथा ने अपने नाटकों में कई ऐसे भ्रष्टाचार कथानकों की योजना की है जो इस नैतिक शिक्षा के लिए ही मनु हुए प्रतीत होते हैं। मन्त्रिका द्वारा प्रथेनचित चारित्रिक शिक्षा विच्छेदक शीर्षकाद्ययण और शक्तिमती का हृदय परिवर्तन इसी उद्देश्य की सामने रखकर हुआ है। धर्मशास्त्र मन्त्रिका संकल्पी कथानक को इतना धार्मिक महत्त्व देने का कोई धर्म नहीं। वासवी अनाथ और अनाथ का हृदय परिवर्तन कर देती है। 'स्कन्दगुप्त' में 'सर्वनाथ और 'मटार्क' के हृदय परिवर्तन के उदाहरण धार्मिक महत्त्वपूर्ण हैं। धर्म के स्वान पर धर्म। धर्म उदाहरण एक अनाथशाला एवं अनाथर कथा में धर्म है। बलि देत हुए शालाओं और बोटों के संघर्ष में प्रख्यात धीति जब अपनी बलि देन को प्रयुक्त हो जाता है तो शालाओं का हृदय परिवर्तन हो जाता है। 'राज्यधी' में इसी हृदय परिवर्तन के महत्व को चित्रित करने के लिए प्रारम्भ में ही शान्तिमत्त और गुरुमा की योजना हुई और उनको विभिन्न विभिन्न जगों में नामा काशी के लिए प्रयुक्त किया गया। कायाय प्रहण की घटना इसका समर्थन करती है। 'स्कन्दगुप्त' और 'धर्म स्वामिनी' साधारणतः इसके अर्थवाह है परन्तु आणुषय धर्म तक धाने धाने धर्म शिवापति को धमा कर समवा हृदय परिवर्तन कर देता है और बोट भिक्षुओं की तरह उसे नायाय घट्ट करके की धामा दे देता है।

प्रसाद के नाटकों को रोमांटिक कहा गया है परन्तु इसमें रत्ती भर भी सम्बन्ध नहीं कि प्रसाद ने अपने नाटकों में सबसे भारतीय भावों और नैतिकता की रक्षा की है। उनके नाटकों के पात्र (बिजय, विजया, प्रपञ्चबुद्धि, रामगुप्त, वैद्यगुप्त) सभी अपने-आपके से पतित होने के कारण निष्कृष्ट अन्त को प्राप्त होते हैं और उनके मनुष्य चरित्र संभलते हुए भी नैतिकता और धार्मिक रक्षा के लिए सदा प्रयत्नशील हैं।

अज्ञातशत्रु का कथानक

अज्ञातशत्रु पूर्णतः ऐतिहासिक नाटक है, अतः ऐतिहासिक नाटकों के विभिन्न स्वरूपों में इसका स्थान सबसे महत्वपूर्ण है। अज्ञातशत्रु की उपयुक्त कथा एक न होकर मगध कोसल और कोसाम्बरी में बटित क्रमशः विम्बसार, अज्ञातशत्रु, प्रसेनजित बिरहदा और उदयन संबंधी तीन कथाओं का समन्वय है। एक ही कथाओं का सर्वत्र स्वरूप कामी है और उनको एक सूत्र में आबद्ध करने वाले महापुरुष गीतम युद्ध हैं। अज्ञातशत्रु की कथा प्रचलित होने पर भी कथानक की गति में एकांत तीव्रता का प्रभाव है। इसका कारण यह है कि उपयुक्त तीनों कथाओं में तीन विभिन्न नाटकों के स्वतन्त्र कथानक होने की क्षमता है। इन तीन कथाओं को जोड़ने के लिए 'कामी-युद्ध' पर्याप्त नहीं है। यद्यपि इतिहास के अनुसार भी ये तीनों कथानक 'कामी-युद्ध' के द्वारा ही एक दूसरे से जुड़े हैं तथापि कामी-युद्ध नाटक के कार्य-व्यापार में इतना प्रबल नहीं हो पाया कि तीन स्वतन्त्र कथानकों का केन्द्र बिन्दु बनकर नाटक का सन्तुलन बनाए रख सके। ये तीनों कथानक तीन दिशाओं के अलग अलग पटरियों में चलते हुए कुछ ही काम के लिए कामी-युद्ध में एकत्र होते प्रतीत होते हैं किन्तु उसके ठीक बाद ही नाटक के अन्त तक पुनः तीन विभिन्न दिशाओं में मड़कुर लगे जाते हैं। पात्र या दर्शक को पहिले बीच-बीच में उन कथाओं की स्वतन्त्र शक्तियां मिलती हैं किन्तु दूसरे अङ्क के नबे हत्य तक पाठे-पाठे महापात्र उदयन सम्बन्धी कथानक हृदय रूप में समाप्त प्राय हो जाता है और केवल कुछ ही क्षण सूक्ष्म रूप में बाद में सामन्य पाठे हैं। तीसरे अङ्क के अन्ते हृदय में प्रसेनजित और बिरहदा रंजमय सहित जाती है। केवल अज्ञातशत्रु और विम्बसार ही अन्त तक गतिशील और जीवित प्रतीत होते हैं। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार करने के लिए यह आवश्यक है कि इन तीनों कथानकों को स्वतन्त्र रूप से ग्रहण किया जाय और उन सभी घटनाओं पर प्रकाश डाला जाय जिनका प्रभाव से इन सब का अभिस्वरुप बनाया है।

अज्ञातशत्रु सम्बन्धी कथानक के व्यापार महार्थय आठ-दश प वैनमूत्र के-रिगाथा अम्मपत्र घटका मुमयम किमाविनी विमय पिटर मग्निम निगाय घ सुतर निगाय अक्षराय कल्याणता जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। प्रमाद के नाटक के अनुसार अज्ञातशत्रु का प्रकार है—अज्ञातशत्रु की मां राजमाता अम्भारी की बसवती दृष्टि का दैताने हुए विम्बमार ने अज्ञात का सुवराज बना लिया और समस्त कामन भार उस पर छोड़ कर हय्य राजप्रसन्न प्राप्तम का हृदय दिया। किन्तु बाद

अज्ञातशत्रु
की कथा

प्रत्येक भागमें से भी धरातल में उनको स्वतंत्र नहीं रखा ।^१ मिशुको बौ द्वारा से खाली बोन पाठे देकर बेबी बासबी ने पिता में रहने में पाये हुए काशी राज्य की पाप विम्बहार के हाथ में देने का निश्चय कर^२ कोशल और कोशाम्बी में यह समाचार भेज दिया ।^३ कनकका कौशिकराज प्रयत्नरहित न काशी की प्रजा का सूचित कर लिया कि कर धरातलनु को न दिया जाय ।^४ उपर धरातलनु बुद्ध के प्रतिशुद्धी बेवशत की देखरेखमें मगध पर शासन कर रहा था ।^५ यह समाचार पाकर वेवशत की इच्छा थीर परिपद् की धारा से उसने विम्बहार और बासबी को बन्दी बन लिया और कोशाल से युद्ध करण का निर्णय कर लिया ।^६ इसी उद्देश्य से उसने समुद्रगुप्त को काशी में भगव का गुप्त प्रणयि बनाकर भेजा ।^७ पर बहु काशी में मारा गया ।^८ इस युद्ध में धरातल विम्बु हुया थीर काशी पर उसका अधिकार हो गया ।^९ बायल प्रयत्नरहित का पीछा किया किन्तु मस्तिका के घाघह से कोशाल की सीमा से ही लोट गया ।^{१०} कोशल और कोशाम्बी की सम्मिलित सेना ने मगध पर आक्रमण किया ।^{११} धरातलनु ने कोशल के साहसिक राजकुमार बिरदक की मैत्री स्वीकार कर युद्ध किया ।^{१२} उस युद्ध में धरातल के बन्दी होने के कारण^{१३} छपना ने योग से बेवशत को मगध से निकलसा दिया ।^{१४} उबर कोशल के कारणपर से बन्दी पड़े धरातल से बाजिरा प्रेम करने लगी ।^{१५} काशबी के प्रमल से धरातल मुक्त कर दिया गया ।^{१६} थीर बही बाजिरा ने उसका विवाह हो गया ।^{१७} पुत्र होने तक बहु धावस्ती में ही रहा ।^{१८} किन्तु पुत्र होते ही वह विम्बहार के पास समा याचना क लिए गया ।^{१९} समस्त परिवार के एकत्र हो जाने के बिस सुखद बातावरण की घना याध ही घुल्लि हुई उसे विम्बहार सह न सहा^{२०} समस्त उसकी बही मृत्यु हो गई ।

धरातलनु सम्बन्धी कबालक का पारम्भ छलना थीर बासबा क इन्द्र से होता है थीर इस इन्द्र के कारण क्मग धरातलनु थीर परमावती है ।^{२१} उक्त घटना का इतिहास से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं हो सकता । इसमें शन्देह नहीं कि विम्बहार की

(१) धरातल	११३६	(८) धरातल०	२७७
(२) बही	११३६ — ३७	(९) बही	२८८
(३) बही	११३६ ३६	(१०) बही	२१३६ — ३६
(४) बही	११३६, २१६७	(११) बही	२११०६
(५) बही	११३३	(१२) बही	२११०८
(६) बही	२१६६—६७	(१३) बही	३११०८
(७) बही		(१४) बही	३११११
(१३) धरातल०	३१११३ — ११३	(१६) बही	३११४३
(१६) बही	३१११७	(२०) बही	३११४२
(१७) बही	३११२८	(२१) बही	घ क १ दस्य १
(१८) बही	३११४		

करना होगा उसे भिक्षुमर्गों का पाठ नहीं पढ़ाया जाता । राजा का परमपथ भ्याय है वह दंड के आधार पर है । क्या तुम्हें नहीं मानूम की वह भी हिंसामुक्त है' ।^१ भूमिका में बिम्बसार के दूह कर्मह के मूस ऐतिहासिक आधार को स्वीकार करते वर भी नाटक में सीधिया डाह को इस दूह कर्मह का मूस कारण माना है । वस्तुतः इस दूह कर्मह का कारण वैसता का जैन धर्म के प्रति मुक्त ही था । बिम्बसारीयत की बर रता नहीं ।^२ जैन होने के कारण वैसता में इतिहास के प्रति धीर धर्मिक पहुँची आशा होगी चाहिए थी पर उपयुक्त उदाहरण म प्रसाद न उससे दूह की इतिहास का विरोध नरकाया है । प्रसाद या ता भूमिका में की हुई अथवा निज की मायता को क्या न प्रवाह म विभूत नर गये हैं अथवा अकारण ही उन्होंने यह इतिहास विरोधी परिवर्तन कर दिया है । ऐसा क्यों किया यह नहीं कहा जा सकता । बसे मुक्त सम्बन्धी समस्त घटना वास्तविक है धीर इसकी मूर्च्छित उक्त दूहकर्मह की पूर्व पीठिका के स्वरूप में निमित्त हुई है । जहाँ तक दूह कर्मह का प्रस है वह भी प्रामाणिक इतिहास न होकर ऐतिहासिक अनुमान अथवा सम्भावना ही है ।

नाटक की दूसरी घटना है युवराज बनाकर बिम्बसार का जालप्रस्य वरण करना । प्रसाद ने नाटक की भूमिका म इसका कारण दूह-कर्मह माना है धीर नाटक में भी उक्त घटना दूह-कर्मह का ही परिणाम है । जहाँ तक अज्ञात को राज्य सीजन का प्रस है इस सम्बन्ध में बोध धीर जैन धर्मो म विरोध नहीं है । विनय 'घटक' के अनुसार—'देवदत्त के सिलाने से अज्ञातसु खड्ग लेकर अपने पिता का बध करने ही जाता था कि मन्त्रियों ने उसे पकड़ लिया । उसने मन्त्रियों के सामने अपना अपराध स्वीकार कर लिया । मन्त्रियों न राजा को मनाह की कि समस्त पश्यवकारियों का बध करा दिया जाय, किन्तु बिम्बसार ने अपने पुत्र को उमा कर दिया धीर उसे राज्य भी दे दिया जिसके लिए वह इतना उतावला हो रहा था ।^३ जैन धर्मों के अनुसार—'धार्मिक को अपना उत्तराधिकारी बना दिया था किन्तु राज्य करने की उतावली में उसने अपने पिता को बली कर लिया ।'^४

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों से यह सा स्पष्ट है कि नाटक में बिम्बसार द्वारा अज्ञातसु को युवराज बनाकर राज-काज छोड़ने की घटना इतिहासांगुक्त है । किन्तु

- | | |
|-------------|-------|
| (१) अज्ञात० | ११२५ |
| (२) यही | २१५५ |
| (३) विनय | २१६६० |

इस परिस्थिति के उत्पन्न होने के मूस कारणों की खोज में प्रसाद बौद्ध इतिहास झाड़कर जैन इतिहास के समीप चले गये हैं। बौद्ध इतिहास में इस घटना से पूर्व देवदत्त की दुरभिमन्त्रिण एव भजात द्वारा पितृहत्या के कारण का जो उल्लेख हुआ है उसकी नाटक में कहीं चर्चा नहीं है। नाटक में बिम्बसार द्वारा भजात का यौवराज्याभिषेक जैन इतिहास के अनुकूल है। अन्तर केवल इतना है कि जैन इतिहास में न तो ग्रह-कलह की चर्चा हुई है और न बिम्बसार के बान प्रस्थाभंग की। उसके अनुधार तो बिम्बसार सीमा बन्दी ही बना लिया गया था। किन्तु बिम्बसार का बन्दी बनाया जाना बौद्ध धीर जैन दोनों इतिहासों में सम्मिलित है। प्रसाद ने अपने नाटक में बिम्बसार के बन्दी बनाए जाने का जो स्वर्णों पर उल्लेख किया है—प्रथम बार यह बाम्बरी के कथन से जात होता है^१ और दूसरी बार परिपक्ष के निर्लुपण से।^२ दोनों स्वर्णों पर कुचक्र का स्पष्ट देवदत्त ही है।^३ प्रथम स्वर्ण पर भीषण का एक कथन इस कुचक्र को स्पष्ट करता है और दूसरे स्वर्ण पर तो सम्पूर्ण हृष्य की योजना ही इसीलिए हुई है।^४ वस्तुतः एक ही ऐतिहासिक घटना को सीधे-से दो स्वर्णों में बाँट देने से नाटकीय लक्ष्य में व्याघात उत्पन्न होता है। घम्मपण से जात होता है कि बिम्बसार द्वारा राजसिंहासन का परित्याग कर देने पर भी देवदत्त ने भजातसन्तु को इस बान के लिए उत्साहित किया कि वह अपने पिता का वध करे। भजातसन्तु ने बिम्बसार के वध के लिए कई प्रयत्न किये। किन्तु बिम्बसार के 'साठीसस होने से उस पर मत्स्यों का कोई प्रभाव नहीं हुआ। इस पर यह निर्लुपण किया गया कि बिम्बसार को 'तापन-मेह' में बन्दी बनाकर उसे निराहार रमा जाय और वहाँ भजातसन्तु की माता के प्रतिरिक्त किसी को जाने की आज्ञा न हो।^५ बौद्ध इतिहास की इस घटना की चर्चा ही नाटक में नहीं हुई है बल्कि बन्दी बनाने का उल्लेख मात्र हुआ है। जैनों के 'भाष्यक सूत्रों' के अनुसार दण्डिन अथीर और सविन्ध होकर पिता को कारागृह में डाल दिया। वहाँ उसकी माता बिरसना अपने पति बिम्बसार की मतिपूर्वक देखभाल करती थी।^६ इस प्रकार जैन कथाओं में भजातसन्तु पितृहत्या के वध में नहीं है। यहाँ भी प्रसाद ने जैन कथाओं का ही आशय लिया है। अन्तर केवल इतना है कि जैन-कथाओं में केवलता बिम्बसार की सेवा करती है और 'भजातसन्तु' में बाम्बरी। यह भी बौद्ध-कथाओं के पूरणतया

- | | |
|--------------------|---------------|
| (१) भजात | १।३६ |
| (२) बन्दी | २।९७ |
| (३) बन्दी | २। पहला हृष्य |
| (४) घम्मपण घट्टकथा | १।२३३ |
| (५) घम्मपण घट्टकथा | १।२३३ |
| (६) भाष्यक-सूत्र | ६८२-८३ |

धनुस्त्र नहीं है। बौद्ध-कथाओं में वासवी धजातस्तु को माँ है पर नहीं उसकी विमाता।

दो स्तंभों पर बन्दी बनाय जाने की खर्चा के बीच काशी राज्य की घटना घाटी है। "हरित मान" और "बड़की बातक" से प्राप्त होता है कि धजातस्तु और प्रसेनजित के बीच काशी प्रांत के लिए बिम्बसार और वासवी के जीवन-काल में कोई संघर्ष नहीं हुआ था। धजातस्तु ने अपने पिता की हत्या कर दी है और उसी शोक में कोहमा बैबी का भी प्राणान्त हो गया यह जानकर प्रसेनजित न काशी राज्य मगध को देना प्रस्तावित कर दिया। इस प्रकार काशी राज्य की घटना बिम्बसार की मृत्यु (हत्या) के बाद होनी चाहिए थी। प्रसार ने बिम्बसार की कीर्तिनामिका में ही इस घटना का उल्लेख कर इतिहास का विरोध किया है। उन्होंने काशी राज्य के लिए नए जाने वाले युद्ध के स्वतंत्र कारणों की उद्भावना की है। इसका कारण भी स्पष्ट है। प्रसार ने धजातस्तु को विभू हत्या के अपराध से मुक्त कर दिया है। घट काशी संघर्ष के लिए गभीर कारणों की जोख धारण कर भी। बिम्बसार और वासवी का बहुत काल तक बन्दी स्थिति में रहना इसका एक घटनत्व स्वामाधिक कारण है। नाटक में प्रसेनजित ने इसलिए काशी जनपद वापस ले लिया है।

धजातस्तु नाटक के अनुसार वासवी ने काशी के सम्बन्ध में कोहमा और कौशाम्बी को संदेश भेजा। जहाँ तक कोहमा को संदेश भेजने का प्रश्न है उसकी ऐतिहासिक संभाव्यता पर शकिक तर्क की सम्भावना नहीं किन्तु कौशाम्बी के सम्बन्ध में बौद्ध विचार करना आवश्यक है। नाटक से प्राप्त होता है कि मगध और कौशाम्बी के बीच वैवाहिक सम्बन्ध था। धजातस्तु की भूमिका में प्रसार इस बात को स्वीकार करते हैं कि माघ के नाटक "स्वप्नवासवदत्ता" की पधावली मगध राज दरबार की बहन थी और दरबार वस्तुतः धजातस्तु का ही दूसरा नाम था। प्रसार की यह मान्यता इतिहास की महत्वपूर्ण सम्भाव्यता है। घट कौशाम्बी को संवेष्ट भेजने की घटना ऐतिहासिक न होत हुए भी उपर्युक्त तर्कों के आधार पर सम्भव प्रबन्ध हो जाती है।

नाटक में धजातस्तु ने बेबरह के घाटों पर बसकर मगध का शासन-भूषण किया है। बौद्ध इतिहास के पास इस घटना का कोई प्रमाण नहीं किन्तु विषय

(१) नाटक	२।२१६	
(२) गी	४।२८३	
(३) धजातस्तु	(भूमिका)	पृ० १३

पितृक, दीर्घनिकाय धीर सुमयस विनाशिणी के अनुसार देवरत ने भजातल्लु से कहा—“तुम अपने पिता की हत्या कर राजा बनो धीर मैं बुद्ध की हत्या कर शासक बनता हूँ ।”^१ भजातल्लु ने ऐसा ही किया, इससे भजातल्लु पर देवरत का प्रभाव धीर इस घटना की ऐतिहासिक सामान्यता का समर्थन किया जा सकता है ।

समुद्रवत्त को काशी में गुप्त प्रसिद्धि बनाकर भिजने की घटना पूर्णतया काल्पनिक है । किन्तु काशी में स्वामा बेध्या के प्रेमी के स्वान पर समुद्रवत्त के लक्ष से भारे जाने की घटना का आधार कल्पित जातक है । उक्त जातक में स्वामा ने अपने प्रेमी एक श्रेष्ठ-पुत्र को एक सहस्र मुद्रा सहित नगर-कोठवास के पास भेजकर वहाँ कोर के स्वान पर उसे शूनी पर बड़ना दिया ।^२ इस घटना को ऐतिहासिक नहीं कहा जा सकता धीर भजातल्लु सम्बन्धी इतिहास से तो इसका कोई सम्बन्ध ही नहीं है । प्रसार ने समुद्रवत्त की सृष्टि कर उसके गुप्त प्रसिद्धि बनावे जाने की घटना का सृजन किया धीर जातक की इस घटना को भी इतिहास के सामने जोड़ दिया । इस प्रकार घटना को आधार भी मिला धीर ऐतिहासिक संभावता भी ।

जातक^३ समुत्त निकाय^४ धीर बम्पपद घट्टकपा^५ से ही जात होता है कि कोशल धीर मयस के युद्ध में पहिले भजातल्लु की विजय हुई धीर उसने प्रसेनजित को दाबस्ती तक बंदेड़ दिया । उपर्युक्त विवरण भजातल्लु जातक के पूर्णतया अनुकूल है । प्रसेनजित बड़ या धीर भजातल्लु उदय बुक ।^६ अतः उक्त युद्ध में प्रसेनजित का पावन होना सम्भव है । भजातल्लु ने कोशल की सीमा तक प्रसेनजित का पीछा किया यह भी उक्त बौद्ध इतिहास के अनुकूल है । किन्तु भजातल्लु वहीं से लौट क्यों गया, इसका कोई कारण इतिहास नहीं बतलाता । साधारणतः यह अनुमान लगाया जा सकता है कि दाबस्ती को विजय करना सम्भव उतना प्राप्त न हो अथवा अपने मामा के राज्य को अपने राज्य में मिला लेना भजात का मंथन ही न रहा हा । प्रसार ने “भजातल्लु” में इसके कारण की स्वतन्त्र कल्पना की है धीर भजातल्लु के जात की सीमा से ही लौट जाने का सारा श्रेय बन्धुम परत

- (१) विनय २।१६ शीघ्र १।८६
सुमयस २ १।१११ १६ देवतल्लु घट्टकपा १०२ ।
- (२) कण्ठक जातक ४।२।११५
- (३) जातक ४/१४२
- (४) समुत्त १/८४-८६
- (५) बम्पपद १/२४१
- (६) बड़की जातक ४/२८१

की पत्नी सम्मिका को प्रगत किया है। इतिहास इनका साजी नहीं है। इसमें सम्झे नहीं कि इतिहास के बीच पर स्वतन्त्र उद्भावना करने का प्रसार का पूरा धर्म कार था।

दूसरी बार पुन युद्ध हुआ। इस युद्ध के सम्बन्ध में प्रसार में दो नवीन योजनाएँ की हैं जिसका अनुमोदन इतिहास में नहीं होता। नाटक में कोशल घोर कीताम्बी की सम्मिलित समाप्तों ने मगध पर आक्रमण किया है। विसा हन वासवी के मन्देश के सम्बन्ध में यह प्रमाण की ऐतिहासिक माप्यता को देखते हुए समाप्त पटना नहीं जा सकती है। ऐतिहासिक नहीं। इस स्थान पर अज्ञात घोर विद्वक की संधि की चर्चा भी हुई है जिसके सम्बन्ध में इतिहास में कोई सामग्री नहीं मिलती। प्रसार की उक्त योजना समाप्त होने के साथ ही साथ अत्यन्त नाटकीय भी है। एक ही काम में दो सम्बन्धित राज्यों के दो पितृ-विरोधी राजकुमार यदि किसी समान शत्रु के लिए अपने ही माता-पिता के विरोध में एक दूसरे से संधि घोर मैत्री कर लें तो कोई आश्चर्य नहीं। विद्वक ने प्रयोजित का विरोध किया था यह प्रमाणित है। घोर अज्ञातशत्रु तो पितृहत्या के रूप में प्रख्यात है ही। अतः यदि राज्य शासन से विद्वक ने अपने पिता के विरोध में अज्ञात से मैत्री कर ली हो तो यह पूरा ऐतिहासिक घटना न सही अत्यन्त समाप्त नाटकीय घटना अत्यन्त मानी जायगी।

इस द्वितीय युद्ध में अज्ञात बन्दी हुआ घोर नहीं बाजिर से उसका विवाह भी हुआ। इस विवाह के परिणामस्वरूप प्रयोजित ने पुनः बाघों का प्रान्त उन्ने देह के रूप में दे दिया।^१ बाजिर का प्रान्त घोर बन्दीपूह की घटना पूरणया सम्मिलित है। किन्तु यह घटना ऐतिहासिक घटना (विवाह) के अन्तिम परिणाम का समाप्त कारण है। उसके विरोध में नहीं।

देवदत्त का मन्देश से निष्वासन भी काव्यनिक है। इतिहास के अनुसार युद्ध को मारने के प्रयत्नों में बार बार असफल होने पर एक बार देवदत्त स्वयं ही युद्ध से मिलने जा रहा था। माग में एक सरोवर में जल पीते ही उसका शाण्ड हो गया।^२ प्रसार में अज्ञात क बन्दी होने के पर्याप्त समय बाद इस घटना की सूचना दे दी है। प्रान्त यह उल्टा है कि अज्ञात के बन्दी होने घोर देवदत्त की मृत्यु के बीच देवदत्त ने क्या किया? हमका उत्तर यही है कि अज्ञातशत्रु के बन्दी बना लिये जाने के अन्तर्गत देवदत्त मगध का मगध के शासन पर रहा सहा प्रमाण भी समाप्त हो गया होगा। अतः अपने पुत्र क बन्दी होने का कारण उन्नी को मान कर उसको

१ सामन्वज्जटन मुत्त १/८४—८६, नाटक ४।३४२ धम्मपर टीका ३।२३६

२ बौद्ध कानीन नाट्य (अभारत घट्ट) पृ० २४

मगम से निष्काशित कर दिया होगा। प्रसाद ने यहाँ ऐतिहासिक संभाव्यता का सहारा लिया है। अन्यथा सक्त घटना पूर्णतया कास्मिक ही मानी जायगी।

पुत्र उत्पन्न होना पर प्रजातन्त्र को पितृ-स्नेह का मूल्य जान पड़ा और पिता को बन्धन मुक्त करने के लिए वह कारागृह में गया। प्रसाद ने अपनी धूमिका में बुद्धबोध को इन घटना का धामार भागा है। इस घटना का 'यही रूप बीर्षनिकाय' में भी उपलब्ध है। उससे ज्ञात होता है कि प्रजात के पुत्र स्नेह ने ही उसे पितृ-स्नेह का स्मरण कराया। किन्तु जब वह पिता के पास पहुँचा तब तक उसका अन्तिम समय था गया था। इसके ठीक विपरीत बम्मपद^१ से ज्ञात होता है कि पिता को पूर्ण कष्ट देने के उपरान्त भी मृत्यु की प्राप्ति होता न देख प्रजात ने नापित के द्वारा उसकी नसें कटवा दी और इस प्रकार सक्त साब से उसकी मृत्यु हुई। जैन इतिहास में पुत्रोत्पत्ति की घटना का इतना महत्त्व नहीं है। प्रजात को अपने माँ बेल्सना द्वारा ज्ञात हुआ कि उसके पिता ने उसकी पीड़ा कम करने के लिए उसकी नसाब अरी अंगुली को चूस लिया था। अपने प्रति पिता का इतना अलक्ष्य प्रेम जानकर उसका मन विस्फुल्ल परिवर्तित हो गया। मैंने अपने पिता के साथ बड़ा दुःख व्यकृत किया है^२ यह सीधकर वह गुरन्त कारागृह में गया और सोहे की गवा से उसके बन्धनों को तोड़ आया। किन्तु ऐतिहासिक ने पुत्र के इस प्रकार धार्मिक मान्यता के भयभीत होकर बंधन छोड़कर प्रजात कर आया।^३

प्रसाद की कथा यहाँ बम्मपद और धार्मिक सुत्रों के अनुकूल न होकर बीर्षनिकाय पर आधारित है। किन्तु अपने पुत्र के होने तक प्रजातन्त्र भावस्ती में ही रहा होगा इस घटना का कोई धामार नहीं है। नाटकीय दृष्टि से भी इस योजना की कोई धार्मिकता नहीं प्रतीत होती। मगम का आसम कार्य छोड़कर एक वर्ष तक प्रजात का धारस्ती में ही रहना संभाव्यता के विरुद्ध है। नाटक में विम्वरार की मृत्यु की घोर भी स्पष्ट उक्ति नहीं किया गया है। नाटक के अनुसार विम्वरार के बीर्षन के अन्तिम क्षण बिस हर्ष और अस्तास के बातावरण में बीते हैं वे सचमुच ही सही प्रकार बीते जाये प्रकथा नहीं। बीर्षनिकाय से भी इस पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। अधिनाम ऐतिहासिक उल्लेखों से यही निष्कर्ष निकलता है कि विम्वरार कुछ बनेक भूख और मय के बातावरण में मरा था। परत प्रसाद के नाटक की अन्तिम घटना ज्ञात इतिहास से जोड़ा-सा हट गई है। इसके इतिहास को अति तीव्रवय पहुँचती है किन्तु इससे बम्पूर्ण नाटक सुजात होते होते भी सुजात की पार

१ बीर्षनिकाय, साम्बकम सुत की टीका पृ० १९

२ बम्मपद सट्टकथा १। २१३

३ धार्मिक सूत्र १८१-२३ धारि

सुक जाता है। इस प्रकार यही प्रसार ने नाटकीय परम्पराओं के सत्य की रक्षा के उद्देश्य से मूस इतिहास में काल्पनिक मोड़ दे दिया है।

प्रसेनजित विरुद्धक की कथा का आधार यम्पवर घट्टकथा, संयुक्त निरुद्धक महाकथन बीषनिकाय विनयपिटक, आतक प्रश्न तथा दिव्यावधान है। उक्त कथा प्रथम अष्टक के सातवें दृश्य से प्रारम्भ होती है।

कोशल के सम्राट् प्रसेनजित को यह समाचार मिला कि अजातशत्रु ने विन्ध्य नगर को बन्दी बना लिया है। अतः उसने महादेवी वासवी की इच्छा के अनुसार काली की प्रजा के नाम आश्रापत्र मित्य दिया कि अजात को काली का कर न दिया जाय। इसी प्रसंग में अपने पुत्र विरुद्धक की वृष्टता से रुष्ट होकर प्रसेनजित ने उसे

प्रसेनजित
की
कथा

राज्याधिकार से वंचित कर दिया और उसकी माता को राजमहिषी के पद से। विरुद्धक की माता शक्तिमती वास्तव में शाक्यों की वासी पुत्री थी और प्रसेनजित से उसका विवाह छल से किया गया था। अपनी माता के द्वारा उत्तजित किय जाने पर विरुद्धक ने प्रतिज्ञा की कि यह शाक्यों का संहार कर इस

अपमान का प्रतिबोध लेगा। पिता से निराहृत विरुद्धक शैलेन्द्र नाम से डारू बन बैठा। संयोगवश काली की गरुिका श्यामा उससे प्रेम करने लगी। अतः जब कोशल का सेनापति बभ्रुव सीमाप्रान्त के लिच्छवियों को पराजित कर लौटा तो उसके गौरव से प्रसेनजित को ईर्ष्या हुई और उसने बभ्रुव को काली का सामन्त बनाकर भेज दिया और शैलेन्द्र डारू को लिख दिया कि यदि वह बभ्रुव की हत्या कर देगा तो उसके सामन्त अंपराज बना कर दिये जायेंगे। शैलेन्द्र ने छल से बभ्रुव की हत्या कर दी। यह पकड़ा गया और काली के अश्वनायक ने उसे मृत्यु दण्ड दे दिया। अपने प्रेमी शैलेन्द्र को बचाने के लिए श्यामा ने अपने नवान्त प्रेमी समुद्रवत को एक सहस्र मुद्रा देकर अश्वनायक के पास भेज दिया। श्यामा की इच्छा के अनुसार अश्वनायक ने शैलेन्द्र को मुक्त कर दिया और रातों रात समुद्रवत को लूरी पर चढ़ा दिया। मस्तिष्क को बभ्रुव की हत्या की सूचना ठीक उस समय मिली जब वह आनन्द और सारिपुत्र को भोजन का निमन्त्रण दे चुकी थी। किन्तु उसने अत्यन्त ईर्ष्य के साथ मुद्रा पर किसी प्रकार की भी विवृति न माने देकर उनको भोजन कराया। उसके पति का हत्यारा प्रसेनजित काली के कुछ र्य हार गया पर उसने बिना किसी भेदभाव के बायस प्रसेनजित को भी रक्षा की। उसके भ्रातृजे बीर्षकारायण ने उसकी इस उदारता का विरोध भी किया। अन्ततः प्रसेनजित आत्मत्यागि से घर गया और अन्त बीर्षकारायण को बभ्रुव के स्थान पर अपना सेनापति बना दिया। उपेक्षिता रात्री शक्तिमती के उपादान पर बीर्षकारायण ने विरुद्धक से मैत्री स्थापित कर ली। अतः शैलेन्द्र (विरुद्धक) ने श्यामा का मत्ता छोड़ कर उसका सर्वस्व छीन

लिया और मुष्ट सेना का संगठन करने लगा । उसने अजात से भी मीठी कर ली लेकिन काशी के दूसरे युद्ध में वह बायल हो गया और मल्लिका ने ही सेना सुधूपा से उसे ध्वस्त किया । विद्वत्क ने मल्लिका की इस सेना का वनत पर्व किया और अपने पूर्व प्रेम का स्मरण करतकर पुनः प्रेमयाचना की । मल्लिका ने उसे फटकार दिया । स्यामा की हत्या का अभियोग गौतम पर लगा किन्तु स्यामा के पीडित हो जाने से गौतम निर्दोष सिद्ध हो गये । काशी के द्वितीय युद्ध में प्रसेनजित बिजयी हुआ और उसने अजात को बन्दी कर लिया । वासवी के कहने पर प्रसेनजित ने अजात को मुक्त कर उससे अपनी कन्या वाजिपुत्र का विवाह कर दिया और काशी का राज्य भी उसे दे दिया । मल्लिका की आज्ञा से वीरकाम्यण ने प्रसेनजित का विरोध छोड़ दिया और अत में उसी की इच्छा और गौतम की प्रेरणा ने विद्वत्क और शक्तिमती को भी प्रसेनजित ने क्षमा कर दिया ।

प्रसेनजित व विद्वत्क सम्बन्धी इस कथा का आचार ऐतिहासिक है । बम्मपद से ज्ञात होता है कि प्रसेनजी युद्ध का समकालीन था ^१ युद्ध पर उसकी मध्यि मास्ता थी ।^२ ज्ञातकों से ज्ञात होता है कि अजातशत्रु ने बिम्बसार का वध कर दिया । उसके शोक में कोसलदेवी की मृत्यु हो जाने पर प्रसेनजी ने काशी नाम का स्वतन्त्र राज्य ले लिया ।^३ किन्तु अजातशत्रु के कथानक के सम्बन्ध में विचार करते हुए हम कह चुके हैं कि नाटक में बिम्बसार-वध सम्बन्धी कथावक अत कथाओं पर आधारित है । इसके परिणामस्वरूप बिम्बसार अजातशत्रु से संबद्ध होने के कारण प्रसेनजित सम्बन्धी कथानक में भी कुछ परिवर्तन स्वाभाविक है । काशी राज्य की बटना ही इन दोनों कथानकों को परस्पर जोड़ती है । अतः परिवर्तन भी उसी बटना में होना अनिवार्य है । इसीलिए बौद्ध इतिहास के विद्वत् काशी की बटना बिम्बसार और कोसलदेवी (वासवी) की भीविठावस्था में हुई है और वासवी ने मुबत द्वारा जो समाचार प्रसेनजित को भेजा था वही काशी-संबन्ध का मुष्ट कारण हो गया है ।

विद्वत्क सम्बन्धी कथानक का आचार बौद्ध इतिहास है । बम्मपद^४ और ज्ञातकों^५ से ज्ञात होता है कि प्रसेनजी ने सात दिनों तक युद्ध और उसके एक सहस्र सिप्यों को मिला थी । सातवें दिन उसने युद्ध से प्रार्थना की कि जिस अपने पाँच

- (१) बम्मपद अट्टकथा १।३।३८
- (२) अजात टीका ३।२ महावंश २।१२०
- (३) नाटक २।२३ ४०३ ४।१४२
- (४) बम्मपद अट्टकथा १।३।३६
- (५) नाटक १।१३३ ४।१४४

सौ शिष्यों सहित प्रासाद में भोजन करें। कुछ स्वयं मही घाये किन्तु उम्होंने अपने स्नान पर घानन्द का भेष दिया। घानन्द नित्य पाँच सौ मिश्रुषों सहित घाता था किन्तु पसेनदी की उपेक्षा के कारण मिश्रुषों ने मित्रा के लिए घाना छोड़ दिया। अन्त तक चकेला घानन्द ही मित्रा के समय प्रासाद में उपस्थित होता रहा। जब यह बात पसेनदी को ज्ञात हुई तो मिश्रुषों का विरवास पुन प्राप्त करने के लिए उसने पीतम के सम्बन्धी शाक्यों से विवाह सम्बन्ध की इच्छा प्रकट की। शाक्य पसेनदी के दासीन से ब अपने को उससे उच्छ-भूम का मानते थे। घट उम्होंने पसेनदी के प्रस्ताव को अपने भुन का अपमान समझा किन्तु पसेनदी के भय से अपने प्रधान सामन्त महानाम की दासी माघमुष्ठा से उत्पन्न वासमक्षतिया से पसेनदी का विवाह कर दिया। विच्छक (बिच्छक) उसी का पुत्र था। एक बार बिच्छक कपिलवस्तु गया। दासी पुत्र को प्रथम करने के भय से बिच्छक (बिरच्छक) से छोटी वय के सभी भुन पुत्र उन दिनों कपिलवस्तु से बाहर चले गये। बिच्छक जब वहाँ से लौटने लगा तो उसका सेवक प्रामार में कुछ भूम जाने के कारण वापस पीनर गया। वहाँ उसने देखा कि एक शाक्य दासी बिच्छक को दासीपुत्र बहकर घामिमाँ दे रही थी और उक्त घासन को भी रूही है जिस पर बिच्छक बैठा था। बिच्छक इस प्रकार अपमानित होकर लौटा और उसने शाक्यों से बहमा लेने का प्रण किया। जब इस घटना का ज्ञान प्रसेनजित को हुआ तो उसने वासमक्षतिया एवं बिच्छक दोनों को राज्य सम्मान से वंचित कर साधारण दासों की धरणी में रख दिया।

प्रसाद ने इस प्रसंग की खर्चा करत हुए भी उक्त घटना में जान बूझकर परिवर्तन कर दिया है। 'अजातशत्रु' के प्रथम अंक के सौठवें इन्ध से ज्ञात होता है कि प्रसेनजित ने लक्षितता के दासी-पुत्र होने एवं इस कारण बिच्छक के भय मानित होने से घमस्वरूप नहीं किन्तु अजातशत्रु और बिम्बसार सम्बन्धी प्रसंग पर बिच्छक के तर्क से दृष्ट होकर^१ उन दोनों को अपरत्य किया। उक्त परिवर्तन से कथागत में कोई विलेप प्रसन्न नहीं पड़ता। सम्भव है इससे प्रसाद प्रसेनजित को कुछ उधारपेता प्रकट करना चाहते हों। शाक्यों का संहार करने की प्रतिज्ञा बौद्ध इतिहास के अनुसार कपिलवस्तु में ही करनी गई थी।^२ घट माता द्वारा उक्त जित होकर उक्त प्रतिज्ञा करना ऐतिहासिक नहीं है—इस घटना कम के अनुकूल इसे संभाव्य माने ही मान लें।

मल्लिका के प्रति बिच्छक-श्रेय की कल्पना प्रसाद की अपनी है। उक्त घटना का शासी इतिहास नहीं है। यहाँ यह बात सभ्य में नहीं पाती कि घटना के

१ अजात १।१२-१३

२ अमनद १।१३२

इस कास्मिक स्वप्न की धारम्यकता क्यों पड़ी ? वस्तुतः देखा थाय तो नाटक में मस्मिका से लिच्छक का प्रेम-व्यापार नहीं के बराबर है । इस प्रेम-अवस्था का यहि अस्तेज नहीं हावा तो भी नाटक की कथानस्तु में किसी प्रकार की बाधा नहीं पाती । धार्मिक से धार्मिक इतना कहा जा सकता है कि इससे एक ठो मस्मिका के पातिवत्य पर प्रकाश पड़ता है और दूसरे लिच्छक की नीच प्रवृत्तियाँ धार्मिक सुतकर खेम पाती है धर्मवा इस प्रसंग की व्यवहारणा धामावश्यक कही जापणी ।

बन्धुस सम्बन्धी बटना बीड इतिहास के अनुक्रम है । बन्धुस कुशीनाराय का एक मस्त सामन्त था । वह लखिमता में पसेनवी का सहाठी रह चुका था । लखिमता से लौटने पर जब वह कुछ कला का प्रदर्शन कर रहा था तो धर्म सामन्त कुमारों ने उनके साथ परीक्षा में धूल किया । इससे क्रुद्ध होकर वह भावस्ती चला गया वहाँ पसेनवी ने उसे अपना सोमापति नियुक्त किया । बन्धुस की पत्नी का नाम मस्मिका था । मस्मिका को 'बोहर' हुआ कि वह बीडाली के कमल-सर का बसपात करे । उक्त कमल-सर का बल केवल बीडाली के राजपुरुषों के धर्मिक के लिए ही नाम में लाया जाता था । बन्धुस ने मस्मिका को रथ पर बैठावा और रक्षाको को मवाकर उसे कमल-सर का बसपात कराया । लिच्छवि कुल-पुत्रों ने बन्धुस के रथ का पीछा किया । जब उनके १०० रथ एक रेखा में हुए तो बन्धुस ने एक ही तीर से सब कुल पुत्रों को भीष दिया । उनको इसका धामास उक्त न हुआ किन्तु बन्धुस के प्राग्रह से जब एक ने अपना कमरबन्ध खोला तो उसकी तुरन्त मृत्यु हो गई । बन्धुस के श्वाय सम्बन्धी एक निर्णय पर प्रसन्न होकर पसेनवी ने उसे श्वायाधीन बना दिया । धर्म श्वायधीनों ने इन्हीं से राजा के काम करने प्रारम्भ किये । इससे प्रभावित होकर पसेनवी ने बन्धुस एवं उसके पुत्रों को सीमा प्राप्त के बिब्रोह ना बमन करने भेष किया । लौटते समय मार्ग में ही पसेनवी की प्राजा से उनकी इत्या कर दी गई । इस दुःख बटना का समाचार मस्मिका को उस समय मिला जब वह सारिवुज और मानन्द के साथ १०० भिक्षुओं को भोजन करा रही थी । मस्मिका ने उक्त सूचना को अपने बस्त्रों में छिपा लिया और पूर्ववत् कार्य में संलग्न रही । सारिवुज ने इस बर्ष की प्रसंता की । मस्मिका ने अपनी पुत्र-बन्धुओं को यह समाचार भेजकर कहा कि वे राजा के प्रति कोई दुर्भावना न रखें । पुत्रपत्नों से यह सूचना पाकर पसेनवी ने सबसे श्रमा मापी और उसको कुछ देना चाहा । मस्मिका ने कुशीनारा लौटने की इच्छा प्रकट की । पसेनवी ने बन्धुस के मापिनेय धीर्षकारामण को सोमापति बनाया ।

(१) संस्कृतनिवाय ११०४ (पट्टकरण मुत)

—किडई सोइ एज (पाली टैबस्ट सोसाइटी) ११०१ नं० ३

(१) बपन्धुस सूदामी मस्मिकम टीका—२११२३

बौद्ध इतिहास की उपर्युक्त घटना में प्रसाद ने पर्याप्त परिवर्तन किये हैं।
 स्मृति के बोद्ध के प्रसंग में प्रसाद ने "बैजाती के कमल-सर" के स्थान पर "पावा
 प्रभु-सर" का उल्लेख किया है। यह स्पष्ट ही ऐतिहासिक भ्रान्ति है। नाटक
 उसे काशी का सामन्त बनाया गया है न्यायाधीश नहीं। मूस कथा के अनुसार
 न्यायाधीश बनाये जाने के उपरांत ही बग्गुस के प्रति पसेमधी के मन में सन्नेह उत्पन्न
 गया था किन्तु नाटक में बग्गुस पर सन्नेह इसलिए हुआ है कि वह सीमा
 प्रान्त के विद्रोह को दबाकर कोशल की जनता का प्रिय हो गया था। यहाँ घटना
 में भी पर्याप्त उलट केर है। बस्तुतः सीमाप्रान्त के विद्रोह को दबाने की घटना
 ठीक बाद ही बग्गुस की हत्या कर दी गई थी। बग्गुस विजयी होकर कोशल
 गीटा ही नहीं। प्रसाद ने बग्गुस की हत्या बिच्छुक के साथ काशी में लड़े गये धूल
 एवं इन्द्र मुंड में करवाई है यह कल्पना प्रभुत है। सारिपुत्र और धानन्द सम्बन्धी
 प्रसंग इतिहास के अनुकूल है। यहाँ प्रसाद ने पाँच सौ सिन्धुओं का उल्लेख कर, नाटक
 की सीमा का ध्यान रखा है। साथ ही दासी द्वारा स्वर्णपात्र के टूट जाने की घटना
 का उल्लेख कर नाटकीय सौन्दर्य की रक्षा ही नहीं बूझि भी की है। नाटक में मल्लिका
 की पुत्रवधुओं की चर्चा नहीं हुई है। सारिपुत्र की सिन्धा और बौद्धधर्म के प्रभाव
 से मल्लिका स्वयं ही दुर्भागिनी और उदासीनता न रखने की प्रतिज्ञा करती है। यह
 परिवर्तन अपेक्षाकृत अधिक नाटकीय है। नाटक में पसेमधी की क्षमा माचना उद्य
 समय हुई है जब मल्लिका काशी मुंड के उपरान्त उसकी रक्षा करती है। कारागृह
 को भी वहीं पर सेनापति का पद प्रदान किया गया है। पसेमधिव की परिचयों की
 योजना वास्तविक है, किन्तु उक्त कल्पना से एक तो काशी को केन्द्र मानकर नाटक
 की समस्त महत्वपूर्ण घटनाओं को वहीं एकत्र करने की प्रसाद की योजना पुरा होती
 है और दूसरे मल्लिका के चरित्र का वैकल्प और भी बिलर घाटा है। संभवत
 बग्गुस को काशी का सामन्त बनाकर सेजने में भी प्रसाद की यही भावना कार्य कर
 रही हो। बौद्ध इतिहास का बिबुद्धम कभी भी साहित्यिक नहीं बना। बस्तुतः यहाँ
 प्रसाद ने घटना बैबिष्य उत्पन्न करने के लिए "अणुवेर नाटक"^१ की घटना की
 स्थान दे दिया है। उक्त नाटक की दार्ष्टिकी श्यामा और के रूप में उत्पन्न बोधिसत्व
 के रूप पर साक्ष्य हुई थी। यहाँ प्रसाद ने चरित्र-बैबिष्य के लिए बिबुद्धम को
 बोधिसत्व के स्थान पर रखकर साहित्यिक बना दिया है। नाटक में श्यामा और
 विरटक का प्रेम इतना घातक है कि वह अस्वामाधिक हो हो गया है। हम
 पहिले कह चुके हैं कि बग्गुस की हत्या धूलपूर्वक और राजाबा ने सीमाप्रान्त के पथ
 पर हुई थी अलग (विरटक) के धूम से काशी में नहीं। राजाबा की चर्चा नाटक
 में भी हुई है।

बम्बपट्ट और आठकों से ज्ञात होता है कि शीर्षकारायण ने बंधुस की हत्या का प्रतिशोध लेने की ठानी और जब पसेनवी ससुम्पा ग्राम में बुद्ध के दर्शन के लिए गया तब शीर्षकारायण ने उसके छत्र चंबर सेकर बिहुडम को कोबल के सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया । दर्शन करके सीने पर पसेनवी की केवल से ही वस्तुएं बाहर मिलीं—ससुका घसक और उसकी बासी । पसेनवी प्रजातसत्रु से सहायता पाने के उद्देश्य से राजपूह की ओर गया किन्तु नगर द्वार पर ही मृत्यु को प्राप्त हो गया ।

प्रसाद ने इस घटना की खर्चा ही नहीं की है किन्तु शीर्षकारायण और विरुद्धक की मैत्री एवं छत्र चंबर सेकर विरुद्धक को सिंहासन पर बैठा देने की शीर्षकारायण की इच्छा का आशय यही प्रतीत है । मस्सिका के प्रभाव के कारण शीर्षकारायण की यह इच्छा कार्य रूप में परिवर्तित नहीं हो सकी है । वस्तुतः मस्सिका के इस प्रभाव का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं । ये कल्पना प्रसूत घटनाएं संभवतः एक ओर तो घटना को दुर्ज्ञात परिणित की ओर ले जाने में प्रयत्न करती हैं और दूसरी ओर मस्सिका की ओर-उसके माध्यम से बुद्ध की कल्पना की व्यपकार कराती हैं । इसमें सन्देह नहीं कि खरिज बंधिष्म की इतनी सृष्टि के उपरांत देव खरिजो की यह अनायास विजय कथानक को त्रिभिल बना देती है किन्तु इससे प्रसाद के उद्देश्य की पूर्ति अवश्य हो जाती है ।

प्रसेनजित सम्बन्धी प्रथम घटना के दो भाग हैं (१) बाजिरा से प्रजात का विवाह और (२) प्रसेनजित द्वारा राजो कच्छिमती एवं विरुद्धक को अना प्रवास । दोनों ही घटनाएं बौद्ध ग्रंथों से प्रमाणित हैं । शीर्षनिकाय मन्दिभूम निकाम और आठकों से बाजिरा एवं प्रजात के विवाह की घटना की पुष्टि होती है । दूसरी घटना 'अट्टहारित' आठक पर आधारित है । बासमज्जतिया एवं बिहुडम को पसेनवी ने एक बार बुद्ध के कहने से अना कर दिया था और उन्हें पूर्ववत् सम्मान का भावी भी बना दिया था । यही भी मस्सिका के प्रभाव के लिए कोई स्थान नहीं है । किन्तु 'प्रजातसत्रु' नाटक में मस्सिका के प्राग्रह से ही प्रसेनजित राजी कच्छिमती एवं विरुद्धक को अना प्रवास करता है । बुद्ध का प्रभाव तो केवल विरुद्धक को राज्याधिकार बिलाम में ही सहायक होता है । मस्सिका का यह कार्य इतिहासानुमोदित नहीं है ।

सद्वन सम्बन्धी कथा के मूल-स्रोत कथासरित्सागर, बम्बपट्ट, पट्टकथा आठक बुद्धवांश तथा दिव्यावदान हैं । नाटक की घुमिना में प्रसाद ने इसके प्रति

रिक्त स्वप्नवासवदत्ता प्रतिज्ञा मायंभरायण, रत्नावती हर्षचरित मेघदूत विष्णु पुराण तथा धर्म्य बौद्ध-ग्रंथों का भी उल्लेख किया है। मूमिका उदयन की कथा में प्रसाद ने उदयन के बंशवृक्ष घाटि के सम्बन्ध में पर्याप्त शोध की है किन्तु नाटक में उदयन की कथा का इतना जोड़ा प्रकृतिया गया है कि इस शोध का उसमें विरोध उपभोग नहीं होने पाया है। नाटक में उदयन की कथा का बिलना घन प्राया है वह उपर्युक्त शोध पर आधारित न होकर बौद्ध साहित्य पर आधारित है।

प्रजातसत्रु में उदयन की कथा प्रथम प्रकृत के पाँचवें दृश्य से प्रारम्भ होती है। कौशाम्बी के राजा उदयन की तीन रातियाँ थीं—वासवदत्ता पद्मावती और मागधी। पद्मावती मगध के सम्राट प्रजातसत्रु की बहिन की और मागधी एक चरित्र ब्राह्मण की कन्या। पौठम ने रूप पविता मागधी से विवाह करना पस्वीकार कर दिया था उसी से वह गौतम की विरोधिनी बन गई थी। पद्मावती के प्रासाद में कुछ धर्म प्रर्षा किया करते थे। इस पर मागधी ने उदयन के कान मरने प्रारम्भ कर दिये और पद्मावती के चरित्र पर घाँड़न किया दिया। दासी पद्मावती के मंदिर से उदयन की बीजा सा रूढ़ी थी। मागधी ने उसके पीठर साँप का बन्धा डलवा दिया। इस प्रकार उदयन को पद्मावती की दुश्चरित्रता का प्रमाण मिल गया और उसने पद्मावती के मंदिर में जाना छोड़ दिया। एक दिन पद्मावती अपने भद्रोत्थ से सम्बन्धित कल्याणविधान कुछ का वर्तन कर रूढ़ी की कि उदयन ने उसे बेच लिया। फलतः इप्याँ और कोष से उसका बच करने के लिए उदयन ने तसवार उठाई, पर उसका हाथ ही नहीं उठा। वासवदत्ता ने मागधी की दासी द्वारा मागधी के कुचक को जान लिया। मंडाफोड़ हो जाने के मय से मागधी ने अपने महल में प्राग समा दी। प्रजातसत्रु को शिक्षा देने के लिए प्रचेनचित्त और उदयन में मन्त्रणा हुई और उन्होंने मगध पर आक्रमण करने का निश्चय किया।

वस्तुतः नाटक में प्रसाद की कथा इतनी ही है किन्तु उदयन की रानी मागधी की कथा का जो विकास किया गया है उससे ज्ञात होता है कि कौशाम्बी के प्रासाद में मागधी जनी नहीं थी। अपने महल से भाग गयाकर वह वहाँ से निकल भागी और 'काशी की प्रसिद्ध बार-बिलासनी स्यामा' बन गई। स्यामा के रूप में वह डाकू सैनेन्द्र (विठ्ठक) में प्यार करने लगी। सैनेन्द्र कोशल के सेनापति बन्धुस की इत्या के अपराध में बन्दी बना लिया गया और उसे भूसी पर बन्धने जाने का इंस मिमा। स्यामा ने अपने महापति प्रेमी मगध के गुप्त प्रणिति समुद्रवत् को शोध में शककर हजार प्रेक्षुर्तों के साथ दंडनायक के पास लेख दिया। समुद्रवत् बह बहल कर गया और दंडनायक ने स्यामा के संकेत से सैनेन्द्र को मुक्त कर राठों राठ समुद्रवत् को भूसी पर बन्धा दिया। बाहे बन के शोध से बचवा अपने प्रति भी दल की धार्मिक से सैनेन्द्र ने व्यावस्ती के एक

उपवन में श्यामा का गला बोट दिया थीर स्वयं माप गया । मुमुर्षु श्यामा को बुड़ ने प्राणदान दिया । बिष्णुक ने भी उससे लमा मांग ली । श्यामा ने विरक्त होकर राजमुक्त से मुड़ मोड़ लिया । वह घाम की बारी सेकर बेचने लगी थीर प्राणपामी कइसाने मगी । प्रपता वह प्राणकान्त उसने बुड़ को भेंट कर दिया थीर पंथ में वह स्वयं बुड़ की संघ की शरण में बनी गई । धर्बिकाब ऐतिहासिक प्रमाणों के बापार पर प्रसाद की इस माप्यता को स्वीकार किया जा सफटा है कि उदयन परंतप का पुत्र थीर कौशाम्बी (बस) का शासक था । प्रसाद ने अपने नाटक की भूमिका में उदयन के पूर्व-इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश डाला है । नाटक की बटनाधों से इसका सम्बन्ध न होने के कारण यहाँ इस पर विचार करना प्रायः शक्य नहीं है । उदयन की दो रात्रियों के संबंध में प्रसाद लिखते हैं "क्यासिरिखानर में तीसरी रात्री मानंधी का नाम ही मिले है, किन्तु बौद्धों के प्राचीन ग्रन्थों में उनकी पी को प्रबंठि के बन्ध महेशेन की कय्या थी ।-----भैरा धनुमान है कि परमावती अनाठलभु की बहिन थी ।" प्रसाद के इस धनुमान के बापार थीर उसकी समाप्यता पर परित्रों के प्रसंग में विचार किया जा सफटा है यहाँ प्रसाद की माप्यता का ही मानकर चलना प्रसंगानुकूल है । इतना कह देना धनुषित न होगा कि बौद्धों की सामावती थीर प्रसाद की परमावती कथा-प्रसंग में एक ही है ।

बौद्ध ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि मागधीया के पिता मागधीय ने अपनी पुत्री का विवाह बुद्ध से करना चाहा । मागधीय बुद्धप्रवेश का आह्वान था थीर उसकी परम स्ववती कय्या से पाणिग्रहण करने के लिए कई बंधकवधायी व्यक्ति भस्तुत थे । एक दिन बुड़ को ज्ञात हुआ कि मागधीय थीर उसकी पत्नी बौद्ध बर्न को प्रतीकार करना चाहते हैं । बुड़ जब मागधीय के गांव में पहुंचे तो मागधीय ने उन्हें अपनी मुक्त लनाओं से मुक्त देकर उनसे अपनी कय्या के रूप गुरु की बर्न की । तबागत नीन रहे । मागधीय ने अपनी कय्या को प्रसंगुत कर उसे बुड़ की समर्पित किया । तबागत ने मागधीय को अपने पूर्व जीवन का कृत मुनाये हुए कहा कि मैंने "मार" की उन अनिष्ट मुन्दरी कय्याधों के प्रलोभनों पर विजय पाई थी जिन्की तुमका में मागधीया ३२ कोषों से मुक्त एक शक मात्र है एक ऐमा समर्पित बर्तन है जिसे बाहर से रंग दिया गया है । वे उससे विवाह तो क्या उसे अपने घर से भी स्वर्ण नहीं कर सकते ।" इस पर मागधीय ने मागधीया का उसके बापा पास भेज कर पत्नी सहित बौद्ध बर्न प्रतीकार कर लिया । पीछे मागधीया का विवाह

१ अनाठलभु (भूमिका) पृ १४१२
 २ बम्मपर घट्टकपा १:११३ मुलिवात टोका २:१४२ (वा टीरट नीन विध्यावदान (बार्बल एण्ड नीन) पृ० २१२

उपयन से हो गया और उदयन ने उसे अपनी पटरानी बना लिया। बुद्ध द्वारा अपने रूप का अपमान मागम्बीया न भूय सकी घट कौशाम्बी भाते ही उसने बुद्ध से बदसा लेने का प्रयत्न किया। जैसे जब ज्ञान हुआ कि उदयन की धर्म रात्री सामावती (प्रसाद के नाटक की प्रमावती) और उस को सहेलियों अपने प्रकोष्ठों के भरोखों से बुद्ध के मार्ग का प्रबोधन किया करती हैं तो उसने उदयन से कहा कि सामावती उदयन की हत्या का पकड़न रख रही है। कुछ काल तक उदयन ने इस पर विश्वास नहीं किया किन्तु जब उसे बीमारों पर बने हुए छिद्र और बाठायन दिखाये गये तो उसने उन्हें बन्ध करवा कर भरोखों को ऊले पर बना दिया।

यह पकड़न निष्फल हो जाने पर मागम्बीया ने राजमार्ग में बुद्ध का अपमान करने के लिए एक बाघ का निपुत्र किया। दुस्ती होकर धानन्द ने बुद्ध से प्रार्थना की कि वे कौशाम्बी छोड़ दें। बुद्ध ने उत्तर दिया—“पुत्र में गये हुए हाथी के समान मुझे उन सभी मार्गों को भेजना पड़ेगा जो मुझे सक्षय कर केंके जानेसे।” सात दिन बाद यह अपमान स्वतः ही बन्द हो गया। इसी प्रकार के धर्म कई प्रयत्नों के उपरान्त मागम्बीया ने अपने चाचा से एक विप-रहित चांप मंत्रामा और उस उदयन की बीर्या के ध्वस्त रखकर धर को फूमों से बन्द कर दिया। उदयन अपनी हीनों रात्रियों में से प्रत्येक के साथ एक एक सप्ताह व्यतीत किया करता था। जब सप्तमी सामावती के पास जाने की बारी आई तो मागम्बीया ने कहा कि मैंने एक बहुत बुरा स्वप्न देखा है और मुझे आपके प्राणों की घाबंका है। यदि आप सामावती के प्रासाद में न जायें तो अच्छा है। उदयन उसकी बात न मान कर सामावती के प्रासाद में गया। मागम्बीया उसके पीछे पीछे गई और जब वह सो गया तब उसने सिरहाड़े रको हुई बीर्या में से फूमों का गुच्छा निकाल लिया। चांप कुच्छतो मार कर उदयन के हाकें पर बैठ गया। मागम्बीया ने चीसकर इस सारे पकड़न का आरोप सामावती पर सगाया। इस बार उदयन विश्वास न कर सका। उसने सामावती और उसकी सहेलियों को एक पक्ति में सजाकर अपना बहू बगुप उठाया जिसकी प्रत्येक एक सहस्र व्यक्ति मिलकर भी नहीं बड़ा सकते थे। ठीर बगुप से छूटा तो किन्तु सामावती बच गई। सामावती को गिरवराज माल कर उदयन ने उससे क्षमा मांगी और बुद्ध को गिर्य राजप्रासाद में प्रबन्धन का धर्मभण्ड देने का निश्चय कर लिया। उन्हागत स्वयं ही नहीं जाये परन्तु अपने स्वाम पर धानन्द को भेज दिया।

मागम्बीया ने एक बार और पकड़न किया। उसने अपने चाचा की सहायता से सामावती के प्रासाद के सभी स्तम्भों को ठेल के मीमे रूप में न घाबन कर उनमें घायलगा दी। सामावती और उसकी सहेलियों ने उन पवित्र में ध्यान सधाकर धैर्य प्राप्त किया। जब उदयन को इस पकड़न का पता लगा तो उसने मागम्बीया

उसका वह नाम इसलिए पड़ा कि एक पत्नी ने उसे धात्र बुज के नीचे पड़ा पामा था। वह इसी सुन्दर थी कि उसके लिए बैलासी के तबल राजकुमारों में आए दिन धरपों होने लगे।^१ इसके परिस्थानस्वरूप उसे जनपदकस्वाधी (पलिका) बना दिया गया। तबमगल जब अन्तिम बार बैलासी गये तब धम्बपाली ने उनका प्राममन जानकर बैलासी के निकट कोसिग्राम में ही उनके शर्बन किये। धम्बपाली पलिका की अयबान ने वारिक कथा से संपर्कित समुत्तं जित किया। तब धम्बपाली ने भगवान को मिसुसय सहित भोजन का निमन्त्रण किया और भयबान ने मीन हाण स्वीकार किया। लिच्छवियों ने उसे इस भोजन का मुख्य ही इबार कार्पासु देना स्वीकार किया किन्तु धम्बपाली ने उन्हें भयबान का घात देना अस्वीकार कर दिया। 'धम्बपाली पलिका ने उस रात के बीतने पर अपने धाराम में प्रथम बाध शीघ्र संवार कर भगवान को समय सूचित किया।'

"भयबान पूर्वाह्न समय पहिणकर बीबर पाम में मिसुसय के साथ वहाँ धम्बपाली का पराक्रम का स्थान जा वहाँ गये। जाकर बिधे प्राप्त कर बैठे। तब धम्बपाली पलिका भयबान के भोजन कर वात्र से श्राय लीच लेने पर लीचा प्राप्तन से एक घोर बैठ गई। एक घोर बँटी धम्बपाली पलिका भगवान से बोली —

"मग्ने ! मैं इस घाघम को (जिसमें तबामत ठहो व) कुछ अमुष मिसुसय को देती हूँ।"

भयबान ने धाराम को स्वीकार किया। तब भयबान धम्बपाली को वारिक कथा से समुत्तं जित कर प्राप्तन से उठकर चले गये।^२

प्रसार ने धम्बपाली के पलिका होने एवं उनके द्वारा बुद्ध को धाराम समर्पित किए जाने की अपनी बटना का आचार बताया है। किन्तु प्रसार की धामपाली का सम्बन्ध एक पार ती मागन्धी से है और दूसरी और शरामा बोध्या से। यह कल्पना है किन्तु धामपाली का जो बिबलु नाटक में हुआ है वह सर्वथा बौद्ध धर्मों की धामपाली के विपरीत है। प्रसार की धामपाली 'धाम की बाटी निकर देना करती है और लड़कों के देने पाया करती है।' बौद्ध धर्मों की धामपाली रूप बुद्ध धन वैभव सभी से सम्पन्न है और कमी भी किसी की

१ उसकी सुन्दरता का अनुमान इसके ही बताया जा सकता है कि धम्बपाली के प्राममन की वधा सुनकर भगवान बुद्ध ने मिसुसा से कहा कि वे अपने माग और अपनी इच्छियों पर निमन्त्रण रखें अन्यथा धम्बपाली का प्रथम कार्पासु उन्हें विचलित कर देगा। (सुमंगल-विज्ञापिनी) 'शरीराभा के दो पीठों में धामर ने उन मिसुषों को संकेत किया है जो धम्बपाली को देखते ही अपनी मुप जा बैठे।

२ शीर्षनिकाय २/३

काल में वह बहिष्कार की इस सीमा तक नहीं पहुँची है। नाटक में कुछ से उसका मिलन और आत्मकानन का समर्पण ऐसी ही स्थिति में हुआ जो बीड इतिहास में पुरुषवत्या मिला है। इसमें किसी भी नाटकीय सौन्दर्य की मूर्ष्टि नहीं हुई है। प्रस्ताव भूमिका में लिखते हैं— बीडों की श्यामावती बेरमा आत्मपार्थी, यामग्वी और हम नाटक की श्यामा बेरमा का एक संमेलन कुछ विधिसे तो झाँगी किन्तु अरिष का विकार और कौतुक बहना ही इसका उद्देश्य है।” वहाँ इन बातों में से एक भी बात नहीं घाने पाई है। प्रस्ताव ने ननका एकन संमेलन न कर काल्पनिक मिश्रण किया है और इस मिश्रण के परिणामस्वरूप न केवल आत इतिहास पर ही आघात पहुँचा है बल्कि कौतुक की मूर्ष्टि भी नहीं हो पाई है।

“चन्द्रगुप्त मौर्य” का कथानक

“प्रजातन्त्र” नाटक की तरह “चन्द्रगुप्त मौर्य” में कई स्वतन्त्र कथानकों का एक साथ सम्मिश्रण नहीं किया गया है। मूल कथानक नाटक के प्रधान पात्र चन्द्रगुप्त एवं चाणक्य से सम्बन्ध रखता है। अन्य सभी बाँचे कथानक प्रधान कथानक के चारों ओर बँधकर काटते रहते हैं। ये प्रधान कथानक के घग होकर घाते हैं और उसके प्रवाह को भविष्य बनाने के लिये उसी में समाकर एकाकार हो जाते हैं। नाटकीय रचनात्मकता की दृष्टि से नाटक “चन्द्रगुप्त” में भी कथानक सम्बन्धी दोष पर्याप्त मात्रा में हैं। नाटक के चतुर्थ अंक की कथा नाटक की मूल कथा से सम्बन्ध होते हुए भी नाटक से विभक्त की जा सकती है। यह कथा नाटक में स्वतन्त्र रूप से पीछे जोड़ी गई है। प्रसाद ने चन्द्रगुप्त नाटक लिखने से पूर्व ‘इन्द्राणी परिचय’ (१९१२) नामक एकांकी की रचना की थी। बाद में इन्द्राणी परिचय के कथानक को ही कुछ जोड़े से परिवर्तनों के साथ “चन्द्रगुप्त” का चतुर्थ अंक बना दिया गया। इसके कथानक का अन्तर्गत विस्तार हो गया और नाटक में स्थितिस्थापना भी गई।

चन्द्रगुप्त नाटक की भूमिका से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त के कथानक के लिए प्रसाद ने समस्त बिहारी हुई सामग्री का उपयोग किया है। बौद्ध-धर्मों में धर्मकथा (अष्टकथा) और महाभारत-ब्रह्म-धर्मों में बिक्रान्तकेय और हेमचन्द्र धर्मिबान पुत्रों में वायुपुराण और विष्णुपुराण तथा ग्रीक इतिहासकारों में डायोडोरस सिक्किण्डस अस्तस स्ट्राबो एवं प्लूटार्क का नामोल्लेख किया गया है। इनके प्रतिष्ठित कथाचरितनामक धर्मशास्त्र कामन्दकीय नीतिसार, मुद्राराक्षस कुटि, मैक्समूलर, टाड और बिसेटस्मिथ से भी पर्याप्त सामग्री ग्रहण की गई है।

आक्रमण चाणक्य पुरुषार्थिणा बुकाने के निमित्त लक्ष्मिना पुरुषुत में धर्मशास्त्र पढ़ाया करते थे। मन्त्र-सेनापति मीन का पुत्र चन्द्रगुप्त का चन्द्रगुप्त और मानव-मल्लमुख्य का राजकुमार उनके शिष्यों के थे। एक दिन चाणक्य सिहरण से लम्बार में यवनकुलों के आक्रमण पर विचार कर ही रहे थे कि भावी लम्बारराज धार्मिक बर्हो था पहुँचा और उन पर कुचक का आरोप लगाया। वह सिहरण को बन्दी बनाना ही चाहता था कि सहसा चन्द्रगुप्त बर्हो था पहुँचा। धार्मिक इन्द्रगुप्त ने चन्द्रगुप्त से पराजित हुआ और अन्तका उठे बर्हो से हटा ले गई। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त और सिहरण के सामने समस्त प्रापावर्त की एकता की घोषणा की। सिहरण

क प्रतुरोप पर धरना न उसे धारणासत दिया कि वह मरसक अपने भाई के कुपक को सज्जन न होने देनी और धरन सेना सिंगु को पार न कर सकेगी ।

तखतिला से लौटकर आपक्य मगध या पहुँचा । कहा उसे जाठ हुआ कि नर ने मकटार को उसके सार्थों पुत्रों सहित बन्दीपुत्र में डाल दिया । आपक्य के पिता बसक ने इस पर नर से बहुत क्रोध मना कहा । नर न बिड़कर उसका बहस्य धीन लिया और उसे निर्वासित कर दिया । मकटार के सभी पुत्र बन्दीपुत्र में ही तब्य तब्य कर मर पय और उसके ईश्वर की सहजपी मकटार पुत्री बीड बिहार में जमी गई पर वहाँ भी वह न रह सकी और धमिनर करने लगी । बसंतोत्सव के धरसर पर नर ने मकनास के धानुपुत्र रासस को अपने धमात्पवर्मे में निपुण्ट कर दिया और उसकी प्रेमसी सुवासिनी को धमिनरधामा की रानी बना दिया । अपनी वैशुक सम्पत्ति पुनः प्राप्त करने का निरन करने आणक्य रंद को समा में पया ।

चन्द्रमुण्ड धारि तखतिला से लौटे हुए स्नातक नर की समा में राजरतन के लिए धाये हुए थे । नर ने धमात्य बरबधि से उनकी बरीसा लने को कहा । धरने पुत्रवर्तों का धरमान सनकर बरबधि ने धरने ही गुरुकुम के स्नातकों की परीसा सेना धस्तीकार कर दिया । इसी धरसर पर प्रसंगवध आणक्य ने उत्तरापथ की राजनीतिक स्थिति की बर्षा की और यवनों के धाक्रमण से उत्पन्न परिस्थिति का बोध करार प्रार्थना की कि धासत्र पागवार-नुड में मगध परतेश्वर की सङ्गमता करे । किनु परतेश्वर ने मंडपुत्री बत्साणी से बिबाह करना धस्तीकार कर दिया था । पण इस प्रस्ताव से नर कूट हो उठा । वह उसे यह जाठ हुआ कि वह बिरोही बाहण बणक का पुत्र है तो उस विद्या पकड़कर बाहर निफाल दिया । आणक्य ने नरकुम के मास करने तक धरनी मिला न बर्षने का प्रण किया । इस पर आणक्य बन्दी कर लिया गया । आपक्य के प्रति इस प्रकार के व्यवहार का चन्द्रमुण्ड ने बिरोध किया तो उसे भी मगध से निर्वासित कर दिया गया ।

चन्द्रमुण्ड ने एक बार धहेरी बीठे से राजकुमारी कस्यापी की रसा की पी धयस्वरूप कस्याणो उसे बाहने लपी थी । उसने नर से चन्द्रमुण्ड को समा करने की प्रार्थना की । पर सोधीव नर ने उसकी प्रार्थना को ठुकरा दिया । बन्दीपुत्र में रासस ने आणक्य के सामने प्रस्ताव रखा कि यदि वह मगध का युण्ट प्रीतिव बनाकर तखतिला जाना स्वीकार करे तो उसे बन्दीपुत्र से मुक्त किया जा सकता है । आणक्य ने परतेश्वर के दिनास के लिए तखतिला जाना धस्तीकार कर दिया । ठीक इसी धरसर पर चन्द्रमुण्ड आणक्य को सुझा ले पया ।

आणक्य परतेश्वर की समा में गया और उसे मगध पर धाक्रमण कर चन्द्रमुण्ड को वहाँ का सम्राट बनाने के लिए प्रीति किया पर चन्द्रमुण्ड ने

कुमोत्पन्न वृषभ मानकर उसने यह प्रस्ताव प्रस्वीकार कर दिया। चाणक्य अपने शाङ्गण्य (सार्वभौम शास्त्र कुण्डि वंश) के द्वारा उसका संस्कार करना चाहता था पर पर्वतेश्वर ने ऐसा करना केवल समर्थ ऋषियों का अधिकार बताकर चाणक्य का विरस्कार कर अपनी सीमा से बाहर निकाल दिया। एक बार फिर चाणक्य में धर्मद्वेष की अति प्रकल्पित हो उठी।

उपर माग्यार में मातृविका उद्गमण्ड के सेतु का विष प्रसका को रिसा ही रही थी कि प्रकन सेनापति सिन्धुक्षत्र वहाँ पहुँच गया और मानचित्र मापने लगा। सिन्धुक्षत्र भी वहाँ था पहुँचा और मानचित्र लेकर मातृविका के साथ मातृव की ओर चला गया। प्रसका को बन्दी बनाकर सिन्धुक्षत्र माग्यारराज के पास ले आया। माग्यारराज ने मात्रीक की समझाया कि सेना ही उचित है। परन्तु मंत्री से मुह नीक पर वह बेब्रह्म में इतना घाने बढ़ चुका था कि प्रस बीटना उसके लिए र्धमव न था। पर्वतेश्वर ने भी अपनी कथ्या का विवाह काबर धार्मिक से करना प्रस्वीकार कर दिया था। उतसे बरला लेने के लिए उसे बरनों की सहायता अपेक्षित थी, इसलिए उसने अपने पिता की आज्ञा नहीं मानी। प्रसका ने माई से विद्रोह कर दिया और प्रावर्धित की रक्षा के लिए माग्यार छोड़कर चला भी।

सिन्धु तट पर मनीषी राज्मायन का आश्रय था। शिकन्दर का प्रार्थनार्थ लेकर एनिश्रीर्षीय उनके पास पहुँचा। जब राज्मायन ने सोम, लम्मान वा ब्रह्म के प्रस से भी शिकन्दर के पास जाना प्रस्वीकार कर दिया तब उनका धार्मिक-बोध सेने शिकन्दर स्वयं वहाँ पहुँच गया। इसी बीच एक घोर से प्रसका और दूसरी ओर से चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त उक्त आश्रय में था पहुँचे। शिकन्दर राज्मायन से "मारत विजय" का धार्मिक-बोध चाहता था। राज्मायन ने "चन्द्रगुप्त मारत का भावी सम्राट है" यह धर्मिप्यवाली करके उसे इस प्रकार का धार्मिक-बोध देना प्रस्वीकार कर दिया। शिकन्दर के सेनापति सिन्धुक्षत्र ने माग्यार की ओर जाते हुए कर्क-मणि प्रवेश चन्द्रगुप्त की ध्यात्र के मुख से रखा थी। उसी ने सेनस्वी राजकुमार चन्द्रगुप्त का परिचय शिकन्दर से कराया। शिकन्दर ने उसे अपने शिविर में धार्मिक किया। वही चन्द्रगुप्त और कर्कमणि में प्रेम का मूषपाठ हुआ।

प्रस-शिविर में मारतीयता के रूप में रंवी कर्कमणि के प्रति प्रियत्व से प्रसका प्रेम प्रकल्पित किया। कर्कमणि के विरोध करने पर प्रियत्व वन प्रयाग करना ही चाहता था कि चन्द्रगुप्त ने प्रवेश कर उसकी बरान पकड़ ली। इस वर प्रियत्व ने शिकन्दर के सामने चन्द्रगुप्त और सिन्धुक्षत्र पर शिकन्दर के प्रति पकड़व का धर्मियोग लकाया। शिकन्दर ने पहले तो चन्द्रगुप्त की र्धम-ब्रह्मता र्धर प्रस का सम्राट बनाने का प्रोव दिया पर जब चन्द्रगुप्त ने मुझे बरनों की सहायता

ने मयप का उद्धार करना पत्नीकार कर दिया तो सिक्न्दर ने उस पर गुप्तचर होने का आरोप लगाकर उसे बन्दी करना चाहा। चन्द्रगुप्त बीरता से निकल माना।

मलय के तट पर चन्द्रगुप्त सिंहरण और धमका बैल बढने हुए पर्वतेश्वर के शिविर में खेल दिखाने गये और खेल के बीच में ही चन्द्रगुप्त ने पर्वतेश्वर को यवनों के बिकस्ता पार करने की सूचना दे दी। वहाँ पुरुष खेल में कम्पाणी मयप के पुरुष का नेतृत्व कर पर्वतेश्वर की सहम्यता के लिये धाई हुई थी। युद्ध में पर्वतेश्वर की सहायता कर उसे नीचा दिखाना उसको घमीष्ट था। युद्ध हुआ और उसमें पर्वतेश्वर भी पराजय हुई। बन्दी पर्वतेश्वर के रणक्षीकाल पर मुग्ध होकर सिक्न्दर ने उसके प्रति ५वी का हाथ बढ़ाया और पर्वतेश्वर ने चन्द्रगुप्त और सिंहरण के विरोध करने पर भी सन्धि करली। धार्मीक ने मयप सिंहरण और धमका को बन्दी कर लिया। कम्पाणी ने मयप सिंहरण फेंक दिया और पर्वतेश्वर को मया कि उसे दिष्ट पराजय मिया।

बन्दिनी धमका पर पर्वतेश्वर मुग्ध हो गया। धमका ने उससे इस जत पर विवाह करना स्वीकार कर लिया कि सिंहरण को मुक्त कर दिया जाय। पर्वतेश्वर ने सिंहरण को मुक्त कर दिया। मालवों के स्वभावहार में शूद्रों और मानवों की सम्मिश्रित युद्ध-विरपद् ने चन्द्रगुप्त को ही अपनी सम्मिश्रित सेना का भी सेनापति मान लिया। पर्वतेश्वर मालवयुद्ध में सिक्न्दर की सहायता के लिए मानव था पहुँचा। उसके साथ धमका भी बड़ी धापाई थी, धमकर पाकर वह बन्दिनी के रूप में मालव नीचा डाल सिंहरण के पाम धा गई। सिक्न्दर ने सम्यक्त मेजा कि मानव नेता मुग्ध से भेंट करे और मेरी बस-यात्रा का सुत्रबन्ध करे। सिंहरण ने रणभूमि में भेंट करने का वाक्यामन दिया और युद्ध की जोषणा कर दी गई। इस पर सिक्न्दर ने स्वस मार्ग से मालवों पर आक्रमण कर दिया। दुर्ग में धमका के ठौर से वो यवन मारे गये और स्वयं सिक्न्दर सिंहरण की लतवार से वापस होकर फिर पड़ा। पर्वतेश्वर को भी गई धमा के बदले सिक्न्दर को भी बीबित छोड़कर शिविर में भेज दिया गया। यवनों और मालवों में सन्धि हो गई। स्वयं सिक्न्दर ने धमका सिंहरण के विवाह का सम्पादन किया। यवन सेना पीट गई और उसके साथ ही चन्द्रगुप्त की स्मृति और भारत के प्रति घटस अनुयोग लेकर जानेमिया भी बनी गई। सब धोर से निराश पर्वतेश्वर ने आत्महत्या का प्रयास किया पर बालकम ने उसे रोक कर पुन कर्म क्षेत्र में प्रेरित किया। मयप जाने के पूर्व किसिप्य ने चन्द्रगुप्त को इन्द्र युद्ध के लिए लतकारा और उस हाड युद्ध में किसिप्य मार गया।

बाणक्य पर्वतेश्वर और उसकी सेना लेकर मयप की घोर बल दिया। शिणकों के रूप में सारी सेना कुसुमपुर में एकत्र हो गई। चणक्य ने मासिका के हाथ राक्षस की नामांकित मुद्रा के साथ एक कपट पत्र मयप के पास भेज दिया।

संस्कृत मन्त्र से सेनापति मौर्य को बंधी कर लिया और उसकी हथी के केश पकड़ने चाहे । मालविका और वररथि को भी उसने बंधी कर लिया । सुवासिनी के पक्ष को पकड़कर विवाह की बैठी से राजस और सुवासिनी को भी पकड़ मयबाया गया । अंत में विद्रोह फैल गया । इसी बीच कई बंधों से बड़ी सफ़ाई मुरग खोजकर बाहर निकला । नदी तट से अन्य सभी बंधी बाहर निकल आए । अंत में उनके साथ मिलकर उन्होंने रंगलाता को बेर लिया । राजस के मोन मारे बड़े । नैन ने क्षमा मांगी किन्तु सफ़ाई की प्रतिज्ञा जाम पड़ी थी । उसने मंद का बंध कर आया । परिपक्ष की आयोजना हुई और अंगुष्ठ सम्राट घोषित हुआ ।

महत्वाकांक्षी पक्षेश्वर ने कन्याणी के साथ बसाकार करना चाहा पर कन्याणी अपने पिता के विरोधी अंगुष्ठ से प्रेम करती थी । उसने पक्षेश्वर का बंध कर आत्महत्या कर ली । इसके उपरांत अंगुष्ठ बहिन विजय के लिए बंध दिया ।

सफ़ाई को भीलित पाकर सुवासिनी बिना उसकी अनुमति के राजस से विवाह नहीं करना चाहती थी । यह समझकर कि शीतल के सगी बालक्य के प्रति वह झुक गई है राजस पुनः बालक्य से टकरा देने लगा । अंगुष्ठ बहिन विजय कर लौटा पर बालक्य ने सबकी इच्छा क विपरीत विजयोत्सव न मनाने की आज्ञा दे दी । राजस ने इस घटना द्वारा अंत में बालक्य के प्रति विद्रोह की आज्ञा भर दी । अंगुष्ठ बालक्य से कष्ट हो गया । अपमानित बालक्य वहाँ से बंध दिया । सी रात अंगुष्ठ का परिच्छेद पहिन कर सोई हुई मालविका की हत्या हो गई । बंधनकारी पकड़े गये पर उनका नेता राजस भाग गया और श्रीक शिबिर में नैसिया को पढ़ाने लगा ।

बालक्य को सिन्धु तट पर सिन्धुसूत के अधिपति के समाचार मिले । वह भाजार सेकर उसने कारबायत को मयब भेज दिया । विद्रोहीणी अंतका सिन्धुसूत : अधिपति के विरुद्ध पुनः लक्ष्यिका के नागरिकों को संगठित करने लगी । प्रामीक अपना कर्तव्य धोने के लिए बालक्य के सम्मुख यह प्रतिज्ञा की कि वह लक्ष्यिका जय के बादक सिंहरण और अंतका हूनि । वह स्वयं एक सैनिक बनकर युद्ध रेया ।

सुवासिनी क प्रति प्रेम होते हुए भी बालक्य ने उसे राजस को उचित मार्ग र लाने के लिए श्रीकशिवर में भेज दिया । सुवासिनी अन्धनी होकर श्रीक शिबिर गई और वहाँ कानैसिया की सखी बनकर अंगुष्ठ के प्रति उसके प्रेम में बुद्धि ले लगी ।

युद्ध आरम्भ हो गया । सम्राट अंगुष्ठ ने अकेले ही प्रचण्ड विजय से आकाश कर दिया । मयब सेना चर्रां उठी । सिंहरण अपनी सेना लहिन सहायता के लिए

था पहुँचा। बालक्य कुपबाप युद्ध का संभाषन करता रहा। धार्मिक सिस्त्रुस ने युद्ध करते हुए मारा गया। धीरों की पराजय हुई। पराजय का समाचार सुनकर कार्नेलिया भातमहत्या करने हो बानी की विद्वि सिस्त्रुस सहित अश्रुपुत्र वहाँ पहुँच गया। उसने गिल्बुस को मुक्त कर दिया। बालक्य ने चारों ओर से धीर शिबिर के मार्ग बन्द कर दिये। उपर सिस्त्रुस को यह सूचना मिली कि मदन-साम्राज्य के पश्चिमी भाग में धाटिगोनस ने आक्रमण कर दिया है। बालक्य ने सबसे आतुर सन्धि की शर्तें रख दीं नियत पर्वत माला तक का डीक प्रवेश धार्मिकों की नैसर्गिक सीमा बन जाय और अश्रुपुत्र-कार्नेलिया का परिचय हो जाय। हार कर सिस्त्रुस को शर्त स्वीकार करनी पड़ी। उसे यह ज्ञात हो गया कि कार्नेलिया अश्रुपुत्र को प्यार करती है।

मुवासिनी युद्ध की भाग वीड़ में राजस को शिबिर से निकाल कर शण्डा पावन के आश्रम में ले गई। वहाँ बालक्य निष्काम भाव से प्रमत्त सन्धि की धारणा करता रहा था। उसका बालक्य से कृपित मीर्य सेनापति ने ध्यानावस्थित बालक्य को बंध करने का प्रयास किया। मुवासिनी ने वीड़ कर उसका हाथ पकड़ लिया। इसी समय उसका सिद्धरण भीरु अपनी माँ के साथ अश्रुपुत्र की वहाँ था गया। अश्रुपुत्र ने पिता की दण्ड देने की व्यवस्था की। पर बालक्य ने उसे क्षमा कर दिया। उसने लकठार के माँही आमाता राजस के लिए मगध साम्राज्य का मन्त्रित्व भी छाड़ दिया। अपने पुत्र को धार्मिकों का सम्हाल देखकर उसने मीर्य सेनापति को आपाय ग्रहण करने की आज्ञा दी।

राज समा में सन्धि हुई। कार्नेलिया और अश्रुपुत्र का हाम मित्रावा गया। यह ठय हुआ कि धाटिगोनस से युद्ध में भारत की गजसेना सिस्त्रुस की सहायता करेगी। बालक्य ने सबको धार्मिकों के लिए और मीर्य सेनापति का हाम पकड़ कर वैराग्य के प्रन्थित सध्य की ओर बल दिया।

नाटक की पहली बटना का कोई प्रामाणिक आधार नहीं है। बौद्ध ग्रन्थों में बालक्य को लक्षद्विजा का ब्राह्मण कहा गया है। कोई उनको कौण्डिन्य का ब्राह्मण मानता है और कोई पाटलिपुत्र का। वा. वासुदेव सरण सिद्धते हैं इतिहास के अनुसार बालक्य लक्षद्विजा का स्नातक था।^१ सिद्धान्ती महावंश के अनुसार वह अपनी विद्वता के लिए लक्षद्विजा पर में प्रसिद्ध था और अपने वल को फँसाने के उद्देश्य से पाटलिपुत्र गया।^२ यह बालक्य का लक्षद्विजा में अभ्यास होना सम्भाव्य है। हय की

१ इण्डिया ऐंड मोन डू पाण्डिनि (धर्मबाल) पृ० २०

२ अष्टपदासि टीका—

(बाध पयसन्तो पुपकपुरम् वत्सा)

बटना में बख्शुप्त, बालक्य धीर धार्मीक ऐतिहासिक पात्र हैं धीर सिहरस्य एवं बलका कात्यायनिक । धत सम्पूर्ण बटना ऐतिहासिक नहीं हो सकती । इतिहास से न तो वही बात होता है कि बख्शुप्त ने बालक्य से तत्कालिता में शिक्षा पाई थी धीर न मही कि धार्मीक से कभी उतका संघर्ष हुआ था । इसमें महत्वपूर्ण ऐतिहासिक बटना केवल इतनी ही है कि सिकन्दर ने जब कारमेनिमा को पार किया तब पांचारराज बलके स्वागत के लिए वहां उपस्थित थे धीर उन्होंने महाराज पुत्र के रूप से सिकन्दर से सम्पर्क कर ली थी ।^१ इसी बटना को लेकर प्रथम हस्त में एक कात्यायनिक संघर्ष की सृष्टि की गई है । बालक्य धीर धार्मीक का बाद-विवाह भी कात्यायनिक है । सिहरस्य जैसे मानव-नभमृष्य के कुमारों का तत्कालिता का विचारहीन होना सम्भव है, क्योंकि तत्कालिता में समस्त भारत के दूर दूर स्थित प्रदेशों के राज-पुत्रों से लेकर साधारण विद्यार्थी तक मित्रा-प्राप्ति के लिए धाते थे ।^२ ईश्वरोही धार्मीक के प्रति सिहरस्य का रोष भी ऐतिहासिक सम्भाव्यता के अनुसंधान की रक्षा ही करता है । धीर इतिहासकारों से बात होता है कि मानवों (मल्लोई) ने सिकन्दर से धीर न कर उससे मयानक युद्ध किया । ऐसे ही युद्ध कठ जाति से लेकर पाठाला बपर तक के प्रजातरण राज्यों के किये । इन मयों के एक एक व्यक्ति ने अपने प्राणों की प्राणति दे ही किन्तु सबको की परधीनता स्वीकार नहीं की ।^३ धत मानव सिहरस्य का काबर धार्मीक के प्रति धाकोश धरव्य ही स्वाभाविक सिद्ध होता है । बलका का धार्मीक को पांचार रक्षा का बचन देना तत्कालीन ऐतिहासिक स्थिति के प्रतिबन्धन नहीं । धाक इतिहासकार इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि कठ जाति की बालाधों ने धीरों के विरुद्ध प्रतिकर युद्ध किया ।^४ धतः बरि पांचार में धी बलका बलकी धीरान्ताए हो तो कोई धारण्य मही । सम्पूर्ण बटना सम्भाव्य होते हुए भी कात्यायनिक है ।

दूसरा हस्त मयक के बसन्तोत्सव का है । इसमें गन्ध ऐतिहासिक पात्र है, धार्मिक से धार्मिक राजाओं को भी हस्त ऐतिहासिक मान सकते हैं । सुवासिनी तथा धम्य सभी पात्र कात्यायनिक हैं । सम्पूर्ण हस्त की योजना प्रसार के मानस में हुई है । इतना धरव्य कहा जा सकता है कि "बसन्तोत्सव" वर्ष की धरव्य सम्मारोह धीर उन्मत्त से नमाना प्राचीन जन-धीनम का ऐतिहासिक सत्य है ।^५ इसी हस्त की

१ धार्मीक हिस्ट्री धाक इतिहास (लिख) पृ० १४

२ "देखिये शिक्षा धीर कला"

३ कटिपत्र बुक १ । धं० ४ मीक्रियल १:१

—एनाबलिस बाई एनैबलिस पृ० २३४

४ "पीनिटिकल हिस्ट्री धाक ऐबिएट इतिहास" (१० धीपटी) पृ० १२०

५ देखिये "उत्सव"

बटना में प्रमाद बक्रास के भ्रान्जुपुत्र राजस को मन्द धपने प्रमात्पदमें में निरुक्त करता है। बिष्णुपुराण से यह प्रवच्य प्राप्त होता है कि बक्रास सर्वोपेक्षित का ब्राह्मण मन्त्री था।^१ किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि प्रमाद ने मुन्दास के 'राजस' का बिष्णुपुराण के बक्रास से सम्बन्ध कैसे जोड़ दिया। राजस का इनी ब्रह्मोत्सव के प्रवचन पर मन्द के प्रमादबर्ष में प्रहृत किया जाता प्रामादिक है। मुद्रासस की बटनाए भी इसके बहुत बाद प्रारम्भ होती हैं। राजस स्वयं भी कसा कुशल था एव उसने भी मन्द के सदान में अभिनय किया इसका कोई प्रमाण नहीं।

बाणभ्य घोर प्रतिबन्धी के सबाह में दो महारण्युर्ण संकेत दिये गये हैं। मगध का उत्कामीन दासक मन्द महापय का आरज पुत्र था और उसने किसी घराब पर धपने मन्त्री शकटार को बन्दी कर लिया था। इसी का स्पष्ट घोर मुक्त कंड से विरोध करने के कारण बालुवय के निरा का ब्रह्मस्व बीड बिहार में देकर मन्द ने उठे मन्द से निरासित कर दिया। प्रमाद ने धन्य तमी इतिहासकारों के मत के अनुसार ही नर्वे घोर अशिम मन्द का नाम बननन्द सिद्धा है।^२ यही बिष्णु पुराण से दिया गया एक उदाहरण भी विचारणीय है—

'ततो महात्मनी । इत्येते संशुनागा ध्रुवास्तिस्रवर्षयतानि द्विपट्ट्यधिकानि भविष्यति । महात्मिनस्ततः शूद्रायमोमहवोति—भुवोऽतिबन्धी महापप्रणामनन्द परशुपम इवापरोडबिनबत्रियमासकारी भविष्यति । ततः प्रभृति शूद्रा ध्रुवाताः भविष्यन्ति ।'^३

उक्त उदाहरण से यह स्पष्ट ही है कि महात्मन् का शूद्रा के पर्व से एक पुत्र महापय बरस हुआ किन्तु अशिम सम्राट बननन्द महापय का पुत्र होते हुए भी इसका आरज पुत्र नहीं था। भूमिका में इतना विस्तृत विवेचन करने पर भी हममें में नहीं आता कि इतर न किस आधार पर अशिम मन्द को महापय का आरज पुत्र लिखा है। पुण्यों के अनुसार तो महात्मन् शूद्रोत्पन्न नहीं था। सम्भवत इसका आधार प्रोक्त इतिहास है जिसके अनुसार सिक्खर के शाक्यण के समय मगध का शासक हीन कुमोत्पन्न था।^४ हीन कुमोत्पन्न से यह धर्म भी निकला जा सकता है कि मन्द शूद्रा के पर्व से उत्पन्न हुये थे। कथाचरितकार के अनुसार मगध का अशिम शासक योगत्मन् का पुत्र हिरण्यपुत्र था। शकटार ने इसी का बच दिया

१ मुद्रासस (धनुवार) (इतिहास) भूमिका पृ० ७०

२ अ० (भूमिका) पृष्ठ २३

३ बिष्णुपुराण—१८।२१ (अंश भूमिका) पृष्ठ २१

४ महात्मन् "आरिष्य माः ऐतैरनेकैः—पृष्ठक

बा ।^१ नर्सी के नाम के सम्बन्ध में भी पर्याप्त भ्रम है किन्तु स्वयं प्रसाद की माग्यताओं के आधार पर यही कहा जा सकता है कि जो नम्ब 'बन्धुगुप्त' नाटक का पात्र है वह महानन्द धर्मना महापद्मनन्द तो हो नहीं सकता । कटियस और डापोडोरस ने लिखा है कि उत्कलिनो ब्राह्मण नम्ब की माता का एक नापित से सम्बन्ध हो गया । उसने सम्राट को मरवा कर सारा शासन अपने हाथ में लिया । उदुपरान्त उसके द्वारा राणी से उत्पन्न पुत्र ने राज्य सम्भाला । यही पुत्र अन्तिम नम्ब था ।^२ नाटक में प्रसाद की माग्यता स्पष्ट है । बाण्ड्य को निर्वासित करने की घटना कथित है इस घटना का मूलन प्रसाद ने दो कारणों से किया है एक तो बाण्ड्य को मन्त्र का निषादी सिद्ध करने के उद्देश्य से और दूसरे नम्ब के प्रति बाण्ड्य के क्रोध को एक ठोस आधार देने के लिए । मन्त्र ने ब्रह्मटार को बन्धी किया था । कबासरिस्तागर के धनुमार ब्रह्मटार ने मोहनन्द को पहिचान लिया था घतः ब्याहिक के परामर्श से योगनन्द ने ब्रह्मटार को बंधो बनाकर धर्मरूप में जाल बिछा साब ही उसके ही पुत्रों को भी बन्धी कर दिया गया ।^३ नम्ब को बौद्ध बनाने में प्रसाद ने अपनी कल्पना का आश्रय लिया है । बौद्ध-शास्त्र-सम्बन्ध प्रसाद के ज्ञान समी नाटको की घटना का प्रग है । यह भी माना जा सकता है कि बन्धुगुप्त मोर्व के काम में बौद्ध धर्म अपनी पूर्ण शक्ति से व्यथित रहा होगा । नम्ब बौद्ध वा इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं । इतिहासकार बोल मिश्रता है कि एक प्रचलित धनुषुष्टि के धनुमार पाटलिपुत्र के समीप बने हुए पार्श्वो स्तूप धर्मोक ने नहीं बरन् नर राजा ने बनाये थे ।^४ सम्भव है प्रसाद ने इसी आधार पर नर को बौद्ध अताबन्धी बनाया है । धिपरसन के मतानुसार भी नम्ब सम्भवतः बौद्ध वा जैन थे । मुबासिनी और रासस के प्रलय की कल्पना प्रसाद की अपनी है । मुबासिनी नाम की ब्रह्मटार की किसी कन्या का नाम नहीं मिलता । ब्रह्मटार के सभी पुत्रों को धर्मरूप में जाल दिया गया था घतः बाण्ड्य-ब्रह्मटार और बाण्ड्य-मुबासिनी की मिश्रता भी क स्वनिक है । प्रथम घ क जीने हय की पहली घटना कास्वनिक है । उक्त घटना की योजना बाण्ड्य और रासस के बीच घाबी सम्बन्ध की सृष्टि के लिए एवं बाण्ड्य के अरिष की मत्स्य प्रतिपादित करने के लिए की गई है । इसी हय में नम्ब-पुत्री कस्याली का उद्घाटन घे घाना ब्रह्मचारियों द्वारा नम्ब के शासन की निन्दा एवं राजा

१ कबासरिस्तागर १। पंचम तरंग

२ "ऐषामे" कटियस (बुक ६। पैटर २) 'वैदामे'—डापोडोरस (बुक १०। पै० ६३)

३ कबासरिस्तागर १। पंचम तरंग

४ रिकंडस धाफ दि बीस्टर्न बर्ड्स—(बीस) २।६४

के घेरी भीते।^१ से बन्धगुप्त द्वारा कन्यागी की रक्षा, ये सभी घटनाएँ सामानिक हैं। नन्द का अंतिम ध्येयलक्ष्य क्रूर था। प्रीत इतिहासकारों ने लिखा है कि एक भारतीय समापति "मयेक" ने प्रीतों को बताया कि नन्द नीच-जन्मा होने के साथ-साथ क्रूर भी था और महाराज पुर ने उसकी इस बात का समर्थन भी किया था।^२ नन्द की पुत्री चन्द्रगुप्त के प्रति प्राप्त की प्रीत संभवतः चन्द्रगुप्त ने नन्द की उक्त कन्या से विवाह भी किया था। यह घटना उस समय की है जब विजयी चन्द्रगुप्त का एक पाटलिपुत्र में प्रथम क्रूर रहा था प्रीत स्वर्ण प्रीत मुद्राओं से मरे हुए विजित नन्द का रूप नगर से बाहर आ रहा था।^३ प्रसाद ने इस प्रेम का अन्तः विकास कर घटना में नाटकीय संभाव्यता सा भी है। इसी हृदय से ऐसा प्रतीत होता है कि कन्यागी बचपन से ही चन्द्रगुप्त को प्यार करती थी।

नन्द की राजसभा में चाणक्य का अथमान किया गया। नन्द के रोप में एक मातृति इस कारण भी पड़ी कि परतेश्वर ने उसकी कन्या से परिणय करना अस्वीकार कर दिया। यह सम्पूर्ण घटना कल्पनिक है। परतेश्वर प्रीत मयम सम्राट् के बीच किसी प्रकार के वैवाहिक सम्बन्ध की कथा इतिहास में नहीं हुई है। चाणक्य का अथमान ऐतिहासिक घटना तो है किन्तु इस रूप में नहीं। चाणक्य कथा से बात होता है कि विजये में बन्द सिंह को गला देने के उपरान्त चन्द्रगुप्त नन्द की बुरा प्रीत ईर्ष्या का पात्र हा बना घट उसने नन्दों का विनाश करने का निश्चय किया। एक दिन अपने पित्रो के घाट के अन्तर्गत पर नन्द में चन्द्रगुप्त को ब्राह्मणों को निमित्त करने की योजना थी। मीम समापति के पुत्र चन्द्रगुप्त को मार्ग में मूक की कर्णों को उखाड़ कर उन्हें मन्म करने में सभा हुआ एक ब्राह्मण मिल गया। वह मूक को इसलिए उखाड़ रहा था कि उस पास से उसका पांव छिन्न गये थे। बातचीत में उसके हृदय निश्चय प्रीत राजनीतिज्ञ चातुरी का परिचय पाकर चन्द्रगुप्त ने उसे घाट के लिए निमित्त कर दिया। नन्द की राजसभा में जाकर चाणक्य सबसे विज्ञान प्रीत योग्य ब्राह्मण के लिए सुरक्षित स्थान में जाकर बैठ गया। नन्द ने उसका परिचय प्राप्त किए बिना ही उसे सेवकों द्वारा गिरा एकद कर निकलवा दिया। क्रूर चाणक्य ने प्रतिज्ञा की कि वह नन्दों का विनाश कर एक हीन कुल के व्यक्ति का मिहासन पर बिठलायेगा। अन्त में उसने चन्द्रगुप्त को सम्राट बनाने का निश्चय किया।^३ कथासरित्सागर के अनुसार भी कथा अथमग इसी प्रकार की है। अन्तर

१ काटिपुत्र—बुक १। अंश २

२ रामदोरस—बुक १७। अंश १३

३ हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (साह) पृ० ५८

रैकॉर्ड ऑफ दि बस्तन बर्ड (बीस) बीसपुत्र २ पृ० १३

४ चाणक्य कथा—ऐक कोट्टे इत "रीति" (नारायणचन्द्र बघोपाध्याय) पृ० ९

केवल इतना है कि यहाँ सफ़्टार चाखन को कुछा उखाड़ते हुए देखा है और स्वयं अपने और अपने पुर्णों पर किए गये प्रत्याचारों का बदला लेने के लिए चाखन को बाढ़ के लिए निमन्त्रित करता है। चाखन राजसमा में घाकर सर्वोच्च घासन पर बैठ जाता है किन्तु गन्ध सुबन्ध के पक्ष में नियुक्त हो जाता है चाखन समा से बाँटे जाते यह भोपणा करता है कि वह साठ दिनों में गन्ध का बन्ध करेगा और तब तक अपनी सिखा नहीं चाँबेगा। सफ़्टार के संरक्षण में वह तन्त्र एवं कृत्या द्वारा गन्ध का बन्ध कर देता है।^१

प्रसाद में मूल बटना कषासरिस्तामर से न लेकर सम्भवतः 'चाखन कषा' से ली है क्योंकि सिखा एकड़कर समा है निकाले जाने की चर्चा उसी में हुई है। किन्तु इस बटना के कारण में अन्तर कर दिया गया है। चाखन बाढ़ के लिए राजसमा में नहीं जाता वह अपनी बह्वस्व प्राप्त करने के लिए गन्ध के पास जाता है। उसके अपमान का कारण यह है कि वह राजनीतिक स्थिति को धरे-धरे चर्चों में प्रकट कर बीड़ बने का अपमान करता है। वह परिवर्तन इतिहास के अनुकूल न होते हुए भी एक ओर तो चाखन की राजनीतिक प्रतिभा का खेतक है और दूसरी ओर बटना—कर्म में अधिक गम्भीरता एवं सकारण संघर्ष का सूचन करता है यतः वाञ्छनीय है। छठे हस्त में मानविका प्रलका और सिहरण से संबंध सम्पूर्ण बटना काव्यनिक है। प्रीक इतिहास से केवल इतना भाठ होता है कि पंचनद के सम्राट् पौरस की ईर्ष्या के कारण प्रभी ने सिकन्दर से मैत्री कर ली थी, उसी के परिणाम स्वरूप प्रीक सेना ने प्रीहिब (उद्भाण्ड) पर लीकाधों से बने पुल को पार किया था।^२ प्रीहिब में ही प्रान्मी ने पुल के राज्यों के विरोध में सिकन्दर का स्वागत किया। प्रसाद के अनुसार उद्भाण्ड पर सिकन्दर और प्रान्मीक ने पुन बन्धनाया। इतिहास से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रीहिब व्यापारिक केंद्र थी या और उद्योग्य मही से जाता था। किन्तु मे जल बड़ जाने पर यहीं उठे नावों के पुल द्वारा पार किया जाता था।^३ यत इतना तो स्पष्ट है कि प्रीहिब पर पुल पूर्व से ही था। संभव है उस पुल को सिकन्दर ने अधिक सुदृढ़ बनाया हो किन्तु प्रलका द्वारा उसका मानविक बन्धना और उसके निमित्त सिहरण और सिस्त्रुकस का संघर्ष तथा प्रलका का बंधी बनाया जाना ये सब बटनाएँ काव्यनिक हैं। अद्वयुक्त नाटक में राजनीतिक सांस्कृतिक संघर्ष और उसके प्रभाव से उत्पन्न साम जस्य की प्रचानता है यतः में मयी काव्यनिक भोजनाएँ उच राजनीतिक संघर्ष के सूचन में सहायक होकर जाती हैं।

(१) कषामरिस्तामर—१। पंचम तंत्र

(२) काव्यस ८।१२

(३) काव्यस ८।१२

बाणभय का बरी बनाया जाना और अंग्रगुप्त द्वारा उमकी मुक्ति दोनों घटनाएँ काव्यनिक हैं। किन्तु इन घटनाओं का एक स्पष्ट उद्देश्य बाणभय के क्रोध में घातुति देकर उसके स्वार्थभ्य-प्रिय विचारों को स्पष्ट करना है। बाणभय इसप्रकार इसप्रकार नहीं जाना चाहता कि वह परमेश्वर का घनिष्ट करे। इससे बाणभय के प्रभाव से स्वतंत्र अंग्रगुप्त की बीरता और जातुरी पर भी प्रकाश पड़ता है।

घाटमें हत्य में प्रकटा पांमारराज और धामीक का संवाद काव्यनिक है किन्तु इससे उन भारतीय नारियों के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है जिन्होंने सिक्खर की सेना के विरुद्ध पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर लोहा मिया था। धामीक और परमेश्वर के बीच हुए एक ऐतिहासिक औदाहिक सम्बंध की छुमिका भी यहीं परी परी है। यह कहना या कठिन है कि परमेश्वर ने धामीक से अपनी पुत्री का विवाह करना अस्वीकार किया था या नहीं। किन्तु इतना प्रकट कहा जा सकता है कि सिक्खर न पुरु-विरय के उपरान्त गांधार और पूर राज्य को औदाहिक सम्बंध में प्रकट शोध लिया था।^१ इस ऐतिहासिक घटना की एक सुन्दर काव्यनिक जाय कारण परम्परा का यहाँ विकास हुआ है। यह भी कहना कठिन है कि इतिहास में धामीक न कभी यह विचार भी किया हो कि सिक्खर का स्वागत न किया जाय किन्तु स्वतंत्रता प्रिय भारतीय चरित्र की यह संभाव्यता तो माननी ही पड़ेगी।

अंग्रगुप्त बाणभय का मनोनीत था। घूर न मानते हुए भी बाणभय उसे धार्द क्रियाओं से अत्युत्तम (बुधत्त) मानता है। 'बुधत्त' शब्द का प्रयोग 'मुद्राराक्षस' में हुआ है और उमका यह धर्म मानव-धर्मशास्त्र के आधार पर किया गया है। कुछ भी हो बौद्ध-धर्म दोनों प्रमाणों के आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि अंग्रगुप्त धर्मशुद्धी धर्मिय था।^२ बाणभय ने उसको मूर्खामिच्छित करने के लिए परमेश्वर की सहायता ली थी या नहीं इसमें संदेह है किन्तु 'मुद्राराक्षस' से यह प्रकट जात होता है कि बाणभय ने कुटनीति से परमेश्वर की सहायता प्राप्त कर मयक पर विजय प्राप्त की और घट में विपकम्पा के प्रयोग से उसका बग कर अंग्रगुप्त के लिए राज्य निष्कटक कर दिया। यह कहना कठिन है कि धीका का पोरस और

(१) धर्मी हिन्दू घाट इंडिया (स्मिथ) पृ० १३

(२) परिशिष्ट पत्र-बोन्सुम १ (इ० १९६) कुटनीट १९

बैनिगम इन इंडिया—(सी० डे० शाह) पृ० १३२

दिव्यावशात—(नार्वेल एवम नील) पृ० १७०

रेकार्डस घोष दि बैस्टर्न वर्ल्ड (बील)—बोन्सुम २। पृ० १३

मुद्राराक्षस का पर्वतक एक ही व्यक्ति है । किंतु प्रसाद ने पर्वतेश्वर सम्बंधी बटनाओं के लिए दोनों व्यक्तियों को मिला दिया है । मन्मथ इन्स की योजना का आधार होते हुए भी बटना का यह रूप निश्चय ही कास्पनिक है । इससे चारुण्य की महत्ता के साथ-साथ पर्वतेश्वर का सर्वनाही प्रहकार बटना कम को बढ़ाने में सहायक हुआ है । पर्वतेश्वर की हार के पीछे भीर-शक्तियों की उस प्रहकार भावना का दिग्दर्शन हुआ है जो मुर्षो-मुर्षो से भारतवर्ष में बिबेही साम्राज्यों की विजयों के मूल में रही है ।

सिन्धुकुस ने व्याघ्र से कभी चंद्रगुप्त की रक्षा की थी या नहीं प्रकाश शास्त्रवाचन ने चंद्रगुप्त के लिये भविष्यवाणी की थी या नहीं वे दोनों बातें विचारणीय हैं । बस्तुतः इस रूप में वे बटनाएँ प्रसाद में स्वतः ही बड़ी हैं । चंद्रगुप्त के सम्बन्ध में बीकों में यह प्रचार प्रचल्य किया गया था कि एक सिंह ने उसके तम्बू के बाटे के घोर भारत के भविष्य-बलाघों ने उसके सम्राट होने की बोधणा की थी ।^१ यदि 'प्लूटार्क'^२ घोर बस्तिन पर विश्वास किया जाय तो यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कौटिलीय दण्डनीति में 'मन्मथुद' का जो स्वरूप है उसी का प्रयोग यहाँ पर किया गया होगा । यह भी मन्मथ है कि चंद्रगुप्त तक्षशिला में सिकंदर से मिला था और उसने सिकंदर से कहा कि यदि सिकंदर घोर घावे बढ़ता तो सम्भवतः यह मगध पर भी विजय प्राप्त कर लेता ।^३ प्रसाद ने सिन्धुकुस द्वारा उसकी रक्षा कर भविष्य में होने वाले चंद्रगुप्त सिन्धुकुस युद्ध की मुजाबत एवं औरवपूर्ण परिणति के बिदे सुन्दर कास्पनिक परिस्थितियों का निर्माण कर दिया है ।

शास्त्रवाचन और सिकंदर के बीच जो कुछ भी बातचीत हुई यह अधिकतर रूप से ग्रीक इतिहास से ली गई है । सिकंदर ने जब तक्षशिला में भारतीय दार्शनिकों (त्रिमनोसोफिस्ट) को देखा तो उसकी यह इच्छा हुई कि एक दार्शनिक उसके पास लाया जाय । इन दार्शनिकों में प्रधान दण्डमिस था । इन सिकंदर ने घोरेदिक्रटीय को दण्डमिस को लाने के लिये भेजा । उसने दण्डमिस से कहा— 'हे बाह्यणों के पुत्र (टीचर फाफ बी डेमरीस) तुम्हारा धर्मनहन है । कुपिटर का पुत्र सब मानवों का सम्राट सिकंदर तुमसे मिलना चाहता है । यदि तुम उसकी आज्ञा मानोगे तो वह तुम्हारी धर्म्यर्षता धन धर्म से करेगा धर्म्यथा तुम्हें मृत्यु दण्ड दिया जायगा । दण्डमिस मुस्कराया और बिना शिर उठाये उसने उत्तर दिया— 'सम्राटों का सम्राट बह प्रकाश, शक्ति शीबन बल शरीर और धारणा का स्रष्टा है घोर मरु के उपरंत

(१) मुद्राराक्षस

(२) साहस्य—(प्लूटार्क) साहस्य शास्त्र एसीरबंडर—बी० ७ । बी० ११ पृ० ४ १

(३) दार्शनिकों (प्लूटार्क) सिकंदर १२

ये सब उसी ब्रह्म में समा जाते हैं। मैं उसी के सामने प्रकृत होना हूँ। सिक्खर स्वयं मर्त्य है घट ब्रह्म नहीं है। सिक्खर ने अभी विजय ही कितनी की है जो वह अपने आपको विश्वविजयता कहता है --- --- स्मरण रखो कि सिक्खर के बीजब धेरे लिये महत्त्वहीन हैं। धेरे लिए उनसे कहीं अधिक मृत्युवान ये पत्ते हैं जिनसे मेरी कुटी बनी है। ये पस्तबिल बल हैं जिनसे मुझे भोजन मिलता है ये नदियाँ हैं जिनसे मेरी प्यास बुझती है --- --- मैं पत्तियों पर खोता हूँ जिनकी रसा करने की आवश्यकता नहीं। --- --- भरती के झेड़ से मेरी सारी प्राबल्यताओं की पूर्ति हो जाती है। मैं इच्छानुक्रम वसमें निर्द्वन्द्व विचरण करता हूँ। सिक्खर मेरे शरीर को मल्ट कर सकता है किन्तु मेरी आत्मा धमर है और वह शरीर छोड़कर उसी प्रकार ब्रह्म में लीन हो जायगी जिस प्रकार हम पुराने वस्त्र त्याग देते हैं। सिक्खर ये धमकियाँ उन्हें द जो बीजब की बालसा रखते हैं और जो मृत्यु से बस्त है। सिक्खर से यह वा कि वाष्पमिस को तुम्हारी किसी बीज की प्राबल्यता नहीं। घट वह तुम्हारे पास नहीं आया। यदि तुम्हें उससे कुछ प्राप्त करना है तो तुम उसके पास जाओ।" धोर्निसकटीज से यह सुनकर सिक्खर स्वयं वाष्पमिस से मेट करने आया।^१

बन्धुगुप्त के प्रथम धन्दू का स्याहूवा हस्य इस सम्पूर्ण घटना का सही विवर प्रस्तुत करता है। वाष्पमिस (इन्डियन) के सबाहों तक का प्रसाद ने धनुबाह कर दिया। प्रसका से सम्बन्धित घटना का माय कास्पनिक है। यहाँ कार्नेलिया और बन्धुगुप्त का प्रथम दायारमक बर्तन भी प्रसाद की कास्पनिक योजना का धन्दू है जो बन्धुगुप्त-कार्नेलिया के विवाह में पूर्व-राय की नाटकीय सृष्टि करता है। यह सब है कि इस योजना के परिणामस्वरूप नाटक में सुबीर्ष काभाबधि के कारण ऐतिहासिक नाटकीय बोप धा गये हैं। किन्तु घटना की योजना के अनुसार यह प्रयोग धबस्य सफल माना जा सकता है। यह घटना पूर्ववत् कास्पनिक है। सिक्खर बन्धुगुप्त की मेट के लिये इस स्वान का बुनाब भी ऐतिहासिक न होकर नाटकीय है।

द्वितीय धन्दू के प्रथम हस्य की घाबी घटना पूर्ववत् कास्पनिक है। तिस्रू कस की पुत्री कार्नेलिया (इलिन धबबा ऐदेना जो भी हो) सिक्खर के प्राक्रमण के समय पीक सेना में साथ थी इसका कोई प्रमाख नहीं। उसका मारुत-प्रेम भी एक विधि-सी घटना है। इसमें सन्नेह नहीं कि इस प्रकार के बरिष की योजना द्वारा राष्ट्रीय भावना का प्रसार हुआ है किन्तु इसमें सर्वत्र कास्पनिकता भलकटी जाती है। विमिष्य की कार्नेलिया के प्रति पासि द, बन्धुगुप्त द्वारा कार्नेलिया के

(१) एंथिप्ट इडिया—(मिडिडन) मेगास्वनीज ए ब ऐरियल—डॉगमैट १३ पृ०
१२३ २४

सम्मान की रक्षा और परिणामस्वरूप सिक्खर-बन्धुगुप्त में संघर्ष काल्पनिक बटनाए है। इसमें इतना इतिहास प्रशस्य है कि सिक्खर किसी कारणवश बन्धुगुप्त से दूर हो गया और बन्धुगुप्त को अपनी प्राण रक्षा के लिए सिक्खर के सेनानिवेश से सामना पड़ा^१ किन्तु ये बटनाए अत्यन्त नाटकीय हैं। इससे बन्धुगुप्त के चरित्र का उत्कर्ष होता है और कामान्तर में बन्धुगुप्त के नेतृत्व में पंजाब के विद्रोह एवं दिल्लीस की हत्या के लिए एक सम्भाव्य नाटकीय कार्य-कारण-परम्परा की सृष्टि हो जाती है। बन्धुगुप्त के प्रति सिल्लुकस की सहानुभूति भी माफी बटनाओं की धीरे संकेत करती है।

द्वितीय हरय भी काल्पनिक है। पर्वतेश्वर-सिक्खर के युद्ध में न तो बन्धुगुप्त ने भाग लिया था न राजकुमारी कस्याली ने और न सिंहरण-सलका ने किन्तु इस अपनी काल्पनिकता में घासप्र गांगार-युद्ध की पूर्वपीठिका का ही भुजन नहीं करता बल्कि कौटिलीय युद्धनीति एवं चरपद्धति पर भी प्रशस्य बातता है। सम्पूर्ण हरय में ऐतिहासिक बटना सूक्ष्म मात्र है। सिक्खर के सैनिकों ने बिहस्ता को रातों रात पार कर लिया था इसका साक्षी प्रौढ इतिहास है।^२ युद्ध का इस अक्षिन्तर इतिहास पर प्रामित है। जिस दिन युद्ध सड़ा गया उससे पहिली रात में बनवोर बर्षा हुई थी। उसी बर्षा और अम्पकार में सिक्खर के बृहस्पतारों ने बिहस्ता पार की बर्षा से कीचड़मुक्त बरती पर भारतीयों के सुरीर्ष अनुप अनुपयोपी छिड़ हुए और बृहस्पतारों के घाक्रमण से हाथी भड़क उठे। अन्त में स्वयं पर्वतेश्वर ने मयंकर युद्ध किया। युद्ध में घायल पर्वतेश्वर के पास सग्वि की बस्ता के लिये घन्मी को भेजा गया। वेधघोड़ी घन्मी पर पोरस ने चक्र छोड़ा। घन्मी ठी बच गया किन्तु उसका भीड़ा मर गया। अन्त में पोरस के मूर्खित हो जाने पर उसे सिक्खर के पास लाया गया। सिक्खर ने उससे पूछा— 'राज्य ! अब तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार किया जाय ?' इसके उत्तर में पुरु ने जो कहा वह विषय ऐतिहासिक उत्तर था 'जैसा एक राजा अन्य राजा से करता है। सिक्खर ने इस उत्तर से प्रसन्न होकर पुरु से दंभी कर ली।^३ और कामान्तर में सिक्खर-विजय में उसकी सहायता भी की। मयक राजकुमारी कस्याली का पर्वतेश्वर को पीसा दिखाने का प्रयत्न पूर्णतः काल्पनिक होने के साथ ही साक्ष संभाव्यता के विरुद्ध है। यदि यह ऐतिहासिक बटना होती तो भी जिस रूप में यह नाटक में घाई है उस रूप में सम्भाव्य नहीं।

(१) अस्टिन ११४

(२) ऐनाबसिस आफ ऐलंबर्नइडर—(ऐरियन) २।११

(३) डायोडोरस १७।५७ अग्निय ५।१४ इ इिका (ऐरियन) पै० १९ ऐनाबसिस (ऐरियन) २।१७

राजकुमारी कस्बासी का चरित्र नहीं भी इस प्रकार के सैनिक कार्यों के लिये बना नहीं प्रतीत होता। घसका का चरित्र अवश्य इस प्रकार का है। चन्द्रगुप्त और सिंहरण द्वारा परवतेश्वर को यवन-सैनी से रोकने के प्रयत्न भी कार्यात्मक हैं। उनका उपयोग कामान्तर में परवतेश्वर के पतन और इन दोनों के चारित्रिक विकास में किया गया है।

चतुर्थ शत्रु की सम्पूर्ण बटना कास्मिनिक है। चन्द्रगुप्त और मासविका की बटनाएँ इतिहास में नहीं मिल सकती क्योंकि मासविका प्रसाद की स्वतन्त्र कल्पना है। इस दृश्य में मुख्य रूप से दो महत्वपूर्ण ऐतिहासिक बटनाओं की धोर संकेत अवश्य किया गया है। विषाभा के तट पर पहुँच कर यवन सेना में बिड़ोह छा गया। सिकन्दर ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति से उन्हें प्रोत्साहित करना चाहा किन्तु जब उन्होंने यह सुना कि घावे "प्रासी और 'गंदरडीब' के साथक बहुत बड़ी सेनाएँ लेकर उनके मार्ग पर खड़े हैं तो उनके धड़के टूट गये। घस में हारकर सिकन्दर ने देवताओं को पूजा की और शत्रु विचार कर मोटन का निर्णय किया। सिकन्दर की सेना दो मार्गों में बटकर जम घोर स्वम मार्गों से दक्षिण को लौटी।^१ जप माघ से वापस मोटन का विचार जानकर मासव-सुरकों ने युद्ध की तैयारियाँ प्रारम्भ कीं। शीमूति और जिबि राज्यों को इस कर सिकन्दर का मार्गों से ही युद्ध हुआ।^२ यहाँ यह कहना कठिन है कि चन्द्रगुप्त को सुरकों की सेना का सेनापतित्व कैसे मिला। इतिहास इस सम्बन्ध में मौन है।

परवतेश्वर द्वारा सिंहरण और घसका के बन्दी किये जाने की बटना कास्मिनिक है। इस सम्पूर्ण बटना से दो धर्म सिद्ध हुए हैं, एक तो सिंहरण और घसका के बीच सामान्य राय बढ़कर प्रेम दशा तक पहुँचने का अवसर मिला है और दूसरे परवतेश्वर के पतन के लिए बटना जम में उसकी बिसाठी प्रकृति को प्रकट किया गया है। इसके प्रभाव में इतिहास प्रसिद्ध और परवतेश्वर के चरित्र को भीचे विराना प्रसन्नम हो जाता।

मासवों की युद्ध चरित्र सम्बन्धी बटना मुख्य-ऐतिहासिक है। ग्रीक इतिहास से ज्ञात होता है कि मासव-सुरकों में घापस में संबंध रहा करता था। किन्तु सिकन्दर के शासन के फलस्वरूप दोनों ने सैनी करने का निश्चय किया और दोनों ने इस सैनी के उद्देश्य से एक दूसरे की १० सहस्र कपायों से परिणाम किया किन्तु व्यक्तिगत कमजोरियों के कारण उनकी

(१) बायोडोरस—१७।१३ कटियस—१।३ प्लूटार्क—बैप्टर ६२

(२) एनाबसिस—(ऐरियस) ६।३ कटियस १।४ बायोडोरस १७।१६

परिपद्यों के विचार विनिमय में अधिक समय बच गया । सबसे अधिक कठिनाई इस बात के निर्णय में हुई कि दोनों सेनाओं का सेनापतित्व कौन करे । ग्रीक लेखकों से ज्ञात होता है कि इस संगठन के बनने से पूर्व ही सिकन्दर ने मासकों पर आक्रमण कर सगको हटा दिया ।^१ छठे हस्त में प्रसाह ने मासक-युद्ध परिपद्य में सेनापति के सिने उपस्थित किये गये संघर्ष का ही विवरण किया है किन्तु प्रसाह ने इस दृष्टि का समाहार आशुप्य धीर अष्टगुप्त के माध्यम से कर प्रमाण चरित्रों से बटना ही जोड़ दिया है । इस प्रकार बटना की ऐतिहासिकता के साथ-साथ उसका नाटकीय महत्व भी बढ़ गया है । अष्टगुप्त का दोनों की सम्मिलित सेनाओं का सेनापति बनना आना ऐतिहासिक तथ्य न होते हुए भी नाटक के बटना क्रम में अत्यन्त संभाव्य हो गया है । कटिबस लिखता है कि मासक-युद्धों की सम्मिलित सेना का सेनापति एक अत्यन्त वीर और अनुभवी व्यक्ति चुना गया था ।^२ प्रसाह ने उसे अष्टगुप्त मान लिया है ।

बठ जाति के सांगम प्रवेश को बीतने में पोरस ने सिकन्दर को पर्याप्त सहायता पहुँचाई । यह हाथियों धीर वंशम सैनिकों की ५०० सेना लेकर आकर पहुँचा था । यह कहना कठिन है कि मासकों के प्रवेश पर आक्रमण करते समय सिकन्दर ने उससे घात सहन्य धम्बरोहियों की माँग की भी बचवा नहीं । घतका पवतेस्वर सम्बन्धी कल्पित कथा (सप्तम हस्त) में सिकन्दर की उक्त माँग की खर्षा हुई है । इस बटना में ऐतिहासिक संभाव्यता पूरी है । यदि पुत्र पर सद्य विजयी सिकन्दर सांगम विजय के लिए पुत्र की सहायता की अपेक्षा रखता था तो मासक-सिखर के लिए तो उसकी आवश्यकताएँ धीर भी बढ़ गई होंगी ।

प्रसाह के अनुसार ग्रीक सेना को रोकने के लिए मासकों की जन-सेना संजड थी । स्वयं ग्रीक इतिहासकार इस बात को स्वीकार करते हैं कि मासक युद्धक धीर विधि वागुत्तरों के योद्धा मरकर थे । अनेक धीर विजय के संभव के समीप के राज्य होने के कारण उनकी जन-सेना अत्यन्त धरन्त मक्तिमानी होगी । सिकन्दर ने जो हूट मासक नेताओं के पास भेजा उसकी ऐतिहासिकता भी अस्पष्ट है । अस्तुता सिकन्दर की यह दृष्टि नहीं थी कि वह अपनी वापसी यात्रा में किसी युद्ध संघर्ष में फँसे बठ जाति से घट करके समय बहु इन प्रजातन्त्रों की शक्ति देल चुका था । घतः बहु अपनी शक्ति का भय दिलाकर घातक द्वारा ही तिर ऊँचा किये अपनी हारी बनी सेना लेकर लौट जाना चाहता था ।^३

१ डाबोडोरस १७।१८

२ कटिबस-युद्ध ६ पैप्टर ४

३ अर्नी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया पृ० ७८

कल्याणी के प्रति चन्द्रगुप्त का प्रथम प्रस्ताव आखण्ड की कूटनीतिक बातुरी का नमूना है। ऐसा उसने हमसिए किया कि मगध सेना मानव-युद्ध में सहायक बन सके। यह राजस को बमझी बेठा है कि यदि उसने कल्याणी को न रोकता तो सुदूर सिक्खर को मगध तक जाने का मार्ग दे दे। यह बमझी उस बातुरी का दूसरा नमूना है। दोनों बटनाएँ कास्मिक हैं किन्तु नाट्य के बटना क्रम में ये प्रतिबन्ध हैं। राजस को यथासंभव मगध न जाने देकर आगम्य ने मात्री मगध-विद्रोह के लिये बीज बो दिये अथवा उन परिस्थितियों से प्रसन्न राजस के लिए उक्त विद्रोह को रोक सकना असम्भव न होता।

अबें हृष्य में ही आखण्ड राजस को सूचना देता है कि “अस याथा में इतना विघ्न उपस्थित हुआ कि सिक्खर को स्थल मार्ग पर से मानवों पर आक्रमण करना पड़ा।”^१ हम पूर्व कह चुके हैं कि ग्रीक इतिहासकारों ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि सिक्खर ने मानव-सुदूरों को पूर्णतया पराजित कर दिया था क्योंकि मानव-सुदूर प्रायस में संघटित नहीं हो पाए। पाणिनि और पातञ्जलि से हमें क्या का दूसरा ही रूप मिलता है। पाणिनी ने “मानव-सुदूरों” के सघटन की चर्चा की है (शब्धि इन्द्र)।^२ स्वयं कटिपस के अनुसार मानव-सुदूरों की सेना की शक्ति एक लक्ष थी। जब ग्रीक सैनिकों को यह बात हुपा तो उन्होंने पुन विद्रोह कर दिया और उनमें आस छा मया। य भयकर योद्धा थे एव उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि विना रक्तपात के सिक्खर को मारत छोड़ने नहीं देंगे।^३ परिलामस्वरूप सिक्खर का एक बार पुन आण देकर रोककर उत्साहित कर सेना को साहस बचाना पडा और उसने अपनी सेना को दो भागों में बाँट कर स्थल मार्ग से ले जान का निश्चय किया।

मानव-दुर्ग में युद्ध हुआ। शिष्य हम मानव-दुर्ग को भ्रग एवं मोटंयीमरी जिनके की सीमा पर मुलतान के उत्तर-पूरव ८ या १० मील के दायपास मानते हैं।^४ ग्रीकों के दुर्ग में प्रवेश करने का प्रयास किया। सिक्खर स्वयं एक सीढ़ी लेकर तीन सैनिकों के साथ दुर्ग की बीवाल पर चढ़ गया। अपने पर चारों ओर से आक्रमण होता देख सिक्खर दुर्ग के अन्दर कूद गया। सिक्खर का एक सहायक मारा गया

१ अश्व० २।१४८

२ काशिका ४ २।४१

३ कटिपस बुक १ पेट्टर ४

—इन्वेस्टिग घाफ इण्डिया बाइ एलैबर्नर (मैजिस्ट्रल) ३४

४ धर्सी हिस्ट्री घाफ इण्डिया (सिन्ध) पृ० १००

घोर एक तीर सिकन्दर के कब्र को खेद कर उसकी छाती में बांधा। बड़ी कठिनाई से सिकन्दर के प्राण बच सके। दुर्ग का द्वार तोड़ कर यवन सैनिकों के मुमुर्षु सिकन्दर की रक्षा की।^१ प्रसाद ने मूल घटना में कुछ परिवर्तन कर दिया है। घनका द्वारा दुर्ग पर चढ़ते हुए यवन सैनिक का बच काव्यनिरूपक है। सिहरण घोर सिकन्दर का इन्द्र भी ऐतिहासिक नहीं। वस्तुतः सिकन्दर एक तीर से घायल होकर मिर पड़ा था। उसे तमवार या माले से मुक्त करने का यत्न ही नहीं मिला था। इस घटना का घात बहुत ही सुन्दर घोर नाटकीय है। इतिहास से यह सम्बन्ध में नहीं आता कि इतने शक्तिशाली मालकों के दुर्ग में केवल तीन सैनिकों सहित प्रवेश करने पर सिकन्दर किस प्रकार सुरक्षित लौट गया। दुर्ग का द्वार टूटना घासाम कार्य नहीं। ग्रीक लेखक बाहे कुद्र भी कहें यह तो निश्चित है कि सिकन्दर मासक-शुद्धकों पर विश्वास नहीं पा सकता था।^२ घट प्रसाद ने जो यह कल्पना की है कि मालकों ने घायल यवतस्वर के प्रति विश्वास नहीं सिकन्दर की उदारता को भारत पर उसका एक श्रेष्ठ माना घोर इसी श्रेष्ठ को पुकारने के लिए उन्होंने मुमुर्षु सिकन्दर को जीवित घोर सकुम्भ दुर्ग के बाहर कर दिया—बड़े भारतीय शक्तिशाली के घातों के घायल यवनकुस होने के साथ साथ यवतस्व स्वामानिक घोर सम्भाव्य प्रतीत होता है।

मालक शुद्धकों के युद्ध में सिकन्दर विजयी न हो सका। स्वयं एरियस इस बात को स्वीकार करता है कि मालक शुद्धकों के युद्ध में सिकन्दर को जो बोट लगी उस पर व्यापक कल्पनाओं की भरमार की गई है।^३ घटः इस सम्बन्ध में प्रसाद ने भी ग्रीक इतिहास को पकड़ना नहीं पहन किया है। तुर्तीय शत्रु के आरम्भिक हमलों में घटनाओं के क्रम से ज्ञात होता है कि सिकन्दर ने स्वयं मालक-शुद्धकों के घात संदि की। शुद्धकों के विजयी होने का उत्पीड़न पाठ्यक्रम में भी किया है।^४ यहाँ प्रसाद ने घटनाओं को इस प्रकार संतुलित किया है कि ज्ञात इतिहास की घटनाएँ भी सुरक्षित रह सकीं हैं घोर प्रसाद की स्वयं की गम्भीरता भी। रात्री लट पर विस्तृत विवरों की उपस्थिति बनी जिसमें सिहरण घोर घनका का विवाह हुआ। मालक घोर यवनों का एक सम्मिलित उत्पन्न बनाया गया जिसमें सिकन्दर ने भी भाग लिया। सिहरण घोर घनका का विवाह एक काव्यनिरूपक घटना है किन्तु

१ कर्टियस बुक ६ पैटर ७

२ हिन्दू पीमिटी (आयसवाल) पृ० ६६

३ एरियस बुक ६ पैटर ११

४ "एकाकिभिः शुद्धको" (पाठ्यक्रम)—३ १२

(कीसहीर्न)—२ पृ० ४ २

प्रसर के सबसे अधिक उपयुक्त होने से ऐतिहासिक घटना में इसका समाहार हो गया है। श्रीक नेहरू के अनुसार— 'युद्ध के उपरान्त मासक-युद्धों के लो वृत्त सिकन्दर के पास आए। ये अत्यन्त विद्वान्महाय प्रभावशाली युद्ध रणों पर बड़े हुए थे। मुनहरे एवं गुमाही रणों से कड़े हुए उनके रजमी वस्त्र अत्यन्त सुन्दर थे। उन्होंने सिकन्दर से कहा कि सहायों रणों से घाब तक वे अपनी जिस स्वतन्त्रता को प्रसुम्ण रक्त सके हैं उसका उन्हें यर्ष है। देवों की इच्छानुसार वे घाब युद्ध के प्रभव हैं पर किमी भय से नहीं। सिकन्दर ने अपने स्वयम् की शूरता के प्रतिशुभ बनका प्रसाधारण स्थापित किया। उसने एक महान् मोक्ष की व्यवस्था की सी स्वर्ण लक्षित बस्त्रों से ढके हुए सोने के घासन रखे गये। कई प्रकार के मोक्षों के उपरान्त सुरानात हुआ और वे सब दूत अपने अपने स्वार्थों की लौंग गये।'^१

उपयुक्त उद्धरण से यह तो स्पष्ट है कि यह विद्वित मानव युद्धों के सम्मान का स्वरूप हो ही नहीं सकता। इससे तो यह प्रतीत होता है कि कोई विद्वित राजा विजेताओं का स्थापित कर रहा है। सिकन्दर को न कबल पीछे ही हटना पड़ा बल्कि अपने सैनिकों को भी उत्तुष्ट कर उनमें भ्रम की भाषा के लिए साधन मरणापन्न।^२ बस्तुतः यद्यपि घोर मासकों के सम्मिलित उत्सव द्वारा प्रसार में उपयुक्त ऐतिहासिक बस्त्र की घोर संकेत किया है। राजस को अथ मगध सैनिकों द्वारा बंदी बनाकर अपने सैनिकों द्वारा उसे मुक्त करने में आणक्य की कूटनीति पुनः प्रतिष्ठित हुई है। आणक्य का कौटिलीय रूप यही स्पष्ट प्रकट होता है। हम पहले कह चुके हैं कि राजस का मगध बना जाना लम्ब की स्थिति की हठता का कारण बन आता और आणक्य की दूर दृष्टि कुशासन के कारण मगध के प्रति आशोक उत्सव कर मगध में माही विद्रोह को देख रही थी। अतः राजस के मन में यह भ्रम उत्पन्न किया गया कि लम्ब को अपनी प्रेमिका सुवासिनी और राजस के अनुचित संबंधों का विश्वास हो गया है अतः वह राजस को बंदी बनाना चाहता है। इस प्रकार के भ्रम द्वारा आणक्य ने राजस को दो बार मगध जाने से रोक दिया। यह घटना कास्वनिक है। किन्तु इसमें "अर्थशास्त्र" के "मगध-युद्ध" एवं "कूटनीति" की इतनी अधिक ध्याया है कि घटना अत्यन्त स्वामाधिक और सम्भाव्य बन गई है। 'मुद्राराक्षस' से भी इस प्रकार की कूट नीति की पुष्टि हो जाती है।

१ कटियस बुक १० पैटर ७

इत्येवम—(मीथिकर्डस) पृ० २४५—२१

२ हिन्दू पीतिटी—(बायसवाल) पृ० ९६

घसका विहरण के विवाह से पुत्र को ईर्ष्या हुई एवं उसने प्रात्महत्या करने का निश्चय किया। दुरदर्शी बालक्य धमी उससे एक नये संन्य में सहायता चाहता था घसः उसने पुत्र की रक्षा की। यह बटना भी कास्मिक है किन्तु अनिर्वास भी, धर्ममा न तो मुद्राराक्षस की पर्वतक वप की बटना से इसका समाहार हो पाता और न बालक्य की वृद्धता ही प्रकट होती बटना कम में भी विभूक्तता उत्पन्न होने की संभावना हो जाती और कथा का एक सूत्र घसमव में ही टूट जाता। घसका के विवाह के भवसर पर गांधार राज और घसका का पुत्रनिजत कास्मिक है, साथ ही घनाबन्धु भी। इसके उपरांत पाण्डार राज का चरित्र बटना कम से टूट जाता है। धर्म्य होता यदि प्रसाद मवन प्राक्मण से पूर्व ही पाण्डार राज की मृत्यु स्वीकार कर घाम्मी को ही वास्तविक शासक मान लेते। इससे बटना के घनाबन्धु और घनाटकीय विस्तार की रक्षा हो जाती। इसी रूप में कार्नेलिया और अन्नगुप्त की प्रेम बर्षी और तन्मय ईर्ष्या के कारण क्रिस्तिप टाठ अन्नगुप्त को इन्द्रपुत्र के लिए सतकारना दोनों पूर्वतया कास्मिक है कार्नेलिया-सर्बन्धी बटना तो अतुर्ष घक की चरम-परिणति की पूर्णवीटिका बन वा किन्तु क्रिस्तिप सर्बन्धी बटना और भी नाटकीय है। पचनर के विद्रोह में अन्नवप के नेतृत्व में वसत क्षत्रियों के मारकर भारतीयों ने विक्रमर के प्राक्मण के अन्तिम सक्तेयों को नष्ट कर दिया। इसी विद्रोह में बर्षी के अन्नप क्रिस्तिप की हत्या कर दी गई। यह हत्या किसने की इसका इतिहास में कोई भी उल्लेख नहीं प्रसाद ने कार्नेलिया के लिए लड़े गये उग्र में अन्नगुप्त द्वारा उसके वप की कल्पत कर एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक समाख्यता के साथ साथ एक अत्यन्त सुन्दर नाटकीय बटना की बाजना भी करती है।

विक्रमर जता गया किन्तु विजेता बनकर नहीं मानव-दुरर्षी से धर्म करके। बालक्य और अन्नगुप्त दोनों उसको विरा करते समय उपस्थित थे। या उच्च ऐतिहासिक मने ही न हो कथानक की सम्भावना के अनुकूल एवं नाटकीय त है ही।

राजस को यह ज्ञान हो गया कि बालक्य उसके साथ छप कर रहा है भी इसी क्षण से उसने गुवासिनी को मुक्त करने के बहाने उसकी नामांकित मुद्रा भी। की है। घसः वह सीधा मन्व की ओर चल दिया। राजस सर्बन्धी इस बटना का भाषार "मुद्राराक्षस" है। उक्त कथानक में राजस और बालक्य के शब्द-वेष से राजस की नामांकित मुद्रा का स्वान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। बालक्य का व अन्नवप जोहरी के द्वार पर अन्न केनाकर गा रहा था। उस कीमुक को रैड के लिए एक पांच बर्ष का सुन्दर बालक एक परदे की छाड़ से बाहर निकला

भीतर सिन्यों में क्रोमाइत हुआ कि लड़का जहाँ जाता गया। इतने में एक स्त्री ने द्वार से बाहर मुह निकाल कर देखा भीतर बच्चे को भीतर पकड़ ले गई। उसके हाथ से राजस की नामांकित धनुड़ी गिर पड़ी। वह घर ने चाणक्य को लाकर ही १^२ के मंत्री राजस के स्त्री भीर पुत्र थे। चाणक्य ने राजस की उस मुद्रा के द्वारा अकटवास के पत्र भिजवाकर राजस भीर कुमार मन्त्रकेतु से कूट बलवा दी, चाप ही मन्त्रकेतु की धात्रा से उसके सहायक कौमुद बिमबर्मा मलयाधिपति सिंहास कम्भीराबीन पुष्करास सिमुरास सुखेय भीर पारसीधिपति मेघास का पत्र करवा दिया।^{१३} "मुद्राराक्षस" के कथामक से प्रसाद के कथानक में प्रकृत है। यही चाणक्य स्वयं राजस से मुद्रा ले लेता है भीर मन्त्र राजस के बीच कूट अन्वय करवा देता है। "मुद्राराक्षस" में चाणक्य का घर सिद्धार्थक इस कार्य का करता है और "अश्वपुत्र" में चाणक्य के घर के रूप में कार्य करती हुई मामबिका। किन्तु इस कथानक का मूल स्रोत यही है भले ही "अश्वपुत्र" नाटक में चाणक्य की कूटनीति उतनी प्रकट नहीं हो पाती बितनी "मुद्राराक्षस" में।

चाणक्य का पर्वतेश्वर को मयम विजय के लिए से जाना ऐतिहासिक है इसका आधार भी "मुद्राराक्षस" नाटक ही है। चाणक्य ने पक्षक की सहायता से मन्त्रबंध पर विजय प्राप्त की। मुद्राराक्षस का वर्णनक म्लेच्छराज है। प्रसाद ने दोनों के पीरस से उसे मिला दिया है। यह कहता कठिन है कि दोनों एक ही थे मन्त्रा नहीं। "मुद्राराक्षस" के अनुसार— मन्त्रबन्ध की राजसकमी अश्वपुत्र के बनीकृत होकर भी चाणक्य नहीं (यावत गी उड़ी की अर्थात् वह साम्राज्य को दो विभागों में—अश्वपुत्र तथा पर्वतक के बीच-बंदि जाने के विचार से अस्विर ही उड़ी थी।^{१४} इसका एक मात्र कारण यही था कि चाणक्य ने पर्वतक को अपना सहायक भीर मित्र बनाने की कूटनीति अपनाई थी। प्रसाद के नाटक में भी चाणक्य पर्वतेश्वर को धारणकरवा करने से केवल इसलिए रोकता है कि वह उसकी सेना की सहायता वाकर वह विजय कर सके। राज्य के एक मात्र विरोधी पर्वतेश्वर में सहानुभूति नहीं प्रतीत होती। वह राजसकमी से उदासीन है पर मुद्राराक्षस का पर्वतक अपने को मन्त्र का जामीदार मानता है। यही चाणक्य की कूटनीति कुछ सब गई है। मूल कथानक में यह परिवर्तन कर प्रसाद ने क्या नाम देखा यह नहीं कहा जा सकता।

१ मुद्राराक्षस पृष्ठ १

२ वही पृष्ठ २

३ मुद्राराक्षस (अनु० हरिवंश) कथावस्तु पृ० २४

मुवासिनी के प्रति नर की कामुकता और राजस द्वारा उसकी रक्षा की गटना एतन्मय कार्यात्मक है। इससे एक साम हुआ है कि नर और राजस के बीच बाणव्यय की कूटनीति से उत्पन्न माही संघर्ष के लिये मुवासिनी का प्रणय सहायक बन गया है और कषातक में संघर्ष के लिए प्रबल कारण हो गये हैं।

बाणव्यय की योजना है कि बाणियों के रूप में सारी सैना कुमुमपुर में एकत्रित हो जाय। कषातक की दृष्टि से यह कार्यात्मक है किन्तु कौटिलीय धर्मशास्त्र की दृष्टीसे और कूट-युद्ध के पूर्णतया अनुकूल है। इससे उचित ऐतिहासिक बाधाकरण की दृष्टि होती है। शकटार सबकी कषा का आचार 'कषा-सरिरसाधर' है। 'बन्धुमुप्य' शकटार को नर ने धर्मरूप में शक्त दिया। वह और उसके साथी पुत्रों को सत्तु और नमक मिला हुआ पानी दिया जाता था। साथी पुत्रों ने भूख से तड़प कर प्राण दे दिए, शकटार शकटार पुत्रों की हड्डियों से सुरण बनाकर नर से बदला लेने बाहर निकल आया और बाणव्यय से मिल गया। 'कषासरिरसाधर' के अनुसार श्याडि इन्द्रसत्त एवम्बरविण धर्मोष्मा के सम्राट नर के पास कुम्बरलिखा के लिए दस सहस्र स्वर्ण मुद्राएं मांगने गए। किन्तु जब वे वहाँ पहुँचे तो राजा की मृत्यु हो गई थी। इन्द्रसत्त ने योजना से नर के शरीर में प्रवेश किया। नर जीवित हो गया। श्याडि इन्द्रसत्त के शरीर की रक्षा करता रहा और शकटार मुद्राएं मांगने आया गया। योजना से नर के मंत्री शकटार को धारा थी कि शकटार को दस सहस्र स्वर्ण मुद्राएं दे दी जाय। शकटार ने धारा तो मान ली किन्तु उसे समझ ही नहीं हुआ। उसने यह सोचकर कि जब तक नर का पुत्र छाटा है तब तक योगनर ही शासक रहे सारे राज्य के मृतकों को मराने कर दिया। इसी में इन्द्रसत्त का शरीर भी बस गया।

योगनर ने श्याडि से समाह्व की। श्याडि ने कहा कि शकटार को तुम पर संदेह हो गया है घट तुम जन्म नहीं बना लो। धर्मशा वह तुम्हें मारकर नर के प्राय पुत्र शकटार को सिंहासन पर बैठा देगा। श्याडि बाँझपा लेकर जाता गया। शकटार ने भी यही बात कही। इस पर योगनर ने शकटार और उसके सौ पुत्रों को धर्मरूप में डसबा दिया। उन पर वह आरोप मनाया गया कि उन्होंने एक ब्राह्मण को जीवित जमाया है। उन्हें नित्य एक वर्तन में जल तथा सत्तु दे दिया जाता था। एक दिन शकटार ने अपने पुत्रों से कहा 'पुत्रो ! इस नर-जन्म से एक धारणी भी शरितता से जीवित रह सकता है। इतने सोपों का तो प्रसन्न ही नहीं। घट हम में से जो भी योगनर से बदला ले सके में समर्थ हो यही नित्य इस जन्म और सत्तु को ग्रहण करे। सब पुत्रों ने शकटार को ही इनके योग्य माना। शकटार उस धर्मरूप में अपने पुत्रों को भूख से तड़प-तड़प कर मरता देखता रहा। अन्त में अपने पुत्रों की हड्डियों से पिरा हुआ शकटार जीवित रहा।

काशान्तर में यातन्य न विमानिता में लयकर सब ज्ञान बरक्षि पर ज्ञान दिया ।
बरक्षि ने लय की प्रामा लकर मरुटान को बग्गी-टूह से निजान कर पन मकी
पद पर प्रतिष्ठित किया । मरुटान बरने का पबसर हु बना रहा ।^१

प्रसाद ने मरुटार के मी पुर्षों के स्वात नर माउ पुर्षों का ही उन्नेन किया
है । साथ ही मरुटार की मुक्ति बरक्षि द्वारा न होकर स्वयं पगने ही प्रयत्नों ने हुई
है । इस परिवर्तन स क्रिये ऐतिहासिक खनि नहीं गई है । किन्तु नद की कूरका
पीर मरुटार क दुख पीर शोम में सहस्रों पुण्यावृष्टि बरक्ष्य हो गई है ।^२ मी बाराण
कमानक के विकास में नद की समापाचना क उपरान्त मी मरुटार द्वारा ममम्पगी होत
में कोई क्षतीबिन्ध नहीं प्रतीत होता । यह परिवर्तन प्रमावालापरक पीर ममम्पगी होत
के साथ कमानक की कार्य करण परम्परा म पूर्णतया महायक बन कर प्राया है ।
नवासरित्सागर क अनुसार मी नद बच के लिए मरुटान ने बालुवन से मीरी की
की । नद की समा म बापवय का प्रपमान इनके बाद की घटना है । जानक्य ने हृत्पा
दारा नर का बच किया था ।^३ प्रसाद ने राजसभा में प्रपमान की घटना की पहिले
रखा है पीर मरुटार-बानवन की मीरी का उपयोग माग बिना मीर मरुटार द्वारा
मद-बच के समय हो किया है । प्रथम को इन प्रकार पूर्णपर मिनाने स घटना को
बापवयक बिम्बार मिल जाना है एव मरुटार के बरी बनाये जाने म नेकर उनके
द्वारा नद बच तक माटक क तीव्र प्रक पूर्ण हो जान है । यह बाल-पोजना क मी
बापवयक इया" म प्राप्त होता है कि नदों ने घनने सेनापति मीर एव उनके

मी पुर्षों को ईर्ष्या क कारण बरी कर लिया । सब के सब बग्गी-टूह में मर गये ।
घरैना बग्गी-टूह बचा । लका के सम्राट ने एक विजरे में बन सिंह की मुनि न ब
पाम मरी मी । उने बिना विजरा छोने कोई नहीं निजान सका था । बग्गी-टूह
मोय के सिंह को परम लोह की म्ताकाओं से म्पाकर विजरा छोमी कर दिया ।
इत पर बग्गी-टूह तीव्र माह बाद मरुट कर दिया गया । घनने पिता पीर माहर्षी का
बसा देने का उने एक पबसर मिना पीर उने बालुवन को माउ के लिए निम
नित्त कर दिया नदों ने बालुवन का प्रपमान कर घनने माघ का माय शोभ दिया ।^४
बग्गी-टूह "नवासरित्सागर" की मरुटार-नवा पीर "बालुवन कपा" की बग्गी-टूह-नवा

(१) नवासरित्सागर—बौद्धम १ पृ ७-८ प्रथम तरंग
(२) नवासरित्सागर—प्रथम तरंग
(३) कौटिल्य (मारायण चंद्र बग्गी-टूह) पृ ९
केरल मान रविमर्तुरस प्रोत्र बर्मन-कपाक का पीरिण टन बीरोज ।

एक ही प्रकार की है। यह निश्चय है कि लोगों का मूल एक ही है और एक स्वान पर लतका प्रयोग बकटार के लिए तथा दूसरे स्वान पर चंद्रमुष्ण के लिए है। प्रसाद ने नर द्वारा मौर्य सेनापति एवं उसकी पत्नी के बंदी किए जाने के लिये 'ब लुप्य-कथा' का माध्यम लिया है। अठर केवल इतना है कि इसमें चंद्रमुष्ण बंदी नहीं हुआ और मौर्य सेनापति भी मृत्यु को प्राप्त नहीं हुए। ठीक मगध विजय के पूर्व यह घण्टकूप से निकलता है। यह परिवर्तन प्रायः संभव है अथवा बररधि, राक्षस एवं मुदासिनी सबके साथ बंदी मौर्य सेनापति की मृत्यु प्राकृतिक हो जाती। प्रसाद को इस कथा की प्रावश्यकता केवल इसलिए पड़ी कि नर के पापों का प्यासा इस घनाचार से संतुष्ट उठे और चतुरा का विरोध उसकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया मान्य पड़े। सम्भाव्यता की रक्षा के लिए यह प्रावश्यक है।

'कथासरित्सागर' से ही यह भी ज्ञात होता है कि न- ने बररधि को भी बंदी कर लिया था। "चंद्रमुष्ण" नाटक में इसका कारण बररधि का मौर्य पति की रक्षा के लिये नर का विरोध करना है। कथासरित्सागर में नर को उस पर संदेह हो गया था। नर के बरबार में एक नया विचकार आया था। पहले शेर नर और महारानी का एक विच बनाना। विच से प्रसन्न होकर योगनर ने विचकार को बहुत धन दिया और विच को अपने प्रतिवास में लगाया। एक दिन जब बररधि उस विच को देख रहा था तो उसने अपनी विद्या से जाना कि महारानी के विच में उसके सभी कुप-बिह्वल नहीं बन पाये हैं। घट उसने कटि के नीचे एक तिल बना दिया। क-उ होकर योगनर ने बकटार को आज्ञा दे दी कि महारानी से अनुचित सम्बन्ध रखने के कारण बररधि का बध कर दिया जाय। बकटार न बररधि की रक्षा कर अपने घर में छिपा लिया और किसी धन्य का बध करवा दिया। घट ने बररधि में नर के पुत्र को योगनर द्वारा एक साप से मुक्त कर कलंक से मुक्ति पाई और स्वयं वैजानस हो गया। प्रसाद ने इस कथानक को लिया ही नहीं है केवल बररधि के बंधी होने की घटना को लेकर जबकी बरोदुह से मुक्ति और पुनः चंद्रमुष्ण के मणित्व की योजना अपनी कल्पना द्वारा की है।

मासदिका के पास राक्षस के पत्र और उसकी मुद्रा की चटना 'मुद्राराक्षस नाटक' से ली गई है। हम बहने कह चुके हैं कि 'प्रसाद' ने मूल-कथानक में पर्याप्त हेर-फेर कर घटना का अपने नाटक के अनुकूल तो बना लिया किन्तु इसमें कीटिख और राक्षस के कूट दाँव-येचो में लतनी लक्षि नहीं रह गई है।

मगध विद्रोह का आधार भी कथासरित्सागर ही है। वस्तुतः उसमें चाणक्य के कूट होम के उपरान्त बकटार की इच्छानुसृत चाणक्य ने इत्या

द्वारा मात ही दिन में मंद का बंध कर दिया । मं को मयंदर खर हुआ और उनकी मृत्यु हो गई । मकटान में मंद के पुत्र शिरप्यगुज का बंध कर चंद्रगुज को मिहासत सीन किया । उनी न बाणव को मन्त्री बनाकर स्वयं पुरंराम होकर बत माग का परममन्त्र किया । प्रसाद ने बाणव के धपमानि होने से सकर मंद-बन्ध के बीच कई घटनाएँ एव उनके बीच कई बर्षों का व्यवधान रमा है । उनका धामार वीर इतिहास है । वस्तुतः भारतीय इतिहासकारों न वही मी निरगदर के धामार एव चरम्य परिस्परियों का उल्लेख नहीं किया है । प्रसाद ने जब भारतीय इतिहास को मिलाकर चंद्रगुज-बाणव मन्मन्त्री मन्मन्त्र इतिहास को धामार एव चरम्य परिस्परियों को स्वभावतः उन्हें बाण और घटनाओं में सम्भाव्यता धीर और वीर इतिहास को मिलाकर उन्हें बाण और घटनाओं में सम्भाव्यता धीर बाणव का प्रयास किया तो स्वभावतः उन्हें बाण और घटनाओं में सम्भाव्यता धीर इतिहास के धनुष्य पनाप्ट हेर ऊर करने पडे । धन मगध बिनाह में मकटान में बर का बंध किया तब के पुत्र का म्ही । इसके उपरांत सबप्रथम उनी में चंद्रगुज को सम्राट बनाम की घोषणा की ।

‘मुद्राराक्षस’ में बाणव राक्षस द्वारा चंद्रगुज का बंध करने क लिए मन्त्री गई बिप बन्धा द्वारा पत्रक का बंध करवा देता है । महत्वाकांक्षी परंतक बाणव के हाथ की कठगुदती बनने के उपरान्त उमरी दूनीति का िकार बन जाता है । चंद्रगुज नाटक में परंतक की महत्वाकांक्षा केवल अनुसंधक के प्रथम हय म प्रकट हुई है । मरमत्त परंतक कल्याणी क साध बनाल्लार कर धाबे मय पर साधन करना चाहता है । म्ही बाणव की दूनीति की धाबधकता नहीं पड़ी है । तब दुहित कल्याणी कोष में परंतक का बंध कर स्वयं धाममात्र कर लठी है । मय के दोनों कटक दूर हो जाते हैं । यह घटना काल्पनिक है किमु म्हाकांक्षा से रहित परंतक का बंध समबत बाणव के मिये धीरिय के विरुद्ध होता । धन एक धाकस्मिक घटना द्वारा पत्रेवर की हला धपिक स्वाधाधिक है मद्यपि इस कारण बाणव के बरिष का कोटीय रूप कम हो गया है । बिपकल्या वाली घटना को न सकर प्रसाद ने टीक ही किया है क्योंकि बिपकल्या का धासिधन कु बत धानि बन्ध हय होने के कारण समबत यह घटना उन्हें ‘मुद्राराक्षस’ की ही भांति मुख्य रूप में रखनी पड़ती । इस प्रकार के मुख्य हय बनावक में कीदृश की दृष्टि करने में प्राय धसमय ही सिद्ध होत है ।

मुद्राक्षी धीर बाणव के सम्बन्ध में राक्षस का सम्ये एव पुन बाणव से उनकी प्रतिगिता केवल अनुसंधक की घटना को धाबे बगाने के लिये धाद है । वस्तुतः अनुसंधक की घटना को हय नाटक से पूर्यत धतम कर सकते हैं । मूल बनावक की एक बरममीमा तृतीय धक में ही समाप्य हो जाती

है घट तृतीय और चतुर्थ घट को जोड़ने के लिये कई छोटे छोटे काल्पनिक संघर्षों की सृष्टि की गई है। उन्हीं में से एक यह भी है।

चन्द्रगुप्त ने सिंहासन पर बैठते ही बलिष्ठ विजय की। इतिहास से बात होता है कि अशोक की एक मात्र विजय 'कलिग-विजय' भी घट नमदा के बलिष्ठ प्रदेश की विजय का कार्य था तो बिन्दुसार ने किया या चन्द्रगुप्त ने। स्मिथ का अनुमान है कि बलिष्ठ विजय का कार्य संभवतः बिन्दुसार ने किया।^१ अत्र ऐतिहासिक प्रमाण बिन्दुसार की किसी भी विजय की सूचना नहीं देते घट: यही स्वीकार करमा उचित है कि यह विजय चन्द्रगुप्त ने ही की थी।^२ बिम्बिसार सम्बन्धी घटना का आधार 'मुद्राराक्षस' है। अत्र केवल इतना है कि मुद्राराक्षस में 'कौमुदी महोत्सव' के कारण चाणक्य चन्द्रगुप्त का संघर्ष बनावटी और आशक्य की एक नाम मात्र है। प्रघाट ने उसे वास्तविकता का बाना पहिनाकर चन्द्रगुप्त के अरिज की विशेषता प्रदर्शित की है। चन्द्रगुप्त रक्षा के लिये मासविका की हत्या राक्षस का परमेश्वर इत्यादि बटनाएँ काल्पनिक हैं किन्तु अर्धशासन^३ और मुद्राराक्षस दोनों से इनका सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। दोनों में समुद्रों के पङ्कजों से राजा^४ की रक्षा के प्रयत्नों का उल्लेख हुआ है। अपमानित होकर मौर्य सेनापति और चन्द्रगुप्त की माता का राज्य छोड़कर चल बाना पुरातन काल्पनिक है। इसका उपयोग घट में किया गया है जहाँ आशक्य के अरिज की मूल उद्यमता के प्रदर्शन के लिये मौर्य सेनापति उसका बच करने बाकर भी क्षमा पाया है। चतुर्थ घट के छठे हृदय में राक्षस को सिन्धुतस के पास भेषकर प्रघाट ने एक काल्पनिक घटना का सूजन किया है। उक्त घटना से यमन-कन्या का अरिज भले ही अधिक सुन्दर बन गया हो पर राक्षस का अरिज बहुत विर गया है जो 'मुद्राराक्षस' के 'राक्षस' के अरिज का पूर्णतः विराधी है। यहाँ उस पर बैल-बोह का आरोप लग सकता है।

जहाँ तक धार्मिक का प्रश्न है यह कहना उचित है कि धार्मिक ने चन्द्रगुप्त के साथ संधि की घपचा नहीं। घलका बासी घटना ही काल्पनिक है ही धार्मिक और आशक्य का सम्पूर्ण संघर्ष भी काल्पनिक है। धार्मिक का हृदय परिवर्तन करना धार्मिक होने के कारण प्रघाट ने इस घटना का सूजन किया है। इतिहास से इस सम्बन्ध में कोई प्रमाण नहीं दूँ दे जा सकते। सुवासिनी सम्बन्धी सम्पूर्ण घट

(१) अर्ली हिस्ट्री पाठ ड किया (स्मिथ) पृ १०३

(२) वि एन पाठ इम्पीरियल यूनिटी पृ० ११

(३) सुरगया राजो राजावामन्मुद्रविषय मुष्टमिष ह्य्यात—अर्धशासन १९।२।६३

(४) मुद्राराक्षस घट २ पृ० २१

नाए कायमिद है—यह चालुक्य द्वारा मुसामिनी की धर्मि प्राप्ति का दुकराया जाता और मुसामिनी का योद्धा सिधिर में जाकर राजम और धर्मिना दोनों के हृदयों में परिवर्तन करना एतिहासिक नहीं हो सकता । इससे पटना का प्रबाह प्रभाव बढ़ता है और वैविध्य की मृष्टि हाती है ।

मिस्कोरस का धारणा प्रभाव ऐतिहासिक है और जमकी हार भी ।^१ यह भी मत्व है कि मिस्कोरस ने संधि की शर्तों में नियम प्रकृतमामा तक के प्रदेय को अग्र मुष्ट के राज्य की सीमा मान लिया था माय ही दोनों सम्राटों के बीच एक वैवाहिक सम्बन्ध भी हुआ ।^२ इतिहास में इसका पुत्र प्रभाव नहीं मिलता कि मिस्कोरस की मर्यादा का विवाह अग्रमुष्ट से ही हुआ था । प्रभाव न संधि की शर्तों में इन दोनों का सम्बन्ध किया है । मीरिया पर घोड़ियोंम की बड़ाई का प्रभाव उठाकर मिस्कोरस को इन शर्तों को स्वीकार करने के लिये मजबूर कर दिया गया है । प्रभाव के अनुसार एक मज-रुना भी मिस्कोरस की सहायता के लिये गई थी । यह पटना भी इतिहास सम्मत है ।^३ मिस्कोरस ने परोपनिषद् (काकुन) एरिया (द्विगण) एरुसिया (कषार) और गौडोमिया (मकरान) के इनके अग्रमुष्ट को लिये प ।^४ अनुसंधक का धैर्यही हय प्रकृतया कायमिक हान के साथ ही अग्र मुष्ट एतिहासिकता का विरोध करता हुआ प्रतीत होता है । इतिहास में मात होता है कि अग्रमुष्ट की मृष्टु के उरपत सम्बन्ध चालुक्य ने बिजुवार का म विरव भी किया था ।^५ एसी वया में यही कायम का निष्पाम हाकर विरक्त हो जाना एतिहासिक नहीं है । इसमें संदेह नहीं कि इस परिवर्तन से कायम के धर्मि की उपायता का पुण विरव हो गया है किन्तु पटना का अग्र मुष्ट प्रभाव प्रभाव जाता है । ऐसा प्रतीत होता है कि यही प्रभाव ने मुसामिनी के धर्मि प्रकृत को योद्धा-या बन्ध कर पटना बना लिया है । चालुक्य की प्रेरणा से ही अग्रमुष्ट का राज्य का धर्मि निव सवा है । इससे एतिहासिक धारणा और इतिहास है^६ जिसके अनुसार अग्रमुष्ट और चालुक्य दोनों ही धर्मि साधु हो जाते हैं । इस प्रभाव में स्वयं ही धर्मि एतिहासिक और धर्मि मान लिया है ।^७

(१) स्ट्राबो बुक २ पंक्तर २ ६

(२) वैविध्य अग्रमुष्ट एंड वि मीर्य इम्पारर (राधाकुमुद मुकर्मी) पृ० ९०

(३) धर्मि हिस्ट्री धाष्ट इरिया—(स्मिथ) पुन्कोट पृ० १२३

(४) वही (स्मिथ) एरिगिडक्स एण्ड पृ० १३७

(५) (स्मिथ) पृ० १३७

(६) राममाम १७२ इरिया एरिगिडकेरी २१ । (१८६२) पृ० २०७

(७) अग्रमुष्ट (धूमिका) पृ० ३०

इसी दृश्य में मीथ सेनापति द्वारा बालुक्य के वध का प्रयत्न सुवासिनी द्वारा उसकी रक्षा और अन्ततः बालुक्य द्वारा उसको क्षमा किया जाना काल्पनिक बट भाए है और मात्र बालुक्य और अंगुष्ठ के चरित्रों को उजाड़ बनाने के लिये इनका उपयोग किया गया है ।

अन्तिम दृश्य की घटना का सम्बन्ध इतिहास से होना ही चाहिये । अंगुष्ठ और सिन्धुदस की संबंध यदि इतिहास है, उनके बीच कम्पा सम्प्रदान यदि ऐतिहासिक सत्य है तो अन्तिम दृश्य की ऐतिहासिक संभाव्यता में कहीं भी बाधा नहीं पहुँच सकता ।

‘द्रुवस्वामिनी’ का कथानक

‘द्रुवस्वामिनी’ की कथावस्तु का आधार गुप्तकालीन इतिहास के सम्बन्ध में नूतन ऐतिहासिक खोजें थीं। प्रसार के समकालीन इतिहासकारों ने ‘शृंगार प्रकाश’ और ‘नाट्य-वर्णन’ से प्राप्त ‘देवी चंद्रगुप्त’ नाटक के कुछ उद्धरणों के आधार पर रामगुप्त और द्रुवदेवी के सम्बन्ध में सुष्ठु इतिहास का एक मजबूत ढाँचा जोड़ने का प्रयास किया। प्रसार ने इस नाटक के उल्लेख के लिये द्रुव इतिहास की त्रिप्त, सामग्री का उल्लेख किया है उसमें से सजात तात्पर्य समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति ह्यवलि शृंगार प्रकाश तथा नाट्य-वर्णन मुख्य है। भूमिका में जिन इतिहासकारों की उल्लेखि चर्चा की है वे जयसवाल राजलदास बनर्जी अस्तेकर धनुमहसन असी तथा अष्टाकर हैं। स्मृति-कारों में नारद और पारशर को प्रयास स्वरूप ग्रहण किया गया है।

यहाँ तक कथानक का प्रश्न है ‘द्रुवस्वामिनी’ का कथानक न तो ‘अज्ञात युद्ध’ की तरह कई कथानकों से बना है और न उसे स्कंदपुराण की तरह ही अनु-सृष्टि बनाकर विकसित किया गया है। चंद्रगुप्त और राज्यामी की तरह उसमें सुदीर्घ-काल की सामग्री को वसपूर्वक टूटने का प्रयास भी नहीं है। कथानक अत्यंत सीधा एवं सरल है। अठ-तीन अंकों में विभाजित इस नाटक की कथावस्तु का प्रत्येक अंक में सूचित कथावस्तु के आधार पर ही विवेचन किया जाना उचित है।

वस्तुतः रामगुप्त साम्राज्य इतिहास के धनुसम्बन्ध का श्रेय अत्रधर शर्मा कुमारी को जाता है। उसके उपरोक्त डॉक्टर सिलवा मैत्री ने इस समस्या पर विचार किया था। प्रसार ने नाटक की भूमिका में इन दो नामों का उल्लेख नहीं किया है। यद्यपि इनके साथ के सभी इतिहासकारों की उसमें मयास्थान चर्चा हुई है।

रामगुप्त सम्राट समुद्रगुप्त का अदेष्ट पुत्र था। अथाध्य एम दुबल अग्नि का अस्तित्व होने के कारण सम्राट ने उसे राज्याधिकार से अचित कर अग्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी निर्वाचित कर दिया। समुद्रगुप्त की मृत्यु के उपरान्त सिद्धर स्वामी ने ‘अदेष्ट पुत्र ही उत्तराधिकारी होना चाहिए’—इस सिद्धान्त की धारण कर रामगुप्त को ही सम्राट बना दिया। गुप्तकुल की पीरव रक्षा के विचार से अग्रगुप्त ने भारत के समान प्रायः राज्य का भार रामगुप्त को ही सौंप दिया पर कुटिलता की प्रतिमूर्ति रामगुप्त ने अग्रगुप्त की आश्रय पत्नी द्रुवस्वामिनी का भी अपहरण कर उससे विवाह कर लिया। विवाहिता होने पर भी द्रुवस्वामिनी को पीरव अपमान के प्रतिरिक्त और अज्ञ न मिला। यह यह भी न जान सकी कि अज्ञ

पर राजा का क्रोधना अनुभव है न उसने कभी उसका मज्जुर संभाषण सुना क्योंकि विनासिनियों के साथ महिरा में उम्मत रामगुप्त को धरने ही घातक्य से प्रवकाश नहीं मिलता था । बिबाह के पूर्व द्रुवस्वामिनी और अग्रगुप्त एक दूसरे पर घातक्य थे । अग्रगुप्त के प्रति द्रुवस्वामिनी के मनोमार्बों को जानने के लिए संघर्षी रामगुप्तने युगी का धमिगत करने वाली अज्ञापरिणी को उसकी अवरसिका बना दिया । कुज की घाड़ में छिाकर उसने जान लिया कि अगत की अनुभव सुन्दरी राजाधि राज होते हुए भी उससे स्नेह नहीं करती और उसके हृदय के किरी कोने में अज भी अग्रगुप्त के प्रति प्रेम सिवा हुआ है । रामगुप्त को यह भी घातक्य की कि सहा राजदण्ड प्रहण कर देने से पुगाहित समात्य और सेनापति भोग छिाया हुआ किरोह मान रखते हैं । सभी विरोधी तर्कों को एक साथ हटाने के लिये उसने एक दुष्ट उपाय सोच निकाला ।

रामगुप्त बिम्बिषय करने निकला । पातक्य प्रवेश में लका ने उस पर धाक-पाण कर दिया और किसी पहाड़ी राह से उतर कर नीचे का गिरिपथ रोक लिया । निरिद निर गया । अकराज ने सवि का ओ प्रस्ताव देखा उसने एक अर्थ यह की कि महादेवी द्रुवस्वामिनी अकराज को समर्पित की जाय और उसके सामर्थों को अमय के सामर्थों की स्तियाँ मेट में ही जाय । रामगुप्त किसी ऐसे ही सुप्रबसर की प्रतीक्षा में था जिसमें भीतर और बाहर सब सब एक ही जात में पराम्त हों । अत महादेवी के समस ही शिकरस्वामी के परामय से यही निर्णय लिया गया कि राष्ट्र के हित के लिए स्त्री-समदान के प्रतिरिक्त और कोई उपाय नहीं तथा राष्ट्र-रसा-अज में रानी की अमि देनी ही होगी । द्रुवस्वामिनी ने रामगुप्त से पत्नी के धमि कार की रजा की माँग की पर वह ठुकरा दी गई । द्रुवस्वामिनी धारमहत्या का प्रयत्न कर ही रही थी कि संवादिनी ने सब समाचार पाकर अग्रगुप्त वहाँ घा पहुँचा । जिस कुममर्माबा की रसा के लिये उसने राजदण्ड प्रहण न कर अपना पात्य अधिकार छोड़ दिया उसी का इस प्रकार पदबलिष्ठ होना उसे सहन नहीं हुआ । उसने रामगुप्त और शिकरस्वामी दोनों को बुरी तरह फलकाय और यह निर्णय किया कि सामन्तकुमारों को लेकर द्रुवस्वामिनी के बस में बह स्वर्ग अकराज के पास जायगा । रामगुप्त द्रुवस्वामिनी की भी बह देना चाहता था अत उसने राजाज्ञा के नाम पर द्रुवस्वामिनी को भी अकराज के पास जाने को बिबस दिया । इन सबसर पर द्रुवस्वामिनी और अग्रगुप्त के पारस्परिक प्रेम का भी संकेत मिल जाता है । इस अरु में नीचे कुछे और हिाके अकारा अस्वराय की सृष्टि करने का भी प्रयास किया गया है ।

अकराज के गुह मिहिरदेव की पालिता कया क्रोमा अकराज को प्यार करती थी । जब उसे यह ज्ञात हुआ कि सवि की लता में द्रुवस्वामिनी को अकराज

ने उपहार स्वरूप मांगा है तब उनमें हम प्रस्ताव का विरोध किया। उसने भीर मिहिरदेव ने भी शंकरराज को समझाने की बहुत चेष्टा की पर शंकरराज पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मिहिरदेव ने बुझकेतु की घोर संकेत कर उनके सबकास की घोर संकेत किया और उसे छोड़ कर चला गया। कोमा भी गड़बड़ शंकरराज के रोकने की विन्यास न कर चली गई। रामगुप्त द्वारा सब की शर्तें स्वीकृत होने के पक्षस्वरूप प्रतापराज प्राप्त की हुई विजय के उपसभ में शंकरराज के दुर्ग में रागरम बस ही रहा था कि ब्रह्मस्वामिनी के बेग में चन्द्रगुप्त ब्रह्मस्वामिनी को लेकर दुर्ग में आ पहुँचा। वास्तविक ब्रह्मस्वामिनी कौन है इस पर शक्ति का विवाद क परचा चन्द्रगुप्त ने शंकरराज का बच कर बाबा भीर उसका पूर्वमाद सुनकर सामन्तकुमारों ने शक दुर्ग को जीतकर उस पर अपना अधिकार कर लिया।

चक्रवर्त्य की स्वामिनी ब्रह्मस्वामिनी और मंत्रालिनी ने शक्तिकर्म के लिये धामे हुए पुरोहित के सामने बत्तीब पनि और प्रसोम्य राजा के द्वारा परिपक्वता एक श्रीशिवानी के समान बहू क पास प्रेषिता मारी के अधिकारों का प्रश्न रखा। पुरोहित एक बार पुन बर्म शास्त्र का मंत्रण कर निर्णय देने का पास्तासन देकर चला गया। कोमा भीर मिहिरदेव शंकरराज का बच लेकर आ रहे थे कि रामगुप्त के शक्तिों ने दोनों का बच कर रखा। हम घटना में सामन्तकुमार उल्लेखित हो गये। उधर रामगुप्त के शक्तिों ने चन्द्रगुप्त का भी बन्दी बना लिया और ब्रह्मस्वामिनी के ब्यांग प्रहारों से क्रुद्ध होकर रामगुप्त ने उसे भी बन्दी बनाने की आज्ञा दी तो चन्द्रगुप्त ने बौद्धगु बसाए छोड़ दी और परिपक्व के सामने अपने अधिकार रखे। परिपक्व ने निर्णय दिया कि रामगुप्त धार्मिकशास्त्र के पवित्र सिंहासन पर बठने के अधिकार है परन्तुन किया जाय और गौरव से नष्ट साधरन से पतित कर्मों से राजकिस्त्रिपी बत्तीब रामगुप्त का ब्रह्मस्वामिनी पर भी कोई अधिकार नहीं। इस निर्णय से बौद्धभाया हुआ रामगुप्त चन्द्रगुप्त पर बार करना ही चाहता था कि एक सामन्त कुमार ने रामगुप्त का बच कर दिया।

उपसभ्य प्रमासों के आधार पर सम्पूर्ण नाटक की कथावस्तु का विश्लेषण किया जा सकता है। ब्रह्मस्वामिनी रामगुप्त की परिणीता पत्नी थी। 'देवीचन्द्र गुप्तम्' के उद्गारों से हमकी पुष्टि होती है^१ और इस तथ्य को प्राय सभी इतिहासकारों ने एकमत से स्वीकार कर लिया है।^२ रामगुप्त मद्रगुप्त का ज्येष्ठ पुत्र था। किन्तु गुप्तकुल का यह नियम नहीं था कि ज्येष्ठ

(१) देखिये 'समीक्षायक' में डा० लहना का लेख

(२) जर्नेस प्राक बिहार एंड घोरीसा रिसेर्च सोसायटी

—एस्टेकर का लेख बीसूम १४/११२८

पुत्र ही सर्वथा सिंहासन का अधिकारी हुआ हो। इस मारणा का आधार समुद्र गुप्त की प्रयाग प्रवृत्ति में बलिष्ठ 'राजपद के लिये पुनाब की घटना है। उसमें पिता द्वारा चन्द्रगुप्त के पुत्र लिये जाने पर परिपक्व के सम्बन्धों एवं तुस्य-कुसुम प्रत्य राजकुमारों की मानसिक स्थितियों का वर्णन किया गया है।^१ इसके अतिरिक्त अधिकृत गुप्तकामीन लितालेखों में 'उत्परिहृहीष्टो' विशेषण का स्वाम स्थान पर प्रयोग भी इसी धोर संकेत करता जान पड़ता है।^२

स्वयं चन्द्रगुप्त के लितालेखों में समुद्रगुप्त के उपरान्त चन्द्रगुप्त का ही उल्लेख आता है। रामगुप्त का नहीं। अतः प्रयाग तथा अन्य इतिहासकारों के अनुसार यह स्वीकार कर लिया जाय कि गुप्त-वंशावली में रामगुप्त का नाम न आना प्राश्नार्थक नहीं^३। तो भी हमारे माटक के संबंध में यह समस्या बराबर बनी रहती है कि यदि समुद्रगुप्त ने चन्द्रगुप्त को ही भावी शासक चुना था तो रामगुप्त किस प्रकार सिंहासनासीन हो सका। नाटक से जात होता है कि रामगुप्त धर्म समुद्रगुप्त की आज्ञा के प्रतिकूल गुप्तसिंहासन पर बैठा था और वह ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण सम्भ्रात बन सका था। ऐसा प्रतीत होता है कि चन्द्रगुप्त के विरुद्ध कोई पदार्थन करके रामगुप्त सिंहासनस्वामी की सहायता से गुप्त-सिंहासन पर बठा परन्तु इतिहास से ऐसा कोई भी प्रमाण नहीं मिलता। 'देवीचन्द्रगुप्तम्' के जो चरित्रक अन्तिम एक उपलब्ध हुए हैं उनसे तो ऐसा प्रतीत होता है कि चन्द्रगुप्त और रामगुप्त के बीच परस्पर प्रेम और सीहार्द की भावना थी। यदि एक-गुप्त और चन्द्रगुप्त की विनय से पूर्व रामगुप्त और चन्द्रगुप्त के बीच राज्याधिकार के कारण विरोध होता तो सायब निवासराज की लक्ष्मी से ये अर्थ न निकल सकते:—

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ । न सस्वहं त्वां परित्यक्तुमुत्सहे ।

प्रत्यग्रभीवन विमुपितमंयमेतद्

क्यभिर्यं च तव भीवन बोम्यक्याम् ।

मक्ति च मय्यनुपमा नु दम्भमना ।

देवी त्यजासि वसवास्त्वयि मे अनुपाम ॥^४

(उठो उठो, तुम्हारा त्याग करने में मैं अक्षम हूँ। भीवन से विमुपित तुम्हारा यह अग भीवन के अनुस्य तुम्हारा यह मोहक सौन्दर्य और मुझ में तुम्हारी

(१) सम्भेपूष्टिधेपु-नुस्य-कुसुम-म्नानानभोडीतिष्ठ

—व्यास प्रवृत्ति (सरकार) पृ २२४

(२) चन्द्रगुप्त का बिहार का लितालेख मं० २६ व मिटारी का लितालेख मं० २८ (सरकार)

(३) अथ (भूमिका) पृ० ४ (४) जनस आक की एंड प्रो रिचर्स सोसायटी को

यह अनुभव मक्ति—इन सब को देखने हुए मैं गुन्हाएँ त्याग न कर, भुवनेरी को त्याग देता हूँ । तुम पर तो मेरा प्रबल प्रभुत्व है, माओ प्रीति है ।)

जो राजा अपने माई के प्रति ऐसे बचनों का उच्चारण कर रहा है वह कम कम उस समय तो उसका विरोधी नहीं होगा । इसके अनिश्चित प्रबुधत्वमय धर्ती की इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि रामगुप्त ने निजर की कूटनीति का ध्यान स राज्य प्राप्त किया होगा । आयमबाल साहब का अनुमान है कि एक सप्ताहों द्वारा हिन्दू धर्म के विनाश के एक स्वल्प हिन्दू धर्म के लक्ष्यकार का नियम अनुशासकता इस संपर्क में बिजनें हुआ हो तथा अन्तर्गत मन्त्र के आदेश पर बसकर अपने बड़े माई के लिए राज्य छोड़ दिया हो ।^१ अनु प्रमाण इस बात को स्वीकार नहीं करते कि अश्वमेध न स्वयंसे से राज्य छोड़ा कहना कठिन है कि जिस आधार पर उन्होंने अश्वमेध के राज्याधिकार को अश्वमेध द्वारा अन्वय स हितवाया ।

नाटक के प्रथम अंक के आरम्भ में ही अक्षस्वामिनी के अश्वमेध से यह बात होता है कि अक्षस्वामिनी अश्वमेध से प्रेम करती है और रामगुप्त को इस बात की पूर्ण जानकारी है । चाहे चलकर यह भी बात होना है कि अक्षस्वामिनी अश्वमेध की वाग्दत्ता थी किन्तु रामगुप्त के राज्याधिकार का जाने पर वह समान्य ही पली हुई । इसी कारण कुमार पर राजकोट है । अस्तु अक्षस्वामिनी एक अश्वमेध के इस पूब राग का साक्षी कोई भी नहीं । 'देवीअश्वमेध' स तो यह भी बात नहीं हो पाया कि अक्षस्वामिनी गौन थी और उसका रामगुप्त स कैस परिचय हुआ । पूर्ण नाटक के प्रमाण में यह कहना कठिन है कि नाटक का अंत किस प्रकार हुआ होगा । नाटक के प्रसाद की माध्यमार्थों का एक आधार 'अश्वमेध' की कथा है । उसके अनुसार रानी का विवाह पहिले बर्कमारीम (विक्रमादित्य) से निश्चित हुआ था किन्तु उसके बड़े माई स्वाम (राम) ने उसको अपनी रानी बना लिया ।^२ यदि इन पूर्व राम के लिए ठोस आधार है तो इतना ही । अन्वय संकेत साहब के 'हला आश्वमेध राज्य महरही स बीनस्तथा' बड़ी बहियों से तो केवल इस अश्वमेध बटना से पूर्व स्थितियों की कल्पना कर की जा सकती है । प्रसाद ने अक्षस्वामिनी के युक्त-कृत में जाने का कारण अश्वमेध की प्रयाग प्रगति के आधार पर 'अश्वमेध' की प्रथा का माना है । यह

(१) बर्नल डॉक बी । एण्ड डॉ रिचर्स सोमापटी
—बौद्ध १८१ १९२-

(२) बर्नले आयमबाल का लेख—

—बर्नल डॉक बी एण्ड डॉ रिचर्स सोमापटी । बी १८१ १९२२

संभाव्य होते हुए भी इस घटना के सम्बन्ध में इसटी ऐतिहासिकता को नहीं माना जा सकता। नाटक के प्रारम्भ में ही रामगुप्त का भ्रूवस्वामिनी पर चंद्रगुप्त धनुरक्ति का संवेह और प्रमास-संग्रह के लिए एक कल्पवृक्षिणी की निवृत्ति पुरुषतया कास्वमिक बटनाएँ हैं जो केवल भ्रूवस्वामिनी के सम्बन्ध की सूचक हैं। 'देवीचंद्रगुप्तम्' के अर्थों से ही ऐसा प्रतीत होता कि भ्रूवस्वामिनी का रामगुप्त से सहज सम्बन्ध था। बहुत संभव है वह एक भारतीय नारी के ही समान पति में धनुरक्त भी हो। रामगुप्त ने स्त्रीवेषधारी चंद्रगुप्त को भेजना धत्वीकार कर भ्रूवदेवी को ही धनु के पास भेजना वा निर्णय कर लिया। स्त्री वेषधारी चंद्रगुप्त से राजा ने जो कुछ कहा वह भ्रूवदेवी ने नेपथ्य से सुन लिया था। भय चंद्रगुप्त को धन्य स्त्री समझकर राजा के वाक्यों का मनमाता धर्म निकालती रही और बारबार राजा के प्रति धपनी निष्ठा और प्रेम की सूचना देती रही।

भ्रूवदेवी—(धन्य स्त्री संकथा)—(जब भक्ति धन्यस्वसि तरो मं मन्धामास्वसि ए परिष्कवस्वसि ।) यदि भक्तिमद्वेषसे तरो मां मन्धमागिनी न परित्यजसि । (यदि धन्य भक्ति की ओर देखें तो मुझ संधमागिनी का कभी त्याग न करेंगे ।)

राजा—अपि न त्यजामि देवी तुल्यवत् त्वदन्तरे (तुम्हारे लिए मैं देवी को तुल्यवत् छोड़ सकता हूँ)

भ्रूव०—(यह कि कीर्ति परिष्कवन्ती मन्धरत पदमदरवेत् परिष्कवस्से) अहमपि कीर्ति परित्यजन्ति धार्यपुत्रं प्रथमतरेव परित्यजामि (तसके पहिले ही मैं ही प्राप्तत्याग करके स्वामी को छोड़ चुकी)

राजा—इति देवी प्रति मे वयामुता

(देवी के प्रति मेरी वयामुता अब भी एक है)

भ्रूव०—(इयं मन्धरतस्त वयामुता अं धरुवरदो अपो धनुदरो एव परिष्कव प्रदि ।) इयंमार्यपुत्रस्य वयामुता तदनपरावो जगोऽनुपत एव परित्यज्यते (जिमने कोई धपराव नहीं किया और जो धार्य पुत्र की धनुगामिनी है उसका इस प्रकार परित्याग किया जा रहा है, क्या नून ।)

उत्पुंक्त उदरए मे भ्रूवस्वामिनी स्वयं राजा की धनुगामिनी होना स्वीकार करती है साथ ही अब स्त्री के प्रति राजा के धार्यपुत्र की ईर्ष्या और उद्वेग्य बढुता

(१) धनीसायण—डा० ब०ईयासात सहस्र 'भ्रूवस्वामिनी वा धानुगामिक कथानक'

उसमें पर्याप्त मात्रा में है। प्रसाद ने ठीक इसके विपरीत प्रारम्भ से ही यह प्रवर्धित करने का प्रयास किया है कि प्रबुद्धस्वामिनी न न तो कमी राजा से सरल समापण किया और न राजा के प्रति उसका हृदय में किसी प्रकार की निष्ठा या अनुराग ही था। यह सब प्रसाद की अपनी योजना है और इसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। इसी कारण प्रारम्भ से ही कुमार चन्द्रगुप्त राजकाय का भाजन बना। इसका भी कोई प्रमाण नहीं मिलता। बस्तुतः प्रसाद ने प्रारम्भ से ही समस्त कथानक अपनी इच्छा के अनुसार मोड़ दिया है।

प्रतिहारी सूचना देती है कि शकों ने किसी पहाड़ी राह से उतरकर सीधे का विरिञ्चक रोक दिया है और विरिञ्चक का सम्बन्ध राजपथ से छूट गया है। इससे पुन एक नवीन प्रश्न उठ खड़ा होता है कि यह घटना कहाँ और क्यों हुई? नाटक में भागे ही गई सूचनाओं से ज्ञात होता है कि रामगुप्त भी समुद्रगुप्त की तरह विरिञ्चक करने निकला था और किसी पहाड़ी प्रदेश में शकों ने उस पर आक्रमण कर दिया। इतिहास से रामगुप्त की किसी भी विरिञ्चक की सूचना नहीं मिलती। सम्भव है समुद्रगुप्त की ही तरह रामगुप्त के सिक्कों में भी काचोपा समिहित्य विने कर्मिर्-उत्तमैर् जयति सर्वराजोच्छेता^१ जैसा विरद बतकर प्रसाद ने इसकी कल्पना कर ली हो परन्तु घटना ऐतिहासिक न हाकर काव्यमय ही नहीं जायेगी। जहाँ तक शकों का आक्रमण का प्रश्न है, यह घटना प्रबन्ध ऐतिहासिक मानी जा सकती है क्योंकि 'नाट्य-दर्पण' के अनुसार—'यथा देवीचन्द्रगुप्ते द्वितीयेऽ के प्रकृतीनामास्वा-सनाय शकस्य प्रबुद्धेऽसि संप्रदाने चन्द्रगुप्तते राजा रामगुप्तेन विरिञ्चकनाय विद्यासु प्रतिपन्न प्रबुद्धेऽसि नेपथ्ये कुमार चन्द्रगुप्ते विरिञ्चकगुप्ते'^२ यहाँ यह स्पष्ट है कि 'प्रजा को आश्वासन देने के लिए' राजा रामगुप्त ने शकों को प्रबुद्धे का राजा स्वीकार कर लिया। अतः यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि शकों ने रामगुप्त को कहीं इस प्रकार पराजय प्रबन्ध की जहाँ वह इतल बड़े घपमान को भी चुपचाप ही गया और स्त्री सम्प्रदान के लिए प्रस्तुत हो गया। शकों के आक्रमण सम्बन्धी विवरण हमें नहीं मिलते किन्तु इसी घटना सम्बन्धी शू गाररूपक काव्यमीमांसा और दर्पणके के स्वतन्त्र चर्चणों से इस बात की पुष्टि प्रबन्ध हाती है कि शकों ने रामगुप्त को पराजित कर प्रबुद्धे की मीम की होगी और उसने इस

(१) अथ स्त्रीवैजनिहनुते चन्द्रगुप्ते विरिञ्चकनी स्त्री प्रत्ययात्प्रबुद्धेभ्या
गुरमनुसंभाररपस्य व्यसनस्य संप्राप्ति'

—वे भी जो पार ऐस (पस्तेकर का लेख)

(२) (रेमैन)—कैटसोप धांक इतिहास काव्यस्य

१२१३

(३) वे वा जो पार ऐस—पस्तेकर का लेख

घरत को स्वीकार कर लिया होया । इस प्राकमख के सम्बन्ध में प्रभुसहसन घसी की सूचना महत्वपूर्ण है ।^१ प्रभुसहसन घसी लिखता है ।

‘रसात कर्ण का पोता और प्रयव का पुत्र था । रसात (रामपुत्र) के विहासनासीन होने के पूर्व वह मगा दिया गया । रसात के पुत्र ने एक बड़ी सेना लेकर आश्रमण किया और अनास को मगा दिया । अनास अपने माइया और प्रयाग पुर्या के साथ एक पहाड़ी दुर्ग में बना गया । दुर्ग की रक्षा का प्रबन्ध कर व निश्चित हो गये पर सत्रु ने बड़ी सतुराई से दुर्ग को घेर लिया । अनास ने सधि करनी चाही । उतर मिला कि तुम्हारी लक्ष्मिकाहिता बहू आश्रमों के साथ यदि प्रत्येक रामपुरुष मेरे सरदारों के लिये एक एक सड़कौ भेजे तो मैं बापस लौट सकता हूँ ।^२ बहू स्पष्ट ही पहाड़ी दुर्ग की लक्ष्मिकाहिता हुई है । राजसेखर के उतरण में भी—‘तस्मिन्व हिमालय युग्गुहाकोपलवत्तस्मिन्मारे गीमठे तत्र कातिकेय नवरस्त्रीणां गणौ कीर्तय ३ हिमालय की गुफाओं का उल्लेख सम्भवतः इसी घोर संकेत करता हो । विद्वानों ने इसी आधार पर इस युद्ध का कातिकेयपुर में होना स्वीकार किया है जिसका वे कायडा सं तोकर धम्मोडा में लक्ष्मिकाहिता की घाटी तक में होना स्वीकार करते हैं ।^४ कुछ भी हो प्रयाग ने किसी नाम का उल्लेख नहीं किया मत हम इस प्रश्न को यहीं छोड़ सकते हैं ।

अब प्रभुसहसनघसी के आधार पर हम देख चुके हैं कि लक्ष्मिकाहिता प्रयाग (रामपुत्र) ने की थी । प्रयाग में प्रथम प्रकृत म ही यह प्रकृत किया है कि लक्ष्मिकाहिता ने सधि के लिये बूत भेजा । लक्ष्मिकाहिता समुद्रपुत्र की दिग्भ्रमण में पराजित लक्ष्मिकाहिता का बदला इस प्रकार प्रथमतः प्रस्ताव सं लेना चाहता था । इस लक्ष्मिकाहिता प्रयाग ने कोई नाम नहीं लिखा है । अतः यही यह प्रसंग उठाना भी अनाशयक था ही है कि वह लक्ष्मिकाहिता की मायता है कि वह समभवतः रक्ष्मिकाहिता तीर्थ या वो पश्चिमी लक्ष्मिकाहिता की मायता का लक्ष्मिकाहिता । सम्भव है प्रयाग का लक्ष्मिकाहिता यही लक्ष्मिकाहिता हो । इन सम्बन्धी घटना का धर्म कोई प्रमाण नहीं है अतः यही मानना पड़ेगा कि प्रयाग की उक्त मायता प्रयाग स्वयम्भू है ऐतिहासिक नहीं ।

१ प्रभुसहसनघसी एक घरती था जिसेने किसी भारतीय पुस्तक का ‘मुख्यतः उस लक्ष्मिकाहिता’ के नाम से घरती में अनुवाद किया । १०२१ ई० में इसका घरती में अनुवाद हुआ ।

२ वे भी घी घर ऐम—जायतनाम १५।१११२

३ काव्य भीमासा (राजसेखर) १५।११२५

४ प्र०० (भूमिका) पृ० ८

वहाँ तक सवि की सतों का प्रश्न है उपाय है इस सम्बन्ध में धनुषहनुमत्पत्नी को पूर्णतया स्वीकार किया है। 'देवीचण्डगुप्तम्' से ता केवल यही अनुमान होता है कि शकों ने छुबदेवी का ही मांग की थी। हनुमत्पति के टीकाकार चन्द्र क कपल से प्रकृत हनु इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि शक्याभितति ने केवल प्रकृत की ही मांग न की होगी बल्कि साथ ही अन्य कुल-कन्याओं को भी मांगा होगा।^१ ठीक यही सूचना 'मुद्रराम उल-उदारीक' से मिलती है। नाटक में सवि की इन प्रयत्नानुसार शक को राजा बनने मन्त्री निररस्वामी की संस्था के आधार पर स्वीकार कर भेजा है। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयं रामगुप्त भी प्रकृत्यामिनी से मुक्त होगा याहता था। यही बीच में बुद्धे-बोध-हृद्धे का एक काव्यनिर शाल्य-व्यगारक प्रसंग प्रया है जो अतिशयिक है किन्तु अनादिक नहीं क्योंकि इसी प्रसंग से चण्डगुप्त के मन में स्त्री शोकारण करने का विचार उत्पन्न होता है। निररस्वामी सवि को य शर्तों प्रकृत्यामिनी के सम्मुख रखता है। यह सम्मुख घटना तो नहीं किन्तु इसका एक भाग 'मुद्रराम-उल-उदारीक' से लिया गया है। धनुषहनुमत्पत्नी निररता है—

“अब शक को सवि की शर्तों का ज्ञान हुआ तो वह निराश हो गया। उसका सहर नामक एक शका बहीर या उसमें बरगीय कलभ्य पुष्ट। बहीर ने उल्लेख किया कि वह स्त्री को य शर्तों पर नहीं रखा करके तनी वह बाद में शत्रु से बरत से शकता है। यदि वह मर गया तो पुत्र स्त्री शीर घन से बना साम। प्रश्न में यह निश्चय हुआ गया कि स्त्री-सम्पदान ही ठीक है।”^२

प्रकृत्यामिनी रामगुप्त और निररस्वामी के सम्मुख वातावरण काव्यनिर है। हां इतना प्रकृत्य माना जा सकता है कि राजा के शरतों में बैठकर छुबस्वामिनी ने क्या की जो मिला मांगी, सम्भवतः उसकी लिखते समय प्रसार के मन में देवी-चण्डगुप्तम् का पुरोक्त प्रसंग रखा हो किममें अन्य स्त्री की शंका से छुबदेवी स्वयं कपलों द्वारा अपने उद्धार प्रकट करती है। राजा के प्रति छुबदेवी का शोक 'देवीचण्डगुप्तम्' के निम्न प्रकृत्य में मिलता है—

राजा—देवी विभाग कुलाठगिस्वदस्यान् रमिष्यमि (स्त्री के विभाग के कुल से हम यु की होंगे किन्तु तुम्हारा पाम रहने से हम उम कुल का मूढ जायेंगे।)

(१) साकारायाचार्य शक्याभितति चण्डगुप्तभानुजायां छुबदेवी प्रार्थयमाना चण्डगुप्तेन छुबदेवीचण्डगुप्तेन स्त्रीदेवजन परिकुठन व्यापारित”

(२) देवी शो धार एम—१५।११२

नाटक में यहाँ तक की घटनाएँ तो मुजमुल-उम तबारीख से मेल खाती हैं किन्तु इसके उपरान्त की घटना उन्हीं छोड़ दी हैं। नाटक के अनुसार चन्द्रगुप्त के तूर्यनाथ करने पर लक-दुर्ग में युद्ध होता है और अन्त में चन्द्रगुप्त और अम्ब स्त्रीवेश पारी समत ही दुर्ग पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। मुजमुल-उम-तबारीख में बर्कमारीस की सहायता के लिये रम्मान अपनी सेना तैयार रखता है क्योंकि बर्क-मारीस की योजना क चन्द्रगुप्त तूर्यनाथ मुक्त हो खाम और उसके सैनिकों को लड़कों पर आक्रमण करने के लिये प्रस्तुत रहने का निर्देश किया गया है।^१ इसका कारण स्पष्ट है। प्रसार बिच तरह से घटनाओं की योजना करने है। उस प्रकार रामगुप्त और चन्द्रगुप्त के बीच में कोई स्नेह सम्बन्ध के लिये स्थापित नहीं और रामगुप्त वस्तुतः चन्द्रगुप्त और अम्बस्वामिनी दोनों से घृष्टकारण पाता जाहता है। इस घटना का इस रूप में विस्तृत अन्वेषण सम्भव नहीं हुआ है। स्त्रीवेश में लकराज के लक्ष की घटना अम्बन भी मिलती है।^२

दृतीय अङ्क में रामगुप्त का अपने सैनिकों सहित लक-दुर्ग में आगमन एक महत्वपूर्ण घटना है। वस्तुतः हम बीसा पहले कह चुके हैं मुजमुल-उम-तबारीख के अनुसार भी रम्मान अपने सैनिकों के साथ लक-दुर्ग में गया था। प्रसार ने इतना अन्तर कर दिया है कि नाटक में वह दुर्ग-विजय के उपरान्त पहुँचता है और यह नाटक के अन्तिम तथा घटनाओं के अनुकूल ही है। कोमा और मिहिरदस का ध्रुव स्वामिनी के पास आगमन और रामगुप्त के सैनिकों द्वारा उनकी हत्या पूर्ण काव्यनिरूपण प्रसंग है पर रामगुप्त क नाटकीय अन्त के लिये इतनी भी उपयोगिता है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इसके बाद की घटना अत्यन्त महत्व की है। 'बेदी-चन्द्रगुप्त' नाटक के अन्तको से घटना अतिक्रम स्पष्ट नहीं हो पाती किन्तु उक्त नाटक के अन्त अङ्क में चन्द्रगुप्त (सम्भवतः अपनी प्राणों की) अन्त से उन्मत्त बनने का

(१) वही—(आमसबान)

(२) (अ) अरिपुरे च पर कलत्र कामुकं कामिनी वेद्यनुष्ठानचन्द्रगुप्तं अरुपतिमहा-
त्यतः ।

— हर्षचरित

शावनामाचार्य शक्राक्षिपति चन्द्रगुप्तेन भ्रातृजाया
ध्रुववेशी प्रार्थयमानः चन्द्रगुप्तेन अम्बेशी वेगाधारिणी
स्त्रीवेशजन परितुते व्यापारितः

— शाकरी टीका

(अ) स्त्रीवेशनिष्ठ लक्षचन्द्रगुप्तं राज्ञी स्त्रियाचारमनिपुरं अरुपतिवधायावमम् ।

— गृन्थार उपक्रम (मोज)

बहाना करता हुआ राजमन्दिर में फिरता है ।^१ यमोदरों के ताभरत से यह भी बात जाना है कि तिनी मूल राजा ने मर्द को मारकर अपना राज्य और उनकी महारानी को स्वयं में लिया । इतिहासकार इस मूल राजा को अष्टममूल मानते हैं । ऐसी रक्षा में यही निष्कप निकाला जा सकता है कि सम्भवतः ऐसीचन्द्रमूल से धर्म देवी की रक्षा के उपरान्त अष्टममूल और देवी में प्रेम हो गया तो । राजा पर प्रकट होते ही उसने अष्टममूल का बप करना चाहा अपनी रक्षा के लिये अष्टममूल ने पायत्पन का बहाना किया और अन्त में प्रथम पाकर राममूल का बप कर लियो । 'देवीचन्द्रमूलम्' में 'दृढकामतस्य' 'मदनबिहार-मोपनस्य एव मनाक मन्व मीतस्य' इत्ये इहे शार्ङ्गक प्रतीत होते हैं । 'मदनबिहार-मोपनस्य' का प्रयोग बेरवा मानक सेवा के सम्बन्ध में नहीं हो सकता क्योंकि स्वयं नाटक में ही बेरवा के प्रति अष्टममूल के रम पूर्ण दृष्ट स्पष्ट है ।^२ साथ ही सामान्या मायिका के प्रति अपने बिहार को रखने का प्रयत्न ही नहीं उठ सकता ।^३ अतः निश्चय ही यह मूल प्रेम धूम्रवर्षी के प्रति ही होना चाहिए, जिसका परिणाम 'मीतस्य' में प्रीर त्रिमयी परिणति दृढकोमलस्य में स्पष्ट रीति से प्रकृत है ।

धूम्रस्वामिनी मंदाकिनी प्रीर पुतोहित को जानकीन जानकीक है किन्तु जब सम्पूर्ण ऐतिहासिक बदला को इतिहास से स्वयं पीछे रखा हो तो हम अन्तः

(१) मयादेवीचन्द्रमूले पंचम के—

• • • • •

एवं स्वानामवेदिन-दृढकोमलस्य कुमारचन्द्रमूलस्य चन्द्रोन्म चण्डिनेन प्रथेन प्रतिपारिकोति ।

• • • • •

दयमुम्मतस्य अष्टममूलस्य मदनबिहार-मोपनस्य मानक राजमीतस्य राम कुमारममांके निष्कममूषिकेति ।

(२) माननाम्बुर्क सिमोन्मन्वसोराबनता मैत्रया ।

प्रत्ययेषु बरानने पुनकिपुस्वेव तया लम्बता ॥
 कुचजिने निर्भक्तोस्वयय मन्मूर्त्तयोरप्यनी ।
 केनाप्यस्मृतत्राप्यको निवचनय विस्तबीष्ठागसिना ॥

—दवी चन्द्रमूलम् ।
 —मात्रमना मनुहि-य कुमारचन्द्रमूलस्योक्ति

(३) श्री ज्ञानमवाप श्री मायगा है कि 'मदनबिहार मोपनस्य' 'दावकैना' संबंधी प्रथम इसी प्रकार के चिनी अन्त प्रम के निमित्त प्राया प्रतीत होता है ।

की घटनाओं का सूजन अनिवार्य हो जाता है। इतिहास से यह कहीं भी सात नहीं होता कि प्रबुद्धों ने अपने प्रति घोर सभ्राट रामगुप्त के विरुद्ध बर्षा व्याप प्रस्ताव गुप्त-वंश की कीर्ति की शरण ली थी। इतिहास इस संबंध में प्रतिक है भी नहीं परन्तु जो कुछ है उससे बीच की सम्पूर्ण बटनाएँ एक दूसरा ही चित्र प्रस्तुत करती हैं बाहे उससे अद्भुत जैसे पराक्रमी और विद्वान राजा के चरित्र पर कुछ भी प्रभाव पड़ता हो।

संघात साम्रज्य की छाड़ी स्पष्ट है। 'हुत्वा भातरमन' शब्दों का अर्थ को भर्ष नहीं होता। विवाहवत् की कथा उपसम्भ नहीं हा पाई और मुबमुल-उर तबारीक के अनुसार बर्कमारीस ने ही क्वाल का बच किया। वक्त बच के अनुसार रानी बर्कमारीस से प्रेम करने लगी क्योंकि उसका नामान्त पूर्व ही उससे हो चुक था और बर्कमारीस ने उसकी रक्षा की थी। राजा को इस बात का पता चला त वह बर्कमारीस पर क्रुद्ध हुआ और उसे अपमानित किया। एक दिन क्वाल भी रानी राजमहल में बैठे हुए मग्रा जा रहे थे। रानी के हाथ में सुरी भी और व उससे मग्रा छीसकर राजा को दे रही थी। द्वार पर प्रतिहारी भी नहीं थी। सर्व समय बर्कमारीस एक बीन मिथुक के बैक में राजमहल में चुस गया। रानी के भाषा से राजा ने उसको भी जाने के लिये मग्रा दिया। क्वाल उस मिथुक को न पहचान सका। रानी ने उसको पहचान लिया था। राजा द्वारा मग्रा मिलते ही रानी ने उसे छीलने के लिय अपनी सुरी दे दी। सदैव समझकर बर्कमारीस ने सुरी से क्वाल का बच कर दिया और बाह में रानी से स्वयं विवाह कर राजा बना। मन्त्री छकर का बोध होते हुए भी बर्कमारीस ने उसे क्षमा कर दिया। छकर ने अपने गभीर मंत्रित्व काल में राजनीति पर एक बन्ध मिला और अन्त में चिटा में बसकर अपने प्राण त्याग दिये।

उपयुक्त विवरण से कई बातें स्पष्ट हो जाती हैं। सम्भव है कि अद्भुत घोर प्रबुद्धाभिनी का प्रेम ही रामगुप्त की मृत्यु का कारण रहा हो और इसमें प्रबुद्धाभिनी और अद्भुत दोनों ने मिसकर पर्यय किया हो। शिबीअद्भुतम् का उगमल अद्भुत और मधुसूत-उस-तबारीक का चिन्तारी बर्कमारीस एक दूसरे के बहुत समीप हैं। यत इतना स्पष्ट है कि चायसवाल का यह मत किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं किया जा सकता कि रामगुप्त को अपनी प्रजा से मुक्त करना पड़ा और उसी में उसका बच किया गया।^१ इतिहासिक प्रमाण १७८ है। अद्भुत और प्रबुद्धों

(१) यही साइबनी १८ वेम इन बी फोम ऑफ पेटुसर रात्रियग—प्रबुद्धाभिनी (सुमिया)

बाजिरा श्यामा रजनी में ही बन्दीपूह पहुँचती है । यहाँ एक बात यह सम्बन्ध में नहीं घाती कि यदि यह बटना रात्रि की है तो रात्रि में ही शीर्षबाण्यस्य से लेकर प्रमनजिन और बासबी तक बन्दीपूह में कैसे पहुँच गये ? बस्तुतः यह बटना दिन की ही हली चाहिए । यहाँ श्याम-रजनी का प्रमनजिन वर्ष बन्दीपूह प्रमना जीवन के निराम सख मान लेने से उक्त नंका का निराकरण किया जा सकता है ।

तीसरे हृष्य का सम्बन्ध दो हृष्यों से है । विद्वत्क के चापम होने का सम्बन्ध द्वितीय घक के घण्टिम हृष्य से है और श्यामा का सम्बन्ध रनी घक के घाठवें हृष्य से । इन दोनों हृष्यों और तीसरे हृष्य के बीच कितना अन्तर होना यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । मस्त्रिका की सेवा सुभूषा से ही विद्वत्क को प्राणनाम मिला है ।^१ अतः यह अन्तर १३ दिन से लेकर १ माह तक का माना जा सकता है । बटना ४६४ ई० पू० के तीसरे या चौथे माह की है । सम्भूषा बटना का काम घटे मर से अधिक का नहीं है । चौथे और तीसरे हृष्य के बीच अधिक अन्तर नहीं है । मस्त्रिका को कोमल की सीमा पर बनी घपनी कुटी से घाबस्ती तक पहुँचने में कितना समय लगा होगा उतना ही अन्तर इन दोनों हृष्यों के बीच है । यह अधिक से अधिक एक सप्ताह का हो सकता है अथवा एक या दो दिन पर्याप्त समझे जा सकते हैं । हृष्य की बटना घाबे घटे में अधिक की नहीं है ।

बस्तुतः दूसरे और पाँचवें एवं तीसरे-चौथे और पाँचवें हृष्यों के बीच पर्याप्त अन्तर होना चाहिए था । घाबस्त्रकता हाटे हुए भी प्रसाह इस अन्तर को नहीं निमा पाय है । घरात के बन्दी होने से लेकर विवाह तक की बटना को कम से कम एक माह का माना जाय तो दूसरे दृष्ट में विद्वत्क के चापम होने से लेकर स्वल्प होने के काम को (तीसरा हृष्य) भी इतना ही मानना पड़ेगा । दूसरे और पाँचवें हृष्य को प्रसाह ने एक साथ ही दिन में घटित मान लिया है । चौथे हृष्य में मस्त्रिका कहती "जसो घाब घपने स्वामी से समा मोगो मुना जाता है कि घरात और बाजिरा का ब्याह होने वाला है, तुम भी उस उत्सव में घपने पर को मुना मत रखो ।"^२ पाँचवाँ हृष्य विवाह के उपरान्त समा माजना का ही है । घट "घाब" सख से तीनों बटनाएँ एक ही दिन में घटित सिद्ध होती हैं । पाँचवें हृष्य का बटनाकाल केवल कुछ ही घंटों का है । चौथे और पाँचवें हृष्य के बीच एक दो घंटों में सम्भवतः घरात और बाजिरा का विवाह सम्पन्न हुआ होगा ।

(१) घरात० ३११२०

(२) घरात० ३११२०

छठे घोर पाकबेँ हृष्य के बीच अधिक अन्तर नहीं हो सकता। घासोक मालाधी के सम्बन्ध से ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त बटना बड़ी दिन रात्रि की है।^१ नामरिक करता है "घास तो भावस्ती में महोत्सव है"^२ साथ ही बसन्तक कीणाम्बी से वैवाहिक उपहार साया है पर वह कुछ पिछड़ गया है।^३ सम्पूर्ण बटना का काम बहुत ही कम है। घासबेँ हृष्य का सम्बन्ध बराली की गणिका घासपासी से बोझा गया है और इस समिकरण को प्रभाव मुमिका में ही कार्यात्मिक स्वीकार कर चुके हैं। विधिक्रम की दृष्टि से उक्त बटना का काम ४१४ ई. पू० से बहुत बार का होना चाहिए। बुद्ध का निर्वासन भजातघनु के शासन-काल के नवें वातुर्मास में हुआ था। शासन शुरू सम्भालने के कुछ ही वर्षों बाद लगभग ४८४ ई० पू० में भजातघनु ने सिन्धुनियों पर आक्रमण कर दिया था और वह कुछ ४६८ ई० पू० तक बचता रहा।^४ विजयार का घासपासी से विमल कौण्डिन नामक एक पुत्र था।^५ घट घासपासी का पूर्ण विमल-काल विजयार के शासन काल में मानना पड़ेगा। बौद्ध ग्रन्थों से यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि बुद्ध अपनी मृत्यु से कुछ ही समय पूर्व जब अन्तिम बार बीतासी घासे के तमी घम्बपासी ने घासकालन और विहार बुद्ध को समर्पित किये थे।^६ घट उक्त बटना ४८२ ई. पू० घबवा उससे कुछ ही पूर्व की मानी जा सकती है। सम्पूर्ण हृष्य की काम योजना बहुत मोठे समय की है।

घासबेँ हृष्य का सम्बन्ध छठे से है और इन दोनों के बीच कम से कम लगभग १० माह से निकर एक वर्ष तक का समय भावना पड़ेगा। इसी बीच घजात मगप सीट चुका है और बाबिरा से उसका एक सिन्धु भी उत्पन्न हो गया है। घट उक्त बटना निरन्धय ही ४१ ई० पू० की मानी पड़ेगी। सम्पूर्ण हृष्य कुछ ही मिनटों का है। हम पहले कह चुके हैं कि प्रसाद ने अपने नाटक के नवें दृश्य की योजना प्राचीन जैन इतिहास के आधार पर की है और उसके अनुसार घजात को सिन्धुप्राति के साथ ही विजयार की मृत्यु हुई। उक्त यागवातानुसार भी घासबेँ घोर नवें दृश्य के बीच काम का अन्तर बहुत कम होना चाहिए। प्रसाद ने भी ऐसा ही किया है। काम की दृष्टि से नवें दृश्य का प्रारम्भ घोर घासबाँ हृष्य एक साथ ही बटित माने जा सकते हैं। सम्पूर्ण नवाँ दृश्य एक पद्ये से अधिक का नहीं। यही दृश्य

(१) भजातघनु ३।१३२

(२) वही ३।१३४

(३) वही ३।१३२

(४) दि एव घास इम्पीरियल मुमिटी पृ २६

(५) दिवतनरी घास पासी प्रीपर मेन्स पृ० १२४

(६) वही --- --- --- पृ० १२५

विस्तार की मूल्य का भी सूचक है। विस्तार की मूल्य का हम ४६३ ई० पू० में
होना स्वीकार कर चुके हैं। नाटक के बटनायम के अनुसार ४६३ ई० पू० के प्रारम्भिक
चार पांच महीनों के उपरान्त ही उसकी मूल्य हुई होगी। इस नाटक की काल-योजना
का सबसे बड़ा बोध यही है कि यम-राज विभिन्न कालों की दूरस्थ बटनायमों की पास
पास लाकर मिला देने का असाध्य और अनाश्रयक प्रयास किया गया है।

'चन्द्रगुप्त' नाटक की काल योजना

चन्द्रगुप्त नाटक की विस्तृत भूमिका में प्रसार ने कई प्रयाशों के आधार पर सीरिज कासीन तिथि क्रमों का पर्याप्त विवेचन किया है। उनके अनुसार चन्द्रगुप्त नाटक से सम्बन्ध रखने वाली प्रमुख तिथियाँ इस प्रकार हैं।

चन्द्रगुप्त की जन्म तिथि	---	---	३४६ ई० पू०
सिकन्दर से मिलने के उद्देश्य से चन्द्रगुप्त के लक्ष्मिणा पतुंजने की तिथि	---	---	३२६ ई० पू०
सिकन्दर के विपाका लट से वापस लौटने की तिथि	---	---	३२२ ई० पू०
सिकन्दर की मृत्यु घोर पंचनद में चन्द्रगुप्त द्वारा धीकों के विरुद्ध आयोजित विद्रोह की तिथि	---	---	३२३ ई० पू०
उसके राज्यापेक्ष की तिथि	---	---	३२१ ई० पू०
चिन्मूकस द्वारा भारत में शासन शुरू किये जाने की तिथि	---	---	३०६ ई० पू०
घोर चन्द्रगुप्त से उसकी सन्धि की तिथि	---	---	३०२ ई० पू०

इन तिथियों के सम्बन्ध में इतिहासकारों में विशेष मतभेद नहीं है अतः प्रसार द्वारा निर्धारित तिथियों को स्वीकार करने में विशेष सावधानी नहीं।

उपर्युक्त तिथियों की ध्यान में रखते हुए यदि सम्पूर्ण नाटक के कथानक पर विचार करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि 'चन्द्रगुप्त' नाटक का प्रारम्भ ३२७ ई० पू० में होता है। नाटक के प्रथम दृश के प्रथम दृश्य में ही एक घोर तो सिकन्दर के परिवार की सूचना दी गई है और दूसरी घोर लक्ष्मिणाजीन का 'दशनों की पिच्छता के लिए स्वयं वास्तुिक लक जाने का उत्सुक हुआ है।^१ यह वास्तुिक वस्तुतः धीकों का बैकिट्टया प्रदेश है जिसे सिकन्दर ने ३२७ ई० पू० विजय कर लिया था। उसी वर्ष वह हिन्दू-कुन को सांघकर सिकन्दरिया (एलीनबैकिट्टया) नगर में आकर रह गया था।^२ यदि लक्ष्मिणाजीन के सिकन्दर से मिलने वास्तुिक जाने के ठीक बाद ही

(१) पृष्ठ ११२७

(२) बौद्धवासीन मागत पत्तारंज नट्ट पृष्ठ १०६

प्रथम घटक का प्रारम्भ माना जाय तो नाटक ३२७ ई० पू० से प्रारम्भ होता है । नाटक का अन्त अग्रगुप्त सिन्धुकेस की सन्धि घोर कर्नोसिया के विवाह में होता है । प्रसार ई० पू० ३०२ में इस घटना का होना स्वीकार करते हैं । अन्त अग्रगुप्त नाटक की सम्पूर्ण घटना २२ वर्ष (३२७ ई० ३० से ३०२ ई० पू० तक) की है । स्मिथ के अनुसार ३२७ ई० पू० ऐसीकैम्ब्रिजवा स भारत की घोर अभियान करते समय सिकन्दर के साथ लल्लितलायीय मी से जिन्होने उसकी आधीनता स्वीकार कर ली थी ।^१ उक्त घटना उस वर्ष दून माह की है ।^२ स्मिथ के अनुसार सिन्धुकेस से सन्धि की घटना ३०३ ई० पू० की है ।^३ इस तिथिजम को मानने पर अग्रगुप्त की सम्पूर्ण घटना का काल २४ वर्ष का हो जाता है ।

सम्पूर्ण नाटक चार घटकों में विभाजित है । प्रथम घट्ट में ग्यारह, द्वितीय में इस तृतीय म नौ घोर चतुर्थ में चौदह हस्त्यों की योजना की गई है । जैसा हम पहले निर्धारित कर चुके हैं प्रथम घट्ट की घटना ३२७ ई० पू० से प्रथम अष्टक की शर्बाघि प्रारम्भ होती है । उसका अन्त दाहयावन के प्राथम्य में अग्रगुप्त की शर्बाघि घोर सिकन्दर की प्रथम मेट में होता है । इस मेट का काल प्रसार के अनुसार ३२६ ई० पू० है । नीलकंठ कास्मी मी इस तिथि को ३२६ ई० पू० के पास पास ही मानते हैं । अन्त प्रथम घट्ट की कथा ३२७ ई० पू० से ३२६ ई० पू० तक की एक वर्ष की कथा है । प्रथम घोर द्वितीय घट्टों के बीच कम से कम एक माह का अन्तर माना जा सकता है क्योंकि अग्रगुप्त कीक धिबिर में हउने किलों तक रहकर 'यवन रणनीति से कुछ परिचित हो गया है । द्वितीय घट्ट का प्रारम्भ भी ३२६ ई० पू० में ही होता है क्योंकि उसका प्रथम हस्त ही अर्धमांड टट का है, घोर अर्धमांड का सेतु ३२६ ई० पू० अन्त अष्टक में बनाया गया था ।^४

द्वितीय घट्ट सिकन्दर घोर मासक सुदरकों के युद्ध में सिकन्दर के मायल हो जाने की घटना के साथ समाप्त होता है । स्मिथ के अनुसार उक्त युद्ध ३२२ ई० पू०

- (१) 'इयूरिंग सिंघ मार्च ईन्टवर्ड ईंसेगल एण्ड परिद्विककम बीर ए कम्पनीड बाइ दि किम घाक लक्षिमा ए सेट सिटी विपोंड दि इउस हू ईड मोस्ट नो टारम इन घोरेइम एलेकत्रैगसं नमम एण्ड इन ज्येसिय दिइ सविसेज एट दि डिस्कोजस घाक सि इलवेहर । दि घसी हिस्ट्री घाक इम्बिया पृ २४
- (२) वही पृ ११६ (३) वही पृ० १२२
- (४) एज घाक लम्बाज एण्ड मीर्वाज के ए नीलकंठ कास्मी पृ ७७
- (५) अन्त २१११ (६) वही २१०७
- (७) बीड कासोन भारत—अन्तरिम मट्ट प १६

जनवरी में बड़ा गया था।^१ 'चन्द्रगुप्त की भूमिका में प्रसाद लिखते हैं 'कमल विहस्ता चन्द्रमाया इरावती के प्रवेशों को विजय करता हुआ सिकन्दर विपाला तट तक आया और फिर मगध के राज्य का प्रबन्ध प्रताप सुनकर उसने द्विविजय की इच्छा को त्याग दिया और ३२३ ई० पू० में फिसिफ नामक पुरुष को क्षत्रप बनाकर घाघ नाबुस की धोर मया----- इस मार्ग में सिकन्दर की मातृव जाति से युद्ध करने में बड़ी हानि उठाणी पड़ी। एक युद्ध के युद्ध में तो उसे ऐसा धरनावास्तु मिला कि वह महीनों तक बड़ी बीमारी में मरता रहा।^२ 'चन्द्रगुप्त नाटक का दूसरा धड्ड ठीक यही पर समाप्त होता है। अतः यदि उक्त घटना को ३२५ ई० पू० में मान लिया जाय तो सम्भवतः यह प्रसाद की मातृवता के विरोध में न होया। इस दबा में दूसरे धड्ड का घटना काल भी ३२९ ई० पू० से ३२५ ई० पू० तक लगभग एक वर्ष का काल होया।

तीसरा धड्ड सिकन्दर और मातृव युद्धों की सन्धि से प्रारम्भ होकर मगध में चन्द्रगुप्त के सिंहासनारोहण पर समाप्त होता है। दूसरे और तीसरे धड्ड की घटना के बीच कम से कम एक सप्ताह और अधिक से अधिक १५ दिन से अधिक का अन्तर नहीं प्रतीत होता। यदि इस घटना को स्वीकार कर लिया जाय कि मातृव युद्ध में सिकन्दर की पराजय हुई तो सिकन्दर न सन्धि के लिए अधिक समय नहीं लिया होगा। उसके अक्षयुष्ट सैनिकों की वापस सीटने की तत्कट इच्छा ने उसे शीघ्र सन्धि करने के लिए बाध्य किया होया। अतः तीसरा धड्ड ३२३ ई० पू० से ही प्रारम्भ होता है। प्रसाद के अनुसार चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण की तिथि ३२१ ई० पू० है। अतः तृतीय धड्ड का घटना काल ४ वर्ष का है। सिम्ब इसे ३२२ ई० पू० मानते हैं।^३ ऐसी दबा में उक्त काल तीन ही वर्ष का रह जाता है।

चतुर्थ धड्ड पर्यटेश्वर की हत्या से प्रारम्भ होकर सिन्धुपुत्र की पराजय और जनेसिया चन्द्रगुप्त के विवाह पर समाप्त होता है। चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण ३२१ ई० पू० स्वीकार कर देने पर यह मान लेना कठिन नहीं कि पर्यटेश्वर की हत्या भी उही वर्ष हुई होगी। अतः उक्त घटना इतिहास की नहीं है और उसका मूल स्रोत 'मुद्राराक्षस' नाटक है। मुद्राराक्षस के अनुसार भी पर्यटक की हत्या घोर चन्द्रगुप्त के सिंहासनारोहण

(१) धर्ती हिस्ट्री आफ इण्डिया सिम्ब । पृ० ११६

(२) चन्द्रगुप्त भूमिका पृ० २६

(३) धर्ती हिस्ट्री आफ इण्डिया सिम्ब पृ० १२४

में अधिक समय का घन्टा नहीं है। घण्टा तृतीय घीर अर्धुर्ष अङ्क के बीच अधिक से अधिक एक माह का घन्टा माना जा सकता है जो पूर्वोक्त चरिते प्रमाणावली राजपुत्र में निराशा घीर उज्ज्वल इत्यादि उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त है। सिद्धुक्त घीर अर्धुर्ष की सन्धि को प्रमाद ३ ५ ई पू में होना मानते हैं। घण्टा अर्धुर्ष अङ्क की कथा ३२१ ई पू से ३०३ ई पू तक १९ वर्ष की है। यदि सिद्धु^१ के आधार पर इसे ३०३ ई पू मानें तो उक्त अङ्क का काल १९ वर्ष का हो जाता है।

नाटक के प्रथम अंक का पहला दृश्य ३२७ ई० पू० से प्रारम्भ होता है। यह कहना बटल है कि सिक्खर के आक्रमण से कितने वर्ष पूर्व आशुवध घीर अर्धुर्ष उज्ज्वला में थे। प्रमाण में 'मगध से अर्धुर्ष के निकलने की प्रथम अंक की तिथि ३२७ या ३२८ ई० पू० मानी है^२ क्योंकि ३२६ ई० पू० में कास योजना वह सिक्खर से निकला था। यदि उक्त तिथि को माना जाय तो प्रमाद के घटना क्रममें स्वयं ही व्यापार उपस्थित हो जाता है।

अस्तित्व सिद्धता है 'मगधमीन महापद्म नन्द का कोपभाजन होने के कारण अर्धुर्ष गुप्त को निष्कासन का उपाय दिया गया। प्रथम निष्कासन काल में ही वह सिक्खर से निकला था।^३ अर्धुर्ष के निष्कासन की कथा की प्रसाद में प्रथम अंक के पाँचवें दृश्य में रखा है घीर प्रथम दृश्य में अर्धुर्ष को उज्ज्वला में मगध साम्राज्य से भेज गये विद्यापी के रूप में प्रदर्शित किया है जहाँ वह पाँच वर्ष तक रहा था।^४ घण्टा प्रसाद के अनुसार अर्धुर्ष उज्ज्वला में ३३२ ई पू से ३३७ ई पू तक धर्मयम कटा रहा। ३२७ ई पू में ही सिक्खर ने अर्धुर्षा तक के प्रदेश को विजय कर गांधार से लौटा कर ली। ३२७ ई पू में ही अर्धुर्ष मगध लौट गया घीर संभवत ३२७ ई पू के ही अन्तिम दिनों में उसे मगध से निष्कासित कर दिया गया। ३२७ ई पू में मगध का शासन धर्मनंद या महापद्म नन्द नहीं। प्रीक इतिहासकारों के अनुसार अर्धुर्ष को महापद्मनंद ने निकाला था। यदि इस बात को स्वीकार किया जाय तो उपर्युक्त घटना ३२७ ई पू से बहुत पहले हुई होगी। अस्तित्व को प्रमाण मान लेने पर वहाँ प्रमाद का तिथिक्रम काव्यनिक हो जाता है। यदि अस्तित्व द्वारा प्रयुक्त 'मैगधुस' शब्द का अर्थ 'सिक्खर' हो 'नंद' नहीं। तो उक्त घटना का

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया पृ० १२५ व बीडकालीन भारत पृ० ११४

(२) अर्धु० भूमिका : पृ० २७

(३) अस्तित्व १३४ मैकडवेल, पृ० ३२७ ४०५

(४) अर्धुर्ष १७५

(५) मैकडवेल पृ० २२७ ४०५

जनवरी में लड़ा गया था।^१ चन्द्रगुप्त की मूर्तिका में प्रसार मिलते हैं 'कम्यव विवस्ता चन्द्रमाया इरावती के प्रवेशों को नियम करता हुआ सिक्कन्द विवाहा ता तक भाया घोर फिर मगध के राज्य का प्रचण्ड प्रताप मुनकर उसने दिम्बिचव की इच्छा को त्याग दिया घोर ३२३ ई० पू० में पितृविक नामक पुत्र्य को दानप बनाका पाप काबुल की घोर यया----- इस मार्ग में सिक्कन्दर को मासव जाति से बुद्ध करने में बड़ी हानि उठाती पड़ी। एक युग के मूय में तो उसे ऐसा प्रत्यावात मिला कि वह महीनों तक बड़ी बीमारी लेकता रहा।^२ 'चन्द्रगुप्त नाटक का दूसरा अङ्क ठीक यहीं पर समाप्त होता है। अत यदि उक्त घटना को ३२३ ई० पू० में मान लिया जाय तो सम्भवतः यह प्रसार की मास्यता के विरोध में न होया। इस दबा में दूसरे अङ्क का घटना काल भी ३२६ ई० पू० से ३२३ ई पू तक लगभग एक वर्ष का काल होना।

तीसरा अङ्क सिक्कन्दर घोर मासव युद्धों की सन्धि से प्रारम्भ होकर मगध में चन्द्रगुप्त के सिंहासमारोहण पर समाप्त होता है। दूसरे घोर तीसरे अङ्क की घटना के बीच कम से कम एक सप्ताह घोर अधिक से अधिक सृतीय अङ्क १३ दिन से अधिक का अन्तर नहीं प्रतीत होता। यदि इस की अवधि घटना को स्वीकार कर लिया जाय कि मासव युग में सिक्कन्दर की पराजय हुई तो सिक्कन्दर ने सन्धि के लिए अधिक समय नहीं लिया होया। उसके अस्त्युष्ट संनिकों की बापस लौटने की उत्कट इच्छा ने उसे लीय सन्धि करने के लिए बाध्य किया होगा। अत तीसरा अङ्क ३२३ ई० पू० से ही प्रारम्भ होता है। प्रसार के अनुसार चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण की तिथि ३२१ ई पू है। अतः तृतीय अङ्क का घटना काल ४ वर्ष का है। सिम्ब इसे ३२२ ई पू मानत हैं।^३ ऐसी दबा में उक्त काल तीन ही वर्ष का रह पाया है।

चतुर्थ अङ्क पर्वतेश्वर की हत्या से प्रारम्भ होकर सिन्धुत की पराजय घोर शर्मनिया चन्द्रगुप्त के विवाह पर समाप्त होता है। चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण ३२१ ई पू स्वीकार कर लेने पर यह मान लेना कठिन नहीं कि पर्वतेश्वर की हत्या की उसी वर्ष हुई होमी। अस्तुन उक्त घटना इतिहास की नहीं है चतुर्थ अङ्क घोर उसका मूल लोठ 'मुद्राराक्षस' नाटक है। मुद्राराक्षस के अङ्कण्ड ही पञ्चम की हत्या घोर चन्द्रगुप्त के सिंहासमारोहण की अवधि

- (१) पर्सी हिस्ट्री आफ इण्डिया सिम्ब । पृ० ११६
 (२) चन्द्रगुप्त मूर्तिका पृ० २६
 (३) पर्सी हिस्ट्री आफ इण्डिया सिम्ब पृ० १२४

में अधिक समय का अंतर नहीं है। अतः तृतीय और चतुर्थ मनु के बीच अधिक से अधिक एक मनु का अंतर माना जा सकता है जो पर्यवेक्षर जैसे प्रमादधानी राजपुरुष में निरक्षर और अज्ञान ईर्ष्या उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त है। सिन्धुसंध और चन्द्रगुप्त की सन्धि की प्रसाध ३३ ई. पू. में होता मानते हैं। अतः चतुर्थ मनु की कथा ३२१ ई. पू. से ३०३ ई. पू. तक १९ वर्ष की है। यदि स्मिथ^१ के आधार पर इसे ३०३ ई. पू. मानें तो उक्त मनु का काल १६ वर्ष का हो जाता है।

मनु के प्रथम अंक का पहला दृश्य ३२७ ई. पू. से प्रारम्भ होता है। वह कहता बटिन है कि सिकन्दर के शासनसे से कितने वर्ष पूर्व आलोक्य और चन्द्रगुप्त तक्षशिला में थे। प्रसाद ने 'मगध से चन्द्रगुप्त के निष्कासन की प्रथम अंक की तिथि ३२७ वा ३२८ ई. पू. मानी है^२ क्योंकि ३२९ ई. पू. में कास घोसना वह सिकन्दर से मित्रा था। यदि उक्त तिथि ही माना जाय तो प्रसाद के अन्त में स्वयं ही व्यापार उपस्थित हो जाता है। अस्तित्व निश्चय है 'महापद्म मन्व का कोपमानन होने के कारण चन्द्रगुप्त को निष्कासन का इच्छा किया गया। अपने निष्कासन काल में ही वह सिकन्दर से मित्रा था।^३ चन्द्रगुप्त के निष्कासन की कथा की प्रसार ने प्रथम अंक के पाँचवें इन्द्र में रखा है और प्रथम दृश्य में चन्द्रगुप्त को तक्षशिला में मगध साम्राज्य से लेने पड़े विद्यार्थी के रूप में प्रस्तुत किया है वही वह पाँच वर्ष तक रहा था।^४ अतः प्रसाद के अनुसार चन्द्रगुप्त तक्षशिला में ३३२ ई. पू. से ३२७ ई. पू. तक अध्ययन करता रहा। ३२७ ई. पू. में ही सिकन्दर ने बेक्ट्रिया तक के प्रदेश को विजय कर मांधार से लौट कर ली। ३२७ में ही चन्द्रगुप्त मगध लौट गया और संभवतः ३२७ ई. पू. के ही अन्तिम दिनों में उसे मगध से निष्कासित कर दिया गया। ३२७ ई. पू. में मगध का शासन अक्षर वा महापद्म नद नहीं। यीक इतिहासकारों के अनुसार चन्द्रगुप्त को महापद्म नद निष्कासा था। यदि इस बात को स्वीकार किया जाय तो उपरोक्त घटना ३२७ ई. पू. से बहुत पहले हुई होगी। अस्तित्व को प्रमास्य मान लेने पर यहाँ प्रसाद का त्रिभुज कास्मिक हो जाता है। यदि अस्तित्व द्वारा प्रयुक्त 'मनुस्य मन्व का अर्थ 'सिकन्दर हो 'ब' नहीं। तो उक्त घटना का

(१) सर्वाँ हिस्ट्री ऑफ इण्डिया वु. १२३ व बीडकामीन भारत वु. ११४

(२) अन्व. भूमिका : वु. २७

(३) जिस्टन १३४ मैनिफेस्ट, वु. ३२७ व ३२

(४) चन्द्रगुप्त १७३

(५) मैनिफेस्ट वु. २२७ व २३

सम्बन्ध तब से न जुड़कर सिकन्दर से जुड़ सकता है और सिकन्दर द्वारा बगदुष्ट के निकाले जाने की घटना ३२६ ई पू की होगी। कुछ भी हो प्रथम भाग की घटना ३२७ ई पू से प्रारम्भ होती है। सम्पूर्ण हय का काल प्रथिक से प्रथिक एक दिन का है।

द्वितीय हय और प्रथम हय में स्थान भेद है अतः दोनों को एक साथ बटिष्ठ हुआ माना जा सकता है। इससे यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि मयब की यह घटना ३२७ ई पू की है और यह बसन्त ऋतु में बटिष्ठ हुई होगी। स्मिथ के अनुसार ३२७ ई पू के मई माह में सिकन्दर हिन्दूकुश पर्वत को पार कर रहा था। इससे प्रतीत होता है कि पहला और दूसरा दस्य समकालीन है। सम्पूर्ण द्वितीय हय एक दिन का है। तृतीय हय का सम्बन्ध प्रथम हय से है और इस बीच बालुक्य लक्ष्मिणा छोड़कर पाटली-पुत्र प्रा गया है। इसमें अनुमानत एक माह से लेकर दो माह तक का समय माना जा सकता है। समस्त हय प्रथिक से प्रथिक घाबे बंटे का है। तृतीय और चतुर्थ हय का प्रारम्भिक अंश मुख्य हय का काम करता है जिससे यह ज्ञात होता है कि बालुक्य ने सुवासिनी पर ध्यंग किया। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि तृतीय और चतुर्थ हयों के बीच कम से कम एक दिन का अन्तर होगा। चतुर्थ हय प्रथिक से प्रथिक बंटे भर का है। चतुर्थ और पंचम हय के बीच भी एक दिन का अन्तर संभव है। यदि पहिले िन स्नातकों ने सरस्वती नदि में पूजन किया हो तो संभव है के नंद की राजसभा में दूसरे दिन गए हों। हय योजना को बंटे से प्रथिक की नहीं है।

छठे हय में सामाजिक पुनः मयब से सिन्धु तट पहुँचा दिया गया है। अब तक के हयों की कुल घटना एक माह का समय लेती है अतः ये सब घटनाएँ ३२०

(१) 'मेगास्थनीज ने एक ऐसे मार्ग की खोज की है जो भारत की उत्तरपश्चिमी सीमा से पाटलीपुत्र और संभवत उत्तरे में घाबे तक जाता था। पाणिनि ने इसे ही 'उत्तरापथ' कहा है। मेगास्थनीज के अनुसार उत्तर पश्चिमी सीमा से पाटलीपुत्र तक का राजमार्ग १००० स्टेडिया (लगभग ११३६ मील) लम्बा था। (स्ट्राबो १५ १ ११) कैम्ब्रिज के पाठ्यपुस्तक पर इस दूरी का समय १२२० मील माना है। टीक और भारतीय इतिहास से यह भी ज्ञात होता है कि रथ चरम लिबिका और बेनयाड़ी यातायात के साधन थे। अथनास में तीव्रगामी घोड़ों की खोज भी हुई है। यदि अनुमानत इन घोड़ों द्वारा प्रतिदिन ४० से लेकर ५० मील तक की यात्रा की जा सकती हो तो लक्ष्मिणा से पाटलीपुत्र पहुँचने में एक माह का समय लगेगा। रथ में इससे कुछ अधिक समय लगेगा और लिबिका में उत्तरे में अथिक"।

ई पू में ही घटित हुई है। घटा हुआ उद्मांड में सेतु निर्माण की वर्षा से प्राग्भ्य होता है। इस पहले कह चुके हैं कि उद्मांड का सेतु ३२६ ई पू बसन्त ऋतु में बनना पया था। द्वितीय हय ३२७ ई पू के बसन्त का है अतः निश्चय ही पौषर्षे और छठे हय के बीच कम से कम ग्यारह माह का अन्तर हो जाता है। छठे हय की सम्पूर्णा घटना कुछ ही घटों की है।

साठवें हय का सम्बन्ध पौषर्षे हय से है और सिन्धुतट से सामाजिक को पुन पाटनी-पुन में धाना पड़ता है। यह निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता कि चाणक्य कितने काल तक बन्दी स्थिति में रहा। यदि बल्लगुप्त सिक्न्दर से ३२६ ई पू में मिलता तो निश्चय ही उक्त घटना ३२७ ई पू के अन्तिम दिनों के बाद की नहीं हो सकती। यह भी समभव है कि बल्लगुप्त द्वारा चाणक्य को छुड़ाने में एक माह से भी कम समय लगा हो। सम्पूर्ण हय बटे भर से अधिक का नहीं है।

घाठवें हय में सामाजिक को पुन मगध से वापार भागना पड़ता है। उक्त हय का सम्बन्ध छठे हय से है। यहाँ घटा हुआ समाप्त होता है यहीं से घाठवा मगध होता है अतः घाठवें हय की घटना भी उसी दिन की है। घटना छठे में बन्दी बना ली जाती है और घाठवें में वह वापार नरेज के सम्मुख सार्ई गई है। सम्पूर्ण हय बटे भर से अधिक का नहीं है।

नवें हय में पुन स्वात मेर है। नवें हय का सम्बन्ध साठवें से है। चाणक्य मगध के बन्दीरुह से मुक्त होकर पर्वतेश्वर के राज्य पंचनद पहुँच गया है अतः साठवें हय और इसके बीच लगभग २० दिन का अन्तर मानना पड़ेगा। इस हय में पर्वतेश्वर मगध युद्ध तैयारी करने के कारण मगध विद्रोह के लिए अपने सैनिक मेजने में अपनी अक्षमता प्रकट करता है और वह युद्ध लड़ा गया है द्वितीय मगध के तीसरे हय में। तब तक नाटक के अनुसार सिक्न्दर की सेना उद्मांड में तिष्ठु तट पर ही है। सिन्ध का अनुमान है कि जनवरी ३२६ ई. पू उद्मांड पर पहुँच कर सिक्न्दर यहाँ एक माह तक रुका रहा। उसके अनन्तर वह एक माह तक तलाशमा में रुका। मई में वह पेलस तट पर पहुँचा और जुलाई में पुन से उलका युद्ध हुआ। यह निश्चय है कि पुन से पलस युद्ध की तैयारी तभी प्रारंभ करनी होगी जब सिक्न्दर उद्मांड के तट पर ही होगा अतः नवें हय की घटना ३२६ ई. पू जनवरी करवरी की प्रतीत होती है। सम्पूर्ण हय योग्यता बहुत ही कम समय की है।

दसवें हय का संबंध घाठवें और नवें दोनों हयों से है। अक्षय पौषार के पबहुन से निकलकर काल नय में जा रही है और चाणक्य पंचनद से वापार

की मोर का रहा है। यहाँ अन्नगुप्त भी उसी के साथ है। सिन्धुकुस भी वहीं है
 यद्यत् उक्त हस्त्य की योजना माँबार में ही की गई है। धनका माँबार में ही है क्योंकि
 धनके ही हस्त्य में यह शङ्खबासन से माँबार छोड़ने की अपनी शक्य प्रकट करती है।
 माँबार और पंचनद की सीमा एक दूसरे से मिली हुई थी यद्यत् पंचनद से माँबार की
 सीमा तक पहुँचने में बासुकर्य और अन्नगुप्त को अधिक से अधिक एक सप्ताह से
 भी कम समय लगा होगा अतः नये और दसवें हस्त्य के बीच एक सप्ताह से भी
 कम अन्तर माना जा सकता है। बटना ३२६ ई पू के फरवरी माह की हो सकती
 है। समस्त हस्त्य दो बड़े से अधिक का नहीं है।

प्यारहवाँ हस्त्य सिन्धु तट का है। उक्त बटना भी ३२६ ई पू के फरवरी
 माह की ही हो सकती है। इसमें हस्त्य (कानन वन) से धनका माँबार
 छोड़ने के कार्यक्रम में ही और प्यारहवें में यह धनका निर्णय शङ्खबासन के सम्मुख
 रखती है। इसी हस्त्य ने अन्नगुप्त और विक्रमर की प्रथम मेट होती है। अन्नगुप्त
 और सिन्धुकुस के संवाद से ऐसा प्रतीत होता है कि इनके प्रथम परिचय (दसवें हस्त्य के
 धर्म में) और इस द्वितीय परिचय के बीच कुछ समयभंग रहा होगा। सम्भव है कि इन
 दोनों हस्त्यों के बीच एक सप्ताह का अन्तर रहा हो। यदि अन्नगुप्त सिन्धुकुस संवाद
 को हटा दें तो अधिक से अधिक एक दिन का अन्तर हो सकता है। शङ्खबासन
 (श्रीकौ का शास्त्रिम) से विक्रमर ने उस समय मेट की थी जब वह लक्ष्मिणा में
 था। उक्त बटना ३२६ ई पू मार्च की प्रतीत होती है क्योंकि विक्रमर मार्च
 ३२६ ई पू में लक्ष्मिणा था तथा था। दूसरे धर्म में ऐसा प्रतीत होता है कि यत्र
 केर का विद्विर् बन्नादि के तट पर ही था यद्यत् प्रसाद के अनुसार या तो श्रीक विद्विर्
 यत्र नुत्त लक्ष्मिणा के विदे हटाया ही नहीं गया अथवा शङ्खबासन से विक्रमर की
 मेट कुछ पूर्ण ही करवायी गई। सम्पूर्ण हस्त्य का काल अधिक से अधिक दो बड़े का
 माना जा सकता है।

उद्घाट में सिन्धु के किनारे श्रीक विद्विर् के हस्त्य से दूसरे धर्म के प्रथम
 हस्त्य का प्रारम्भ ३२६ ई पू की वसन्त ऋतु में होना चाहिए। सिन्धु इसमें अन्न
 गुप्त और विक्रमर का संवाद भी है। विक्रमर के रथ
 द्वितीय धर्म की हो जाने के कारण अन्नगुप्त को श्रीक विद्विर् से घायला बड़ा
 कास योजना था। "अन्नगुप्त की भूमिका में प्रसाद के अतिरिक्त के घायल

(२) ऐतिहासिक इण्डिया मैगज़ीन ए० ए० ए० ३ २ १० ११
 पौर वैन ही ऐराइय एट लक्ष्मिणा एव सो दि इण्डियन इतिहासिकतुल ए
 विद्यापर श्रीक दिग् दु ह्व वन पाठ बीम पाठ इन्दु दिग् प्रेरणा-----"

पर यह निष्कप निकाला है कि अश्वघुप्त ने सिद्धन्तर को कट कर दिया।^१ स्वयं प्रसाद के अनुसार यह बटना तलमिसा में घटी।^२ नाटक का हस्त उबनाई का है। अतः यहाँ स्वान दीप के साथ साथ कास दीप भी है और स्वर्ण नाटककार की ऐतिहासिक मान्यता से इसका विरोध भी। सम्पूर्ण हस्त ४ बस्ते के आसपास का है। प्रथम बस्ते के अन्तिम दुग्ध और द्वितीय बस्ते के इस प्रथम दुग्ध के बीच पर्याप्त शिर्षों का अन्तर होना चाहिये। इसी बीच अश्वघुप्त ने ग्रीक शिबिर में रहकर यवन रणनीति जान ली थी। स्मिथ का अनुमान है सिद्धन्तर तलमिसा से अल्पम तट की ओर अग्रज में प्रयाण कर चुका था।^३ प्रसाद के अनुसार अश्वघुप्त भ्रमण मुख से पूर ग्रीक शिबिर से जमा पाया था। अतः प्रथम और द्वितीय बस्ते के बीच अग्रज से अधिक एक माह का समय माना जा सकता है।

द्वितीय दुग्ध की बटनाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि भ्रमण के एक तट पर ग्रीक शिबिर सया है और दूसरे तट पर पर्वतेश्वर का। सम्पूर्ण दुग्ध की बटना प्रातःकाल की है। इसकी पहली रात को यवन सेना ने बिलम्बा को पार कर लिया था। ४ पर्वतेश्वर और सिद्धन्तर का युद्ध इस हस्त में न होकर अग्रसे हस्त में हुआ है पर बटना इसी प्रातःकाल की है स्मिथ की बटना-नुषी के अनुसार प्रथम और द्वितीय हस्त में कम से कम तीन माह का अन्तर होना चाहिये। सिद्धन्तर ने अग्रज में तलमिसा से प्रयाण किया नई में वह भ्रमण तट पर पहुँचा और कुलाई के आरम्भ में उचलन रातो रात भ्रमण पार कर पूर से युद्ध किया। ५ दूसरे हस्त की बटना युद्ध के कुछ ही घंटे पूर की प्रतीत होती है। बटना का काल अधिक से अधिक दो तीन घंटे का है।

तृतीय हस्त और दूसरे हस्त के बीच सम्भवतः दो तीन बस्ते से अधिक का अन्तर नहीं। बटना युद्ध की है जो कुलाई १२६ ई. पू में लड़ा गया था। युद्ध में अधिक समय नहीं लगा। स्मिथ के अनुसार भी उक्त युद्ध का काल केवल एक दिन

(१) अश्व घूमिका पृ २०

(२) वही पृ २० "-----" (ई पू १२६ में) उसी समय अश्वघुप्त शत्रुओं से बचना लेने के उद्योग में अनेक प्रकार का कष्ट, मार्ग में भ्रमण से भरते भारत की धर्मता तलमिसा नगरी में पहुँचा था।

(३) अर्थात् हिस्ट्री ऑफ इण्डिया स्मिथ पृ ११६

(४) अश्वघुप्त २, १२०

(५) अर्थात् हिस्ट्री ऑफ इण्डिया स्मिथ पृ ११६

का है।^१ अतः पश्चिम से पश्चिम तीसरे हृष्य को भी एक दिन का माना जा सकता है।

चतुर्थ हृष्य में अश्वमेध द्वारा यह उल्लेख हुआ कि बिनाबा के तट पर यवन सिविर लगा हुआ है और वहीं पर यवन सेना में बिद्रोह छद्म गया है।^२ बस्तुतः अश्वमेध के तट पर पुष्य बुद्ध के उपरान्त सिकन्दर ने बिनाबा (एफेसाइनीज) नदी को पार किया और अथस्त में राबी (हाइड्रोपोटस) को पार कर कठ बाण्डि से युद्ध किया। सितम्बर के प्रायः पाँच बहू व्यास (हाइड्रोपोटस) के तट पर पशुच बिसका प्राचीन नाम बिनाबा था।^३ स्त्रिय के अनुसार सिकन्दर सितम्बर ३२६ ई. पू. में व्यास के तट पर पहुँचा है। सितम्बर ३२६ ई. पू. की घटना इस हृष्य में सुस्पष्ट रूप से घड़ी है। अतः यह हृष्य इसके बाद का होना चाहिए। इसी हृष्य से ज्ञात होता है कि सैनिकों के बिद्रोह के कारण सिकन्दर ने राबी के जल मार्ग से सीटने का निश्चय किया।^४ यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि बस्तुतः सिकन्दर राबी (हाइड्रोपोटस) के जल मार्ग से नहीं सीटा था। सिकन्दर की सेना बिनाबा से लौटकर अश्वमेध (हाइड्रोपोटस) के तट पर था यहाँ की घोर राबी से जल बाधा का प्रारम्भ हुआ था।^५ अश्वमेध (हाइड्रोपोटस) राबी और (हाइड्रोपोटस) अश्वमेध के अग्नि घाम्य के कारण प्रसाद से उक्त भूल हो गई हो। कुछ भी हो यदि चतुर्थ हृष्य को सितम्बर ३२६ ई. पू. का मान लिया जाय तो तृतीय घोर चतुर्थ हृष्य के बीच लगभग दो माह का अन्तर हो जाता है। माटक के घटना क्रम को देखते हुए इतना अन्तर उचित ही प्रतीत होता है।

चतुर्थ घोर पंचम हृष्य में स्थान भेद है। चतुर्थ हृष्य मानस का है और पंचम पंचम का और दोनों का एक ही काल में घटित होना सम्भव माना जा सकता है। इस हृष्य में भी राबी पार करने का उल्लेख हुआ है। इसमें सम्येह नहीं कि इन दिनों मानसों का राज्य राबी के तट पर ही था किन्तु पहले कहा जा चुका है कि सिकन्दर की जल यात्रा अश्वमेध से प्रारम्भ हुई राबी से नहीं। सेना का पश्चिम प्रायः स्थान में चलता रहा।^६ चायसवाल का अनुमान है कि अश्वमेध बिनाबा के अथस्त में दक्षिण में अश्वमेध के तट पर मानसों का और उसके उत्तर में सुइकों का राज्य था।^७

(१) स्त्रिय पृ. ५१ १०

(२) अश्व २ १२८

(३) अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया स्त्रिय पृ. ११६

(४) अश्व २ १२६

(५) अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया स्त्रिय पृ. ११६

(६) ऐजिएट इण्डिया मैगज़ ३ ३२

(७) हिन्दू पीनिटी जायसवाल पृ. ६६

घण्टा यदि सिक्न्दर स्टेजम से लौटा तो भी मातृक रात्रि उनके मार्ग में बराम पड़ा होगा। स्टेजम के ठाँ पर ही सिक्न्दर की जल माता के पूर्व उत्पन्न मनाया गया था उसी में परबतेन्दर घोर आध्यात्मिक की मूर्ति हुई थी।^१ स्त्रिय के अनुसार उक्त घटना घण्टाघर में हुई थी।^२ सम्पूर्ण हृदय का बच्चे से अधिक का नहीं है और बचपन हृदय की घटना सिक्न्दर की मातृक सेने पर दोनों के बीच एक मातृ का घण्टर भी स्पष्ट हो जाता है।

पौषर्षे हृदय के घण्ट में मिहिरण पञ्चम के बन्धीग्रह से मुक्त कर दिया गया है और इसे ही हृदय में बहु मातृको के स्फुटाकार में सिक्न्दर के प्रति अभियान की तैयारी करता हुआ दिखाया गया है। इसी बीच सिक्न्दर भी स्टेजम में बनकर चित्राव के संयम तक पहुँच गया है। इन दोनों घटनाओं में अनुमान १३ दिन का घण्टर माना जा सकता है। घण्ट घटा हृदय घण्टाघर घण्टा नवम्बर १२६ ई पू के पास पास का हो सकता है। सम्पूर्ण हृदय का बचपन बच्चे पर से अधिक का नहीं प्रतीय होता।

घातर्षा हृदय पुन पञ्चम का है। इसमें सिक्न्दर ने परबतेन्दर का एक निमग्नण भेजा है। स्त्रिय के अनुसार जनवरी १२२ ई पू में सिक्न्दर का मातृको से मुक्त हुआ था। घण्टा घण्टा निमग्नण निमम्बर १२६ ई. पू के घण्ट में घण्टा जनवरी १२२ ई पू के प्रारम्भ में भेजा गया था। सम्पूर्ण हृदय हृदय ही मिनटों में समाप्त हो जाता है। घातर्षा हृदय बन्धुविष मुक्त में मुक्त ही पूर्व का प्रतीय होता है क्योंकि उसमें मातृको द्वारा की गई मुक्त की समस्त तैयारियाँ का उल्लेख हुआ है। बहुत सम्भव है कि उक्त घटना भी सिक्न्दर या जनवरी की ही हो। सम्पूर्ण घटना का काल एक दिन से अधिक का नहीं। यहाँ सिक्न्दर की सहायता के लिए परबतेन्दर की सेवा पहुँच चुकी है घण्टा घातर्षे घोर घातर्षे हृदय के बीच घातर्षा से एक सप्ताह का घण्टर माना जा सकता है, क्योंकि यहाँ स्थान का घण्टर अधिक नहीं।

मर्षे हृदय में 'विशाला घण्ट' का उल्लेख दुरूपाया गया है। साथ ही सिक्न्दर द्वारा स्वतः मार्ग पर आक्रमण करने का उल्लेख भी हुआ है।^३ घण्ट उक्त हृदय जनवरी १२२ ई पू का माना जा सकता है। घातर्षे घोर मर्षे हृदय के बीच १३ २० दिन का घण्टर होता सम्भव है। हृदय योजना दो बच्चे से भी कम की है। घण्टर्षा हृदय मातृक मुक्त का है, इसमें बचपन होने के उपरान्त सिक्न्दर ने मातृक घण्टर्षा से बन्धु कर भी दी। उक्त घटना जनवरी १२२ ई पू की ही माननी

(१) घण्टी हिन्दी भाषा इण्डिया स्त्रिय पृ ६३

(२) वही स्त्रिय पृ ११६

(३) घण्ट २, १४० १४५

पड़ेगी । सम्पूर्ण हृदय संख्या का है और चार पाँच घण्टे से अधिक समय उक्त युद्ध में नहीं मरना होगा ।

तृतीय घण्टी की घटनाओं में कुछ कितना समय मरना होगा इसमें मतभेद है । प्रसार के अनुसार इस रक्त की घटनाओं में चार वर्ष (३२५ ई पू से ३२१ ई पू तक) लंबे परन्तु स्मिथ के अनुसार इस घण्टी की घटनाएँ तृतीय घण्टी की तीन ही वर्ष (३२५ ई पू से ३२२ ई पू तक) में समाप्त हो जाती हैं । द्वितीय घण्टी का अन्तिम हृदय जनवरी ३२३ ई पू का है । कटिपत्र से ज्ञात होता है कि पहले से बामन होकर सिक्न्दर कई दिन तक बीमार रहा और अन्त में हृदय क्रिया द्वारा मारने की घड़ी को निकाला गया ।^१ इसमें यदि १५ दिन का समय मान लें तो अनुमानतः द्वितीय और तृतीय घण्टी के बीच इतना ही अन्तर रहा होगा अर्थात् तृतीय घण्टी फरवरी ३२३ ई पू का माना जा सकता है । इस हृदय में मंत्री उत्सव की ओर संकेत किया गया है ।^२ सम्पूर्ण हृदय दो घण्टे से अधिक का नहीं है ।

दूसरा हृदय उस उत्सव का है, जिसमें सिक्न्दर ने मासक युद्धों से जीत की । कटिपत्र^३ और एरियन^४ दोनों में इस मंत्री उत्सव का उल्लेख किया है । प्रथम और द्वितीय हृदय के बीच एक या दो दिन का अन्तर माना जा सकता है । अतः उक्त घटना भी फरवरी में हुई होगी । सम्पूर्ण हृदय एक दिन का है । तीसरा हृदय सपि के उपरोक्त सिक्न्दर के प्रयास का है अतः द्वितीय और तृतीय हृदय के बीच एक मण्ठाह का अन्तर माना जा सकता है क्योंकि इतनी बड़ी सेना के प्रमाण की तैयारी में कुछ समय मगना स्वाभाविक है । सम्पूर्ण हृदय का काल दो घण्टे से भी कम का है ।

चतुर्थ हृदय के समय का निर्णय करने के लिए फिलिप्प द्वारा अश्वकुण्ड को भेजे गए इन्द्र युद्ध के निर्मूलण का सहाय्य लिया जा सकता है । संभव है कि निर्मूलण मिस्र के अधिक से अधिक एक माह के भीतर फिलिप्प मारा गया हो । मिस्र लियता है जब सिक्न्दर कारमेनिया में ही या उसे सूचना मिली कि फिलिप्प (फिलिपोस) की हत्या कर बी गई है और पंजाब में विद्रोह हो गया है ।^५ उसी से यह भी ज्ञात होता है कि सिक्न्दर ने फरवरी ३२४ ई पू में कारमेनिया को पार किया था ।^६

(१) कटिपत्र ६ २१ २४ परिच्छेद डैस्किन एडिशन

(२) अत्र ३ १३२

(३) कटिपत्र ६ परिच्छेद २३-२४

(४) एरियन ११,४

(५) धर्मा हिस्ट्री आफ इण्डिया (सिमन) पृ ११४

(६) वही पृ १२०

यदि धार्मिक न धार्मिक हो माह का समय उसके पास उक्त समाचार पठने में माना जाय तो त्रिदिव्य की हत्या दिसम्बर ३२२ ई पू में हुई होगी अतः अतुर्ष हत्य को नवम्बर ३२२ ई. पू का माना जा सकता है। यह स्वीकार कर लेने पर तृतीय धीर अतुर्ष हत्य के बीच कम से कम दस माह का अन्तर पड़ जाता है। इस बात के हमारे हत्य में यह उल्लेख हुआ है कि राजकुमारी कन्यामी विजयन्दर के प्रस्ताव क दूसरे ही दिन मरण भली बाणी। उनके साथ उनका मरण युद्ध में ही मिला जायगा^२ अतः इनके बीच धार्मिक से धार्मिक एक सप्ताह का अन्तर माना जा सकता है। नाटक में त्रिदिव्य का इन्द्र युद्ध के लिए प्रथम पाज्ञान उस समय होता है जब विजयन्दर भारत छोड़ रहा था धीर हम पहले निर्लज्ज कर चुके हैं कि इतिहास के अनुसार त्रिदिव्य की मृत्यु दिसम्बर ३२२ ई पू में हुई होगी यदि हम हत्य में कन्यामी के मरण युद्ध को मार्ग में ही पकड़ लेने की जर्जा राक्षस न करता तो हम दागों हथों के बीच इतिहास सम्मत १० माह का अन्तर मानने में कोई पापति नहीं रहती। उक्त प्रयोग स त्रिदिव्य में पर्याप्त गड़बड़ हो गई है धीर १० माह की बटना को ७ दिन के भीतर ही दिखना किया गया है। इन प्रयोग को काल योजना की एक महत्वपूर्ण भूम माननी ही पड़ेगी। सम्पूर्ण वृत्त पच्चे भर से धार्मिक का नहीं।

पात्रों वर्य में राक्षस सौट कर मरण धा गया है। प्रसार के अनुसार तो चौथ धीर पात्रों वृत्त क बीच धार्मिक से धार्मिक एक या देह माह का अन्तर होता चाहिए। चौथ वृत्त को बटना नवम्बर की है तो पात्रों हत्य की बटना भी नवम्बर पकवा धार्मिक से धार्मिक दिसम्बर की मानी जा सकती है। सम्पूर्ण हत्य पच्चे भर से धार्मिक का नहीं। अतः हम दिसम्बर ३२२ ई पू का माना जा सकता है। मरण में अतः का कारण के सामने अग्रगुण धीर त्रिदिव्य के इन्द्र के कलाकृत पर धंका प्रकट करती है। कारण इस सम्बन्ध में निश्चित है धीर उसने अग्रगुण को मरण बुसाया है। उक्त बटना मरण में ठीक उची समय बटी होगी जिस समय अग्रगुण धीर त्रिदिव्य का इन्द्र हो रहा होगा। इसमें मरण विरोध की तैमा-रियों का उल्लेख भी हुआ है किन्तु इस वृत्त की बटना उससे बहुत पूर्व की है।

सात्रों घाटने धीर वरें वृत्तों की बटनाए एक ही दिन की हैं। नन्व साठवें वृत्त के अन्त में राजन को गीम बन्दी बनाने की घाशा देता है। घाठवें वृत्त में

(१) अन्त ३ ६२
 (२) अन्त ३ १६६

सूचना दी गई है कि बिबाह की बेबी से राजस को बचीट कर से बनाया गया है और उसे बन्दी बनाया गया है। नर्मै दुश्म में बंदी राजस का नन्द के सामने उपस्थित किया गया है। घाठमें में मध्य बिब्रोह की बर्षा हुई है और नर्मै में बिब्रोह के साथ साथ नन्द की हत्या होती है और बही अग्रगुप्त का राज्यमितेक भी। स्वयं प्रसाद के अनुसार अग्रगुप्त का राज्यमितेक ३२१ ई पू में हुआ था। छठा दुश्म दिसम्बर ३२३ ई पू का है। घाठ: छठे और सातमें के बीच कम से कम तीन वर्षों का अन्तर घनस्य मानना पड़ेगा। यदि स्विय की कास योजना मानी जाय तो उक्त अन्तर दो ही वर्ष का रह जाता है। सेना की बणिर्कों के रूप में कुमुमपुर में एकत्र होते होते दो तीन वर्ष आसानी से सम सकते हैं। मगध का पतन इतना घात भी नहीं था घात इतना साधारण अन्तर उचित ही कहा जा सकता है। ७ दुश्म कुमुमपुर के प्रांत भाग का है और उसमें आणक्य मामदिका को मन्त्र रगसाता में पतन कर जाने की आशा देता है। साठमें दुश्म में मामदिका नन्द रगसाता में उपस्थित है। इस दृष्टि से इन दोनों दुश्मों के बीच एक सप्ताह का अन्तर कठिनाता से मानना पड़ता है। इन दोनों दुश्मों के बीच की उक्त या घटनाओं में किसी प्रकार भी काल का सामंभस्य नहीं बैठना जा सकता। निर ही प्रसाद ने तीन वर्ष की बटना को एक सप्ताह में पूरा कर दिया है। साठवां दुश्म अधिक से अधिक दो या तीन घटा का हो सकता है। घाठमें दुश्म में एक घोर घात मगध की बटना के रूप में हान्द में किलिप्ट के रूप की बर्षा हुई है दूसरी घं राजस के बन्दी बनाये जाने के उपांत मध्य बिब्रोह का उल्लेख हुआ है। पहली घट दूसरी से ३ वर्ष पइस दिसम्बर ३२३ ई पू में हुई थी। बस्तुतः इस रूप में घटि लिप्ट बध की बर्षा यहां न हुई होती तो काल कम में यह सम्भवता न घाटी यह सम्पूर्ण दुश्म ४ या ३ घटों का है। नर्मै दुश्म में नन्द की हत्या और अग्रगुप्त का राज्यमितेक से बेबी घटनाए प्रसाद के अनुसार ३२१ ई पू की है। सम्पूर्ण दुश्म का कास बार घण्टे से अधिक का नहीं हो सकता क्योंकि उसी दिन के पूर्वा में ही साठमें घोर घाठमें दुश्मों की घटना भी हुई है। यहां यह उल्लेख करन अप्रासंगिक न होगा कि 'अग्रगुप्त' के गृहीय घ क की बटनाए काल की दृष्टि। बिलनी अस्तम्यस्त है घातनी संभवतः सम्भ्य नहीं।

हम पहले देस चुके हैं कि अतुर्ष घ क ३२१ ई० पू० से ३०५ ई० पू० तक लम्बे १६ वर्षों के काल को घातनी सीमा में समेटे बनता है। अतुर्ष घ क के प्रवा हरय में ही अस्याली पर्वतेश्वर की हत्या कर स्वयं घातमपात क अतुर्ष घ क की सेनी है। 'मुहापघात' से यह निश्चय रूप से पता नहीं चलत कास योजना कि पर्वतेश्वर की हत्या अग्रगुप्त के तिहाननामीन होने में पु हुई घमवा उसके उपरांत किन्तु यह निश्चित है कि तब तक

चन्द्रगुप्त ने अंशमन में प्रवेश नहीं किया था। कात्तान्तर में पर्वतेश्वर की हत्या के उपरोक्त उक्त प्रवेश के मुहूर्त पर ही उसका भाई ईरोवक मगध का भावा राज्य पाकर चातुर्व्य को कूटनीति से मारा गया।^१ इससे यह निष्कर्ष सरसता से निकाला जा सकता है कि पर्वतेश्वर की हत्या और चन्द्रगुप्त के राज्याभिषेक के काल में विषेय अन्तर नहीं हो सकता।

तीसरे और चौथे अंक के बीच अर्धिक से अर्धिक एक माह का अन्तर हो सकता है। पर चतुर्थ अंक का प्रथम हस्त ३२१ ई० पू० का है। द्वितीय हस्त में राश्य, नस्यासी की मृत्यु से उत्पन्न उत्तमना की कर्षा करता है पर इन दोनों हस्तों के बीच एक दो दिन का अन्तर हो सकता है। प्रथम हस्त का काल एक बटे से अर्धिक नहीं है और दूसरे का उधसे भी कम।

दूसरे और तीसरे हस्त के बीच पर्याप्त अन्तर प्रतीत होता है। तीसरे हस्त में एक घोर तो चन्द्रगुप्त बलिष्ठापय पर विजय प्राप्त कर लौट रहा है दूसरी घोर सिक्न्दर के पश्चिमी प्रांतों को जीतकर सिन्धुक्षेत्र पूर्वी प्रांतों की ओर बढ़ा चारहा है।^१ प्रसार ने उक्त बटना का ३१६ ई. पू. होना स्वीकार किया है।^२ उनके अनुसार ई. पू. ३२३ में सिक्न्दर मरा और ई. पू. ३२१ में सिन्धुक्षेत्र बेबीलोन की गद्दी पर बिठाया गया। एंटीमोनस के प्रभाव के कारण ३१६ ई. पू. की सन्धि में सिन्धुक्षेत्र विभिन्न भाग टामेयी और बेबीलोन का बासक हुआ और ३१२ ई. पू. में उसने अपना स्वाधीन राज्य स्थापित कर लिया।^३ स्मिथ के अनुसार जो सिन्धुक्षेत्र ३१२ ई. पू. पश्चिमी राजनीति में पूर्वोक्त विजयी हुआ और ३१६ ई. पू. में उतने पूर्वी प्रांतों की ओर ध्यान दिया।^४ दूसरे और तीसरे हस्त के बीच ५ वर्ष का अन्तर है। सम्पूर्ण हस्त की काल बीजना एक दिन से भी कम की है।

तृतीय हस्त के अन्त में मानविका के कथन से यह माल लिया जाय कि चंद्र गुप्त उसी दिन पाटलीपुत्र लौट आया था तो चतुर्थ हस्त की बटना उसी रात्रि की हो सकती है। अथवा इन दोनों हस्तों के बीच क्वचित अन्तर हो सकता है। सम्पूर्ण हस्त बटे भर से अर्धिक का नहीं है।

पाँचवा हस्त उसी रात्रि के अन्तर्गत अत्यंत प्रमात का है। विद्वान् हस्त में रात्रि में मानविका की हत्या की सूचना चन्द्रगुप्त को पाँचवें हस्त में ही मिली है।

(१) मुद्राण्डम २ १६० २११ पृ. २१ (हरिचन्द्र)

(२) अग्र० ७१२ ३ (३) अग्र० (भूमिका) पृ. ३६

(४) अग्र (भूमिका) पृ. ३०

५) मार्श हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (स्मिथ) पृ. १२४

सम्पूर्ण हृद्य पटि मर से अधिक नहीं है । छठे हृद्य में मांस्यार की हृद्यस्य एवं रास्य के बालहीन बाहर सिस्क्रुस की कन्या को पढ़ाने की सूचना भी गई है । सातवां हृद्य 'कपिषा में एसेनवेन्द्रिया के राजमन्दि' का है । यहाँ रास्य कार्नेलिया को पढ़ा रहा है और इसी हृद्य में सिस्क्रुस भारत विजय की खर्चा कर रहा है । प्रसाव के अनुसार सिस्क्रुस ने सिम्बु को ई० पू० ३०६ में पार किया था । स्मिथ के अनुसार उक्त तिथि ई० पू० ३०६ है ।^१ सिस्क्रुस ने समय ३२७ ई० पू० में नाकै-मान की लड़कटी में एसेनवेन्द्रिया की नीव डाली थी ।^२ और वह सिम्बु के तट पर ३२६ ई० पू० के जनवरी में पहुँचा था । यदि सिस्क्रुस ने इतनी दूरी तम करने में इससे (१ बप से) कुछ कम समय भी लिया हो तो भी छठा हृद्य ३७ ई० पू० के आसपास का ही मानना उचित है । पाँचवें शक की बटना ३१६ ई० पू० में हुई थी इसलिये पाँचवें और छठे हृद्य के बीच कम से कम १ बप का अन्तर प्रतीत होता है । सातवां हृद्य छठे बुर्य का ही समकालिक है । दोनों में केवल स्थान परिवर्तन है । छठे हृद्य का कुल समय एक दिन का हो सकता है और सातवां हृद्य बटे मर से भी कम का है ।

घाठवें बुर्य से बारहवें हृद्य तक सिस्क्रुस के प्रति अग्रगुप्त का अधिवास सिम्बुतट पर सिस्क्रुस अन्तगुप्त का मुख सिस्क्रुस की पराजय और आणक्य प्रेषित सन्धि की शर्तों का उल्लेख है । इतिहास के अनुसार सिस्क्रुस सिम्बु के तट पर ३०६ ई० पू० जनवरी में पहुँचा पर इन सभी बुर्यों की बटनाएँ ३०६ ई० पू० में ही बटी होंगी । यह कहना कठिन है कि सिस्क्रुस के सिम्बुतट में पहुँचने और पुष्ट में उराजित होने में कितना समय लगा होगा । बारहवां बुर्य अग्रि का पूर्व सूचक है । स्मिथ के अनुसार उक्त सन्धि ३३ ई० पू० में हुई थी^३ और प्रसाव के अनुसार ३०२ ई० पू० में । स्मिथ के अनुसार ही ३०६ ई० पू० के आसपास उस युद्ध का होना मान लिया जाय तो अग्रि का समय ३३ ई० पू० मानने का कोई अर्थ नहीं । इतिहास में इस बात का कहीं उल्लेख नहीं मिलता कि वह युद्ध तीन वर्ष तक सञ्चालित था । प्रसाव की मायसा अल्प के अधिक निकट प्रतीत होती है । सिस्क्रुस को एसेनवेन्द्रिया से सिम्बु तट पर पहुँचने में एक वर्ष का समय लग गया होगा पर सातवें और घाठवें बुर्य के बीच १ वर्ष का अन्तर माना जा सकता है । घाठवें बुर्य की बटना १० मिनट से भी कम की है । घाठवें और नवें बुर्य के

(१) अग्र० ४ २२४ (२) अग्र० (धूमिका) पृ ३६

(३) मर्ती हिस्ट्री आफ इण्डिया पू० १२३ (४) वही (स्मिथ पृ० ३२)

(५) वही (स्मिथ) पृ० १२३

बीच धार्मिक घातक नहीं प्रतीत होता। नाम नहीं है। मुवायिनी पीर शिबिर में बन्दी होकर था नहीं है। इस योजना की सूचना दूरे समय में आलाक्य द्वारा दी गई थी। तथा दुसरे सम्प्रदाय का है और धर्म में राजि के वागमन की सूचना दी गई है। इसका दुसरे प्रात काप का है। नवम् दस्य में सिन्धुक्रम दुमरे ही दिन चन्द्र गुप्त पर आक्रमण करने की योजना बनाया है और इसमें दस्य में वह युद्ध लड़ा गया है घट नवें और दसवें दुसरे के बीच केवल एक रात का घातक है। इसका दुसरे एक दिन का है। इसमें दस्य में सिन्धुक्रम हार गया है और म्वाहर्न में वह पीर शिबिर में पकड़ मया है घट प्यारहवां दुसरे समयत उसी दिन के अन्तिम मास का है। बारहवां दुसरे सन्धि का है। सिन्धुक्रम की पराजय और चन्द्रगुप्त में उसकी सन्धि के बीच धार्मिक समय मानना न नाटक की बात योजना की वृष्टि से सगत बैठता है न इतिहास की वृष्टि से। युद्ध ३०६ ई० पू० के अन्तिम दिनों में लड़ा गया था ऐसा मान में तो प्रसाद की ही हुई तिवि ३०५ ई० पू० युक्ति सगत कही जा सकती है। नाटक से ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त बटना युद्ध के दुमरे ही दिन सम्पन्न हुई होगी।

तेरहवें दुसरे के धर्म में सिन्धुक्रम का धर्म्यता का और चौदहवें दुसरे में चौब के स्वीकार क्रिय जान का उल्लेख हुआ है। घटना ३०५ ई० पू० की है। बारहवें और तेरहवें दुसरे के बीच नम से कम एक सप्ताह का घातक होना चाहिए क्योंकि सिन्धुक्रम को सन्धि को शर्तों पर विचार कर अन्तिम निणय करने में इतना समय लगा ही होगा। यह भी सम्भव है इसमें एक माह से अधिक का समय लय मया हो किन्तु इसमें एक नय का समय तो किसी प्रकार नहीं लय सकता इतिहास कहता है कि एंटियोख के आक्रमण का समाचार सुनते ही सिन्धुक्रम ने चन्द्रगुप्त से सन्धि कर ली और गुरम्ल वापस लौट मया। तेरहवां दुसरे तीन बार बटे से धार्मिक का नहीं है। तेरहवें दुसरे के धर्म में ही चौदहवें दुसरे के आरम्भ की सूचना है घट इन दोनों दुसरो के बीच कामाण्डर नहीं है। यह अन्तिम दुसरे सन्धि और कालेनिया के विवाह का सूचक है। मन्मणु दुसरे का काल तो या तीन घटे से धार्मिक का नहीं प्रतीत होता। इस प्रकार चतुर्थ घट ३०५ ई० पू० में आयत हो जाता है। सम्पन्न घट में १६ वर्षों की लम्बी कथावस्तु की योजना करने में न तो इतिहास की रखा हो सकती है और न नाटकीयता की ही।

(१) धर्मी हिन्दू घाट इतिहास (स्मिथ) पृ० १२५

‘द्रुवस्वामिनी’ नाटक में काल-योजना

द्रुवस्वामिनी नाटक की कथानकाल का आधार ऐतिहासिक है किन्तु नाटक की मूल समस्या ऐतिहासिक न होकर सामाजिक है। उसमें जिन ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख किया गया है उनके सम्बन्ध में न तो प्रसार ने ही स्वयं कोई ऐतिहासिक काम-बोझा निर्धारित की है और न इतिहासकार ही किसी अन्तिम निर्णय तक पहुँच सके हैं। प्रसार ने सम्पूर्ण नाटक के सम्बन्ध में केवल श्री बालकृष्ण द्वारा माय्य एक तिथि का उल्लेख किया है। उक्त तिथि का सम्बन्ध चन्द्रगुप्त और अशोक के युद्ध में है।^१ ३७४ ई० से लेकर ३५० ई० के बीच के समय को हम निश्चित तिथि नहीं मान सकते। यह समय इतना दीर्घ है कि सम्पूर्ण नाटक का घटना काल भी इससे कम प्रतीत होता है। रामगुप्त के सम्बन्ध में छास्टर ने कुछ निश्चित तिथियाँ दी हैं उसका अनुमान है कि रामगुप्त ३७२ ई० में गुप्त सिंहासन पर बैठा और उसने ३६० तक शासन किया। मथुरा के बिनामेख से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ३८०-८२ में सिंहासनाधीन हुआ था। इतिहास की इस घटना के संबंध में प्रायः सभी इतिहासकार एक मत हैं।^२ केवल राधाकृष्ण मुकर्जी चन्द्रगुप्त के गम्भारोहण की उचित तिथि ३७२ ई० मानते हैं।^३ कुछ भी हो इसमें संदेह नहीं कि प्रायः का गुप्तकालीन इतिहास रामगुप्त के राज्य-काल की पसबीनर नहीं कर सकता क्योंकि उसके लिए पर्याप्त प्रमाण मिल चुके हैं। ऐसी स्थिति में ३७२ ई० से लेकर ३६० ई० तक का काल ही सम्पूर्ण घोर चन्द्रगुप्त तृतीय के बीच का रह जाता है जिसे हम सरलता से रामगुप्त का शासनकाल कह सकते हैं।

द्रुवस्वामिनी नाटक तीन घकों का है और प्रत्येक घक में एक ही दृश्य है। सम्पूर्ण नाटक से ऐसा प्रतीत होता है कि इसका घटना-काल बहुत कम है। नाटक की घटना रामगुप्त के शासनकाल के अन्तिम दिनों की है। द्रुवस्वामिनी नाटक की शुरुआत में द्रुवस्वामिनी की नाम की घोर चंद्र चन्द्रगुप्त से पराजित हुआ। उस पराजय के ठीक बाद ही रामगुप्त की हत्या कर दी गई और चन्द्रगुप्त मुत्तसिंहासन पर बैठा। घट हम सम्पूर्ण नाटक की घटना को ३६० ई० की मान सकते हैं,

(१) द्रुवस्वामिनी (सूचना) पृ० ५

(२) (अ) पीनिटिऊन हिस्ट्री ऑफ़ मेसोपोटामिया (राम चौधरी) पृ० ४६२

(घ) दि हिस्ट्री ऑफ़ नाय ईस्टर्न इण्डिया (बसाक) अध्याय ३-४

(३) दि गुप्ता इम्पायर (मुकर्जी) पृ० ४२

क्योंकि एक तो यह रामगुप्त के शासन-काल का अन्तिम वर्ष है और दूसरे अश्वमेध के राजकाज का प्रथम वर्ष । मानसवान ने एक-दुसरे की जो दो तिथियाँ मानी हैं उनमें से एक ३८० ई० मी है, यह एक-दुसरे की तिथि भी यही मान लेने पर सब बटनाओं का काम समन्वित हो जाता है ।

नाटक का प्रथम अङ्क सम्मत्स्यकाल के कुछ ही पहले प्रारम्भ होता है । अश्व स्वामिनी और अश्वमेधारिणी के उच्चार प्रारम्भ होने के कुछ ही दर बाद वासी राम कास हो जाने की सूचना देती है । सम्पूर्ण अङ्क में एक ही समय प्रथम अङ्क की होने के कारण मध्य सूचनाओं के अभाव में यही मानना उचित है कि जिस सम्मत्स्यकाल से बटना का प्रारम्भ होता है उसी रात्रि में सामन्त कुमारों के साथ अश्वमेध अश्व-गिरि में बसा गया होगा । सारे अङ्क की बटना चार पाँच मध्यों की है ।

यहाँ एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि प्रथम और द्वितीय अङ्क के बीच कितना अन्तर माना जाय ? प्रश्न के नाटक से तो हम सम्भव में कुछ भी निष्कर्ष नहीं निकालना पा सकते । बसुन्त इसका निगम इसी बात पर तिनर करता है कि एक-दुसरे और रामगुप्त के पहली गिरि के बीच कितना अन्तर है । प्रश्न में अश्व स्वामिनी में कोई औद्योगिक उल्लेख नहीं किया है । प्रथम अङ्क में रामगुप्त के कथन से एक द्वितीय अङ्क में निम्निल के कथन से बात होगी कि रामगुप्त दिग्विजय के सर्वेक्ष से पार्वत्य प्रान्त में गया और बड़ा बड़ो ने जने बेर मिया घन एक दुर्ग एवं रामगुप्त गिरि के बीच अधिक अन्तर सम्भव नहीं, बिनेपकर जब दोनों में कुछ अन्तर रहा हो । इस सर्वेक्ष को ध्यान में रखते हुए हम पहिले और दूसरे अङ्क के बीच अधिक से अधिक एक दिन का अन्तर मान सकते हैं ।

दूसरा अङ्क भी सम्मत्स्य का है—दूसरे अङ्क में मध्य रात्रि के प्रागमन की सूचना से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि दूसरे अङ्क की बटना भी सम्मत्स्य के मान बात प्रारम्भ हुई है । पहले अङ्क में सम्मत्स्य के समय विभिन्न अक्षरों का अन्वेष लेकर रामगुप्त के गिरि में उपस्थित है और सम्भवतः दूसरी ही सम्मत्स्य की रामगुप्त का अन्तर लेकर अक्षरों के पाठ का उपस्थित हुआ । अर्थात् दोनों का बीच भी सम्मत्स्यकाल की ही सूचना देता है । सम्मत्स्य से लेकर रात्रि के प्रागमन की सूचना तक एक-दुसरे मध्य और सुपाना का अन्तर माना गया है । बुमकेनु का प्रथम भी इन बात की पुष्टि करता है कि बात ही बुकी है । इसी रात्रि को स्वीदेशवारी अश्वमेध अश्वमेधारिणी की लेकर एक दुर्ग में पहुँच जाता है और वहाँ अक्षरों का जब और उठती हैना का अन्तर कर रात्रि-रात्रि अक्षर-दुर्ग पर अन्वेषण कर लेता है ।

विशाखदत्त के अनुसार भी यह सारी बटना रात्रि की ही है। सम्पूर्ण घण्टे की बटना एक रात्रि की है।

दूसरे घोर तीसरे घण्टों के बीच भी एक या दो दिन का ही प्रस्तर मानना पड़ेगा। लक्ष-दुर्ग से बिजय की सचता लेकर सैनिक रामगुप्त के निबिह तक गए होंगे

घोर रामगुप्त तक लूचना पाकर लक्ष-दुर्ग में घाया होया। यदि
 सृतीय घण्टे की काम योजना यह माना जा सकता है कि दूसरे घोर तीसरे घण्टे के बीच समय दो दिन प्रथम उससे कुछ कम समय का प्रस्तर है।

ध्रुवस्वामिनी के एक प्रश्न का उत्तर बोड़ी सी समझन चलान करता है। ध्रुवस्वामिनी पूछती है— “कुमार के बाव धर कंसे है” सैनिक उत्तर देता है— “बाव बिम्बाजनक नहीं है उन पर पट्टियां बंध चुकी है। कुमार प्रवाल मन्थन में बिभाम कर रहे हैं।” ऐसा प्रतीत होता है कि इस संवाद द्वारा प्रसार ने दूसरे घोर तीसरे घण्टे के बीच की बटना के प्रस्तर को पाट दिया है। कुमार चन्द्र गुप्त ने रात्रि में युद्ध किया था। उस युद्ध में सगे भावों के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न युद्ध के तीसरे घण्टे के समय ही पूछा जाना उचित है। उन भावों की परिष्कार युद्ध के ठीक बाद ही की गई होगी। तीसरा घण्टे सारा ही तीन बार बन्दे से अधिक था नहीं है।

उक्त काग योजना को स्वीकार करने पर समस्त नाटक का काल अधिक से अधिक चार दिन का माना जा सकता है। इस ऊपर “ध्रुवस्वामिनी” के इस संवाद का उल्लेख कर चुके हैं। उन पर जोड़ा विचार करना आवश्यक है। प्रसार का यह नाटक रचनात्मक की दृष्टि से एकांकी नाटकों के रचना-रत्न के अधिक समीप है। अतः यदि उक्त दृष्टि से नाटक की बटनाओं की गति को कुछ बढ़ा दें और उक्त संवाद के आधार पर स्वार्थों के प्रस्तर को कम से कम करें तो सम्पूर्ण नाटक का काम एक रात्रि घोर एक दिन का माना जा सकता है। प्रथम घण्टे सम्प्रा का है। जब यदि प्रथम घण्टे की बटना-गति को बढ़ा दें तो उक्त घण्टे सम्पूर्ण बटना दो घण्टे से भी कम में समाप्त हो जाती है। सम्प्रा के प्राथमिक के दो घण्टों से भी कम समय में सम्पूर्ण घोर ध्रुवस्वामिनी लक्ष-दुर्ग की घोर प्रयाण करते हैं और लक्ष दुर्ग के द्वार बन्द होने से पूर्व वहां पहुँच जाते हैं। यदि यह मान लें कि दुर्ग का द्वार लगभग बरा बन्द किया जाता होगा तो समस्या घोर भी सुसम्भ जाती है और पहले घंटे की घटनाओं के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है। विगत लक्ष-दुर्ग में ध्रुवस्वामिनी से पूर्व ही पहुँच गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि ध्रुवस्वामिनी से कुछ घण्टे के पूर्व ही सम्पूर्ण ने सिखरस्वामी की संज्ञा से “दुव

मे साक्षात् करके उत्सृष्ट राजनीति पर ध्यान^१ दिया होना और बिपन्न की जर्त स्वीकार करनी होंगी तभी समय छिपान तक-दुय के लिए रवाना हुआ होगा। उक्त घटना की योजना प्रथम चक्र के प्रारम्भ में ही है। स्वान का चक्र ध्वज है ही नहीं बल्कि विपन्न तुरन्त ही बहुत पहुँच गया होगा। प्रवस्थानिनी के प्रामाण्य की मूचना पाकर सरकार के पुर्न में सच्चा को ही तुरन्त पीन का आयोजन हुआ होगा। ऐसी दशा में काल की दृष्टि में प्रथम चक्र का उत्तरार्द्ध (रामगुप्त और बिल्वरस्वामी के पहली बार प्रत्याग करने से लेकर चन्द्र तक) और दूसरे चक्र का पूर्वार्द्ध (जसक समारोह तक) दोनों समकालीन होये। दूसरे चक्र का उत्तरार्द्ध रात्रि में बटित हुआ। तीसरा चक्र मुञ्जोपराम्य प्राण-बाल का है। उक्त चक्रों को भी दो बटे का मान लेने पर सम्पूर्ण नाटक का काल पहली सन्ध्या के १ बज स लेकर दूसरे दिन प्राण-काम के १० बज तक माना जा सकता है।

प्रसाद का यह प्रवेसा ही नाटक है जिसमें बटना का काल और स्वान से बड़ा मुन्बर समन्वय हुआ है।

(१) प्रवस्थानिनी पृष्ठ १८

स्कंदगुप्त नाटक में काल योजना

“स्कंदगुप्त” भारतीय इतिहास के स्वर्ण-युग की घटनाओं को लेकर लिखा गया एक महत्वपूर्ण नाटक है। प्रथम नाटकों के समान ही इस नाटक में भी प्रसार में इतिहास के सुदीर्घ काल की घटनाओं को कथाबस्तु के रूप में ग्रहण किया है। पश्चिमांग इतिहासकारों का मत है कि कुमारगुप्त के शासन-काल की निश्चित तिथियाँ ४१२ ई० से ४२५ ई० हैं।^१ स्कंदगुप्त का राज्यकाल ४२५ ई० से लेकर ४६७ ई० तक माना जाता है।^२ प्रा. टी. मजूमदार स्कंदगुप्त के शासन काल की इस प्रथम तिथि को स्वीकार नहीं करते। उनका अनुमान है कि सिंहासन पर बैठने से पूर्व उसे प्रथम प्रथम माद्यों से युद्ध करना पड़ा था।^३ राजासबास बनर्जी स्कंदगुप्त के शासन की पश्चिम तिथि ४८० ई० मानते हैं।^४ बिसेट स्मिथ के अनुसार भी कुमारगुप्त एवं स्कंदगुप्त के शासन काल की तिथियाँ क्रमशः ४१२, ४२२ ई० तथा ४२२, ४६७ ई० ही हैं।^५

स्कंदगुप्त नाटक पुष्यमित्र-युद्ध के समय से प्रारम्भ होता है। प्रथम प्रक के पहिले ही दृश्य (?) में उक्त युद्ध का उल्लेख वर्तमान काल में किया गया है।^१ प्रथम दृश्य में ही कपिला के बने हुएों द्वारा पादाक्रान्त किए जाने का भी उल्लेख किया गया है।^२ स्मिथ के अनुसार पुष्यमित्र-युद्ध का काल ४२० ई० है और कपिला में बने हुएों के प्राणमण की घटना ४२२ ई० के पास पाम की है।^३ हुएों की इसी बाढ़ को स्कंदगुप्त ने पहली बार रोका था। यह यदि यह मान लें कि कपिला पर हुएों का आक्रमण ४२५ ई० के प्रारम्भिक दिनों में हुआ तो स्कंदगुप्त से उनका युद्ध ४२५ ई० के पश्चिम दिनों में हुआ होगा। कुमारगुप्त की मृत्यु ४२२

(१) पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया (राय लोबरी) पृ० १४९, २०

(२) वही

(३) जर्नल ऑफ़ दि बंगाल एजियाटिक सोसायटी १८८६

(४) दि एज ऑफ़ दि इन्पीरियल मुल्ताज (बनर्जी) पृ० २२, २६ “कदगा” भूमिका

(५) पार्सि हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया पृ० १४२, ४६

(६) स्कं० ११११, १२

(७) वही ११११

(८) पार्सि हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया (स्मिथ) पृ० १३४

ई० के प्रारम्भ में हुई होयी थीर उन्ही दिनों स्कन्दगुप्त सिंहासन पर बैठा होया । 'स्कन्दगुप्त' नाटक क प्रथम दृश के प्रथम दृश्य की बटमा ४१५ ई० के प्रारम्भ की मान सकते हैं परन्तु ऐसा करने पर पुष्यमित्र बुद्ध की समस्या होय रह जाती है । इसका समाधान स्कन्दगुप्त के मिटारी के शिलालेख के आधार पर किया जा सकता है । जब स्कन्द पुष्यमित्रों से युद्ध कर उन पर विजय प्राप्त कर लीग तब उनके पिता का स्वर्णवास हा गया या थीर वह मयपुरण में तो से अपनी माता से उसी प्रकार मिला जिम प्रकार शत्रुओं को मारकर हृष्य देवकी से मिले थे । शिलालेख में उल्लिखित इस बटमा से एसा पतीत होता है कि पुष्यमित्रों पर विजय प्राप्ति थीर कुमारगुप्त की मृत्यु बाना लगभग एक ही समय म हुई होयी । यदि पुष्यमित्र-युद्ध का प्रारम्भ स्मिन् के अनुसार ४१० ई० मानें तो यह युद्ध पाँच बर्य बाना थीर ४१५ ई० के प्रारम्भ म हा स्कन्द उन पर विजय पा सका होया । शिलालेख में इसके उपरान्त हूण आक्रमण का बलुन किबा गया है^१ अत यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कुमारगुप्त की मृत्यु के समय अपना उतते कुछ पूर्ण कथिया में श्रेष्ठ हूणों ने अपना अधिकार कर लिया थीर ४१५ ई० के ही अन्तिम दिनों में श्रेष्ठ हूणों की पहली बाह को स्कन्दगुप्त ने रोका ।

उक्त कथियों को स्थाकार कर लेने पर यह माना जा सकता है कि 'स्कन्दगुप्त' नाटक का प्रारम्भ ४१५ ई० के प्रारम्भिक दिनों में हाता है । नाटक की अन्तिम कथि का निरूपण करना भी कुछ कठिन है । बन्धुन प्रसाद के नाटक में श्रेष्ठ हूणों के तीन आक्रमणों का उल्लेख हुआ है । दुगरे आक्रमण म स्कन्दगुप्त की पराजय हुई थीर तीसरे में उनकी विजय । यह कहना कठिन है कि हूणों के नाम स्कन्दगुप्त म जितने युद्ध किये पर इतना धनगत कहा जा सकता है कि ४१ ई० में हूणों की प्रथम पराजय हुई । इसी का उल्लेख मिटारी के शिलालेख में हुआ है । इसके उपरान्त ४६१ ई० के लगभग हूणों ने गांधार को विजय कर कुमाना भासकों को जबाब देना थीर वहाँ बहुत ही भयानकार किये । कुछ समय उपरान्त सम्भवत ४७ ई० से कुछ पूर्ण हूणों ने स्कन्दगुप्त के साम्राज्य क नीउर ही आक्रमण कर

- (१) समुद्रिक बल कोशानुपुष्यमित्रात्क जित्वा ।
 पितरि शिवमुनेते विष्णुता बस लक्ष्मी
 शिविमिति परितोवाग्माठरं गाम् वैशा
 मुञ्चन विभितारिष्यं प्रतिष्ठाप्य भूया
 हारिजुरिब हृष्यो देवकीमम्बुवेत्

- (२) हृषीकस्य समापत्तस्य समरे बोर्मा बरु कम्पिता—स्कन्दगुप्त का मिटारी का शिलालेख—नीसेकट इतिहास (सरकार) बं २८

दिया ।^१ इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ४६५ ई० में गुप्त साम्राज्य को पाण्ड्यार से हाथ धोना पड़ा किन्तु स्कंदगुप्त ने हूणों को धामे बढ़ने से रोक दिया । बादमें सर्मी मुनेरी का अनुमान है कि '४६३ ई०' के बाद हूणों ने फिर कई बार गुप्त साम्राज्य पर आक्रमण किये । लगातार बहुत दिनों तक युद्ध करने के कारण स्कन्द की शक्ति बहुत बट गयी थी और अन्त में एक हूण युद्ध में ही उनके प्राण भये थे' ।^२ कुछ भी हो किसी ऐतिहासिक प्रमाण के अभाव में इतना अवश्य माना जा सकता है कि यदि ४६३ ई० के बाद हूणों के कई आक्रमण हुए हों तो सम्भव है स्कन्दगुप्त की किसी युद्ध में पुन विजय हुयी हो । स्वयं प्रसाद न अपने माटक में जिस अस्थिम विजय का चित्रण किया है उसमें स्कंदगुप्त का हूण सेनापति को दिया गया आदेश महत्वपूर्ण है । स्कन्दगुप्त ने उसे धाडा दी कि वह सिन्धु के इस पार के देश में कभी आक्रमण करने का साहस न करे । इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस युद्ध के पहले ही समुद्रगुप्त और बन्धगुप्त विक्रमादित्य द्वारा विजय किये गये प्रदेश का पश्चिमी भाग हूणों ने पारान्तर कर लिया था । सम्भव है यह घटना ४६३ ई० के युद्ध की हो । इतिहासकारों के तर्क के आधार पर यह भी माना जा सकता है कि ४६९ ई० में भी हूण आक्रमण हुआ था । यहाँ यह भी कहना भी जा सकती है कि इस आक्रमण में संभवतः स्कन्दगुप्त ने हूणों को सिन्धु पर इस पार न धामे दिया हो और ४६७ ई० के युद्ध में यह स्वयं : सड़ते सड़ते पराजयी हो गया हो ।

संपुंक्त माग्यता के आधार पर 'स्कंदगुप्त' माटक की घटना का कुल काल ४५ ई० से लेकर ४९९ ई० तक प्यारह वर्ष का माना जा सकता है ।

स्कंदगुप्त माटक की कथाबस्तु में इतिहास इतना उलझा दिया गया है कि विजय का निर्णय करना कठिन हो नहीं सकता अथवा भी हो जाता है । माटक का प्रथम अंक उज्जयिनी में एक हूणों की सम्मिलित सेना के प्रथम अंक की आक्रमण और उस पर स्कंदगुप्त की विजय में समाप्त होता अथवा है । इतिहास के अनुसार उज्जयिनी पर हूणों का आक्रमण बहुत बार की घटना है और यहाँ को तो समुद्रगुप्त विक्रमादित्य ने ही उज्जयिनी से जिम्मे स कर दिया था । एक-दूसरे युद्ध की योजना ही अनैतिक है । घट इतनी स्थिति का प्रश्न उपस्थित ही नहीं होता । यदि इसे प्रथम हूण आक्रमण मानकर लें तो प्रथम अंक की घटना ४३५ ई० के

(१) धर्मी टिप्पणी आंक इण्डिया (विषय) पृ० १९८

(२) कल्या (हिन्दी अनुवाद) भूमिका अन्तर्गत सर्मी मुनेरी

सम्पूर्ण रूप को ले लेती है। इस बीच बुधवारपुस्त की मृत्यु हुई। दुष्प्रसिद्धों का युद्ध समाप्त हो गया और प्रथम हुए-युद्ध में स्कंदपुस्त की विजय हुई। इन समस्त बटमारों का काम एक वर्ष का होना चाहिए था। यहाँ तक कि आंध्र पर ४६२ ई० में ही इन सब बटमारों की संयति नहीं बर सकेगी। यह प्रथम एक ४६२ ई० के आरम्भ से अठ तक मानना पड़ता है। यह मानना असम्भव है कि हुएों ने पश्चिमोत्तर प्रदेश पर विजय लिए बिना ही भारत के इतिहास में विप्लव उदयनी पर आक्रमण कर दिया होगा।

द्वितीय एक का आरम्भ अलग ही ४६२ ई० के अन्त से मानना पड़ेगा। यहाँ एक संयोग की ओर बरबस ही ध्यान आकर्षित हो जाता है। इतिहासकारों का मत है कि प्रथम हुए-युद्ध स्कंदपुस्त के सिद्धांतासीन होने के उपर्युक्त लड़ा गया था। प्रसार के माटको में बटमारों का काम उलट दिया

द्वितीय एक का मत है। यह विनिश्चय का उलट देर हो जाता स्वाभाविक की अवधि ही है। द्वितीय एक में जो घरेलू-निर्णय है वह अनुमानत दो या तीन माह का होगा। स्कंदपुस्त के राष्ट्रियिक के साथ ही

द्वितीय एक समाप्त हो जाता है। उक्त बटमारों की हम ४६२ ई० के अन्तिम दिनों की मान सकते हैं। इन का बटमार काम में उलट देर है। स्कंदपुस्त का राष्ट्रियिक यथार्थ में न होकर उदयनी में हुआ है। इतिहास इसका साक्ष्य नहीं बर उलट बटमारों की विजय का प्रथम उठाना धरांसत होया।

तृतीय एक के आरम्भिक युद्ध की अभावस्तु वास्तविक है यह बात योजना का प्रथम ही नहीं उठता। इन समय तक हुएों ने विजय के साथ वास्तव को भी पादाघात कर लिया था। यह इस एक के आरम्भ की तृतीय एक की तिथि ४६२ ई० है। प्रसार ने तृतीय एक में गांधार की अवधि काटी और बुद्धा के युद्ध का उल्लेख किया है। यह युद्ध में स्कंदपुस्त की हार हुई है। यह निश्चय ही तृतीय एक का आरम्भ ४६२ ई० के कुछ पूर्व हुआ होगा। तृतीय एक की समाप्ति उक्त वास्तव युद्ध में ही हुई है। अतः सम्पूर्ण तृतीय एक का काल कम से कम दो-तीन महीने का माना जा सकता है। यद्यपि निश्चित रूप से कहा भी कुछ कहना कठिन है।

अतुर्ब एक के प्रथम युद्ध की बटमार का इतिहास से कोई संबंध नहीं बर विनिश्चय का प्रथम ही नहीं उठता। तृतीय एक में बुद्धरे युद्ध को हम ठीक ४६२

ई० के चतुर्थ या पंचम माह का मास सकते हैं। इससे पूर्व हुए चतुर्थ या कहीं माग्यार में ही वे और इस धर तक धाते धाते हम देखते हैं कि सप्तसिंधु प्रदेश की हूणों से पाराशरत हो चुका है। अतः चतुर्थ या क का प्रारम्भ ४६२ ई० से बीच में कहीं हुआ होगा। उक्त धर के प त के संबंध में भी इतना ही संकेत मिलता है कि उक्त समय अस्तबेदी भी हूणों से पाराशरत हो चुकी थी। ४२० ई० तक अस्तबेदी पर अस्तबेदी का अधिकार था किन्तु यह कहना कठिन है कि उसके बाद अब वहाँ हूणों का अधिकार हो गया। संभव है उक्त घटना भी ४६२ ई० के अन्तिम दिनों की हो। चतुर्थ या क की समस्त घटना सीग या चार माह की मानी जा सकती है।

तृतीय या क के अन्त में कुमा में बह जाये के उपरांत स्फरमुत्त पुनः पंचम या क के प्रारम्भ में ही प्रकट होता है। इससे पूर्व चतुर्थ या क के अन्त में हम उक्त उद्घात और निराशासक धाते हैं किन्तु यह स्वयं के पंचम या क की सामने पंचम या क में ही प्रकट होता है। यह निश्चित रूप से धरति। वहाँ कहा जा सकता कि प्रसाद अस्तबेदी को कितने समय तक अस्तबेदी अपना चाहते हैं। यह ऐतिहासिक घटना भी नहीं है। नाटक के घटना-क्रम के आधार पर यदि काम-निर्लभ किया जाय तो तृतीय या क से लेकर पंचम या क के प्रारम्भ तक एक माह से अधिक का अन्तर मानना क्या प्रवाह की दृष्टि में उचित नहीं बैठता ऐसी दशा में चतुर्थ या क में केवल एक माह की घटना होगी और उक्त घटना भी ४६२ ई० के मध्य ही ही मानी जायेगी।

पंचम या क का प्रारम्भ ४६२ ई० के तृतीय अर्ध में माना जा सकता है। पंचम या क की समाप्ति हूण-मुद्र से स्फरमुत्त की विजय के साथ होती है। उक्त घटना को हम ४६२ ई० की घटना मान चुके हैं। अतः पंचम या क में ४६२ ई० के तृतीय अर्ध से ४६६ ई० के प्रारम्भ तक का काल धर जाता है। 'स्फरमुत्त' में हम ४२२ के प्रारम्भ से ४६६ ई० तक की घटना मान चुके हैं। इस घटना में एक तो कई साम्यविक प्रसंगों की योजना हुई है दूसरे इतिहास की स्फरमुत्त के साम्यविक की अधिकांश घटनाओं के सम्बन्ध में यौग है अतः यह कहना कठिन है कि प्रत्येक दृश्य वा ऐतिहासिक घटना काल काल सा है और वो दुर्गों के बीच कितना साम्यविक हुआ है? वहाँ तक दुर्गों का सम्बन्ध है वहाँ तक नाटकीय घटना काल को लेकर ही हम दुर्गों की काम योजना पर विचार करेंगे।

प्रमत्त हम उद्घातनी में पुनः साम्यविक के स्फरमुत्त का है और इतना घटना-काल अधिक से अधिक एक पन्ने का है। दूसरे हम में साम्यविक अस्तबेदी

से तुरन्त कुमुमपुर पहुँचा गया है। सम्पूर्ण हस्त का प्रथम धातु को चन्दे मर से अधिक का नहीं है। तीसरा हस्त कुमुमपुर का ही काल घोसना है। यहाँ "काश्मीर मण्डल में टूटों के घातक" का उल्लेख हुआ है वह निश्चित रूप से कहता कठिन है कि हुआ न काश्मीर पर सर्व प्रथम एक अधिकार किया सम्भव है उक्त घटना ४२२ ई के घात न हुए घोसना की हो। सम्पूर्ण तीसरा हस्त एक चन्दे से अधिक का नहीं है।

बीचा हस्त कुमुमपुर के राजधानी का है। स्थान यही है और समय राति का है। द्वितीय पहर नीच हुआ है। सम्पूर्ण हस्त चन्दे मर से अधिक का नहीं प्रतीत होता।

चतुर्थ धीरे प्रथम हस्त के बीच कितना दिन का अन्तर है वह कहना कठिन है। प्रथम हस्त भी कुमुमपुर का ही है। समय राति का है। समस्त घटना उक्त घोसना के चन्दे मर की है जिसका उल्लेख प्रथम धातु में किया था। सम्पूर्ण हस्त का काल एक प्रहर के समान माना जा सकता है। छटा हस्त पुन मूल स्थान (राजधानी) धरना नगर-घात के पथ का है घात इसे भी कुमुमपुर का ही हस्त कहा जायगा। हस्त दो तीस चन्दे का माना जा सकता है।

सातवाँ हस्त सर्बती का है। यहाँ वह समस्त न नहीं घाता कि उल्लेखनीय न ही बुद्ध-साधना के सम्बन्ध से धरती पहुँचने में स्वरूप का इतना समय क्यों लग गया कि वह समय पर धरती बुद्ध की रक्षा के लिए नहीं पहुँच पाया? यदि स्वरूप प्रथम हस्त के समय मरण में होता तो बीच के तीस हस्त सामाजिक को मरण धीरे धरती की दूरी का अनुमान कराने के लिए बड़े उपयुक्त होते धीरे तक ठीक समय पर स्वरूप को मालव रक्षा के लिए बुद्धा कर जिस प्रभाव की सृष्टि करने का प्रयास किया गया है उसका भी समर्थन किया जा सकता। यहाँ स्पष्ट ही काल दोष है। समस्त देना के साथ सीमा से धरती बुद्ध तक जाने में अधिक से अधिक एक सप्ताह का समय माना जा सकता है। अन्तम हस्त दो चन्दे से लेकर ४-२ चन्दे तक का माना जा सकता है क्योंकि बुद्ध में जब समय का ठीक ठीक अनुमान करना कठिन है।

द्वितीय धातु का घटना काल ४२२ ई० के घात का माना जा सकता है। प्रथम हस्त निजा घात का है। घटना प्रथम धातु के घात में लगे गए मर हुए बुद्ध के ठीक बाद की है। इसलिए दोनों धातुओं के बीच कोई विशेष अन्तर द्वितीय धातु की नहीं है। प्रथम हस्त का घटना-काल चन्दे मर का है। द्वितीय काल घोसना हस्त मर का है। घटनाओं से ज्ञात होता है कि वह मर कुमुमपुर में है। उस मर में महादेवी देवकी की हत्या की घोसना बन रही है। प्रथम हस्त से यह पता चलता है कि स्वरूप धरती उल्लेखनीय में है।

घौर घीम कुमुमपुर का रहा है पर दूसरे दृश्य में सहसा यह सूचना मिलती है कि मुबराज पहुंच चुके हैं। इससे हमें इन दोनों दृश्यों के बीच की घबड़ि का अनुमान लगाने में आसानी होती है। उज्जवनी से कुमुमपुर घाते घाते लगभग एक माह का समय लग गया होगा। इसमें एक बड़ा घाटी नाटकीय रूप भी आ गया है, 'एक ही पक्ष में दूर दूर दोनों की बटनाएँ बिगड़ना उचित नहीं।' देव परिवर्तन का आभास इस कौशल से दिखाना जाता है कि सामाजिक को पता भी नहीं चलता। बस्तुतः उज्जवनी घौर कुमुमपुर की दूरी को सूचित करने के लिए इन दो दृश्यों के बीच में कुछ घौर दृश्यों का व्यवधान होना अपेक्षित था। दूसरे दृश्य का घटना काल एक पक्ष से अधिक का नहीं है। तृतीय दृश्य कुमुमपुर के बन्दीगृह का है। दूसरे दृश्य में 'भाज प्रह' पत्र में कारागार में होने वाली घटना का उल्लेख हुआ है। तृतीय दृश्य में वह घटना हो रही है इसलिए दूसरे घौर तीसरे दृश्य के बीच बिन मर का अंतर है। तृतीय दृश्य है, वैश्वी के राजमन्त्रि के बाहरी नाम का घौर यह साध हथक पड़े मर से भी कम का है। समय रात्रि का है। चतुर्थ दृश्य उसी रात्रि के तुरन्त बाद का है। रामा बन्दीगृह में पहुंच गई है, घौर उसके पहुंचने के कुछ समय बाद ही मर्क घौर घनन्ददेवी भी बंधा जा जाते हैं। दृश्य के अन्त में सहसा स्कंध भी बंधा पहुंच जाता है। बस्तुतः दूसरे, तीसरे घौर चौथे दृश्यों की बटनाएँ एक ही दिन रात की हैं। दूसरा दृश्य दिन का है घौर तीसरा व चौथा बनी रात्रि के। चौथे दृश्य का घटना काल लगभग एक पक्ष का है।

पाँचवाँ दृश्य प्रकृति का है। उसमें यह सूचना मिलती है कि 'तीराण्ट के लक्षों को निर्मूल करके परममहाराज मातंग के लिए प्रेषण कर चुके हैं।' इसका अर्थ यह होता है कि चौथे दृश्य में कुमुमपुर से अपनी माता की रक्षा करने के उपरान्त स्कंध तीराण्ट गए बंधी लक्षों को निर्मूल किया घौर अब वहाँ से प्रकृति के लिए प्रेषण कर चुके हैं। बहा पुन देत घौर काल के इनके बड़े व्यवधान को प्रताप व एक ही दृश्य में संकुचित कर दिया है। मानो मध्य, तीराण्ट घौर प्रकृति में कोई दूरी हो न हो घौर ये सब बटनाएँ एक ही दिन में घटित हो गई हों? बस्तुतः उन सब बटनाओं के अन्त होने में कम से कम ६ माह का अंतर तो अपेक्षित है ही। समय अथवा समय एक पक्ष का है। इस घटना की ऐतिहासिक ठिकि का निर्धारण नहीं किया जा सकता। बस्तुतः तीराण्ट घौर मातंग दोनों से लक्षों का निर्मूल करने का कार्य अग्रमुक्त विक्रमार्थ ३६३ ई० में कर चुके थे। स्कंधगुप्त के काल में पुन ऐसी कोई घटना नहीं हुई।^१

एक दृश्य उज्जवनी के रूप का है। इससे यह सूचना मिलती है कि स्कंध का राज्याभिषेक होने वाला है मर स्कंध तीराण्ट ने बंधी पहुंच चुका है। स्पष्ट

ही पाँचवे घोर छठे दूष्यों के बीच भी दस घोर कास लोगों का पर्याप्त अन्तर है। धनुमास इस एक मास की गटना मान सकते हैं। भद्रार्क घोर उसकी माता का बिना किसी दूष्य सूचना के कुमुदपुर से वहाँ पहुँच जाना विचित्र-सा समता है। समस्त दूष्य का कास बच्चे घर से भी कम का है। साठवाँ दूष्य सौ दूष्य के ठीक बाद का है। इसमें स्कंदगुप्त का राज्याभिषेक उज्जयनी में सम्पन्न हुआ है। उस दूष्य से पुनः अर्धमास घोर कुमारबाह का उज्जयनी में होना धाकस्मिक है। सम्पूर्ण दूष्य का कास दो तीन बच्चे से अधिक का नहीं। ऐतिहासिक दृष्टि से स्कंदगुप्त का राज्याभिषेक ४११ ई० के अन्तिम दिनों में हुआ था। उन दिनों उज्जयनी में बम्बु बर्मा गुप्त सम्राटों के करद राजा के रूप में राज्य कर रहा था। उसके राज्य त्याग का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। यद्यपि उज्जयनी में स्कंदगुप्त का राज्याभिषेक होना मान्य नहीं।

तृतीय घक के प्रथम घोर द्वितीय दूष्य सर्वथा कास्त्रिक है और उनमें किसी भी ऐतिहासिक तथ्य की ओर संकेत नहीं किया गया है। इनके आशय पर यह निष्कर्ष करना सम्भव नहीं कि दूसरे घोर तीसरे घक के बीच तृतीय घक की कितना समय बीता होगा। तृतीय घक की महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना यीशुवाचिक घटना है। यीशुवाचिक दूष्यों का प्रवेश घोर दूष्य बड़े पहले ही गतता चुके है कि हूणों का द्वितीय धाकमल ४६१ ई० में हुआ था, अथ ऐतिहासिक दृष्टि से तृतीय घोर तृतीय घक के बीच १० वर्ष का अन्तर है। परन्तु नाटकीय गटनाएँ इस अन्तर को स्वीकार करने में बाधा बहुधा होती हैं। तीसरे घक का पहला दूष्य तो दूसरे घक के अन्तिम दूष्य के एकदम बाद का है। स्पष्ट नहीं है और आभासतः अधिक से अधिक एक दिन का। वेदतेना घोर विजया का संभव हमारे कथन की पुष्टि करता है। दूष्य का गटना कास मय मय एक मटे का है। दूसरे दूष्य की घटना पहले दूष्य के ठीक बाद की है और लोगों के बीच में एक से दिन का अन्तर हो सकता है। गटना कास सबअव २ मटे का है। तृतीय दूष्य में भद्रार्क उज्जयनी से लड़ता प्रथम पहुँच गया है। इस बीच भद्रार्क घोर अमलदेवी से हूणों से युद्ध सम्पन्न कर ती है और "स्कंदगुप्त ने हूणों को एक बार माछीय सीमा से दूर करने के लिए समस्त सामन्तों को आमंत्रण दिया है।" "कुमुदपुर की सेना आकम्बर से भी घाये बढ़ चुकी है।" ऐतिहासिक दृष्टि से हूणों के धाकमल की यह घटना—चाहे द्वितीय घक के बाद मार्त अथवा तृतीय घक के दूसरे दूष्य के बाद दस वर्ष उपरान्त की है इस बीच परिस्थितियों में कहीं किसी प्रकार का अन्तर नहीं हुआ है। गटनाएँ या तो स्थिर ही हैं या घनकी पति अल्पमय मय है। नाटकीय दृष्टि से इन घटनाओं के अन्तिम होने में १० वर्ष तो क्या १० माह का भी अन्तर कल्पना से स्वीकार किया जा सकता है। विजया भद्रार्क

का द्वितीय प्रक के अन्तिम दृश्य में बरण कर चुकी है किन्तु अभी तक उसे सम्यो है कि वह उसे अपने बाहुगण में भी बांध सकेगी या नहीं ? वैद्यसेना अभी स्कन्दगुप्त से प्रणय राय से ही रचित है । १० वर्ष की बीम धरति तक यह स्थिति सम्भाव्य नहीं । बीम दृश्य में सामाजिक पुनः मन्व से उन्नयनी में पहुँचा दिया जाता है । इस बीम सिन्धु-तट पर हुए युद्ध में स्कन्दगुप्त की विजय हो चुकी है तथा "प्रवीर सम्राट स्कन्दगुप्त ने विभ्रमाश्रित्य की उपाधि बरण की है और मातृगुप्त को काश्मीर क शासक बना दिया गया है ।" हुए युद्ध में कितना समय लगा यह इतिहासकार नहीं बताते पर वह बटना ४६१ ई० की है । मातृगुप्त की बटना और उसकी तिथि का भी कोई ऐतिहासिक आधार नहीं । समस्त दृश्य घाटे से घटिक का नहीं । पाँचवें दृश्य में हुए युद्ध अभी कम रहा है । सिन्धु तट से हूणों को लखेइते हुए स्कन्दगुप्त ने समूह गोधार की माटी तक डकेल दिया है । पाँचवें और छठे दृश्यों के दोनों युद्ध गोधार की माटी में लड़े गये हैं । युद्ध से सम्भवित होने के कारण दोनों दृश्यों का काल स्पष्ट नहीं किया जा सकता । गोधार और कुमा के रखसेनी के युद्ध और कुमा के बीच में स्कन्द से यह जाने का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं ।

चतुर्थ प्रक में ४६२ ई० के मध्य की लगभग एक माह को बटनाए बटी है—
 ऐसा हम पहले स्वीकार कर चुके हैं । तृतीय प्रक के अन्तिम दृश्य में कुमा का बाँध तोड़ दिया जाने से स्कन्दगुप्त और उसकी सेना के यह जाने की सूचना मिलती है । चतुर्थ प्रक के प्रथम दृश्य में अश्वमेध का विजयपति नरनाग मन्व की परिस्थिति देखकर अपने विषय अश्वमेध को लौट रहा है । इसका अन्वय यह है कि एक तो अभी तक समय में स्कन्दगुप्त की पराजय के समाचार नहीं पहुँचे हैं और दूसरे अभी तक अश्वमेधी हूणों से पराजय नहीं हो पाई है । घटा या तो यह वश्य तीसरे प्रक के अन्तिम दृश्य का सामाजिक है या उनके पड़े ही समय के चतुर्थ प्रक की पराजय का प्रथम दृश्य का समय एक घंटे में भी कम का काल योजना है । दूसरा किन्तु स्वान का है यह नहीं कहा जा सकता । कुमुमपुर का दृश्य होता तो इसमें नटाक के चित्र का उल्लेख न होता किन्तु इन दृश्य में महादेवी देवी की उत्पत्ति के कारण इसे गोधार क युद्ध क्षेत्र का दृश्य भी मानने की भी नहीं चाहता । सम्पूर्ण दृश्य घंटे भर से भी कम का है । तीसरे दृश्य का पटना स्वान सहमा काश्मीर बन गया है । काश्मीर का जबाब स्कन्दगुप्त से सम्बन्ध ऐतिहासिक बटना नहीं है तथापि नाटक के इस दृश्य से हमें इतना ज्ञात होता है कि जब तक स्कन्दगुप्त का सहमा युद्ध होने का समाचार काश्मीर तक पहुँच गया है । पंचमद पर हूणों का अधिकार हो गया है और वे काश्मीर पर भी आक्रमण किया चाहते हैं । पंचमद पर हूणों का अधिकार हूणों के प्रथम आक्रमण (४२५ ई०) के १० वर्ष बाद हुआ था । इसमें भी हमारी उपर्युक्त

विधि की पुष्टि होती है। समस्त दृश्य का पन्था काम एक दृश्य है। चौथा दृश्य "नगर-शान्त" का है। यह दृश्य में नहीं आता कि "नगर-शान्त" से प्रसाद किस स्थान का धर्म ले रहे हैं। हमने प्रसाद के माटकों के भूगोल पर विचार करके समस्त "नगर-शान्त" नामक कोई प्रदेश समझा नगर नहीं माना है। "नगर-शान्त" को धर्मस्थ "पाराशर-शान्त" "श्लोकसाम के पृथग्वि" और "भुवक बाबरी" के आधार पर कुधा (बाबुल) तथा उसी एक प्रायः सहायक नदी (सुर्वाब) के तट के धर्म स्थान पर माना है।^१ माटक का यह दृश्य "नगर-शान्त" का नहीं हो सकता क्योंकि इससे पूर्व के दृश्य में/ हर्मों के पश्चात् पर धर्मिकार कर लेने की चर्चा हुई है। यहाँ यह भी ध्यान में रखने की बात है कि चतुर्थ ले लेकर ग्यारहवें दृश्य तक साधारणतया नगर-शान्त का धर्म पाठलिपुत्र भी माना जा सकता है। यह मान लेने पर वहाँ महादेवी देवकी की सपत्नी की स्थिति एवं ग्यारहवें दृश्य में पुरपुर एवं धर्मस्थानों देवकी की जन्मिनि स्वाभाविक एवं सरल प्रतीत होती है। हम पहिले यह चक है कि चतुर्थ धर्म का दूरत दूरत पाठलिपुत्र के धर्मस्थान मानना ही उचित प्रतीत होता है, क्योंकि महादेवी देवकी की पुरपुर सिन्धु के तट और किमी पश्चात् प्रदेश में मानने की इच्छा नहीं होती। इन सभी दृश्यों में किसी कनिष्क-सैन्य^२ एक महाबोधि विहार^३ के उल्लेख किमी विशिष्ट स्थान की ओर संकेत करने प्रतीत होते हैं। सैन्य को एक स्वाम पर कनिष्क स्तूप^४ भी कहा गया है। इनके सम्बन्ध में विशिष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि कनिष्क का प्रसिद्ध स्तूप और संलग्न सैन्य उसकी राजधानी पुरपुर (पेशावर) में थे। चौमपुत्र काहिमान, श्लोकसाम और धर्मस्थानों तट में इस "कनिष्क-सैन्य" का उल्लेख किया है।^५ निःसन्देह प्रसाद का धर्मस्थान कुधपुर से ही होना चाहिये। किन्तु यहाँ प्रसाद के भौगोलिक ज्ञान पर बहुत बड़ा धारण लगाया जा सकता है। पश्चात् में हर्मों का धर्मिकार हो जाने के उपरांत पुरपुर में ही दृश्यों की योजना का धर्म यही हो सकता है कि प्रसाद पश्चात् को पश्चात् के पश्चात् का प्रयोग मान लेते हैं जो सर्वथा धर्मस्थान और पश्चात् है। पश्चात् दृश्य में उक्त घटना के पश्चात् काहिमान-सैन्य धर्मस्थान हुआ है। दृश्य में मुख्य हर्मों द्वारा सप्तसिन्धु-प्रदेश के पश्चात् स्थित दिये जाने की चर्चा भी हुई है। उक्त घटना का हम ४१२ ई० में होना स्वीकार कर चुके हैं। सम्पूर्ण दृश्य समझते पर का है।

छठे दृश्य में प्रकृत कीर्ति की उपस्थिति एवं कनिष्क-सैन्य के उल्लेख से यह धनुमान लगाया जा सकता है कि पश्चात् और छठे दृश्य के बीच विशेष अंतर नहीं—

(१) देखिए "भौगोलिक विवरण"

(२) स्कंद ४।१२७

(३) स्कंद० १।१४८

(४) वही ४।१११

(५) धर्म स्थिति का धर्मस्थान पृ. २३३

यद्यपि इतं सम्बन्ध में निश्चित समय बतसा ता लभ्य नहीं । यह हृदय भी पुष्पपुर का मानना पड़ेगा । अन्तःकाल कुछ ही मिनटों का है ।

सातवें हृदय में स्फंरगुप्त का पुत्र प्रवेश हुआ है । तृतीय प्रक के अन्त में कुमा में बह जाने के उरारण प्रथम चार स्फंरगुप्त के बीजित होने की सूचना उसने स्वयं की है । अतः तृतीय प्रक के अन्तिम हृदय और चौथे प्रक के सातवें हृदय के बीच अधिक अन्तर सम्भव ही नहीं है । सातवें हृदय के स्थान का अनुमान लगाना भी कठिन नहीं । कनिष्क शैल्य का उल्लेख इस हृदय में भी हुआ है ।

पंचम प्रक में ४६ ई० से ४६६ ई० के बीच की २-६ महिलाओं की बटना है । पंचम प्रक के प्रथम हृदय से ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि चतुर्थ और पंचम प्रक के बीच काल का अन्तर नहीं के बराबर है । चतुर्थ पंचम प्रक की प्रक के अन्त में कमला स्फंरगुप्त को उसकी मां की मृत्यु का कास योजना समाचार देती है और पंचम प्रक के प्रथम हृदय में ही मुरगण विजया को सूचना देता है कि "आज कमलादेवी के कुटीर से सम्राट नहीं अपनी बगनी की समाधि पर जाने वाले हैं । हस्व कनिष्क शैल्य के पास था ही है । काम योजना बटे भर से भी कम की है ।

दूसरा हृदय उसी दिन का है जिस दिन पहला हृदय सम्पन्न हुआ । महा राज स्फंरगुप्त कनिष्क शैल्य के पास महादेवी की समाधि में कुल बढ़ाने पाठे हैं । इसी हृदय में देवसेना स्फंर से विवाह करना अस्वीकार कर देती है स्फंर से प्रणय याचना से विरक्त होकर विजया आत्मघात कर मरती है । उसके लिए समाधि सोरठे हुए मटार्क को रत्नगुह मिलता है । इन सब बटनाओं को देखते हुए इस समस्त हृदय में लगभग ४ घण्टे का समय लय सकता है । विजया वाली बटना ऐतिहासिक न होते हुए भी उसके रत्नगुह का कनिष्क शैल्य के सघीव पुष्पपुर में पाया जाना नाटकीय दृष्टि से भी अस्वाभाविक है इस बटना को किसी प्रकार भी मासक की नहीं माना जा सकता । सातवां हृदय उसी दिन का है । छठे हृदय में स्तूय के पास जिस भीड़ की सूचना भी गई है वही भीड़ सातवें हृदय में है । इसका घटनाकाल कुछ ही मिनटों का है ।

साठवां हृदय महाबोधि बिहार का है किन्तु यहाँ भी यह कहना कठिन है कि प्रसार का अभिप्राय किस स्थान के बिहार से है । हुए शैलापति के एक कथन से इतना अन्वय मिलता है कि हृदय की बटना सिन्धु के इन चार के प्रदेशों में घटती है । साम्राज्य स्फंरगुप्त के उल्लेख से यह अनुमान भी लगाया जा सकता है कि सिन्धु के ठीक पूर्व के प्रदेश में कहीं इस हृदय की योजना हुई है । यहाँ प्रसार पुन वही मौखिक भाँति में बढ़ गए हैं । कनिष्क शैल्य निश्चय ही पुष्पपुर में था । नहीं लताश्री ठर उसके बहाँ होने के बर्णन प्रमाण मिलते हैं और पुष्पपुर

सिन्धु के उस पार वा इस पार नहीं। हस्त की कालयोजना बहुत ही कम समय की है। वहाँ हस्त एण्टेज का है। यहाँ भी यह अनुमान लगाया कठिन है कि एण्टेज कीज-सा है। यदि अपने पूर्व निष्कर्ष को ठीक मान लें तो सिन्धु के इस पार प्रथमतः पञ्चनर की सीमा पर नहीं गार्डक का पश्चिम पृष्ठ लगा गया होगा। इस पृष्ठ का संभावित नाम हम ४६६ ई० मान चुके हैं—यद्यपि ऐसा किसी ऐतिहासिक आधार पर नहीं किया गया है। कुछ से सम्बन्धित होने के कारण निश्चित समय को हस्त की काल सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता।

इसका और पश्चिम हस्त उद्यान का है परन्तु यहाँ भी नहीं अस्तरपट्टा परि-
 लक्षित होती है। यह निर्धारित करना असम्भव है कि उक्त उद्यान मन्थार का है,
 पञ्चनर का है, कुमुमपुर का है काश्मीर का है जम्बयनी का है अथवा किसी अन्य
 स्थल का। हस्त का साब्य अधिक नहीं है बहुत कम है। इतना अल्प अनुमान
 लगाया जा सकता है कि नर्वे और इन्हें इन्हीं के बीच एक या दो दिन से अधिक
 का अन्तर नहीं होगा।

'राज्यश्री' नाटक की काल-योजना

राज्यश्री' में प्रसार ने राज्यबद्धन के काल से लेकर हृष द्वारा घोषित प्रयाग की धर्म-सभा तक के काल को अपने नाटक की घटनाओं का विषय बनाया है। नाटक की घुमिका में उन्होंने हर्ष के राज्यकाल की अवधि १०२ ई० से लेकर १४० ई तक मानी है।^१ उक्त दोनों तिथियाँ इतिहासकारों सम्पूर्ण नाटक की को सामान्यतः मान्य हैं। प्राचीन इतिहासकारों में स्वयं स्मिथ फास्तासमि ने १०२ ई० में राज्यबद्धन का जीवित होना स्वीकार किया है और १०६ ई से हृष का काल माना है। हृष की मृत्यु उन्होंने भी १४० ई में मानी है। प्रसार ने अन्य तिथियों का उल्लेख नहीं किया है किन्तु उनके द्वारा मान्य तिथियों का स्मिथ की मान्यताओं से विरोध न होने के कारण यही स्मिथ की मुख्य मुख्य तिथियों को ही आधार मानना उचित है। स्मिथ के अनुसार प्रयाग की धर्मसभा १४३ ई० हुयी थी।^२ उक्त आधार पर सम्पूर्ण नाटक का घटनाकाल १०२ ई० से लेकर १४३ ई० तक ३० वर्ष का माना जा सकता है।

प्रथम प्रश्न उस समय प्रारम्भ हो जाता है जब देवगुप्त काग्यगुप्त के विरुद्ध पहलवान कर रहा था और प्रह्वर्मा सीमा प्रांत में मृत्यु के लिए जा रहा था। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इस पहलवान और प्रह्वर्मा की मृत्यु में कितना अन्तर रहा होगा। कम से कम समय मामले पर भी प्रथम प्रश्न की घटना का काल छ या सात माह से अधिक का नहीं माना जा सकता। हर्षविरित से ज्ञात होता है कि प्रयागराज्य की मृत्यु का समाचार राज्यबद्धन को स्वाधीनर में मिला तब वह हृण-विजय कर मोट रहा था। जिस दिन वह सोटा उस दिन उसने कुष्ठ भी मीजत नहीं किया। दूसरे दिन प्रातःकाल अत्यन्त घनत्व विषय के उपरांत भी उसने राज्य ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया। उसी समय राज्यश्री के मृत्यु समाचार ने धारत प्रह्वर्मा की हत्या और राज्यश्री के बगरी होने का समाचार गुनाया।^३ राज्यबद्धन उसी दिन देवगुप्त से युद्ध करने के लिए चल दिया।^४ उपर्युक्त आधार पर

(१) राज्यश्री—घुमिका पृ० ७

(२) धर्मा हिन्दी भाषा इतिहास—स्मिथ पृ० ३७३

(३) हर्षविरित—बाबु एण्ड वामस—पृ० उच्छ्रम । २०३

(४) पृ० १०३ उच्छ्रम । २०३

यह माना जा सकता है कि जिस दिन प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु हुई उसी दिन मीनरी
ग्रहवर्मा की भी हत्या की गई और काम्यकुम्भ पर अधिकार किया गया^१ अथ यदि

प्रथम घट को १०२ ई० के आरम्भ से लेकर १०३ ई० के मध्य
द्वितीय घट की तक मानें तो द्वितीय घट को १०२ ई० के मध्य से लेकर देवगुप्त
कासावधि की मृत्यु तक अर्थात् १०२ ई० के अन्त तक मानना उचित है ।

राज्यवर्द्धन को काम्यकुम्भ जैसे मुकुट दुर्ग पर अधिकार करने में कुछ समय अवश्य
समा होगा विक्षेप कर जब अनु सत्कं पा । जाटक में तो ऐसा प्रतीत होता है कि
अन्ति में केवल एक दिन में ही दुर्ग पर विजय पा ली थी ।^२ ऐसी दशा में पहिले और
दूसरे घट के बीच घातक से अर्थात् एक माह का अन्तर मानकर दूसरे घट को भी

१०२ ई० के मध्य में ही मानना होगा । दूसरे और तीसरे घट
तृतीय घट को क बीच एक दो माह का अन्तर सरसता से माना जा सकता
कासावधि है भी योरीकर अटर्नी यह मानते हैं कि ग्रहवर्मा की मृत्यु और
राज्यवर्द्धन की हत्या के बीच पचास समय का अन्तर था ।^३

हर्षवर्द्धन के उत्सव 'मतिक्रान्तेषु च बहुषु बाहरेषु'^४ से भी इसकी पुष्टि होती है ।
अब यदि ग्रहवर्मा की हत्या के एक माह के भीतर राज्यवर्द्धन काम्यकुम्भ नहीं चला
हो और एक ही दिन में उसने दुर्ग पर अधिकार कर लिया हो तो राज्यवर्द्धन की
हत्या उसके एक या दो माह बाद भी मानी जा सकती है । हर्षवर्द्धन के अनुसार
कुत्तल हर्ष के पास आकर कहता है 'काम्यकुम्भ और गौड-मुकुट में मृत्यु नामक किसी
कुत्तल न राज्यधी को बंधन मुक्त कर दिया । वह राज्यवर्द्धन का मरणा मुक्तकर
विज्याटनी की और निकल गई^५ यह प्रसार से राज्य के अनुसार राज्यवर्द्धन
का काम्यकुम्भ दुर्ग पर अधिकार किया जाता मान लें तो राज्यवर्द्धन की हत्या की
सूचना के बाद ही किसी प्रयास कुत्तल द्वारा राज्यधी को मुक्त करने का प्रयत्न ही
नहीं करता । वही राज्यवर्द्धन को विजयी सेना की और का उसका विजयस्थ मभी
मंदि । ऐसी स्थिति में राज्यधी का विज्याटनी को प्राण जाने का कोई कारण नहीं ।

(१) 'बस्मिन्महनि अशक्तिपतिवपयत शयमूर्त्तार्ता तस्मिन्नेव देवो'——घाट
द्वय उच्छ्वास पृ० २११

(२) राज्यधी २, ३६
(३) हर्षवर्द्धन—भीरीनकर अटर्नी
(४) हर्षवर्द्धन पृ २३४
(५) 'अनतावाचक बचनान् प्रभृति विस्तरत स्वमु काम्यकुम्भ वीर संभवे
भुक्तिषो पुष्टनाम्ना कुम्भुकेण विज्याटनी निर्बतावाचक राज्यवर्द्धन
अरस-यवर्ण—
—हर्षवर्द्धन पृ १११

घरतः इस बात निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि काँग्रेस के पूर्व पर अधिकार करने के पूर्व ही राज्यसदस्य की हत्या की जा चुकी थी। कुछ भी हा नाटक के अनुसार द्वितीय घोर तृतीय घोर के बीच एक माह का अन्तर स्वीकार किया जा सकता है। तब भी तीसरे घोर का प्रारम्भ १०२ ई० के घन्ट से मानना होगा। नाटक के अनुसार तृतीय घोर का अन्त बालुच-हर्ष युद्ध के बाद का है। यहाँ प्रसार के ऐतिहासिक घटनाक्रम में जो पर्याप्त अन्तर उपस्थित कर दिया है फिर भी इस घोर की सबसे पहली घटना बालुच-युद्ध है। स्मिथ के अनुसार उक्त युद्ध १२० ई० में लड़ा गया किन्तु पश्चिम इतिहास को ११६ ई० मानते हैं।^१ एक तो बालुच के ११६ ई० पूर्व के 'ग्रहोत्' के सिन्धुसिन्धु में हर्ष सम्भवतः उत्पन्न नहीं है। दूसरे बालुच का संभवतः प्रारम्भ ११६-२० ई० का है। यह सम्भवतः इस बात का साक्ष्य है कि वह उक्त समय तक भीषण घोर संभवतः अस्तित्व में भी था।^२ ऐसी बात में बालुच की अस्तित्व में राजा के युद्ध करने के लिए हर्ष संभवतः स्वयं प्रस्तुत न हुआ हो। पश्चिम की तिथि स्वीकार कर लेने पर तृतीय घोर ११६ ई० में समाप्त होता है। यहाँ एक बात ध्यान में रखने की है कि प्रसार के नाटक में समय इतना नहीं माना जा सकता क्योंकि राज्यधी की घटना को इतिहास के विरोध में, बालुच-युद्ध के बाद रख लेने से यह स्वीकार करना पड़ता है कि राज्यधी ११ वर्ष तक सिन्धुसिन्धु में अटकती रही। स्मिथ की तिथि स्वीकार कर लेने पर भी अन्त घटनाओं में कुल १९ वर्ष का ही अन्तर उपस्थित होता है। तब भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि राज्यधी १२ वर्ष तक अटकती रही।

तृतीय घोर बालुच घोर के बीच स्मिथ के सिन्धुसिन्धु को स्वीकार करने पर २१ वर्ष का घोर पश्चिम की तिथि को ग्रहण करने पर ७ वर्ष का अन्तर रहता है। तृतीय घोर ठीक बालुच युद्ध के दान के उपरान्त प्रारम्भ संभवतः घोर की होता है घोर प्रयाग के दान में समाप्त हो जाता है। 'बीम' कासाक्षिपि न प्राप्त होता है कि कभी की समाप्त अन्तु में हुई थी।^३ स्मिथ के अनुसार यह समाप्त १४३ ई० के करवरी-मार्च में हुई थी।^४ यह बात कई दिन तक चलता रहा घोर उसके ठीक बाद ही प्रयाग का दान प्रारम्भ हुआ। प्रयाग का उत्सव ७२ दिन तक चलता रहा घोर सम्भवतः अन्त के

१ भी हर्ष याद कभी (दे० एम० पत्रिका)

२ यहाँ हिन्दी भाषा इतिहास पृ० १७३

३ 'इतना मात्र मात्र वि सिन्धुसिन्धु अन्तु सिन्धु टाइम'—देवदत्त (बीम) ११२१

४ यहाँ हिन्दी भाषा इतिहास (स्मिथ) पृ० १६१

समय में इसकी समाप्ति हुई ।^१ यह घटना भी १९११ ई० की ही है । सम्पूर्ण चतुर्थ शतक की घटना का काम तीन माह के समय में होना चाहिए ।

राज्यधी' में १० वर्ष की सीमा' काय की घटनाओं का विवरण हुआ है किन्तु कालक्रम में किसी भी प्रकार की योजना नहीं दी गई पड़ती । न तो काल का ध्यान में ही समुचित विभाजन हो सका है और न वर्षों में ही इस बात का ध्यान रखा गया है कि एक वर्ष में कितनी घटना रखी जाय । अतः इस नाटक में विभिन्न वर्षों की घटनाओं की काल-योजना पर विचार कर सकना संभव नहीं ।



ऐतिहासिक वातावरण

सामान्य भौगोलिक खंड

“धजातयन्तु स्करगुप्त” और “राज्यधी” इन तीनों में जम्बूद्वीप का उल्लेख हुआ है। “धजातयन्तु” में देववत्त गौतम बुद्ध के प्रभाव को परिमिश्रित करने के उद्देश्य से उक्त शब्द का उल्लेख करता है। ————— यह राष्ट्र का जन्म

पौरुष समझ जम्बूद्वीप को मिला बनाना चाहता है और अपने जम्बूद्वीप को उनका मुक्तिदा। इस तरह जम्बूद्वीप भर पर एक बूझने रूप में साक्ष्य करना चाहता है।^१ “स्करगुप्त” में भी एक

समय तबानत की घेष्टवा और उनके गौरव की व्यापकता दिखाने के उद्देश्य से जम्बूद्वीप का उल्लेख करता है—“तुम्हारी इती हिंसा नीति और धार्मिकमूलक धारणावाद का लक्षण तबानत ने किया था। उस समय तुम्हारा ज्ञान-बौरव कहीं था? क्यों लक्ष्मस्तक होकर समय जम्बूद्वीप ने उस ज्ञान रणभूमि के प्रभाव मम्म के प्रभाव हार स्वीकार की?”^२ “राज्यधी” में देवगुप्त ने इसका उल्लेख गुप्त-कुल के प्रभाव को प्रदर्शित करने के लिए किया है—“मधुकर, देवगुप्त उही गुप्त-कुल का है जिसके नाम से एक दिन समस्त जम्बूद्वीप विकसित होता था।^३”

बीड धर्म का प्रभाव भारतवर्ष के बाहर समस्त एशिया में महाद्वीप में फैल गया था जहाँ यह धर्म भी एक प्रभाव धर्म के रूप में प्रचलित है। समुद्रगुप्त कृत दिग्विजय अष्टगुप्त विजयमारिय कृत तक-संहार कुमारगुप्त कृत धारममध और स्करगुप्त कृत हूण-पराभव धारि से लक्षित होता है कि गुप्त-साम्राज्य का प्रभाव ज्ञान भारत के बाहर समस्त एशिया महाद्वीप में फैल गया था। प्रसाद ने एशिया के इस प्राचीन नाम जम्बूद्वीप का उल्लेख ज्ञान बूझकर किया है। अपने प्राचीन धर्म जम्बूद्वीप साध-योजन विस्तीर्ण है और परममध्यस्थित कोष की तरह स्थित है। यह परमपथ की भाँति मोस धीर साध योजन समुद्र द्वारा वेष्टित है। यह द्वीप भी प्रदेशों में विभक्त है। प्रत्येक राज्य भी हजार योजन विस्तीर्ण और सीमा पर्वतों द्वारा गरी भाँति विभक्त है।^४ अपने मूल धर्म में जम्बूद्वीप लक्ष्मण एशिया महाद्वीप का

(१) धजातयन्तु १।३४ (२) स्करगुप्त ४।१२२ (३) राज्यधी १।२३

(४) दि इस्ताइकमोनीशिया इथिओपा (बमु) “जम्बूद्वीप

ही सब देना है । प्रसार में प्राचीन वातावरण की सृष्टि करने के उद्देश्य से इस ग्रन्थ का प्रयोग किया है, किसी भौगोलिक कल्पना को ध्यान में रख कर नहीं ।

भरतखण्ड का एकमात्र उल्लेख "महावतशु" में हुआ है । अथवा कही है— 'वन्धु मने बड़ा भरासा किया था कि तुम्हें भरतखण्ड का सम्राट देखू मी घौर बीरमूठी होकर एक बार पर्व से तुमसे बरणबन्दना कराडोमी ।'^१

भरतखण्ड अपने मूल रूप में "भरतखण्ड" बम्बूद्वीप के भी खण्डों में से एक है, जो भी हजार योजन विस्तीर्ण है । यह छः भागों में विभक्त है, जिसमें पांच खण्डों में श्लेष्य और एक क्षेत्र में धार्य रहते हैं ।^२ ऐसा प्रतीत होता है कि बम्बूद्वीप की तरह ही भरतखण्ड का भी कोई स्पष्ट चित्र प्रसार के नाटक से नहीं प्राप्त होता केवल परिपाटी के रूप में प्राचीनता के वातावरण की रसा के लिए ही ग्रहण किया गया है । महावतशु का साम्राज्य समस्त उत्तरी भारत में भी नहीं फैल सका या समस्त भरतखण्ड की तो बात ही दूर रही । प्रसार ने स्वयं अपने नाटक में मगध के साथ ही दो अन्य शक्तिशाली राज्य कोशल और कौशाम्बी का उल्लेख किया है और कोई ऐसी सम्भावना न तो इतिहास में और न नाटक में ही देख पड़ती है जिससे महावतशु को भरतखण्ड का सम्राट देखने की अथवा की इच्छा फलवती हो सकती । भरतखण्ड से सम्पूर्ण भारतवर्ष अभिप्रेक्ष्य है । स्पष्ट है कि अथवा महावतशु को केवल उल्लेख करने के उद्देश्य से भरतखण्ड का उल्लेख कर गई । भरतखण्ड केवल समय साम्राज्य के विस्तार की भावना के रूप में धारा प्रतीत होता है, किसी अर्थ-विषय में नहीं ।

भारत को डीक जमी धर्म में प्रसार ने लिया है बिध धर्म में बहु बीर्य काव से लिया था रखा है । "बिरव का सबसे ऊँचा श्रुम इसके चिरहाने और सबसे गम्भीर तथा विराव समुद्र इसके चरणों के बीचे है ।"^३ उक्त भारत चरख से भारत की उत्तरी और पश्चिमी सीमा का निर्देश हो जाता है । धर्म्य सीमार्थों के लिए स्वर्गपुण्ड के धार्य-साम्राज्य की सीमा देखी जा सकती है । भीमवर्मा उसकी सीमा इस प्रकार बताया है, "भौहित्य से सिन्धु तक हिमालय की कन्दरपों में भी धार्यमान होने लगा ।"^४ धर्म्य परिधि इस

(१) महावत० २।१०७

(२) हि इम्पारिअलजीनियल इण्डिका (बनु) "भरतखण्ड"

(३) स्कर० ४।११६

(४) स्कर० १।११६

इस आधार पर भारत की मोटी-मोटी सीमाएँ निर्धारित करें तो कह सकते हैं कि उत्तर में हिमालय, दक्षिण में समुद्र पूर्व में लौहिय घोर पश्चिम में सिन्धु ये चार मोटी-मोटी प्राकृतिक सीमाएँ स्पष्ट हैं। पुच्छों में भी भारत की सीमा निर्धारित की गई है जो इससे मिलती जुलती है —

हिमाहूर्ध्वं दक्षिणं चर्षं भरतान् बही पिता
तस्माच्च भारतं चर्षं

उत्तरं चत् समुद्रस्य हिमवददक्षिणञ्च यत् ।

चर्षं चत् भारतं नाम यच्चयं भारती प्रजा ।^१

उत्तर और दक्षिण की प्राकृतिक सीमाओं को मान लेने पर, पूर्व और पश्चिम की सीमाएँ और विशेष रूप से पश्चिमी सीमा को निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता। यदि पूर्वी सीमा लौहिय मान ली जाय तो भी पश्चिमी सीमा प्रत्येक ऐतिहासिक काल में कुछ न कुछ बदलती रही है। मौर्य काल में निपच पर्वतमाला को ही प्राचीन भारत की नैसर्गिक सीमा मान लिया गया था।^२ परन्तु यह नैसर्गिक सीमा सदा ही नहीं बनी रहती। स्कन्दगुप्त ने सम्भवतः सिन्धु नदी को ही सीमा मान लिया था।^३ जब कि चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में पश्चिमी सीमा बम्बई से भी धाने बढ़ गई थी।^४ बम्बई युवात् साम्राज्य का बुरुख केन्द्र था।

प्रसाद ने अपने नाटकों में भारत की महिमा और इसके सौर्य का स्वान स्मान पर बर्णन किया है। 'यहाँ के स्वामन्त्र कुम्भर घने जंगल छरितारों की माला पहने हुए सैन्य भण्डी हरी मरी चर्षा चर्षी की चाँदनी सौतकाल की रूप और मोझे कृपक तथा सरल कृपक बालिकाएँ — यह स्वर्णों का देश स्वान और ज्ञान का पासना यह प्रमी की रंमभूमि — धर्म देश मनुष्यों की जगमभूमि है यह भारत मानवता की जगमभूमि है।'^५

"भारत समस्त विश्व का है और सम्पूर्ण बसुन्धरा इसके प्रेम-यात्र में आबद्ध है। धनादि काष्ठ के ज्ञान की, मानवता की ज्योति यह विकीर्ण कर रहा है — एक से एक सुन्दर इत्य प्रकृति के अपने इस घर में विनित कर रहा है।"^६ प्रकृति

(१) इत्या इवलोपीडिया इ बिका (बसु) ११:११५—१६

(२) चन्द्र० ४:२४१

(३) स्कन्द० २:१२२

(४) जर्नेय ब्याक बिहार एण्ड प्रोडिया रिसर्च सोसायटी—बीसूम १० पृ० २६

(५) चन्द्र० १:१९०

(६) स्कन्द० ४:११६

यह मनुष्यमय देश हमारा ।”^१ तथा “हिमालय के धामन में उसे प्रथम किरणों का
 दे उपहार ।”^२ जैसे शीतों में भारत के प्राकृतिक और बसक उद्योगी श्रेष्ठता की स्पष्ट
 झलकी मिल सकती है ।

धार्वाजित शब्द का प्रयोग प्रसा^३ के नाटकों में सर्वाधिक हुआ है । ऐसा प्रतीत
 होता है कि भारतवर्ष या भारत कहने से जिस मू-भाग का अर्थ मिलता है, धार्वाजित
 कहने से उस सम्पूर्ण मू-भाग की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति स्पष्ट हो
 धार्वाजित जाती है । चाणक्य ने ‘मासाह और मागव को धूमकर’^४ जिस
 धार्वाजित की एकता का प्रचार किया था वह धार्वाजित धार्यों की
 ब्रह्मभूमि है । धार्य जाति कहीं बाहर से नहीं आई, बल्कि यही भारतवर्ष या धार्वाजित
 जनकी ब्रह्मभूमि है ।^५

मनु टीका में ब्रह्मभूमि मट्ट ने लिखा है “जिस स्वान में धार्यों का पुन अगम
 होता है, वही धार्वाजित कहलाता है ।”^६

प्राचीन ग्रीक लेखकों ने “एरिया” “एरियाना” शब्दों का उल्लेख किया
 है,^७ जिसकी सीमा पूर्व में सिन्धुनदी, दक्षिण में भारत महासागर अर्थात् सिन्धु मुखा
 से पारसीक उपसागर पर्यन्त अजमाय पश्चिम में कास्पीयन सागर से कार्मेनिया
 (अर्थात् अरब मित्र समस्त यैजद् और किरमान प्रदेश) तक और उत्तर में परोप
 नीयस पर्वत (अर्थात् भारत की उत्तर सीमा स्थित हिमालय संभव काकेतय गिरि
 मासा) है । सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी पण्डित मुछो बुरनीफ के मतानुसार ग्रीक एरिया या
 एरियाना और अरबी ईरान संस्कृत ‘धार्य’ शब्द के समान्तर है । अरबस्तान में ऐर्बन
 शब्द (अर्थात् धार्वाजित) संस्कृत धार्यदेश नाम से परिचित है ।^८

मनुस्मृति में धार्वाजित की परिभाषा इस प्रकार की गई है:—

“पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र पर्यन्त विस्तृत देश के अन्तर्गत प्रदेश में, उत्तर

(१) अश्व० २।१०७

(२) स्कंद० ५।१२०

(३) अश्व० १।९०

(४) स्कंद ५।१२० (गीत)

(५) धार्या अर्थाजित्ये पुन पुनरद्भवन्तीरधार्याजित्ये” मनुस्मृति २।२२

(६) ऐरिप्युट इण्डिया—टीलेमी (मैजिबल) पृ० ३०५

(७) दि इन्साइक्लोपीडिया इण्डिया २।१९६०—६१

दक्षिण विरि के मध्यवर्ती स्वाम को वंशितों में धार्यवत् कहा है । १

धर्मकोष में धार्यवत् की सीमा इस प्रकार बताई गई है —

‘धार्यवत् पुष्यभूमिर्ष्यं विष्णुहिमासयो’^२

उपयुक्त विवरणों में ऐसा प्रतीत होता है कि संबन्ध धार्यवत् शब्द का प्रयोग कभी सप्तमिन्दु के दक्षिणी देश के लिए, कभी सम्पूर्ण हिमालय और विष्णुा बस के बीच के उत्तरी भारतवर्ष के लिए होता था। काश्यान्तर में जब उत्तर और दक्षिण के बीच का पन्तर कमत कम होता गया तो सम्पूर्ण भारतवर्ष को धार्यवत् कहने में किसी प्रकार की कठिनाई ब रही। प्राकृतिक शक्त तक पहुँचते पहुँचते धार्यवत् शब्द सम्पूर्ण भारतवर्ष के अर्थ में बड़ हो गया। प्रसार में अपने माटकों में धार्यवत् को इसी अर्थ में ग्रहण किया है।^३ धार्यवत् धार्य वार्ति धार्यवत् की बालिका धार्य वियाए धार्य धोग जैसे शब्द एक अर्थ पर सांस्कृतिक अर्थ की अभिव्यक्ति करते हैं, जिसमें सम्पूर्ण भारत की एकता की भावना प्रतिबिम्बित है। यद्यपि ‘मध्य विष्णु हिमालयो’ का अर्थ लेने पर भी प्रसार के माटकों में बिरोध नहीं था सक्ता

धार्यवत् की वार्ति उत्तरापथ धीर दक्षिणापथ का प्रयाग भी प्रसार में बहुत किया है। पाणिनि ने भी उत्तरापथ का उल्लेख किया है। उत्तरापथ के वार्ति

भारतवर्ष के दो विभाग (अ) उत्तरापथ (ब) दक्षिणापथ के लिए (उत्तरापथेन प्राकृतत् च) तथा उत्तरापथ के वार्ति के लिए (उत्तरापथेन बन्धति) ‘धीतरापथिक’ का उल्लेख है। डा० बामुदेवहरण चक्रवर्त उत्तरापथ उत्त प्राचीय धार्य को मानते हैं जो पूर्वी भारत से पश्चिम तक तथा

पासमुहात् ३ पूर्वाहासमुहात् परिचमात्

- (१) तथीरेवान्तरं निर्दोरावार्ति विदुर्बुधा (२।२२)
- (२) धर्म कोष २।१८
- (३) ‘धार्यवत् का एकशब्द उच्चार’ और ‘धार्यवत् प्यारा है’ जैसे प्रयोग इष्टम्य है। अन्० ३।१२७ व अन्० ४।२१७
- (४) अन्० १।१९ सर्व० २।२९
- (५) वही १।२७, वही १।७९
- (६) वही १।६९ (धार्य क्वाए) १।७९
- (७) वही १।९९
- (८) वही १।१०९
- (९) अन्० ३ १।१९ तथा अन्वय सर्व० २।७२ तथा अन्वय रात्र्यधी ३।२७ तथा अन्वय ।
- (१०) वही ४।१२९ ----- वही १।१२ ----- वही ३।२८-----

पाण्ड्यार से कुतुर पश्चिम तक जाता था। "भारत की सम्पूर्ति ईद-दुक रोड जो भारत के बाहर बलु तक गई हुई थी मूनानियों को उत्तरापथ (नौरन स्ट) के नाम से ज्ञात थी।" यह बियाल रात्रमार्ग भारतीय कपिया पुष्कनावती, तल्लिशा शाकन हस्तिनापुर, काव्यपुष्प तथा प्रभाग जैसे प्रसिद्ध जनपदों घौर नहरों में होता हुआ जाता था।^१

अन्वयगत अपने मूल रूप में उत्तरापथ का यही धर्म रहा हो परन्तु प्रसाद ने उत्तरापथ का प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया है। "अग्रमुक्त माटक में उत्तरापथ का संकुचित अर्थ है उत्तर-पश्चिमी-भारतवर्ष का उस काल में अधिकतर पणवर्षों से घासित था।^२ केवल धान्यीक घौर परंतेश्वर के राज्य ही पणवर्ष नहीं थे। उक्त परिभाषा के अन्वयगत अर्थ 'प्राच्यों का देश' है।^३ स्पष्ट है कि उत्तरापथ का यह अर्थ श्रीक इतिहासकारों के अनुसार लिया गया है। डा० राय चौधरी^४ ने सिक्कर के समय के उत्तरापथ में तत्कालीन २८ राज्यों का उल्लेख किया है जिनकी सीमा प्रसाद के 'उत्तरापथ' से ठीक मेल जाती है। बहुत कुछ इसी अर्थ में उत्तरापथ का उल्लेख काव्य मीमांसा में भी हुआ है —

पुत्रकाल् परतः उत्तरापथः^५ -

कनिष्प पृथ्वक का संबंध पेशोपा से जोड़ते हैं जो कानेश्वर से १४ मील पश्चिम की ओर है।^६

स्कंदपुराण में उत्तरापथ का स्पष्ट निर्देश न होते हुए भी अग्रमुक्त संकुचित अर्थ ही प्रतीत होता है "महापृथ्व उत्तरापथ की सीमा की रक्षा करेंगे।"^७ "उत्तरापथ के समस्त वर्म शंभ" "उत्तरापथ के मुधासन की व्यवस्था"^८ तथा "समस्त उत्तरापथ का बीड़ सब"^९ जैसे वाक्यों द्वारा तत्कालीन राज नीतिक परिस्थितियों से उद्भूत उत्तर पश्चिमी भारतवर्ष का ही तात्पर्य व्यक्त

(१) इन्दिया एन्ड नोन टु पाणिनि (अप्रकाश) पृ० २४४

(२) अ० ११३४

(३) अ० २११४०

(४) पौलिटिकल हिस्ट्री ऑफ़ ऐसिएट इण्डिया (राय चौधरी) पृ० १२० २१ २२

(५) काव्यमीमांसा पृ २३

(६) ऐसिएट ओरिएण्टल सोसायटी ऑफ़ इण्डिया (कनिष्प मोट्ट) पृ० १९७

(७) स्कंद २।७२

(८) अ० १।२१

(९) अ० १।१

(१०) अ० १।१४८

होता है। 'राज्यधो' में उत्तरापथ का प्रयोग समस्त उत्तरी भारत के लिए किया गया है। हर्ष को पुनर्केलिन ने उत्तरापथेश्वर कहा है, और 'उत्तरपथ के समस्त नरपति उसके चरणों में प्रणत हैं'। उसका राज्य कामरूप से लेकर सुराष्ट्र तक काश्मीर से लेकर रेवा तक है।^१ कसत उत्तरापथ की सीमा भी ये ही मानी जा सकती है। अपने महीन और विस्तृत धर्म में यह राज्य समस्त आर्यावत का धर्म देता है।^२ (कनिचम नोट पृ० ११०)

अपने मूल धर्म में दक्षिणापथ भी दक्षिण की ओर फैले किसी राजमार्ग का चोटक हो सकता है क्योंकि भयवत हरण उपाम्याय के अनुसार विन्ध्य से दो मार्ग उत्तरापथ और दक्षिणापथ क्रमशः उत्तर और दक्षिण की (ब) दक्षिणापथ तरफ जाते थे।^३ प्रसाद ने सभी ग्रन्थों पर दक्षिणापथ की दक्षिण भारतवर्ष के धर्म में लिया है। अश्वगुप्त विजय के लिए दक्षिणापथ जाने की प्रामोदना करता है।^४ इसको दक्षिणापथ में अपूर्व सफलता मिलती है पर मुरुर दक्षिण ठठ रह नहीं जाता।^५ रेवा से दक्षिण की ओर महाराष्ट्र के मुनासक जानुषय को हर्ष दक्षिणापथेश्वर के नाम से पुकारता है। काश्यपीमांसाकार के अनुसार भी 'माहिष्मत्या' परतः दक्षिणापथ'। नवंदा उट पर स्थित मान्वाता को ही माहिष्मती माना गया है।^६ ज्ञानध्यान के समय में दक्षिणापथ भी स्वतन्त्र राज्यों में विभक्त था। श्री रामचन्द्र की दक्षिणापथ की यात्रा की ओर भी प्रभाव ने संकेत किया है।^७

पर्वत श्रृंखला नदियाँ

हिमालय का असेक प्रताप के प्रायः सभी भागों में मिलता है भारत वर्ष के साथ हिमालय का अयोध्यास्थित सम्बन्ध है। अश्वगुप्त की विजय के साथ ही

- (१) राज्यधो ३।२७
- (२) बही ३।१४
- (३) बही ३।२८
- (४) इण्डिया इन कालिदास (उपाम्याय) पृ० ६
- (५) अश्व० ४।१६६
- (६) अश्व० ४।२०२
- (७) राज्यधो ३।२५
- (८) श्रीमद्भागवत भाग १० अर्ध ६ इण्डिया (कनिचम)—नोट्स पृ० ३४
- (९) स्कंद १।१२

हिमालय की कन्दराओं में भी स्वच्छन्दता पूर्वक सामयिक होने लगता है ।^१ मातृमुष्ट की कल्पना में हिमालय से निकली हुई सप्तशिखु घोर गंगा-प्रमुखा की पाटियाँ किसी सर्पसुहृत्स्य के स्वच्छ घोर पवित्र घाँस की भूखी जाति के निर्वासित प्राणियों को प्रसन्नान देकर संतुष्ट करतीं ।^२ घोर धार्यजाति----- प्रथम हिमालय की माँठि सिर ऊँचा किये विश्व को सदाचार के लिए साबनाव करती रहेंगी ।^३ अपने प्रजामासुखियों को बर्क की मोटी आदर से छिपाये हिमालय भीम है ।^४ हिमबान की पसवाने वाली बर्फों से ही कुमा^५ तथा अन्य नदियाँ निकली हैं ।

विश्व पर्यटन का उल्लेख दो कर्णों में हुआ है । (१) विश्व मंस-“लङ्करमुष्ट” नाटक में कम्पना स्कंद से कहती है ‘तुम्हारे प्रबंध घोर बिनासपूर्वक पराबात से विश्व के समान कोई शम उठ सका होगा ।’^६ (२) विश्वपाद विश्व घोर “राज्यभी” में हर्ष की प्रजाया बुद्धिया बहुत राज्यभी “विश्व विश्वपाद पाद” में भागकर बसी जाती है ।^७ विश्व पक्ष वास्तव में वे प्रसिद्ध मंस भेण्डिया हैं जो भारतवर्ष को ‘उत्तरापक्ष’ घोर “बहिष्णापक्ष” इन दो मार्गों में बिनाशित करती हैं घोर विश्वपाद बिनास सप्तपुत्रा पर्वत पेशी का ही दूसरा नाम है जिससे जर्मना, ताप्ती आदि नदियाँ निकलती हैं । कामिनात ने इसको “विश्वपाद” कहा है^८ घोर बाराह-पुराण में भी इन भेण्डियों को विश्वपाद के नाम से प्रसिद्ध किया गया है ।^९ हर्षचरित के अनुसार राज्यभी पक्षी सलियों के साथ “विश्वपाद” के प्रसन्नान में जा छिपी थी ।^{१०} प्रसाद ने “विश्वपाद” शब्द का प्रयोग विश्वपादवी या विश्वमंस के पर्व में किया है या विश्वपाद नाम की विविष्ट सप्तपुत्रा भेण्डियों के लिए, यह स्पष्ट नहीं होता ।

निपथ पर्वतमासा का उल्लेख मात्र ‘बन्धमुष्ट’ में हुआ है । प्रसाद के अनुसार यह पर्वत मासा धार्यावर्त की नैसर्गिक परिचयी सीमा थी ।^{११} “बन्धमुष्ट”

(१) ,, ३।२२

(२) ,, ४।२२

(३) ,, ४।२२८

(४) ४।२२२

(५) ४।२२४

(६) स्कंद ४।२२०

(७) राज्यभी ३।२२

(८) पूर्वमेव २१

(९) बाराह पुराण पृ० ८३

(१०) हर्ष चरित (बाण) पृ० ३३१ (कावेन-वामस)

(११) बन्ध० ४।२४१

धीर "स्कन्दगुप्त" दोनों नाटकों से ज्ञात हुआ है कि यह निपद्य मंसिचिक सीमा सिन्धु के उस पार^१ गांधार के पश्चिम^२ में रही होगी। जब अगहिबेता सिन्धर की सेना निपद्य पर्वत तक पहुँच गई तभी उत्तरापथ के राज्यों में हलचल मचनी प्रारम्भ हुई।^३ श्राये बलकर अश्वघुप्त मौर्य ने संधि की शर्तों में यह प्रदेश सिन्धुकुस से प्राप्त कर लिया था। निपद्य पर्वत का यह नाम अत्यन्त प्राचीन है। वेदों में भी इस नाम का उल्लेख मिलता है।^४ ग्रीक ऐतिहासिकों के अनुसार अश्वमादन से पश्चिम धीर काबुल नदी से उत्तर की घोर जो "पैरोपनिसेडर" या परोपनिसेस नामक पार्वत्य प्रदेश है वही निपद्य पर्वतमाला का भाग है। पालकृत यह काकेकश के नाम से विख्यात है।^५

प्रसाद के नाटकों में सिन्धु^६ सिन्धु संगम^७ सिन्धु तट^८ तथा अष्ट सिन्धु^९ की नाटियों का प्रचुर उल्लेख हुआ है "सिन्धु की प्रखर चारा ही यवन सेना को रोक सकती थी"^{१०} परन्तु जसमें सेतु बना दिया गया^{११} सिन्धु के तट पर ही महारिमा बाष्प्यामन का धाभम था^{१२} धीर सिन्धु के तट पर ही बबल लिबिर जये थे।^{१३} सिन्धु तट पर ही सेस्त्रुकस से अश्वघुप्त का युद्ध हुआ था।^{१४} सिन्धु की लोम नहरियों में से गुप्त साम्राज्य के सेनापति धार्य परुंरत की बीरता की कैस माझा सिद्धी जाती है।^{१५}

-
- (१) स्कंद० १।१९
 - (२) अश्व० ४।२४१
 - (३) अश्व० १।७५
 - (४) अश्व० १।१०४।१
 - (५) एनिएट इण्डिया (मेगास्थनीज एरिपम (मैग्निटल) पृ० १४३
 - (६) अश्व० १।९२ तथा अश्व० स्कंद० १।१८ तथा अश्व०
 - (७) वही २।१९१
 - (८) वही ४।२१३ तथा अश्व०
 - (९) स्कंद० ४।११८
 - (१०) अश्व० १।९२
 - (११) अश्व० १।५२
 - (१२) अश्व० १।१०२
 - (१३) अश्व० २।१०७
 - (१४) अश्व० ४।२३१
 - (१५) स्कंद० १।१८

सम्भव सिन्धु तट पर ही जूलों के साथ स्करमुत्त का भयकर युद्ध हुआ था जिसमें जूनों की प्रबल हार हुई थी।^१ इतिहासकार प्लिनी के अनुसार सिन्धु कावेराज परबत के ३३ मास से उमरजो है जिसे वैरोपमिषस कहते हैं। इसका उद्भव सुवोरेज की टिया की घोर है। यह १६ नदियों को सहायक नदियों के रूप में ग्रहण करती है।^२ वास्तव में सिन्धु का उद्भव स्वान पीस निवासियों को प्राप्त न था। सिन्धु की प्रमुख भाग पश्चिम कैनास से निकलकर, घननी घाटी सम्राई तट उत्तर-पश्चिम की घोर बहती है, मुब काश्मीर के उत्तर पश्चिम बरत प्रदेश तथा छोटे पामीर के बसिण से बहती हुई बसिण की घोर मुड़ जाती है। यहां इसके तट पर सिन्धु के प्रसिद्ध स्थान बसे हुए हैं।^३

“सप्तसिन्धु” प्रदेश स्करमुत्त के काठ के जूलों से पाराकमृत हो गया था।^४ और गया यमुना के समान ही सप्तसिन्धु प्रदेश की नदियां भी हिमासय से निकली हुई नदियां थीं।^५ सप्तसिन्धु अत्यन्त प्राचीन नाम है। घाटों से सिन्धु कुमा (सिन्धु के पश्चिम से) बितस्ता घमिनी इरावती घनुत्रि तथा सरस्वती इन सात नदियों के प्रदेश को सप्तसिन्धु की संज्ञा से अभिहित किया था। यह सम्भव है कि ऋग्वेद के काल में कई बार सप्तसिन्धु तथा सप्तसिन्धु प्रदेश के नामों में परिवर्तन हुआ हो।^६ परन्तु कालांतर में य सात स्रोत ही सप्तसिन्धु नाम से चलते रहे और इनसे संबंधित घू नाग सप्तसिन्धु कहलाया गया।

सिन्धु-संघम तट के प्रदेश की विजय करने की इच्छा से सिक्खर बी-जन लेकर घाय बड़ा था।^७ सिन्धु-संघम का घर्ष कम स्थान से है जहां सिन्धु नदी समुद्र में प्रवेश करती है। एरियन के अनुसार भारत की पश्चिमी सीमा सिन्धु नहीं है जो विशाल सागर तक दसवीं सीमा बनाती है और उसी में घनना यथाह मिला बेती है। यह समय को बाराघों में होता है जो ईस्टर (ईस्यूब) की पांच बाराघों की तरह पास पास न होकर नील नदी की बाराघों के समान दूर दूर पर हैं। सिन्धु की नील नदी द्वारा निर्मित मिथ के डेस्टा के समान ही एक भारतीय डेस्टा बनाती है जो मिथ के डेस्टा के आधार से किसी प्रकार की छोटा नहीं कहा जा सकता। भारत की

(१) स्कर० २।१४८

(२) ए लिप्ट इण्डिया—मेनास्वनीत्र—एरियन (प्रीकिल्ल) पृ० १४३

(३) इण्डिया एंड नोन टू वाणिनि (घरवाल) पृ० ४३

(४) स्कर० ४।१२२

(५) बही ४।११८

(६) इन्डाइसतोपीडिया—(बगु) देखिये “सप्तसिन्धु”

(७) बगु० २।१३२

भाषा में इस शब्दा का नाम पट्टल पाठाल है ।^१ ऐसा प्रतीत होता है कि सिन्धु-संघम के समीप ही यह पाठाल रखा होना । सिन्धु-संघम के बड़े के द्वारा पाठाल विजय संभव-संशय ही अंतिम विजय थी ।

सिन्धु के उपरान्त उसकी दूसरी सहायक नदी बितस्ता है, जिसको ग्रीक इतिहासकारों ने 'हाइड्रैस्पस'^२ कहा है । प्राकृतिक कास में इसका नाम भेसम है और प्रसार ने बितस्ता^३ और भेसम^४ दोनों ही नामों से इसे बितस्ता अभिहित किया है । बितस्ता का इतिहास सिन्धु के आक्रमण में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है । प्राचीन और पुर के राज्यों की सीमा बितस्ता ही थी । पुर ने प्राचीन सभियों के विरुद्ध बितस्ता के दूसरी ओर एक बाँधी बना दी थी ।^५ भेसम के पास ही पौरव ने कुषु षेना प्रति रोम के लिए रसी थी ।^६ रातो रात बितस्ता को पार कर^७ यवन षेना ने पुर से युद्ध किया था जिसमें सिन्धु को यह बाँधी तट्ट बिहित हा गया था कि भारतीयों के सङ्गों ने कितनी धार है ।^८ अश्वमेध ने बितस्ता पार कर ही बिसूक्त ने स्कंधावार में आक्रमण किया^९ था । प्लिनी के अनुसार सिन्धु की उन्नीस सहायक नदियों में से हाइड्रैस्पस तथा घग्ग बो तीन नदियाँ सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं । बितस्ता की पार सहायक नदियों का उन्नेस भी उल्लेख किया है ।^{१०}

प्लिनी के अनुसार बितस्ता से पूर्व की ओर सिन्धु की दूसरी प्रसिद्ध सहायक नदी बिनाब घग्गमा (अंटेन्ना या ऐकथाइनिघ) है ।^{११} बिनाब से पूर्व की राबी ओर सिन्धु की तीसरी सहायक नदी राबी है सिन्धु ने राबी के जलमार्गों ही सीटने का निश्चय किया था ।^{१२} राबी के तट पर ही मालकों का स्कंधावार या बहो सिन्धु का मार्ग रोक्ने के लिए उनकी हित्साए कवर्क थी ।^{१३} राबी तट पर ही बिसूक्त नदियों की रमभूमि में घग्ग का विवाहोत्सव मनाया गया था ।^{१४} मालकों और सुद्धों से मीठी कर यवन-बेड़ा

(१) ऐसिण्ट इतिहास—मेगास्थनीज-एरियन (मैकिडन) पृ० १७७

(२) ऐसिण्ट इतिहास—मेगास्थनीज-एरियन (मैकिडन) पृ० १८०

(३) अश्व० ११८४ तथा घग्ग (४) बही ११०१ तथा घग्ग

(५) बही ११८४ (६) अश्व० २१११० (७) बही २११२०

(८) बही २११२२ (९) अश्व० ४१२३२

(१०) ऐसिण्ट इतिहास—मेगास्थनीज (मैकिडन) पृ० १४१

(११) बही पृ० १४३ (१२) अश्व० २११२२

(१३) अश्व० २११४३ (१४) बही ३११४३

राजी से ही भारत अभियान का विचार छोड़ वापस लौट पड़ा था।^१ राजी तक पहुँचने से पूर्व सिक्खर को कठ जाति से भयानक युद्ध करना पड़ा था^२ जिससे उनकी सेना के सबमुख छत्के हुए गये होंगे और स्वदेश लौटने की माँगना की दूसरी माँगति निमी होगी। राजी नदी का वैदिक नाम इरावती था।

सिन्धु की चौथी सहायक शाखा, बिपाशा भी। इसका नाम प्रीक लेखकों ने हार्पेसिड लिखा है। वास्तव में बिपाशा के तट पर ही सिक्खर के सैनिकों ने घाते बङ्गन का स्पष्ट विरोध किया था।^३ बिपाशा और इरावती के बिपाशा मध्य के सूभाग में ही बल्लगुण्ड ने प्रबरोध किया^४ फलतः सिक्खर ने बिपाशा को अपने प्राक्रमण की सीमा बना लिया।^५ उसके सैनिकों से बिपाशा पार कर इस सैनिक स्कन्धावार को प्राच्य देश के सम्राट का विधिर समझकर ही पार नहीं किया।^६ बिपाशा का प्राच्य नाम म्यास है। ग्लिनी ने इसको बल-याशा के योग्य लिखा है।^७ बिपाशा का उत्पन्न पाणिनि ने भी लिखा है।^८

सिन्धु नदी की सबसे पूर्वी शाखा का नाम इरावती था। प्रसाद के अनुसार सिक्खर की सेना को विचलित करने के लिए यह प्रचार किया गया जो कि इरावती के तट पर मयक की लघुाधिक सेना युद्ध के लिए सज्जत है।^९ इरावती यवन सेना इरावती को पार न कर सकी। इरावती बहु सीमा बन गई थी जिसको पार करते ही मयक का नाश निश्चित माना जाता था।^{१०} इरावती के तट पर ही मयक व राजस के विरुद्ध पञ्चयन्त्र की सृष्टि हुई।^{११} प्रीक इतिहासकारों ने इसका नाम हर्कैसिस रखा है, कहीं नहीं हर्पेसिस नाम भी मिलता है।^{१२} इरावती का प्राच्य नाम इरावती है।

गंगा का उल्लेख मात्र ही इन नाटकों में हुआ है। गंगा और सोण के तट पर मयक की राजधानी कुमुदपुर बसी हुई थी।^{१३} हिमा जय से निकली हुई यमुना की बाटियाँ प्राणियों को प्रसन्न करने में समर्थ थी।^{१४} गंगा के तट पर ही सम्राट हर्षवर्धन ने प्रयाग में सर्वस्व दान किया था।^{१५} प्रचीन ग्रन्थों में गंगा का सर्वत्र उल्लेख मिलता है।

- (१) अश्व० ३।१६४ (२) ऐतिहासिक इण्डिया—(मिसन तथा अन्य अन्य) पृ० १३
 (३) बही—(मिसन) पृ० ३२ (४) अश्व० २।१२९ (५) बही २।२४६
 (६) बही २।१४० (७) ऐतिहासिक इण्डिया—मेगास्थनीस (मैकिडन) पृ० १४३
 (८) इण्डिया एव लोन डु पाणिनि (प्रसन्न) पृ० ४४
 (९) अश्व १।१२८ (१०), ३।१३३ (११) = ३।१८
 (१२) ऐतिहासिक इण्डिया—मेगास्थनीस (मैकिडन) पृ० ६३
 (१३) अश्व० ३।१९३ (१४) स्कंद ३।११८ (१५) राज्याधी ४६९

प्रकार में षोण का भी अन्वेषण मात्र कर दिया है। इसका प्राथमिक नाम शोम है। जहाँ यह गंगा से मिलती थी वहीं प्राचीन पाटलीपुत्र या कुमुदपुर बना हुआ था। गंगा की मारतवर्ष की सबसे बड़ी नदी निकलकर एरि शोम्य यम एरैनेवारन भयका षोण को मारत की तीसरी बड़ी नदी निकलता है। उसके अनुसार ग्रन्थ ईशों की सबसे बड़ी नदियों से यह बड़ी है परन्तु जहाँ यह गंगा से समम करती है वहाँ सबसे छोटी है।^१ शोण विषय पर्वत श्रेणियों से निकलती है। इसका प्राचीन नाम द्विरुप्यकाहा का जो पूर्व काल में प्राथमिक पटना के पास ही गंगा से संनम करती थी।^२

कुप्तकाल में बसु के तट पर गुप्त साम्राज्य की पताका फहराई भी घोर बहदध्वज बसु के रीतीमें मेरान में अपनी स्वर्ण प्रमा का विस्तार करता था।^३ यह स्थिति कुमारगुप्त के शासनकाल तक रही। शक्यगुप्त के शासन में बंसु संनमत्त यह समस्त प्रदेश हुएों में पाशाक म्ठ कर दिया था और स्कन्दगुप्त ने पुन बंसु के तट तक उनकी पहुँची घोर घुसरी बाड़ को रोक कर लपेट दिया था।^४ बसु का सर्वप्रथम अन्वेषण अश्वमेध में मिलता है जहाँ इसको "धंला" कहा है।^५ कालिदास ने रघुवत्स के बनुर्ष सर्ष में रघु की दिग्दर्शन के सम्बन्ध में इसका अन्वेषण किया है।^६

वास्तव में कुप्तकाल के इतिहासकारों को इतिहास के लिए कामिदास से बहुत सहायता मिली है। हुएों में ४२० ई० के घातपात बसु की बाटी में एक बलिदानाती साम्राज्य बना लिया था। ई० ४२२ के घात पात यह स्कन्दगुप्त ने उनको प्रथम बार हराया तो भी वे "बंसु" की बाटी में अश्वमेध योद्धाओं के नाम से बलिष्ठ थे।^७ बंसु से प्रसार का अन्वेषण भी शीघ्रों द्वारा अन्वेषित अश्वमेध भयका प्राथमिक काल की भासू करिया से है। मयवत्स हरसु उपाध्याय अश्वमेध नदी को सबसे बड़ी गाला घरकों की बन्ताव को ही कामिदास में बलिष्ठ बसु मानते हैं।^८

(१) बड़ी—(वीचिजल) पृ० ६१

(२) जर्नल थाक दि एशियाटिक सोसायटी थाक बंगाल १४।११६

(३) स्मर० ३।६२

(४) प्राचीन भारत के धार्मिक स्तम्भ (मयवत्स शरण)—स्कन्दगुप्त विजयाश्रय

(५) अश्वमेध १०।२७ १७

(६) रघुवत्स ४।६७

(७) अश्वमेध शमा (बीच) ईट थाक कामिदास

(८) इतिहास एन कामिदास पृ० २२

सरयू का उल्लेख बहुत कम हुआ है। सरयू के तट पर विकटघोष देवी की उपासना कृष्णा है और चौकी यात्री जूँगलभाग पर उसके सह्यात्री बाहु याचमण करते हैं।^१ ऐसा प्रतीत होता है कि मुत्तकाल के जिसमें भी यज्ञ सरयू हुए वे गंगा यमुना, सरयू के तट पर हुए। समुद्रपुत्र ने भरवमेघ यज्ञ किया था जिसकी प्रसिद्धि प्रयाग में गंगा-यमुना के संगम पर बभ्रुमुत्र ने लिखवाई। गुप्तों की एक राजधानी सरयू तट पर स्थित घोष्या थी। कलाठ सरयू के तट पर यज्ञ हुए हुंमि और टन यज्ञों की स्मृति में कई यज्ञ-यूप पाड़े बने हुंमि।^२ हिमालय की चोटियों से निकलकर सरयू सोना से कुछ ऊपर गंगा से संगम करती है। यह रामायण-काल की प्रसिद्ध नदी है।

कुमा नदी यांवार की बाटी में बहती है।^३ मानव-नरेण बभ्रुवर्मा कुमा के तट पर हूँसों को रोकते हैं और नदी की तीक्ष्ण बारा को कात कर देने की प्रतिज्ञा करते हैं।^४ पर्वतों से प्रवाहित होने के कारण इस नदी का प्रवाह कुमा। बहुत तीव्र है परन्तु जल कम होने या बिना किसी पुल के भी पार उतरने में अधिक कठिनाई न होती होगी क्योंकि स्वर उसको पार करने का प्रयत्न करता है।^५ प्रसार के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि कुमा के जल-प्रवाह को रचनाति के विचार से सन्तुलित रखने के लिए इसमें कोई बन्ध भी पुष्क-काल में बना था जिसको काट देने से उस नदी की प्रखर बारा बम से परिपूर्ण हो जाती थी।^६ हिमालय की पत जाने वाली बर्फों के निकलने वाली कुमा की यह बाध शून्य बहती^७ से घातोहित रहती है। कुमा वैदिककालीन घापीवर्त की नदी है और जम्बेश में इसका उल्लेख है —

घापो रमानिमा बभ्रुवर्मा बं सिग्गुनिरीरमत

कायं परिष्टान् सरयू पुरीपिरायम्ये इत बाममस्तु बं।^८

(१) राज्यघो ३।४१

(२) स्कंद० ४।१२१

(३) बही ३।१०१

(४) बही ३।१०३

(५) स्कंद० ३।१०४

(६) बही ३।१०६

(७) बही ४।११४

(८) शक ३।३।११—(सरयू, सिग्ग तथा घग्ग नदियों का उल्लेख भी इत्यम्य है)

“हे मन्त्रगण ! रसा धनितमा तथा कुमा प्रीर क्मु नरी एक सर्वत्र गमन
भीम सिन्धु मय तुम्हें विसम्भ न करें घोर न असमयी गरव एवं पुरीपिणी (पद्मिनी)
तुम्हें रोक रहे जिससे हमें तुम्हारा वर्धन सुख मिले ।

बहुत से ग्रीक इतिहासकार सिन्धु को ही भारत की पश्चिमी सीमा मानते
हैं परन्तु चार ग्रीक सावपियों का समावेश करने पर हीन्ध (कुमा) नदी को भी
इसकी दूरत्व सीमा मान लिया गया है ।^१ ग्रीकों की यह कोपस नही ही वास्तव में
प्राचीन कुमा है जो आजकल कानुन कहलाती है । यह तिपिधि पर्वतमाता (काकेतय
पर्वत) से निकलकर मांथार की पाठी पार करती हुई पूर्व की घोर बहती है घोर
पुष्कमावती के कुछ दक्षिण पूर्व की घोर सिन्धु से संयम करती है । पुष्कमास का
इतिहास बताता है कि स्कन्द के काल में ग्रीकों ने मांथार को पाशाक्रमण किया था
घोर पंचनद तक भी उसकी बुजबुझ बाहिनी बढ़ गई थी । कुमा के बन्ध की कल्पना
प्रसाद की अपनी प्रतीत होती है ।

प्रसाद में स्कन्दपुत्र के समय के प्रायं साम्राज्य की सीमा का विस्तार करने
के उद्देश से सिन्धु के साथ सीहिर्य का भी सम्बन्ध किया है ।^२ यैहरोली के लोह
साम्य मेल में अत्र सीहिर्य से लेकर मैकिया तक के प्रवेश
को विजय करने की घोषणा करना है ।^३ कदाचित् उक्त मेल
के घामार पर ही प्रसाद में स्कन्द के राज्य काल से सीहिर्य को
भी प्रायं साम्राज्य की पूर्वी सीमा स्वीकार कर लिया है । सीहिर्य बहुशुभ नही है
जो कामिवाह के अनुसार प्राग्ज्योतिष राज्य की पश्चिमी सीमा थी ।^४

अत्रशुभ मे तिस्रा के तट पर ही लकों को प्रमाया होवा क्योंकि प्राय
पर्यंत की बिरटा की सिद्धमाला तिस्रा की लोन-नहरियों से
शिस्रा । तिनी जाती है ।^५ प्रसाद के माटकों के घामार पर तिस्रा
मासद की नही है ।^६ इसके तट पर महाकाल का प्रसिद्ध मंदिर
बसा हुआ है का कभी तांत्रिकों और घोषचारियों का भी केन्द्र रहा था ।^७ साथ

(१) वही (मैकिया) पृ० ११६

(२) स्कंद ३।२२

(३) पत्नी हिस्त्री धाफ इण्डिया (स्मिथ) पृ २१४-११५ (बतुने संस्करण)

(४) इण्डिया इन कामिवाह पृ० १२

(५) स्कंद १।२

(६) स्कंद ३।२०

(७) स्कंद ३।८४

काल का हस्त बैकन के लिए त्रिमा तट पर लोग धाया करते थे ।^१ प्राय भी त्रिमा मासवा में बढ़ती है और इस ऐतिहासिक नाम से अभिहित की जाती है । कालिदास के अनुसार त्रिमा के तट पर ही उम्बदिनी बही हुई थी पर महाजन का मन्दिर त्रिमा के तट पर नहीं किन्तु उसकी शाखा यंपवती के तट पर बसा हुआ था । कालिदास ने त्रिमा की एक और सहायक नदी बन्नीरा का भी उल्लेख किया है ।^२

प्रताप ने रेवा को उत्तरायन और अक्षिणायन की विभाजक रेखा मान लिया

है ।^३ कुमार हर्षवदन और पुलकेशिन चामुण्य का युद्ध रेवा

रेवा । तट पर ही हुआ है ।^४ अन्त में हर्ष ने रेवा को ही

अपने साम्राज्य की बहिष्णी सीमा मान लिया है^५ कालिदास

ने इसका नाम नर्मदा गौतमी और मंदाकिनी भी लिखा है ।^६ रेवा प्राकृतिक नर्मदा ही है और यह अमरकंटक पर्वत से निकलकर अम्नात की खाड़ी में समुद्र से जा मिलती है ।

इन नदियों के अतिरिक्त केवल एक स्थल पर "सरस्वती के शशिष्ठ जल" का उल्लेख केवल उपमान रूप में हुआ है ।^७ भारत की अन्य नदियों के सम्बन्ध में नाटकों से कुछ भी ज्ञात नहीं होता ।

(१) स्कंद ३।५२

(२) इण्डिया इन कालिदास पृ० ११

(३) राज्यकी ३।२७-२८

(४) वही ३।२८

(५) वही ३।२८

(६) इण्डिया इन कालिदास पृ० ११

(७) स्कंद ३।१४१

विभिन्न राज्य और उनकी सीमाएँ

बौद्ध काल में बत्स-राष्ट्र की सीमा क्या थी, उसका प्रयोग कैता या घोर कोसाम्बी के चारों ओर वह बिजनी दूर तक फैला हुआ या इस विषय में इतिहास कुछ ही है। प्रसाद ने भी प्रजातन्त्र की भूमिका में कथा-प्रसंग के प्रत्यक्ष केवल इतना लिखकर संतोष कर लिया कि 'बत्स राष्ट्र की राज दरस राष्ट्र जामी कोसाम्बी की जिसका बंडहर जिला बांदा (करमी सब विबीजन) में बमुना के किनारे "कोसम" नाम से प्रसिद्ध है। उदयन इसी कोसाम्बी का राजा था।^१ अथवा चम्पूनि बौद्धों के प्राचीन धर्मों के अनुसार बत्स राष्ट्रों का उल्लेख किया है^२ जिनमें "बत्स" का भी नाम है। भूमिका में इतनी सूचना देने के उपरांत समस्त माटक में कहीं भी 'बत्स का उल्लेख नहीं है। उदयन के लिए भी बत्सराज के स्थान पर कोसाम्बी-नरेश^३ का प्रयोग किया गया है। जातक कथाओं में उदयन को बंधाराज^४ तथा बत्सराज^५ दोनों कहा है। कथासरित्सागर में उदयन के वर्णन में "बत्स" का उल्लेख इस प्रकार है "एक वैश्व बत्स के नाम से विख्यात है जिसकी राजधानी कोसाम्बी है। ऐसा प्रतीत होता है विजाता ने स्वर्ण के बरत को चुर-चुर करने के लिए उसका विरोधी षड़ा कर दिया हो।^६

यही शब्द बत्स राज्य की स्थिति कोसल के दक्षिण और काशी के पश्चिम में मानते हैं। कोसल मगध काशी और बत्सराष्ट्र एक दूसरे के अत्यन्त निकट थे और वैवाहिक संबंधों में भी घाबड़ा थे। इसी कारण बंधवत् प्रभाव ने इन राज्यों की घटनाओं का प्रभावना सहज स्वीकार किया है। काशी का प्रसन्न उदर ही पीबक का

(१) प्रजात०—कथा प्रसंग ९

(२) " " "

(३) ११५९

(४) जातक ४।२३६

(५) " " ३।३७५

(६) " अस्ति बत्स इति घ्यातो देशो वर्णोपजातये स्वर्णस्य निर्मितो पाठा इतिमस्त इवधितो । कोसाम्बी नाम तत्रास्ति मध्यभागे महापुरी—सहमी-विनात बसतिभूतमस्येव कणिका ।"

—कथासरित्सागर—कथामुख सम्बद्ध—प्रथम तरण । ४५

यह वाक्य—“तो मुदत कोसल का बुझे हैं और कौशाम्बी में भी यह समाचार पहुँचाना आवश्यक है,”^१ इस कथन को पूर्णतया स्पष्ट कर देता है। प्रसार ने स्वयं ही काबिदास का एक उद्धरण देकर बाल लंका को प्रयासित किया है—“प्रचोतस्य त्रिय बुहितर बसुराजोऽथ बह्वे ।”^२ बाल का नाटक में कहीं उल्लेख न होने से बाल राज्य से सम्बन्धित समय विशेषतः कौशाम्बी के साथ ही निर्दिष्ट करने की संकेत है।

प्रसार के सभी नाटकों में मगध राज्य अपनी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। “अजातशत्रु” की बन्तारों का तो बहू केन्द्र ही है “अश्वघुप्त” नाटक की धार्मिक-कारिक कथावस्तु भी मगध से ही सम्बन्ध है। युद्ध-काल में भी मगध का महत्व कम नहीं हुआ था। “राज्यधी” का मगध से प्रत्यक्ष सम्बन्ध तो नहीं “अजातशत्रु” में है किन्तु नाटक की बन्तारों में स्वयं को सृष्टि करने वाल मगध। नरेन्द्रयुद्ध और देवयुद्ध मगध के युद्ध-काल के ही हैं।^३ ऐसा प्रतीत होता है कि बीड-युग में महाराज बिम्बसार और अजात शत्रु दोनों के शासनकाल में मगध एक महत्वपूर्ण और शक्तिशाली राज्य बन गया था। प्रसार ने मगध से तीन प्रमुख राज्यों के वैवाहिक सम्बन्धों का उल्लेख किया है। मगध की महारानी वासवी की पुत्री पद्मावती का सम्बन्ध कौशाम्बी से है,^४ बहू उदयन को राजी है।^५ मगध की राजमाता छपना की धर्मिनियों में लिच्छवि रक्त बड़ी कीमती स ही है। इस प्रकार मगध का सम्बन्ध बन्तारों के लिच्छवि राज्य से भी है। मगध की महारानी वासवी कोसल के महाराज प्रदेनवित की बहिन है।^६ सम्भवतः बिम्बसार के शासन-काल में ही मगध ने अपनी धृष्टी प्रतिष्ठा बना ली थी। काशी का राज्य मगध का एक धङ्ग हो गया था क्योंकि कोसल ने उसे वासवी को बहू दे दे दिया था।^७ मगध की राजधानी इस समय राजगृह थी।

इतिहास के अनुसार मगध की राजकीय शक्ति का प्रतिष्ठा बिम्बसार ही था और नवीन राजगृह की स्थापना उसने ही की थी। उसने धङ्ग को विजय किया

- (१) अजात १।१६
- (२) अजात० अजातसंग पृ० ११
- (३) राज्यधी १।२३
- (४) अजात २।११
- (५) अजात १।२४
- (६) „ १।४३
- (७) „ १।१०

एवं समीपवर्ती राज्यों से विवाह-सम्बन्ध किये, जिनमें कोशल और वैशाखी मुख्य थे ।^१ 'धजातधनु' की बुद्धिका के अनुसार धजातधनु उत्तरी भारत में इतिहासकाल का प्रथम सम्राट् या क्योंकि इसने झङ्ग और वैशाखी पर विजय पाकर साम्राज्य का विस्तार किया और प्रायः राज्यों से मैत्री सम्बन्ध भी स्थापित किया ।^२ इतिहास के अनुसार झङ्ग विजय और समीपवर्ती राज्यों से मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर मगध राज्य की प्रतिष्ठा विस्तार में की थी और नवीन राजकुल का निर्माण भी उसी में किया । नाटक में भी धजातधनु को मगध साम्राज्य का विस्तार करते हुए कहीं कहीं दिखाया गया है । काली को लेकर मगध और कोशल के बीच विजय की युद्धों का उल्लेख किया गया है वे भी परेशु भ्रमरों के ही रूप में सामने आते हैं—साम्राज्य विस्तार के निमित्त किए गए युद्धों के रूप में नहीं ।

उलना धजातधनु को "मरुतबन्ध" का सम्राट् देखना और भीरुमूर्ती होकर उत्तम बरस बनना कथना जाती है । उसी यह इच्छा भी धजातधनु उत्तरी भारत का सम्राट् हुआ मराठ की इस मान्यता की पुष्टि करती है किन्तु इतिहास इस बात को स्वीकार नहीं करता । बौद्ध इतिहास के अनुसार स्वयं धजातधनु ने उत्तर भारत के एक प्रमुख राज्य कोशल से जो बार युद्ध किया था पर उसे अपने साम्राज्य में नहीं मिला सका ।^३ कोशल राज्य धजातधनु के बहुत पीछे ई० पू० चौथी शताब्दी में मगध साम्राज्य में मिला गया था ।^४ इसके प्रतिरिक्त स्वयं प्रजा ने धजातधनु के समकालीन कोशल और कौशांबी के स्वतन्त्र राज्यों का उल्लेख किया है । बौद्ध इतिहास में जिन समकालीन १६ महाजनकों की बर्णना हुई है मगध की उन्हीं में से एक था ।

बाहे धजातधनु को उत्तर भारत का प्रथम सम्राट् मानें वा न मानें इसमें संदेह नहीं कि उसने अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए प्रबल प्रयत्न किये थे । गंगा के उत्तर से लेकर हिमालय तक फैले हुए वृजियों और सिन्धुद्विपों के प्रदेश उन्हीं ने मगध साम्राज्य में मिलाये थे । बर्णधार की सहायता से उद्यत वैजामी ने अधिकार किया था । एक ऐसा उल्लेख भी मिलता है कि मगध के राष्ट्रप्रद्योत ने मगध पर बढ़ाई करने की ठानती की परन्तु वास्तव में यह युद्ध हुआ था या नहीं इसकी कोई

(१) धर्मी हिन्दू पाठ इन्द्रिया (सिधम) पृ० ११

(२) कथा-समंग—धजात० पृ० २०

(३) विजयवर्ती पाठ पामी और मरुत पृ० ३१ ३२

(४) धर्मी हिन्दू पाठ इन्द्रिया (सिधम) पृ० १०

सूचना नहीं मिलती ।^१ यद्यपि प्रसार ने मगध साम्राज्य की नीमा वीर उसक प्रयोग का स्पष्ट लक्ष्य 'महातन्त्र' में नहीं दिया है तथापि यचना का उक्त पर्वमय कथन^२ यह स्पष्ट सूचित करता है कि मगध का राज्य महातन्त्र के शासन काल में धर्म सब राज्यों से अतिशयानी धीर बृहन् का । महात स्वयं मगध राष्ट्र की अतिशयानी बनाता है और उसकी उन्नति के लिए उत्कर्ष है ।^३ वैदरत्त के कथन से यह स्पष्ट अन्वित होता है कि मगध साम्राज्य में काशी के समान धर्म्य प्रदेश भी हैं जो काशी की तरह ही सुरम्भ धीर बनी भी हो करने हैं तथा काशी के स्वतन्त्र होने पर स्वयं भी स्वतन्त्र होने की श्रेष्ठा कर सकत है ।^४ उद्यत जैसा शासक भी प्रत्यास ही मगध की महत्ता का स्वीकार करता हुआ दिखाई देता है । पद्मावती से उसका यह कथन मगध की महत्ता का साक्षी है तू मगध की राजकुमारी है । प्रमुत्त का विष जो तेरे रक्त में बुसा है, वह कितनी ही हत्याए कर सकत है ।

'अश्वगुप्त' नाटक से मगध साम्राज्य की दो विभिन्न सीमाएँ निर्धारित की जा सकती हैं । एक तो वह सीमा जो मगध के शासन काल में रही और दूसरी वह जो अश्वगुप्त की विजयों के उपरान्त बन गई । दोनों कालों 'अश्वगुप्त' में में उन्नी राजधानी पाटलीपुत्र धरवा कुमुमपुर में रही । मगध साम्राज्य पाटलीपुत्र नगर बुद्ध-कालीन मगध साम्राज्य के नामक महातन्त्र में बसाया या हलका समर्पण 'अश्वगुप्त' की भूमिका में स्वयं प्रसार ने किया है ।^५ इतना तो निश्चय है कि अश्वगुप्त तक पाठ पाठ राजधानी पाटलीपुत्र धरवा कुमुमपुर बन गई थी । प्रसार ने "विष्णुपुराण" से जो उद्धरण दिये हैं उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि तिस्रुनाम बंध के शासकों के उपरान्त मगध नर्यों के शासन में धा गया था ।^६ नर्यों से उस अश्वगुप्त ने से लिया ।

यपनी भूमिका में प्रसार ने कहीं भी मगध अति के अधीन मगध साम्राज्य के विस्तार का विवेचन नहीं किया परन्तु बमनस्य के खजाने^७ के उपाख्यान से ऐसा ज्ञात होता है कि मगध साम्राज्य धनी था । "उस समय अश्विन राजकुन नर्यों की

(१) दिव्यनटी धातु पानी प्रीपर नेम्ब—महातन्त्र पृ० ११ ३२

(२) महात २।१ ७

(३) महात २।१३

(४) महात० २।१९

(५) अश्व० (भूमिका) पृ० ४२ पुराणोट

(६) अश्व० (भूमिका) पृ ४३

(७) बही (भूमिका) पृ २३

प्रख्यात शक्ति से आकांक्ष' के' 'जन्मों की विनाश वाहिनी' तथा 'मगध राज्य का प्रथम प्रताप' जैसे वाक्य यह स्पष्ट सूचित करते हैं कि उस समय मगध साम्राज्य अत्यन्त विस्तृत एवं प्रतापशाली रहा होगा।

समस्त नाटक में नन्दकालीन मगध का उल्लेख कई स्थानों पर हुआ है परन्तु उद्योगी औद्योगिक सीमाओं का उद्योग किञ्चित् मात्र ही उल्लेख नहीं है। 'महापद्म का वारण पुत्र नन्द—महापद्म का इत्याकारी नन्द' मगध का सम्राट् है। इस वारणा को प्रसाद ने अपनी भूमिका में 'प्लूटार्क' तथा डाबडोरस विक्रमोत्तर' से उद्धरण देकर स्पष्ट कर दिया है। प्रसाद ने मगध को राष्ट्र कहा है। 'मगध का आत्म प्रबंध है' मगध अत्यन्त तथा कूटनीति से चल रहा है और वह साम्राज्य की कल्पना में निमग्न है। इन कथनों से ऐसा प्रतीत होता है कि मगध के काम में मगध का एक विशाल साम्राज्य रहा होगा और अन्तिम नन्द में भी अपने साम्राज्य की वृद्धि की होगी। पंचनर नरैल मगध को प्राच्य देश' कहते हैं और मगध के रहने वालों को प्राच्य मनुष्य। मेगास्थनीज का उद्धरण देते हुए प्रसाद लिखते हैं 'उस समय यमा के तट पर दो विस्तृत राज्य थे एक प्राच्य (प्राची) और दूसरा पण्डिरीज। प्राच्य राज्य में पण्डिरीज कोलम मगध वाराणसी विहार आदि देश थे और पण्डिरीज गंगा का समुद्र तटवर्ती भाग था। वह बंगाल था। पण्डिरीज पीड़ देश का ही दूसरा भाग था। पीड़ राज्य का राजा नन्द के आधीन था। पण्डिरी में भी एक मध्य प्रदेश की राजधानी थी वह भी नवाधीन थी।' इन दोनों को नर काल में मगध साम्राज्य के अन्तर्गत मान लेने के लिए प्रसाद के सम्मुख दो प्रमुख प्रश्न प्रयास हैं—'प्लूटार्क लिखता है—'और है बर टोम्ब डि फिन प्राण डि गैबेरीडस एंड प्रासिडन्स इन्सर्पर्टेड ईव बेवर बिद एटी पाउवैड हीरिंग टू ईडुंड पाउवैड फूट एर पाउवैड धार्मिक वैरिपुट एंड सिविल पाउवैड फाइटिंग सोल्डम।' प्रसाद ने प्लूटार्क की पुस्तक 'साइम्स का महाराज धारण किया था' पण्डिरी पण्डिरीज और प्राच्य की समुक्त सीमा के उल्लेख से उनके लिए यह निष्कर्ष निकालना सरल था कि पण्डिरीज प्राच्य राज्य के आधीन होगा। लिख

(१) पण्डिरी (भूमिका) पृ० २९

(२) वही पृ० २९

(३) वही पृ० २३

(४) पण्डिरी १।६२ (२) पण्डिरी (भूमिका) पृ० १२ (९) वही पृ० १२ पृ० नी

(७) पण्डिरी १।९८ (८) वही १।९९ (९) वही १।७२

(१०) 'साइम्स' (प्लूटार्क) पृ० २१८

(११) देखिए 'राठिन' (दिनोरतकर ध्यास)

के अनुसार चंद्रगुप्त के राज्यारोहण के समय मगध एक बिलुप्त साम्राज्य था जिसके अन्तर्गत कोशल तिरहुत (उत्तरी बिहार,) बाघमती मग तथा मगध (बसिंधी) सम्मिलित थे।^१ संभव है प्रबन्ती तथा उसके बहिन में भी मगधों का अधिकार रहा हो क्योंकि स्मिथ ने १२ वीं शताब्दी के एक लेख की जनश्रुति का उल्लेख किया है जिसके अनुसार मगध के कुलज का प्राप्त मगध साम्राज्य के अन्तर्गत था। इस कुलज प्राप्त में बहिन भारत का पश्चिमी भाग तथा मैसूर का उत्तरी भाग सम्मिलित है।^२ पंचनद नरेश द्राघ मंड की पुत्री से विवाह सम्बन्ध को अस्वीकार किये जाने पर राजस कहता है कि बहिन्यासी मगध राष्ट्र का अपमान करके कोई यों ही नहीं बच जायगा।^३ पंचनद पर अधिकार करते ही मगध सैनिक चंद्रगुप्त को मगध का इन्द्रजासी समझ कर उसे बहिन की सेना का ह्रास पहुँचते हैं।^४ अशोक चंद्रगुप्त मगध के एक सैनिक से कहता है 'स्मरतु रक्षता विपत्ता पार करने पर मगध का साम्राज्य अर्धस कराना मगधों के लिए बड़ा साधारण काम हो जायगा।'^५ यद्यपि इन कथनों से प्रसार का स्पष्ट अर्थिप्राय क्या है यह नहीं कहा जा सकता तथापि धरति बहिन निकलती है कि पंचनद के पूर्व की ओर बितना भी विद्याम प्रवेश फँसा हुआ है उसमें सबसे शक्तिशाली साम्राज्य मगध का ही है। अतः पंचनद के बाद ही मगध की सीमा प्रारम्भ हो जाती चाहिये। बाणभय राजस से कहता है, तो 'सुदूरों से कहें' कि तुम लोग बाघा न की ओर मगधों से भी यह कह दिया जाय कि वास्तव में यह स्वर्णभार प्राच्य देश के सम्राट का नहीं है जिससे मगधोत्त होकर तुम पार होना नहीं चाहते यह तो सुदूरों की सुदूर सेना है जो तुम्हारे लिए मगध तक पहुँचने का सरल पथ छोड़ देने को प्रस्तुत है।^६ उक्त कथन इस बात की पुष्टि करता है कि यदि मिश्रर भारत की ओर सुदूरों पर विजय पाकर विपत्ता पार करके पंजा-समुद्रा के प्रदेश की ओर बढ़ता तो मिश्रर ही मगध की साम्राज्य-सेना को उससे लौटा लेता पड़ता। इससे भी यही निष्कर्ष निकलता है कि पंचनद के उपरान्त ही मगध साम्राज्य का संरक्षण पंचनद से प्रारम्भ हो जाता था। राजस भी इन बातों को स्वीकार करता है कि 'यदि भारत की ओर सुदूर पदास्त हो जाते तो मगध का नाश निश्चित था।'^७ अतः राजस से कहता है कि प्रांत-धर्म पर अधिकार करके विद्रोह करने के प्रयत्न में धापको बंदी बनाकर ले जाने वाले को पुरस्कार की ओपणा की गई है।^८ इससे यह भी प्रतीत होता

(१) पत्नी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (स्मिथ पृ० ४३)

(२) वही पृ० १२५ (३) अशु० ११७६

(४) अशु० १११२५ (५) अशु० २१२६

(६) अशु० २११४० (७) अशु० ११२३१ (८) अशु० २१२५१

है कि प्रसार उस प्रांत-दुर्ग का पंचनक्ष की सीमा पर होता मानते हैं। मगध का मंत्री राक्षस चाणक्य को उदाहरण में मगध का मुष्ट प्रशिषि बना कर भेषना बाह्य है।^१ सिक्खर के धातुमण से उत्पन्न राजनीतिक परिस्थितियाँ ही इसका कारण हो सकती हैं। सम्भव है चाणक्य के प्रतीकार करने पर मगध-गुप्त के साथ राक्षस स्वयं भी वहाँ गया हो। घट जिस प्रांत दुर्ग पर अधिकार करने का आरोप राक्षस पर लगाया है उसे सीमा के पास ही कही होना चाहिए। भूमिका में प्रसार ने मगध का सीमा मगध का जो भौगोलिक चित्र दिया है वह चन्द्रगुप्त नाटक में स्पष्ट नहीं होता। इससे केवल इतना ही प्रामाण्य होता है कि मगध के समकालीन मगध भी एक विस्तृत साम्राज्य रहा होगा।

मगध के प्राचीन इतिहास की धोर कुछ धकेल प्रसार ने 'चन्द्रगुप्त' नाटक में किए हैं। यह तो मगध का पुराना इतिहास है, बरारण्य का यह दावा है। यहाँ एकाधिकार की पट्टा सर्वत्र से धम्यस्त है।^२ 'प्राचीनकाल चन्द्रगुप्त मौर्य के समय का मगध साम्राज्य रहा।^३ इस राज्य की भावना जनता में जागृत करके ही चन्द्रगुप्त को मगध का एकध्वज वासक बनाया साक्षात्कृत।

मगध के प्राचीन इतिहास की धोर कुछ धकेल प्रसार ने 'चन्द्रगुप्त' नाटक में किए हैं। यह तो मगध का पुराना इतिहास है, बरारण्य का यह दावा है। यहाँ एकाधिकार की पट्टा सर्वत्र से धम्यस्त है।^२ 'प्राचीनकाल चन्द्रगुप्त मौर्य के समय का मगध साम्राज्य रहा।^३ इस राज्य की भावना जनता में जागृत करके ही चन्द्रगुप्त को मगध का एकध्वज वासक बनाया साक्षात्कृत। मगधकाल में मगध साम्राज्य पर नागरत भी व्यंग्य करता है—'निष्कवि धोर वृत्ति परातम को कुचलने वाला मगध।'^४ पल्ल बनना अजातशत्रु के शासन काल की है।^५ यह हम बात की सूचना देती है कि मगध ने प्राचीनकाल से ही साम्राज्य का विस्तार किया। प्रिथिव्य को परास्त कर देने^६ पर सिक्खर की क्षत्री का एक बहुत बड़ा भाग उसके अधिकार में आ गया होगा। पंचतन्त्र की हत्या^७ के परिणामस्वरूप पंचनक्ष का मासक-गुप्त भी चन्द्रगुप्त के हाथ में आ गया था। इतिहास को भी चन्द्रगुप्त ने विजय किया था। चाणक्य के निषेध करने पर बहसि उसने मुरुर इतिल प्रवेश पर विजय प्राप्त करने का विचार छोड़ दिया तथापि सीमांत राष्ट्रो ने उसकी मित्रता स्वीकार कर ली थी।^८ प्रसार ने सिन्धुनक्ष मुष्ट से पूर्व के मौर्य कालीन मगध साम्राज्य की सीमा का उत्पीडन चाणक्य के मुह से हम प्रकार करवाया है—'गुप्त जानते हो कि चन्द्रगुप्त ने

(१) अ० ११८५ (२) वही ११८५ (३) वही ११८५

(४) अ० ११८५

(५) मौर्य हिस्ट्री पाठ इण्डिया वू० ३७

(६) अ० ११८५

(७) अ० ४१८५

(८) अ० ४१८५

दक्षिणापथ के स्वर्णगिरि से पंचनद तक, धौराष्ट्र से बंग तक एक महान साम्राज्य स्थापित किया है—उत्तरापथ के सब प्रमुख पण्डित्य मानव युद्धक और यौधेय धारि सिंहरण के नेतृत्व में इस साम्राज्य के भग हैं ।^१ इसके प्रतिरिक्त प्रसाह के मनुवार बालक्य ने गांधार और पंचनद को संयुक्त कर प्रसका और सिंहरण के अधीन^२ कर दिया और प्रसका के युद्ध से ही उस प्रदेश को चन्द्रगुप्त द्वारा संघटित धार्य साम्राज्य का एक भाग बना दिया ।^३

उपरोक्त उद्धारण सिन्धु-कृत विजय से पूर्व के मगध-साम्राज्य की सीमा इस प्रकार निर्धारित करते हैं—मगध-युद्ध के समय से ही (सिन्धु-विधियों के उद्धारण) मगध साम्राज्य की उत्तरी सीमा "हिमालय" बन गई थी ।^४ दक्षिणापथ की विजयके पश्चात् चन्द्रगुप्त ने स्वर्णगिरि को दक्षिणी सीमा बना लिया । बालक्य के कथना मुसार पूर्वी सीमा बंग थी और प्रसका के शर्यों से मगध की पश्चिमी सीमा गांधार स्पष्ट है । गांधार से प्रसाह का समिप्राय पूर्वी पाण्डार से है क्योंकि तक्षशिला पूर्वी गांधार की ही राजधानी थी ।^५

अन्योक्त के विनाशेक निश्च करते हैं कि उसके राज्य काल में शामिल राज्य पत्तरी साम्राज्य के स्वराज्य नहीं थीं थे । उसके सम्बन्ध ही स्वर्णगिरि मगध साम्राज्य के दक्षिणी-भाग के राज्यपाल की राजधानी थी ।^६ इतिहासकार स्वयं किसी प्रत्यक्ष निरूपण पर नहीं पहुँच सके हैं कि यह दक्षिण-विजय का कार्य किसने किया । * कथत प्रसाह ने निस्संकोच स्वर्णगिरि का इन काल के मगध साम्राज्य की पश्चिमी सीमा मान लिया है । पूर्वी सीमा में बंग प्रदेश नन्दकालीन मगध का ही भाग था ।^७ पश्चिमी सीमा के लिए बसिन्धु का उद्धारण सेते हुए नौमकठ शास्त्री लिखते हैं— "देवरघाट्टर ही प्रियेक टु घटक घनेकईईईई प्रीकईईई र लंटर बेर पुट टु ईकईईई दि मोक घाक घबिहूक बज लेकन मोठ प्रीम र नैक, घाक इन्धिया घाट्टर घसै नईईईई कष (बैट इन घाट्टर १२३ बी सी०) ।"^८ माण्डीय कथोपकरण में टीक पही बात प्रसाह ने कही है ।

(१) बग० ४१२१६

(२) बग० ४१२१६

(३) बग० ४१२२०

(४) देखिये मगध साम्राज्य—मगध-युद्ध के समय में—पृ०

(५) इन्धिया एज मोन टु पाण्डिनि (बा० घा घपबाल) पृ० ४६

(६) पत्ती द्विती घाक इन्धिया (स्मिथ) पृ० १३७

(७) वही पृ० १३७

(८) देखिये हमी परिच्छे में नन्दकालीन मगध ।

(९) —दि एज घाक दि नन्दाज एंड यौधेय ।

नाटक के अनुसार सिन्धुस से की गई संधि की शर्तें सूचित करती हैं कि मगध की पश्चिमी सीमा निपद पर्वत बन गई थी।^१ जब सिन्धु से लेकर निपद पर्वतमाता तक हिंदात का सम्पूर्ण प्रदेश मगध साम्राज्य का एक भाग बन गया।

सिन्धुस से लिया स्कंदपुत्र में भी प्रसाद ने इसका उल्लेख किया है— 'मीर्म ह्युधा मगध साम्राज्य के समय से ही सिन्धु के उस पार का देश भी भारत साम्राज्य का भाग साम्राज्य के अंतर्गत था। जमहिजेता सिकंदर के सेनापति सिन्धुस से उस प्रांत की मीर्म सभ्राट अश्वपुत्र ने लिया था।^२ इतिहासकारों के अनुसार अश्वपुत्र को सिन्धुस से 'पैरोपेनिपद परिवा तथा अरैकोसिया की क्षत्री का अधिकार मिला था जिनकी राजधानियाँ क्रमशः काबुल हिंदात और कंधार थीं। अरैकोसिया की क्षत्री मगध के कम से कम उसका पूर्वी भाग भी सम्मिलित उसके हिस्से में आ गया था।^३ उक्त विवरण प्रसाद से मेल खाता है।

कुमारगुप्त के शासनकाल में ही मगध की राजधानी का महत्व कुसुमपुर और अयोध्या दोनों में बंट गया था। सिन्धु लिखते हैं "साधारणतः पाटलीपुत्र ही राजधानी की परन्तु समुद्रगुप्त और अश्वपुत्र दोनों के समय में अयोध्या ही अधिकतर साम्राज्य के शासन का केन्द्र बन गई गुप्त-कालीन मगध थी।^४ "स्कंदपुत्र" की घटनाओं का केन्द्र तो अश्वपुत्री और साम्राज्य।

पाटलीपुत्र ही है सम्भव है कि प्रसाद गुप्तों की राजधानी अयोध्या में ही मानते हों। 'अयोध्या चलने का प्राप्ते क्व नित्यय किया है राम्यसिंहासन क्व तक सूना रहेगा?'^५ अश्वपुत्र का यह कथन भी मगध की राजधानी अयोध्या सिद्ध करता है। कुमारगुप्त के समय की मगध साम्राज्य की सीमा अश्वपुत्र विजयान्तिक के समय में ही बन गई थी क्योंकि कुमारगुप्त के समय में पृथ्वीश्वरों के युद्ध के अतिरिक्त अन्य युद्ध नहीं हुए और उसमें कुमारगुप्त की विजय होने पर भी साम्राज्य की सीमा में कोई अंतर नहीं आया। सिन्धु के अनुसार "दि ईन्ट्स प्राक् दिष्ट किम्स रैन धार नौट नोन इन डीटेस, बट दि डिस्ट्रिभ्यूशन प्राक् दि स्पूयेरन कैंट्रिपोरेरी इ स्क्रिप्ट्स एंड कौइस परमिट्स प्राक् नो डाउट ईट

(१) अश्व० ५।२४६

(२) स्कंद ६।१६

(३) धर्मी हिस्ट्री प्राक् इण्डिया पृ० १२३

(४) वही पृ० ११०

(५) स्कंद २।५२

ज्यूरिंग दि पेटर पाटं घाफ हिन अनयुनुधमी प्रीलीग्ड रुन वि एम्पायर सफर्ड मो
 डिमिग्युलन ।^१ पर्यंदत की बीरता की सेवामाता बिमा घौर सिन्धु की लोग मह
 गियों से मिली जाती है ।^२ इससे यह निश्चित है कि बिमा घौर सिन्धु दोनों तरफ
 मीन मगध साम्राज्य के अन्तर्गत रहे होंगे । उज्जयिनी साम्राज्य के अन्तर्गत भी
 क्योंकि वहां गुप्त साम्राज्य का स्थापार या घौर सम्राट का प्रतिनिधि स्वरूप
 वहां जग पठ था ।^३ पश्चिमी मालवा मगध साम्राज्य का प्रायित राज्य या घौर
 बलपुर उसकी राजधानी थी ।^४ सौराष्ट्र चन्द्रगुप्त के समय में मगध साम्राज्य में
 मिला गया था ।^५ प्रसार के अनुसार कुमारगुप्त के काल में सौराष्ट्र में अकुराष्ट्र
 मण्डल पुनः स्वतन्त्र घौर गतिकाली हो गया था, यहाँ तक कि अग्नि सौराष्ट्र को
 पाशाकान्त भी कर दिया था ।^६ सिन्धु के उपर्युक्त उल्लेख से प्रसार के इस मठ का
 पश्चिम हो जाता है । मुगुर दक्षिण में सिन्धु मगध का मिक राष्ट्र था : प्रसार के
 अनुसार काश्मीर मण्डल कुमारगुप्त कासीन मगध साम्राज्य का एक मठ ही था पर
 हूणों के आक्रमण के फलस्वरूप साम्राज्य से अलग हो रहा था ।^७ प्रसार ने एक
 घौर कुमारगुप्त कासीन मगध को धार्य-धन्वृत्पान का स्मरणीय मुग बताया है ।
 साब ही दूसरी घौर कुमारगुप्त के शासनकाल में ही मगध साम्राज्य की टूटती हुई
 सीमाओं की घौर भी संकेत किया है । स्वर्णगुप्त नाटक के अनुसार कुमारगुप्त
 कासीन मगध की सीमा इस प्रकार ठहरती है—पूर्वी सीमा समुद्रगुप्त के समय से ही
 लौहित्य थी । दक्षिण में मालवा घौर सौराष्ट्र के पश्चिम में हूणों के आक्रमण से
 पूर्व चन्द्रगुप्त मौर्य के समय से ही सिन्धु के उद्य पार निपच पर्वतमाता भी घौर
 उत्तर में काश्मीर था । इतिहास के अनुसार चन्द्रगुप्त बिजमादित्य ने मौर्यों को
 पराजित कर मालवा बुजरात एवं सौराष्ट्र साम्राज्य में मिला लिये थे समस्त
 प्रभाव घौर कामरूप पूर्वी-सीमा के अन्तर्गत मगध के करद राज्य थे ।^८ मेहरीसी

(१) धर्ती हिस्ट्री घाफ इण्डिया पृ ३१०

(२) स्फंड १।१

(३) स्फंड १।१

(४) स्फंड १।१३

(५) स्फंड १।१४

(६) स्फंड १।१२

(७) वही १।२५

(८) धर्ती हिस्ट्री घाफ इण्डिया पृ० ३१।

सौह-स्तम्भ के अनुसार अश्वगुप्त ने राष्ट्रीय तान के प्रवेश पर अपनी वीरता का सिद्धा जमा दिया था। मन कहा जा सकता है कि कुमारगुप्त के समय की साम्राज्य की सीमाएँ वहीं थी जो अश्वगुप्त विजयनादित्य की विजयों के फलस्वरूप बन गई थी। स्कन्दगुप्त के कास में मगध साम्राज्य की सीमा बढ़ती-बढ़ती गई और प्रसाद के अनुसार उज्जयिनी गुप्त साम्राज्य की राजधानी बनी। किन्तु राय चौबरी के अनुसार अश्वगुप्त विजयनादित्य के मासत काम में ही उज्जयिनी गुप्त साम्राज्य की राजधानी बन गई थी—“दि प्रोरिजनल गुप्ता मैट्रोपोलिस सीम्मा टु ईव बीन ऐट पाटमीपुत्र बट घाफ्टर हिज बैस्टर्न काँक्रीस्ट बन्न मिड उज्जयिनी ए सीकण्ड क्वैपित ।”

प्रसाद का स्कन्दगुप्त नाटक मुख्य रूप से इन दो राजधानियों की ही कैग्न मानकर चलता है। यद्यपि एक स्वान पर अयोध्या को भी राजधानी के रूप में स्वीकार किया गया है।

स्कन्दगुप्त कालीन : साम्राज्य की सीमाओं का उल्लेख करते हुए प्रसाद कहते हैं—“मोहिय से सिन्धु तक हिमालय की कन्धराओं में भी सामगान होने सया है।”^१ उक्त कथन से तीन स्पष्ट सीमाएँ ज्ञात होती हैं—पूर्व में मोहिय पश्चिम में सिन्धु और उत्तर में हिमालय पर्वत। “काश्मीर अब साम्राज्य के अन्तर्गत हो गया है।”^२ भीमबर्मा के इस कथन से प्रकट होता है कि कुमारगुप्त के शासनकाल में सम्भवतः काश्मीर मगध साम्राज्य के अन्तर्गत नहीं रह गया था। पर स्कन्दगुप्त ने काश्मीर से हूणों को पराजित कर मातृगुप्त को उसका आसक्त निवत कर दिया था। दक्षिण में मामबा और सीराष्ट्र उसके साम्राज्य में थे ही। नाटक की घटनाएँ यह सिद्ध करती हैं कि बीच में प्रदेशों का अधिवास भाग हूणों से पाराजित हुआ। काँबार की भाटी (बुबा न रण क्षेत्र) में हूणों से संघर्ष घबम्न हुआ पर इस युद्ध में स्कन्दगुप्त की पराजय हुई। घपसे युद्ध में स्कन्द ने हूणों को पराजित कर सिन्धु के पार खदेड़ दिया। “इस हृम को छोड दो धोर कह दो कि सिन्धु के इस पार के पवित्र प्रदेश में कमी घाने का साहस न करे।”^३ स्कन्द के इस कथन से सिन्धु ही स्कन्दगुप्त की पश्चिमी सीमा प्रतीत होती है।

-
- १) पालिटिकल हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया (राय चौबरी) पृ. २४६
 - (२) स्कंद १।६६
 - (३) वही १।६६
 - (४) स्कंद १।१६२

‘राज्यधी’ के मगध का बहुत कम उल्लेख हुआ है। समस्त नाटक से केवल इतना ही ज्ञात होता है कि मगध का साम्राज्य नरपण्डित मन्मथस्यर्ष है और वह सब घोर से अपमानित है।^१ ऐसा ध्वंस्य प्रतीत होता है कि युष्मत् कुस का कोई व्यक्ति परम मृदारक की उपाधि धारण किये हुए मगध का शासक है और अपने ही खंबी मरेन्द्रगुप्त खर्षाक की तेजस्विता से घरांक होकर उसने मरेन्द्र गुप्त को मगध के प्राचीन बुरख पौड़ प्रवेश म जेज दिया है।^२ मरेन्द्र युष्मत् कहता है कि गौड़ घोर मगध की समस्त शक्ति राज्यवर्द्धन के लिए प्रस्तुत है।^३ मरि के बचन से इतना घोर प्रकट होता है कि ‘महोदय’ के साथ साथ मगध की “बद नों का मित्र है।”^४ वैशम्पत्य कहता है—‘वैशम्पत्य उसी युष्मत् कुस का है जिसके नाम से एक दिन समस्त बम्भुद्वीप विकम्पित होता था’^५—इससे ऐसी इज्जति मिलती है कि मगध साम्राज्य के विघ्न मित्र होने पर युष्मत्-कुस के राजकुमारों ने मगध साम्राज्य के छोटे-छोटे टुकड़ों पर अपना अधिकार कर लिया और वहाँ के मलय-मसग एवं स्वतन्त्र शासक बन बैठे।

‘मजाठलकु’ की समस्त बटनाएँ मगध के उपरान्त कोशल कोलांग्भी तथा काशी में बटित होती हैं। प्रसार के अनुसार कोशल की राजधानी आबरीठी है नहीं तो तू इस कोशल की विरथ विभूत याथा पर पानी डेरकर अपने पिता के साथ उत्तर प्रत्युत्तर न करता क्या इसी कोशल में रामचन्द्र और बरहरण क सहज पुत्र और पिता अपना उदाहरण नहीं छोड़ पए है? प्रसन्न मरि के इन उद्गारों द्वारा प्रसार कोशल के प्राचीन इतिहास की घोर भी हृष्टिपात करते हैं। प्रसार न सेनापति बभ्रुव के मुह से कोशल राज्य की केवल एक सीमा का उल्लेख करवाया है। “कोशल की विजयिणी पताका भीरों के रक्त में अपने अश्लोचय का तीव्र तेज डीकाटी है और लज्जुओं को अपनी रक्त में नहाने की सूचना देती है? राजाविराज ! हिमाचय का सीमाप्रांत बर्बर लिच्छवियों के रक्त से घोर भी ठंडा कर दिया गया है। कोशल के प्रबन्ध नाम से ही भाँति स्वयं पहूरा दे रही है। अब विजोहू का नाम भी नहीं

(१) राज्यधी—१।१२

(२) राज्यधी—१।१२

(३) राज्यधी—२।३३

(४) वही २।३३

(५) वही

(६) अजात १।५२

है। विदेशी बर्बर आक्रमणियों तक उबर देने का भी साहस न करने।^१ उपयुक्त सूचना बार विजयताओं की धोर संकेत करती है —

- (१) कोशल ने प्रसेनजित के शासनकाल में धनिक विजय की थी
- (२) कोशल ने लिच्छवियों को परास्त किया था और अपनी सीमा हिमालय की तराइयों तक बढ़ा ली थी,
- (३) कोशल को किसी विद्रोह का दमन करना पड़ा था और
- (४) इस विद्रोह में कुछ विदेशी बर्बर जातियाँ भी सम्मिलित थीं।

समझ है कि प्रसेनजित के शासन-काल तक कोशल एक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया हो। कोशल का राष्ट्र अपने यौवन में पैर रखा है^२ देशान्त का यह कथन उसकी भी शक्ति का चोटक है।

इतिहास भी कोशल की सीमाओं का स्पष्ट निर्देश नहीं करता। जातकों में सीमा-प्रांत के किसी विद्रोह का उल्लेख आवश्यक मिलता है, जिसको दबाने के लिए “अशुभ मम्म को भेजा गया था।”^३ कोशल ने लिच्छवियों पर विजय पाई थी इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। यह वाक्य भारतवर्ष में प्रजातन्त्रु ने किया था।^४ यह कोण ही बर्बर विदेशी जाति थी जिसका उल्लेख प्रसार ने किया है, यह नहीं कहा जा सकता। सम्भव है दूर हिमालय की जाटियों में रहने वाली जिन्ही बर्बर जातियों ने प्रसार का अभिप्राय रखा हो।

कोशल के शीवाहिक सम्बन्ध मगध^५ और शानवो से था।^६ प्रसेनजित के शासन-काल में शानवो का राज्य कोशल का करदा राज्य रहा होगा।^७ काशी राज्य पहल से ही कोशल का प्रभु बन चुका था और मगध से विवाह सम्बन्ध होने पर ऐसी वासनी को स्वीकृत के रूप में दे दिया गया था। इसके लिए मगध और कोशल के बीच दो युद्धों का उल्लेख प्रसार ने किया है। अन्तिम युद्ध के उपरांत तो मगध और कोशल में पुनः एक शीवाहिक संबन्ध स्थापित हो गया।^८ पादा के मम्मों को भी कोशल के सेनापति के हाथों हार घानी पड़ी।^९ धोर संभव है कि कोशल का धार्तिक जन पर भी पड़ा हो। कौशाम्बी से भी कोशल राज्य के शीवाहिक संबंधों की सूचना शमी के इस वाक्य से मिलती है—“कौशाम्बी का दूत पाया है संभवतः कौशाम्बी धोर कोशल की सेना मिलकर प्रजातन्त्रु पर

(१) अजात० ११४ (२) अजात० २१५ (३) विजयनरो आश्रम पासी प्रीतर मम्म पृ० २६६ ‘अशुभ’ (४) धर्मी हिस्ट्री आश्रम इन्डिया (सिमर) पृ० ३७ (५) अजात ११३ २४ (६) अजात ११२ (७) मम्मपर कण्टकवा ११३३, जातक ११३३ ४१४४ (८) अजात ११३५ (९) अजात ७४ ७५

प्राकमण करेगी? घोर वसन्तक का कर्मण - प्रवेनचित भी प्रस्तुत है । महाराज मे मन्त्रणा ठीक हो गई है"२ इस कर्मण की पुष्टि करते हैं ।

काशी प्रवेन मन्त्र के पश्चिम में वा घोर काशी के उत्तर पश्चिम की घोर कोशल प्रदेश वा । बौद्धों के सोलह महाजनपदों में इनका दूसरा स्थान है । स्मिप इसको प्राकृतिक भवष मानते हैं उनके अनुसार ई पू० छठी शताब्दी में कोशल का वही महत्त्व वा जो कालाश्टर मे मगध का वा घोर बहु उत्तरी भारत के प्रधान राज्यी में से प्रमुख वा । इमीलिए कभी कभी इसका उल्लेख मगध विरोधी सत्ता के रूप में किया जाता है ।^३ प्रसाद का कात्मस भी ऐसा ही ललितवासी राज्य प्रतीत होता है ।

काशी का राज्य वासनी देवी को उनके पिता को दहेज म दिया था^४ फलत उसको वे मन्त्र साभ्राभ्य से बाहर मानती हैं ।^५ काशी प्राप्त मन्त्र को राजस्व देता वा घोर बहु उनका प्राप्य वा ।^६ उस राजस्व का सग्रह एक दण्डनायक करता वा ।^७ दहेज में मन्त्र के पास घा जाने पर भी काशी पर कोशल का विशेष प्रभाव है । प्रवेनचित मन्त्री से काशी की प्रजा के नाम पर इस प्राण्य का पत्र लिखा जाता है कि वह राजकर धजात को न देकर वासनी को दे ।^८ घोर काशी की प्रजा दण्डनायक द्वारा समुद्रमुक्त को स्पष्ट शब्दों में कह बेनी है कि—“हम कोशल की प्रजा हैं ^९ राजकर न देंगे ^{१०} ऐसा प्रतीत होता है कि काशी एक “सम्पन्न प्रान्त”^{११} रहा होगा क्योंकि वह एक ‘सुरम्भ घोर बनी’^{१२} प्रवेन है । मगध का इस पर “बहुत दिनों से अधिकार”^{१३} रहा है घोर बहु ‘वासनी देवी का रक्षित धन भी है ।’^{१४} कोशल मन्त्र का अधिकार काशी पर इससे भी स्पष्ट होता है कि वे बभ्रुल को वहाँ का सामन्त बनाकर भेजते हैं घोर उपर धजातपत्रु भी समुद्रमुक्त को मुक्त प्रसिद्धि बनाकर राजस्व प्राप्त करने के लिए भेजते हैं । इससे यह स्पष्ट होगा है कि मगध भी अपना प्राप्य अधिकार छोड़ने को तैयार नहीं । बभ्रुल राजकुमार विरद्वक को— ‘काशी का सिंहासन दिमाने का धारणासन देता है । अतः काशी एक महत्त्वपूर्ण राज्य होया—इससे सन्देह नहीं । काशी के लिए मगध घोर कोशल में मुझ हुए घोर अन्तिम मुझ के उपरास्त जब मगध घोर कोशल पुन वैवाहिक संबन्ध में बंध पड़े तो काशी का प्राप्त फिर मगध को मिला गया । वातकों से सात होता है कि काशी एक महत्त्वपूर्ण प्रान्त वा क्योंकि बनारस वा

(१) धजात २।१०२

(२) धजात २।१०३

(३) (स्मिप) पृ० ३१ (४) धजात १।३७ (५) वही १।३७ (६) वही १।३८ (७) वही १।३८ (८) वही १।३३ (९) वही २।६२ (१०) वही (११) वही २।६६ (१२) वही (१३) वही (१४) वही

काशी के राजा ब्रह्मवत्स को लेकर कई कबाएँ ली गई हैं। समय का विचार है कि प्राचीन जयों में इनकी प्रतिष्ठि का कारण केवल भक्तिवादी पड़ोसी राज्यों से संबंध ही नहीं बल्कि इसलिये भी है कि बौद्धधर्म के प्रवर्तन के इतिहास का यह सबसे पहिले स्तम्भ है^१। इसी सांस्कृतिक महत्ता के कारण संभवतः इसका राजनीतिक महत्त्व भी बढ़ गया हो। इसमें संदिह नहीं कि काशी के कारण ही मगध और कोसल से बीच राजनीतिक संबंध होते रहे। काशी के इसी महत्त्व के कारण प्रसाद ने इसे एक सम्प्रदाय प्रदेश के रूप में चित्रित किया है। काशी की मौनोतिक स्थिति के बारे में प्रसाद मौन है।

पाण्ड्यार का उद्भव सर्वप्रथम प्रसाद ने काशी पाण्ड्यार नरेश^२ कहकर धार्मिक के लिये किया है। तदुपलक्ष्य पाण्ड्यार की राजधानी भी। पाण्ड्यार नरेश ने इन्हें रूप से यवनों के हाथ पारमसमर्पण कर दिया था^३ क्योंकि यव तेष्वर से उतका बद्धमूत्र बंद था।^४ उन्मांड पर बतने वाले पुत्र का मामविन बनाने वाले को बन्ध देने के लिये बिल्लुकुष पाण्ड्यार-राज के पास पहुँचता है।^५ उक्त पुत्र स्वयं धार्मिक की देख-रेख में बन रहा था। इनसे यह स्पष्ट है कि या तो पाण्ड्यार की एक सीमा उन्मांड में सिगु भी नहीं सिगु बन रहा है^६ या वह पाण्ड्यार का एक भाग था। पर्वतेस्वर से पाण्ड्यार की मद्रुता के दो कारण प्रतीत होते हैं— एक तो पर्वतेस्वर पाण्ड्यार से विवाह सम्बन्ध करना नहीं चाहता था और दूसरे विचरता के इस पार उसने प्राचीन लम्पियों के विच्छेद कीकी बना दी थी।^७ उक्त उद्धरणों से यह तो स्पष्ट ही है कि पाण्ड्यार की राजधानी तदुपलक्ष्य भी और पाण्ड्यार

(१) सर्मी हिन्दू पाठ इण्डिया पृ० ३१

(२) पाण्ड० १।१०

(३) पाण्ड० १।५४

(४) पाण्ड० १।५३

(५) पाण्ड० १।५६

(६) पाण्ड० १।५२

(७) वही १।३४

की पश्चिमी सीमा सिन्धु और पूर्वी सीमा रिवस्ता को । प्रसाद के अनुसार सिन्धु के प्राकमण के उपरान्त याग्वार और पवनर दोनों मित्र राज्य हो गये थे ।^१ प्रसाद ने सेल्युकस के प्राकमण के समय पहिले तो गान्धार को तन्वय रित्तमाने का प्रयास किया है^२ पर अन्त में गान्धार का शासन-सूत्र प्रलका के हाथ में देकर^३ उस प्रायः साम्राज्य का एक प्रग बना दिया है ।^४ इसने यह निष्कर्ष निकलता है कि विस्फुक्त से मुक्त होन के पुर ही गान्धार को अश्वगुप्त के साम्राज्य का एक प्रग बन गया था । यह भी सम्भव है कि अभीनन्व होने पर अश्वगुप्त के द्वारा से याग्वार ने सिन्धुतल क विरुद्ध तटस्थता का अभिप्राय किया हो ।^५ कुष भी हो अन्त में अश्वगुप्त के साम्राज्य न उत्तरापथ के अन्य राज्यों के समान ही गान्धार को भी मगध साम्राज्य में मिला ही लिया होगा — प्रलका का कथन इसका साधी है ।^६ गान्धार का उत्पन्न प्रसाद ने स्कन्दगुप्त में भी किया है । याग्वार की बाटी के एण खेप में^७ हूणों के विरुद्ध महाशक्तिव्युत्त बन्धुवर्मा ने युद्ध किया था ।^८ बन्धुवर्मा के एक कथन से यह भी ज्ञात होता है कि प्रसाद याग्वार को किसी विशेष नदी का सम्प्रेत करता चाहते हैं जिसका नाम जर्गेनि नहीं दिया है । उसी नदी के तट पर हूण युद्ध मड़ा गया है । यह नदी कुमा से मिय है क्योंकि अश्वमेध “कुमा के रण-क्षेत्र की जन्मा भी हुई है । कुमा के पास-पास ही याग्वार की यह बाटी रही होगी जिसके युद्ध का पाठक में बणत हुआ है ।

सत्यमेवु विद्यालंकार के अनुसार गान्धार नाम के दो राज्य थे पूर्वी गान्धार और पश्चिमी याग्वार । पूर्वी याग्वार सिन्धु और भेलम नदियों के बीच में था जिसकी राजधानी लक्ष्मिना सिन्धु के पूर्वी तट पर थी । सिन्धु नदी के पश्चिम में पश्चिमी गान्धार की राजधानी दुष्करावती थी ।^९

स्पष्ट है कि अश्वगुप्त नाटक में गान्धार से प्रसाद का तात्पर्य पूर्वी गान्धार से ही है पश्चिमी से नहीं । राम चौधरी के अनुसार पूर्वी गान्धार का साक्षर प्रीकों

- (१) वही २।१३३
- (२) वही ४।२१७
- (३) वही ४।२१९
- (४) वही ४।२२०
- (५) वही ४।२२० ४।२२१ ४।२३१
- (६) अश्व० ४ २२
- (७) स्कन्द० १।१०१
- (८) वही १।१०१
- (९) धार्यावर्ष याजुवन—(सत्यमेवु विद्यालंकार) पृ० १४ स्वाम परिचय

का टैक्सटाइस था, जो तलसितापीत का पीक स्पांस्टर माना जा सकता है। उसका पुनः घौम्फ्रीक (प्रसाद का घाग्मीक) था जो उसकी मृत्यु के अनन्तर बरी पर गैटा।^१ पश्चिमी गान्धार की राजधानी पुष्कलावती थी। सिन्धु के प्राक्रमण के समय इसका शासक इस्ति या अस्तक था।^२ स्कंदपुराण में जिस गान्धार का उल्लेख हुआ है वह पश्चिमी गान्धार प्रतीत होता है। कुमा के घास-पास का प्रदेश सिन्धु के पश्चिम में ही होना चाहिए। ऐतिहासिक उपन्यास "अरुणा" की भूमिका में मुमेरी को लिखते हैं— 'दूण मोग पहली बार ही परास्त होकर नहीं बैठ गये वे अश्विनी उत्तरापथ पर कई बार प्राक्रमण किये और प्राचीन कविता और गान्धार पर अभि कार करके यहाँ अपना नया राज्य कायम किया'^३ सप्त उदराल से भी स्कंदपुराण कासीन गान्धार से प्रसाद का अभिप्राय स्पष्ट हो जाता है।

ग्रीक इतिहासकारों ने गान्धार का प्रयोग छोटे पुरे हाथ लिखित बिनाब और उची क मध्यवर्ती प्रदेश के लिए ही किया गया है^४, यह प्रदेश प्राचीन महाजनपद गान्धार का सुदूर पूर्वी भाग था। दोनों नाटकों में प्रसाद ने जिन जिन गान्धारों का उल्लेख किया है व प्राचीन महाजनपद गान्धार के पूर्वी-पश्चिमी भाग से जो ग्रीक प्राक्रमण के समय वा सिद्ध सिद्ध भागों में बट गये और पुष्कलावती तथा तलसिता राज्य के नाम से अभिहित किये जान सके। गान्धार महाजनपद का नाम बौद्ध साहित्य में सूचित दोस्त महाजनपदों में भी पाया है। डा० बिपाठी इसका प्राबुद्धिक अफगानिस्तान का पूर्वी भाग मानते हैं और इसका प्रसार पश्चिमी पंजाब और काश्मीर तथा समग्र समझते हैं।^५

'अश्विनी' की भूमिका में बिलस्ता अश्विनीया इर/वती और बिपाठी के बिलस्त प्रदेश के धर्म से 'पंजाब' का प्रयोग करने पर भी नाटक में पंचनद संकुचित धर्म में ही पाया है। सर्वप्रथम पंचोत्तर के लिए पंचनद-नरेण का प्रयोग हीन पड़ता है।^६ चाणक्य सिन्धु के प्राक्रमण से संबंध करने के लिए पंचनद नरेण से मिसला हुआ मयप जाना

- (१) वीसिटिकस हिस्ट्री आफ् एशिएट इण्डिया (१० चौबरी) पृ० १२०
 (२) टैक्सिस भोफिस घौम्फ्रीक—वीसिटिकस हिस्ट्री आफ् एशिएट इण्डिया पृ० १२०
 (३) करणा (राजसभाय बनबी) भूमिका अश्विनीय रानी मुमेरी
 (४) मंडेरिस —(१० चौबरी)
 (५) प्राचीन भारत का इतिहास (रमासकर बिपाठी) बौद्ध धर्म के उदय के क्षीय पूर्व का भारत
 (६) अश्विनीय (भूमिका) पृ० २० २६ ३०

चाहता है^१ मयब पंचनद नरेश से विवाह सम्बन्ध करना चाहता है^२ इससे यह प्रतीत होता है कि पंचनद एक शक्तिशाली और महत्वपूर्ण राज्य रहा होगा। पंचनद का राज्य परंतेश्वर का है।^३ परंतेश्वर का नाश करने के लिए बालुक्य तक्षिला से मगध का पुण्ड-अस्थिधि बनकर नहीं जाना चाहता।^४ इससे मान्य होता है कि तक्षिला और पंचनद के बीच पुराना संबंध है और मयब इससे साध उठाना चाहता है। पंचनद नरेश जो कि विष्णु कुम के है।^५ बितस्ता पंचनद की एक सीमा है जिसके दूसरी ओर मगध के विष्णु परंतेश्वर ने एक खोजी बना ली है।^६ पंचनद की सीमा नेमन (बितस्ता) का उल्लेख सिकन्दर भी करता है। पंचनद नरेश से युद्ध करने के लिए मयब सेना न तो रातों रात बितस्ता को पार कर^७ परंतेश्वर की सेना से सभ्य दिया या और पंचनद से मैत्री हा जाने पर मयब शिविर बिनाघा के घट पर लग गया।^८ घट बिपासा पंचनद की दूसरी सीमा रही होगी। गान्धार और पंचनद दोनों सिकन्दर के आक्रमण के उद्देश्य भी बिनाघ प्रदेस बने रहे होंगे। सिकन्दर के आक्रमण के साथ ही गान्धार की तरह यह पंचनद का प्रदेश भी धार्य-साम्राज्य (बगुगुप्त के राज्य) का भाग बन गया। "गान्धार और पंचनद" के सम्मिलित भू-भाग को बालुक्य 'महाप्रदेश' कहता है।^९

अन्तर्गुप्त नाटक में पंचनद से प्रसार का धमिप्राय पुरुष के राज्य से है और इतिहास के अनुसार पुरुष के राज्य की सीमा इस प्रकार है— पंचनद मगध और बिनाघ के बीच का प्रदेश या मोटे रूप से यह प्राकृतिक काम के मगध पुरुषराज और गाहपुर के बिलों का प्रदेश है। कंबेयों का प्राचीन प्रदेश भी इसमें सम्मिलित था। स्ट्राबो के अनुसार यह एक विभाजित और उर्वर प्रदेश था जिसमें नयनम ३० नगर थे।^{१०} उक्त सीमा और उमका बिचरण प्रसार में मिलता है। पंचनद और तक्षिला की मनुना का उल्लेख प्रायः सभी धीक इतिहासकारों ने किया है।^{११} इसका उल्लेख नहीं ही नहीं मिलता कि मयब ने उसको सहायता की थी।

(१) अत्र० १।९०

(२) वही १।७६

(३) वही १।८८-८९

(४) वही १।९४

(५) वही २।१२०

(६) अत्र० ४।२१९

(७) वही १।९

(८) वही १।७८

(९) वही १।९४

(१०) पौलिटिकल हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया (१० खोजी) पृ० १२०-२१

(११) ऐज ऑफ़ दि मन्दाक और मीर्याक (कि० ए० नीलकण्ठ शास्त्री)

“स्कंदगुप्त में पंचनद का उल्लेख केवल एक स्वान पर हुआ है। पर मातृगुप्त को सूचना देता है कि पंचनद हूणों के अधिकार में है और बं काश्मीर पर भी आक्रमण किया जाहते हैं। इतिहास में पंचनद पर हूणों के आक्रमण का उल्लेख हुआ है। ४६३ ई० पू० के पास पास हूणों का एक नया इस सीमा पर बौढ़ पाया और उसने माल्यार घबरा उत्तर-पश्चिमी पंजाब पर अधिकार कर लिया।^१ राजास दास बनर्जी के अनुसार सधर्म की उद्यति के लिए सम्राट् पुत्रगुप्त ने वास्तुिक कपिला माल्यार और पंचनद हूणुराज को देकर उनसे शत्रु कर ली थी।^२

‘राज्यधी’ में राज्यबर्द्धन पंचनद से हूणों को विताडित कर बुझने की बात कहता है।^३ उदितराज को जालन्धर के स्कंधावार में छोड़ जाता है^४, इससे यह भी स्पष्ट होता है कि पंचनद हर्ष के प्राचीन घबरा कम से कम उसके मित्र-राज्यों में से था। कामरूप और बलमी के शासकों की तरह पंचनद का शासक उदितराज भी प्रयाग के काम में भाग लेते थाता है।^५ मंडि के “पंचनद-मुक्त के” उल्लेख से जान पड़ता है कि पंचनद की सेमा भी राज्यबर्द्धन की प्राचीनता में वैश्वगुप्त से मुक्त करने घाई थी। यह तमी सम्भव है जब प्रभाकरबर्द्धन के समय से ही पंचनद स्याम्बीश्वर राज्य के अधिकार में हो घबरा कम से कम इसका मित्र हो। हर्ष चरित म पंचनद का उल्लेख नहीं नहीं है। यही राज्यबर्द्धन हूणों से मुक्त करने के लिए उत्तरपव की ओर घबरा जाता है पर पंचनद से नहीं।^६ इतिहास के अनुसार हर्ष के साम्राज्य की पश्चिमी सीमा बिपाला थी और जालन्धर उसके राज्य में था।^७

सीराष्ट्र का उल्लेख “अश्वगुप्त नाटक में केवल एक स्वान पर लिखुक्त बिजय से पुत्र अश्वगुप्त के साम्राज्य की पश्चिमी सीमा सूचित करने के लिए हुआ है।^८ ऐसा प्रतीत होता है कि कुमारगुप्त के शासन-काल के सीराष्ट्र अन्तिम दिनों में ही सीराष्ट्र के जक घटना सिर उठाने लगे थे।^९ और अपने राज्य के प्राथमिक दिनों में”^{१०} स्कंद की सीराष्ट्र में पुत्र

- (१) घर्मी हिस्ट्री प्राठ इण्डिया (सिमथ) पृ० ३२०
- (२) कल्या (राजासदास बनर्जी) पृ० ३७५
- (३) राज्यधी २।३३
- (४) राज्यधी २।३३
- (५) राज्यधी ४।६६ ६०
- (६) वही २।३५
- (७) हर्षचरित - पंचम उभयदास पृ० १३०
- (८) घर्मी हिस्ट्री प्राठ इण्डिया (सिमथ) पृ० ३३५
- (९) अश्व० ५।२१६
- (१०) स्कंद १।१३
- (११) वही २।००

शर्कों को निरमृत करना पड़ा था। शर्कों को निर्मूलत करने के उपरान्त सैनिक दृष्टि से सौराष्ट्र का स्थान महत्वपूर्ण था और पर्यटन जैसे धनुमन्वी सेनापति को वहाँ की देख रैक का कार्य सौंपा गया था। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कामा स्तर में सौराष्ट्र को भी शर्कों में पादागत कर अपने अधिकार में कर लिया था। बिजवा "मातवा और सौराष्ट्र को स्मर के लिए स्वतन्त्र करा देने की" बात कहती है जो उक्त धर्म की पुष्टि करता है।^१

स्मरगुप्त के अनुगमक के तिलान्तप में सुराष्ट्र और उसके शासक पर्यवत्त का प्रमेत है—

सम्बेणु धुरयेज्यपि संहतेषु
 को मे प्रतिप्याप्रिक्सिमासुराष्ट्रान् ।
 धां ज्ञातमेक खनु पर्यवत्तो
 भारस्य तस्योद्भूते धर्मर्ये ॥
 एवं चिनिश्चित्य श्रुपाधितेन
 नैकानहो-रात-यसाम्ब-मरया ।
 यं संनिपुत्तोऽर्जनमा कर्मणिन्
 सम्यक्सुराष्ट्रावनि पातनाय ॥^२

प्रसाद ने सौराष्ट्र में पर्यवत्त को निरमृत करने की घटना इतिहास से ही मी है पर वहाँ तक सौराष्ट्र के शर्कों को विजय करने का प्रयत्न है वहाँ तक यह कार्य इतिहास के अनुसार स्मरगुप्त का न होकर बभ्रुगुप्त विजयान्तित्य का है।^४

उपर्युक्त तिलान्तप से यह स्पष्ट है कि उसकी राजनीति धर्मस्य चंचल रही होगी। इनके मुत्तासन की व्यवस्था सम्राट् स्मरगुप्त के लिए सिरवर्द का कारण रही होगी इसीलिए पर्यवत्त जैसे सुयोग्य व्यक्ति को धौंता गया। सुराष्ट्र गुप्त साम्राज्य का विलुप्त और महत्वपूर्ण विषय रहा होगा।

(१) एकर १।१४१

(२) स्मर० १।१४१

(३) सैनेक्ट इतिहास—सरकार नं० २२

(४) दि इंटेस्ट मिमिटी प्रवीकमेट आफ बभ्रुगुप्त विजयान्तित्य बज द्विज ऐडवांस टु दि प्रेरेडियन सी यू मातवा एण्ड बुजरात एण्ड द्विज सबकुमेसन आफ दि पैर्मिम्मा पीक सुराष्ट्र पीक काठियावाड़ शिखर हूड बीन एण्ड सैन्धुटीज बाइ दि सफ् बाइबैस्टी पीक फौरिन फौरिनिन मोन टु योरोपियन स्कौलर्स एज दि बीस्टन लक्षपठ।

“राज्यधी” के अनुसार हर्ष के साम्राज्य की पश्चिमी सीमा सुराष्ट्र थी। जैन-संघ सु-खा च (सुराष्ट्र-सुराष्ट्र) को बलभी के प्रथम मानता है।^१ इतिहासकारों का अनुमान है कि हर्ष द्वारा बलभी पर शासन ही हर्ष और पुसकेयिन के बीच युद्ध का कारण था।^२ इतिहासकारों ने बलभी तरेह और हर्ष के बीच वैवाहिक सम्बन्धों का उल्लेख भी किया है।^३ अतः इसमें सन्देह नहीं कि सुराष्ट्र हर्ष के साम्राज्य की पश्चिमी सीमा होगी।

यह का उल्लेख “चन्द्रगुप्त” में केवल चन्द्रगुप्त के राज्य की पूर्वी सीमा निर्धारित करने के लिए हुआ है।^४ सिन्ध के अनुसार प्रयोग क साम्राज्य में बंधा के मुहाने तक का सम्पूर्ण बल क्षेत्र सम्मिलित था।^५ अतः निश्चय बरा ही यह चन्द्रगुप्त मौर्य के साम्राज्य का भाग भी रहा होगा क्योंकि प्रसोक ने पूर्व में कोई विजय नहीं की थी।

मालवराज्य का उल्लेख सबसे पहले स्कंदगुप्त नाटक में हुआ है। उसके अनुसार शकों के पतन काल में महाराज मिहिरमा ने मालव का एक स्वतंत्र राज्य स्थापित किया था^६ और बलपुर इसकी राजधानी थी।^७ मालव और शक युद्ध में गुप्त साम्राज्य ने मालव को सहायता पहुँचाई। युद्ध विजय के उपरान्त इन दोनों राज्यों में सन्धि हुई उसके अनुसार मालवराज्य ने गुप्तों की संरक्षकता स्वीकार करली।^८ कुमारगुप्त के शासन काल में ही गुप्तों ने सौराष्ट्र को पालाशकृत कर लिया था जिससे पश्चिमी मालव अर्थात् हो गया था।^९ इमकिए तटस्थता मालवराज्य बालुबमी ने उज्जयिनी के गुप्त स्कंधाबार ने बृह भेजकर मालव की रक्षा के लिए स्कंदगुप्त से सहायता माँगी।^{१०} स्कंदगुप्त ने संकट के समय गुप्तों और शकों के हाथ से मालव की रक्षा की।^{११} इसी हृदयता के भार से बबकर और अस्तित्वोप तथा

-
- (१) एंशिएट ओरिएण्टल सोसायटी काफ इण्डिया (फनिबम) बोर्डस चीन सुराष्ट्र
 (२) हर्षचरित में (पौरी शकर)
 (३) भारतीय इतिहास के प्रसोक स्वम्न (नववतनरण उपाध्याय शर्मा)
 (४) पृष्ठ ४१२६
 (५) प्रसी हिस्ट्री काफ इण्डिया पृ० १७१
 (६) पृष्ठ २१७१
 (७) वही २१७०
 (८) वही २१६८
 (९) वही २१७०
 (१०) पृष्ठ २१६८
 (११) वही २१७१

बाह्य प्राक्रमण से घायर्राष्ट्र के भाग के लिए बन्धुवर्मा ने अपना वैतुक मानवराज्य स्वरुप को समर्पण कर उज्जयिनी में उनका राज्याधिकार किया। जब उज्जयिनी भी मुक्त-नाम्नाय की राजधानी बन गई।^१

मानव संघर्ष और बन्धुवर्मा का उत्सेह प्रवर्तन में स्थित कुमारगुप्त प्रथम और बन्धुवर्मा मानव के सम्मिश्रित विभासेक में मिलता है —

--- --- ---
 ---तस्मिन्नेव लिखिते धिपे बंधुवर्मापुरारे
 सम्भवस्तीता दत्तपुरमिर्ष पालयपुरासे---

मानव ---मानवता गण-स्वित्वा याते सत बन्धुपुटे
 बिनवरयधिके () इनामिन्ती सेभ्य चनस्तने ---
 सहस्यमास मुवनस्य प्रवस्ते () हिन बयोवसे
 मगसाचार विधिना प्रासादो () यं निवेमिठ
 बहुना समतीतेम
 कालेनापर्यन्त पास्त्रिर्बे
 व्यतीर्षतैकरतो () स्य मवनस्य ततो () बुध ।^२

इस विभासेक में व्यतीर्ष---मवनस्य से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस मवन का एक भाग मृत हो गया या जाहे स्वयं टूट-फूट गया हो प्रबवा प्राकान्ताओं ने तोड़ दिया हो। बहरण वर्मा का अनुमान है कि संवत् ४२६ के घास पास मानव पर हुएों के प्राक्रमण के समय यह टूटा होया। सरकार इसका खंडन करते हुए कहते हैं कि यदि उक्त हुए-गुठ मानव में ४३६ ई० के घास पास हुआ होता तो इसके घास पास ही बंधुवर्मा की मृत्यु हो गई होती क्योंकि उसका हुए पुत्र में मरना निश्चित है। इसलिये सरकार का कहना है कि वह युद्ध वलपुर पर होने वाले किसी प्रस्य प्राक्रमण की धोर संकेत करता है मानव हुए-गुठ की धोर नहीं। यदि सरकार के इस निष्कर्ष का मान लिया जाय तो ४७३ ई० तक मानवराज बन्धुवर्मा के अधीन रहने का प्रमाण मिलता है। उक्त विभासेक में मन्विर के निर्माण के समय सम्राट कुमारगुप्त के नासन का उत्सेह नहीं। इस पर सरकार का अनुमान है कि तब कुमारगुप्त की मृत्यु हो चुकी थी और इसक परिणाम स्वल्प गुप्त सिंहासन के लिए पारस्परिक सघप हो रहे थे। इसीलिए समभव विभासेक के सेकक ने बंधुवर्मा के साथ किसी सम्राट का नापोस्मेक नहीं किया।

(१) रत्न

(२) सैलेकट इतिहास—सरकार मन्मौर स्नोन इतिहासक प्रोक कुमारगुप्त बन एक बन्धुवर्मा मानव नं० २१ पृ २६४—२६५

इतिहास के अनुसार कुछ संवत् ४९१ में (जो पहले मानव संवत् कहा जाता था) महाराज नरवर्मा पहिली मालवा का शासक था। उसकी राजधानी उजपुर, धार्मिक मन्सोर थी। वहाँ के एक सिन्धुसेन से बात होता है कि (पार्थिव) महा राज नरवर्मा (शिरीष) सिंहवर्मा का पुत्र धीर (नरैन्द्र) बन्धुवर्मा का पौत्र है। केवल नाम "महाराज" के प्रयोग से ही बताया है वह अनुमान लगाया है कि नरवर्मा चन्द्रगुप्त द्वितीय का प्राचीनत्व राजा था।^१

मन्सोर का सिन्धुसेन इस बात को पुष्ट करता है कि विश्ववर्मा भी गुप्त साम्राज्य में केवल गोप्ता (गवर्गर) के —

“एतेषु च पार्थिव-समान कर्मा

बभूव गोप्ता गुप्त-विश्ववर्मा ॥”^२

गान्धार के सिन्धुसेन का उल्लेख करते हुए बताया सिद्धते है कि मालवा राजा विश्ववर्मा कुमारगुप्त के शासनकाल के पूर्वार्ध में उसके प्राचीनत्व राजा धीर उनके उपराज्य मालवा के नये शासक बन्धुवर्मा हुए।^३ वहाँ तक मालवा राजधानी उजपुर धीर मालवा राज की राजधानी का प्रमाण है प्रमाण। कथन इतिहास सम्मत है। मालवा को प्रमाण ने यद्यत्त प्रबन्ती भी सिद्धा है। प्रबन्ती मालवा का प्राचीन नाम था परन्तु मालवा के प्रथम में कई स्थलों पर प्रमाण समझ से गये है। मालवा से शकों को निम्न करने का कार्य चन्द्रगुप्त विष्णुवर्मा का है। इतिहास से चन्द्रगुप्त का समकालीन महाराज नरवर्मा प्रतीत होता है। बसाक के अनुसार चन्द्रगुप्त का करार राजा था। तब शकों के पतन काल में पुष्करणाधिपति स्वर्णिय महाराज सिंह वर्मा के द्वारा एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने की बात समझ में नहीं आती। मालवा धीर तक कुछ म गुप्त साम्राज्य धीर मालवा राज्य में सिद्ध सचि का उल्लेख प्रमाण करते है वह भी चन्द्रगुप्त के समय में ही हुई कुमारगुप्त के समय में नहीं। कुमारगुप्त के समय में शकों से कोई युद्ध ही नहीं हुआ इसलिये प्रमाण ने मालवा में हुएों धीर शकों की सम्मिलित बाहिनी के जित

(१) हिस्ट्री ऑफ नार्थ इस्टर्न इण्डिया (बसाक) पृ० ४२

(२) ईलकट इ सिन्धुसेन (सरकार) नं० १७ पृ० २६३

(३) दिस वर्मन क्विज ऑफ मालवा विश्ववर्मा बन्धु ए चूहेटरी घोष कुमारगुप्त बन्धु इतिहास दि फर्स्ट पार्ट ऑफ मालवा रेन ऐड बन्धु सेटर घोष (समर्थित विद्वान दि नैलकट बर्टीन इमर्न) सक्सीडेड चीन रि ग्लोब ऑफ मालवा बाइ हिज सन ऐड सर्विसर बन्धुवर्मा”

हिस्ट्री ऑफ नार्थ इस्टर्न इण्डिया (बसाक) पृ० ४८-४९

(४) ई० १३६ १४० १४२

शाक्यका का उल्लेख किया है वह भी इतिहास मान्य नहीं । यह प्रसार की अपनी कल्पना नहीं—उन्होंने चायतवास के साधारण पर ही यकीं घोर हुएों के सम्मिलित शाक्यण का उल्लेख किया है जिसे धम्म इतिहासकार स्वीकार नहीं करते ।^१

“राज्यधी” के अनुसार देवमुत्त मानव नरेण है ।^२ ‘मातवेस्वर की सीमा बहोदय की सीमा से मिली हुई थी’^३ घोर उची सीमा प्राप्त में मानव घोर मोक्षी सेनाओं में नुद हुआ था ।^४ मानवा का बाहक स्वयं गण्डकुल का था ।^५ सीमाप्रांत के युद्ध में मानवा की विजय हुई^६ घोर धम्म में काम्यकुब्ज में भी माधवा का घबि कार ही गया ।^७ राज्यधी के धनशीलन से ऐसा प्रनीत होता है कि राज्यबर्द्धन में धर्म में मानवराज को बरास्त कर^८ काम्यकुब्ज घोर मानव २०ओं को साम्राज्य में मिमा लिबा था । हर्षचरित में माधवराज का उल्लेख तो हुआ है पर मानवा तथा उसके बाहक के विषय में काय मौन है —

“यतो यस्मिन्महम्मथनिर्घटितपरत इत्यहुतात् तस्मिन्नेव देवो प्रहृषर्मा दुरात्मनः
मानवराजेन जीवन्लोकमात्मनः सुकृतेन सह त्याजिता” ।^९

बंसखेड़ा के साम्रपथ में राज्यबद्धन की प्रबसा इस प्रकार की गई है —

“राजानो बुधिं द्रुष्ट्वादिम इव यी देवमुत्तायय । इत्या वैत कथाप्रहार
विमुखास्त्रेणै सयं संघा”^{१०} इसमें जिस देवमुत्त का उल्लेख हुआ है उसका संबंध इतिहासकार हर्षचरित के मानवराज से जोड़ते हैं । घतः देवमुत्त को मानव नरेण मानने के संबंध में प्रसार की साम्यता ऐतिहासिक है । मानवा की केवम एक सीमा का प्रसार ने संकेत किया है घोर वह मोक्षी राज्य की भी सीमा है । छैन काय के यो-ना-यो या मानवा का विवरण दिबा है परन्तु उक्त यो-ना-यो के विषय में इतिहासकार एक मठ नहीं हैं । इतना अवश्य है कि उक्तयनी यो-ना-यो में नहीं

(१) हम्पीगियल हिस्ट्री थाक इण्डिया (बामसबाक) देखिए हुए भाषयण ।

(२) राज्यधी १।१६

(३) वही १।१८

(४) वही १।२३

(५) वही १।२५

(६) वही १।२६

(७) वही १।२८

(८) वही २।४३

(९) हर्षचरित पृष्ठ उल्लेखण्ड वृ० १८३

(१०) बंसखेड़ा का साम्रपथ ।

पी, क्योंकि उग्रयनी का उत्सव स्वयं होतसाम ने एक स्वतंत्र राज्य के रूप में किया है।^१ स्मिथ मो-आ-वा को पश्चिमी मानवा मानता है। बामुदेवदत्त पप्रवास लिखते हैं— डाक्टर झूजर ने मासवराज की पहचान देवगुप्त से भी की जो सबसम्भ है किन्तु मासवा को पंजाब में माना जा जो धर्मसभ है क्योंकि बाब के समय में मामब सोम घबन्ती में था जुके ने और घबन्तीप्रदेश मानव कहना है तथा वा (उग्रयनी की तिप्रा नदी में मामबी स्त्रियों का स्नान बर्णन—कारम्बरी-बैठ, ११) पंजाब से सप्तगुप्त के बाद मासवा को हम जयपुर रियासत के कर्कोट नगर में पाते हैं। बहा से प्राप्त बड़ते हुये वे गुप्तकास में ओबी गती के लगभग मानवा में घाकर बसे होग। राजनीतिक घटनाएँ इ गित करती हैं कि जैसे ही बम्बगुप्त विजयाश्रित्य ने घबन्ती से मासवराजों का उन्मूलन किया जैसे ही मासव लोग घबन्ती में घाकर घबिष्ट हो गए। सम्भव है कि इस कार्य में वे बम्बगुप्त के सहायक भी रहे हों। मरहोर के लेखों (ई० ४०४ और ई० ४१६) में मासव संभव का उल्लेख होने से भी यह सिद्ध होता है कि मासव लोग पश्चिमी गती से पहले मासवा में घा बसे थे। अतएव मासवराज का सबसभ मध्यभारत में स्थित मानवा से ही माना जा सकता है।^२ उग्रगुप्त मठ के प्रकाश में प्रसाद के विचार भी स्पष्ट हो जाते हैं। प्रसाद ने सबसभ मानवा को मध्यभारत में ही माना है और उसका एक नाम घबन्ती रखा है।

दूत के अनुसार "नवागत म्नेष्यराहिनी से हीराष्ट्र भी पादाजाप्त है। पुका है इस कारण पश्चिमी मानवा भी घब गुराशत नहीं रहा"^३ तथा "वस्तभी का पतन अभी बका है"^४ इन कथनों से यह प्रतीत होता है कि घबन्ती हीराष्ट्र और पश्चिम मानव के बीच में कहीं होगी। मध्यम कही भी वस्तभी का उल्लेख इसमें नहीं है। "राज्यधी" में श्री केवल "वस्तभी के प्रबन्ध"^५ का उल्लेख मात्र है जो प्रयाग में हर्षवदत के सर्वज्ञ दान म नाम सेने वा रहे थे।

वस्तभी के सम्बन्ध में प्रसाद का उल्लेख इतिहास के अनुकूल है। स्मिथ लिखते हैं —

"पूर्वी वाठियाबाद में वस्तभी का राज्य मो-आ-वा एवं हीराष्ट्र के बीच था। वहाँ का शासक प्रबन्ध वा १४१ ई० में हर्ष ने

- (१) घर्मी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (स्मिथ) पृ० १४४
- (२) हर्षवर्धन एक सांस्कृतिक अध्ययन (पप्रवास) "मासव"
- (३) स्कंदगुप्त ११११
- (४) बहो ११११
- (५) राज्यधी ४१६८

कलात्मक धीर प्रयाग की समाप्त की। उनमें हूँ तमाय ने भाग लिया तथा बन्समी का राजा समुद्रगुप्त भी जाने समुद्र के समुद्र में था।^१

सिंहल या लंका की वर्षा केवल स्कन्दगुप्त नाटक में हुई धीर वहाँ रोमी लिए रक्षिणापय से होकर जाना पड़ा था^२ लंका के चारों नाम एक ही धर्म में पाये हैं। इससे केवल इतना पता चलता है कि लंका जाने के लिए रक्षिणापय से होकर जाना पड़ा था^३ लंका के निवासी पर्यन्त सिंहली जगज्जवन श्यामवर्ण के होते थे धीर उनके बाल बुधरासे होते

थे।^४ बहु बर्लन प्राकृतिक लंका से मिलता है। लंका में कभी राजन भी रहते होंगे इस धीर की संकेत किया गया है।^५ कुमारगुप्त क समय कुमारदास लंका के बुधरास के—धीर स्कन्दगुप्त धीर मातृगुप्त (कालिदास ?) से इनकी मंत्री थी।^६ भारत धीर सिंहल के बीच गहरा सांस्कृतिक संबंध था। बौद्ध धर्म के धार्मिक का स्वतः होने के कारण लंका निवासी भारत के प्रति पूजा मान रखत थे।^७

इतिहास से पता होता है कि सिंहल धीर गुप्त-माघाभ्य के सांस्कृतिक संबंध प्रयाग के नाम से ही थे समुद्रगुप्त के समय में मगधमें सिंहल का शासक था धीर उसने समुद्रगुप्त के पास बौद्ध मठ के बनवाने की आज्ञा देने के लिए उपहारों सहित एक शिष्ट मंडल भेजा था।^८ इसका समयत समुद्रगुप्त की प्रयाग की प्रकृति से भी होता है। सिंहल तथा अन्य द्वीपवासियों ने गुप्त मन्नाट समुद्रगुप्त को रक्षा—

“यस्य देवपुरपाहिपाहागुपाहि—सक—सुवर्णं सिंहल-बाधिभिरथ सभ-द्वीप-
बाधिभिराननिकेहन—कम्पोतायनदान—पल्पमईवत्स विषय मुक्तिनाशन (य) या
चनासुपाय—येवा हृत-बाहु—बोर्व—प्रथर - परणु—बग्मत्स पृथिव्याम् प्रति
रवत्स” —इत्यादि।^९

(१) धर्मी हिंदी भाषा इतिहास (स्मिथ) पृ० ३५२

(२) स्कंद० १।१८

(३) वही १।२५

(४) वही १।२५

(५) वही १।२५

(६) वही २।६१

(७) स्कंद० ५।१११

(८) धर्मी हिंदी भाषा इतिहास (स्मिथ) पृ० ३०५

(९) ईशवट इतिहास पृ० २१५—२२

काश्मीर का उल्लेख एकमात्र स्कन्दपुराण नाटक में ही हुआ है। प्रसार के अनुसार "वृष्णी की समस्त शक्ति का जहाँ प्रकृति ने अपने शक्ति के प्रथम से एक दिया है उस हिमाचल में काश्मीर बना है। उसकी राजधानी काश्मीर थी। यह मातृपुराण (कामिवास) की जन्मभूमि है।^१ कुमारपुराण के शासनकाल तक पाण्ड्यवंशी राजा वहाँ राज्य करते थे।^२ वृष्णी के प्रार्थक से यह स्नेहभावना देख कर छोड़कर मातृपुराण पुराण साम्राज्य की राजधानी मगध में बना दिया।^३ स्कन्दपुराण के शासन काल में पाण्ड्य वंशी राजा वहाँ नहीं रहे परत बेजसेना की प्राणरक्षा में सहायता के उपलक्ष में स्कन्दपुराण ने मातृपुराण को वहाँ का शासक बना दिया।^४ और काश्मीर साम्राज्य के अन्तर्गत हो गया। स्कन्दपुराण के समय ही काश्मीर पर वृष्णी के प्रारम्भ की संघर्षों का प्रसंग है।

काश्मीर के इतिहास के लिए प्रसार निम्न ही कहेंगे की राजतंगिणी के पत्नी हैं। राजा संभित के ४७ वें वर्ष में 'उसकी प्रजा उसके शासन से अलग पड़ने लगी क्योंकि शान्ति के लिए सतत प्रयत्नशील रहने के कारण वह राज्य के कार्यों से विमुक्त हो गया था। परत उसकी प्रजा के लोग एक नये और योग्य शासक की खोज में थे। उन्हीं दिनों बुध्दिकर का प्रपौत्र मोपादित्य पाण्ड्य राज के संरक्षण में था। उसका एक प्रत्यक्ष सुयोग्य पुत्र मेघनाहन था। उसकी बहती हुई गीत चारों ओर फैल कर काश्मीर तक जा पहुँची। काश्मीर के मन्त्रियों के प्रामाण्य पर मेघनाहन वहाँ गया और काश्मीर का शासक बना दिया गया। मीमन्मा ने जिन पाण्ड्य वंशी शासकों का उल्लेख किया है वे इन्हीं मेघनाहन के वंशज थे जो अस्तित्व पाण्ड्यवंशी न होकर केवल पाण्ड्यवंशी पालित थे।^५

मेघनाहन के उपरान्त उसके पुत्र अष्टिगण प्रवरसेन या तुषीर^६ ने ३० वर्ष तक राज्य किया।^७ उपरान्त हिरण्य^८ राजा बना। उसने किसी बात पर सट

(१) स्कंद० ४।११६

(२) वही १।२३

(३) वही ३।१०

(४) वही १।२२

(५) वही ३।११

(६) राजतरंगिणी, अध्याय २ पृ १४ १५ श्लो १४२ १४७ (पंक्ति)

(७) कश्मीर राजतरंगिणी (भाग० एक० पंक्ति) पृ० ६६ श्लोक १० तृतीय अंश

(८) वही पृ० ६६ श्लोक १०१ ,,

(९) वही पृ० ६६ ,, १०१

होकर अपने छोटे भाई तोरमाण को सब कर लिया । ऐसी स्थिति में ही २९ वर्ष १ माह तक राज्य की रक्षा कर हिरण्य पुत्रहीन श्री स्वर्गबानी हुआ । अपने पिता के निष्प्रभस्य से विद्रोह होकर तोरमाण का पुत्र प्रवरसेन द्वितीय तीर्थाटन को बना गया था । इस प्रकार अब पाण्डव बंती शासक न रहे तब पुन योष्य शासक की आज में उज्जयिनी के एकद्वय शासक महान् सम्राट् हर्ष विक्रमादित्य के पास गये । उन्होंने एक कवि मातृपुत्र पर प्रसन्न होकर उसे काश्मीर का शासक बना दिया ।^१ ऐसा प्रतीत होता है कि प्रसाद यज्जरग राजतरंगिणी का आधार लेकर बने हैं केवल राजतरंगिणी के सम्राट् हर्ष विक्रमादित्य को प्रसाद ने स्वयंपुत्र विक्रमादित्य मान लिया है, फलतः हमें हर्ष विक्रमादित्य और स्वयं विक्रमादित्य एक मान कर उसे उज्जयिनी का सम्राट् मानना पड़ता है । इतिहासकार इन लोगों बातों से सहमत नहीं । स्वयं के हर्ष नाम का कहीं उल्लेख नहीं है और न वह उज्जयिनी का राजा रहा । शासक-हीन काश्मीर को साम्राज्य के अन्तर्गत कर देने की वसुधा प्रसाद की अपनी है पर एकमुक्त है । मातृपुत्र को वही क शासक बना देना बहस के मतानुसार है ।

हिरण्य के भाई तोरमाण का उल्लेख पहले ही हुआ है । श्री पार ए० पण्डित के अनुसार तोरमाण तुर्षी नाम है ।^२ इतिहास में तोरमाण नामक एक हुए शासक का भी उल्लेख मिलता है^३ जिसने काश्मीर में शासन किया था (कब ?) संभवतः उस तोरमाण शब्द के कारण ही प्रसाद का ध्यान काश्मीर में हुएों के आक्रमण की ओर गया हो । प्रसाद ने काश्मीर पर हुएों के आक्रमण की बात बखर्य लिखी है,^४ पर सारे मात्रक में वही हुएों का अधिकार हो जाने की कही भी नहीं । इतिहास के अनुसार यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि काश्मीर पर हुएों का अधिकार कब हुआ था । संभवतः स्वयंपुत्र के समय में वसुधा उसके युद्ध ही दिन बाद यह आक्रमण हुआ हो । यज्ञोत्सव के समय में हुए शासक मिहिर कुल यज्ञोत्सव से पराजित होकर काश्मीर के शासक की जगह में आया और अपने हल से काश्मीर संभल पर अधिकार कर लिया । तोरमाण इसी मिहिरकुल का पुत्र था । काश्मीर का वसुधा शासक भी संभवतः हुए ही था ।^५

- (१) राजतरंगिणी पृ० १ ३ श्लोक १२४ तृतीय चरण
 (२) वही पृ ११ पुटनोट १०२ ..
 (३) बर्नी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया स्मिथ पृ ३३४
 (४) स्वयं ११२९
 (५) बर्नी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (स्मिथ) पृ ३३७

नगर और ग्राम

कथा-प्रसंग के नाम से मिली हुई प्रजातन्त्रु की भूमिका के अनुसार बरम
राष्ट्र की राजधानी कौशाम्बी थी जिसका अंबहूर जिला बोरा (करबी सब-डिवीजन)

में यमुना किनारे 'कोसम' के नाम से प्रसिद्ध है। उद्यम
कौशाम्बी हमी कौशाम्बी का राजा था। मुनि द्वारा भी गई "बीष्ठा
द्वारा हाथियों और खरों की बहुत-सी सेवा एकत्र करके उसने
कौशाम्बी को हस्तगत किया और अपनी राजधानी बनाया।^१ अरुचि ने यों
सहस्रान्तिक से कौशाम्बी के राजवंश का आरम्भ माना है। कहा जाता है इसी
उद्यम ने अरुचिका को बीठ कर उसका नाम उद्यमपुरी या उज्जयिनपुरी रखा।^२
निचल नामक पांडव बंसी राजा हस्तिनापुर के नंगा में बहू जाने पर कौशाम्बी
वध, उद्यम उषीसवी पीठी में उद्यम हुए।^३ गौतम ने अपना नवीं चातुर्मास्य
कौशाम्बी में उद्यम के राज्य-काल में व्यतीत किया • • • • ।^४

प्रजातन्त्रु नाटक के अनुसार उद्यम कौशाम्बी के राजा है^५ और मगध एवं
प्रबन्धी से उनका वैवाहिक सम्बन्ध है।^६ कथापरिस्तावर और भास हृत "स्वप्न
वासनवला दोनों से इन वैवाहिक सम्बन्धों की पुष्टि होती है और प्रसाद ने इस
साधारण की भूमिका (कथा प्रसंग) में स्पष्ट कर दिया है। कौशाम्बी और कौशल
भी आपस में मित्र राष्ट्र रहें होंगे। कौशाम्बी की राज्ञी पद्मावती के महान में गौतम
कुण्ड का सब निमन्त्रित हुआ था और उद्यम के अनुरोप पर उन्हींने कुछ दिन रहकर
वहाँ ब्रम का प्रचार भी किया था।^७

कौशाम्बी की स्थिति और उसके भौगोलिक या ऐतिहासिक स्वरूप पर
सम्पूर्ण नाटक में कहीं भी इतिहास नहीं किया गया है। कौशाम्बी बरम की
राजधानी थी ऐसा सम्मत् ज्ञानकों में भी मिलता है।^८ नाटक में बरमराष्ट्र

(१) प्रजात (कथा-प्रसंग)	पृ ६
(२) वही	पृ० ११
(३) वही	पृ० १२
(४) वही	पृ० १२
(५) वही	पृ० १६
(६) वही	११४१
(७) प्रजात०	११२०
८) वही	११४१
(९) नाटक	४२८ ११२६

का वहीं उल्लेख भी नहीं। उद्यमन वहाँ बल्लभराज नहीं कौशाम्बी-नरेश है। कुड के समय में कौशाम्बी प्रजाप ही मगधन महत्त्वपूर्ण मगरी रही होगी क्योंकि प्राकृत इमको कुड "परिनिम्बाल" के योग्य स्थानों में से मानता है।^१ विनय निटक^२ के अनुसार कौशाम्बी दक्षिण और पश्चिम से आने वाले कोसल और मगध के यात्रियों के लिए महत्त्वपूर्ण विश्रामस्थल था। मनोरथपूर्णा अगुत्तर टीका^३ तथा "पटिषम्भिशामना" टीका^४ में लिखा है कि बल्लभ निपल आने वाली मगध नियो यमुना में बनारस से कौशाम्बी तक ३० कोस धर कर जाती थी। अतः कौशाम्बी बनारस से तीस कोस पश्चिम में रही होगी।

बौद्ध ग्रन्थों में कौशाम्बी नाम के दो कारण बताये गये हैं।^५ प्रथम और अधिक प्रचलित कारण यह है कि श्रुति कुमुन्ध या कुमुन्न के प्राथम में अथवा उनके अग्रज कौशाम्बी बसायी गई थी। दूसरा यह है कि विद्यालयाय (कौसम्भस्वय)।^६ कोसल के बृहन्न नगर में चारों ओर प्रचुर परिमाण में था।

लंका की प्राचीन पुस्तकों में भी कौशाम्बी प्राचीन भारत के १६ प्रमुख नगरों में से एक माना गया है।^७ बौद्ध साहित्य में सूचिन बोद्धम महाजनरदों में बल्ल अथवा बंज का उल्लेख करते हुए भी त्रिशाठी^८ कौशाम्बी या कोसम्बी को उनकी राजधानी मानते हैं और उनकी स्थिति इमहाबाद से ३० मील दूर प्राकृतिक कोसल में मानते हैं। प्रसाद ने भी इसे ही कौशाम्बी माना है।^९

अजयगढ़ नामक के अनुसार कुड के जीवन काल में भादस्ती कौशल की राजधानी थी।^{१०} भादस्ती से कुड और बौद्ध धर्म का पर्याप्त प्रभाव था।^{११} महाराज

(१) विनय १।९७७

(२) विनय १।९७७

(३) विश्वजली भाष्य पाली प्रीयर नेम्ब पृ १६२

(४) वही-पृ १६२

(५) वही-पृ १६२

(६) "मारमोसा टी"

(७) एशियाई जीसापी भाष्य इंडिया—कतिबन पृ ४४८

(८) प्राचीन भारत का इतिहास—डा रमार्थकर त्रिशाठी

(९) अजयगढ़ नाम प्रसंग ६

(१०) अजयगढ़ २।१००

(११) अजयगढ़ २।११—१

प्रदेनजित उम दिनों कोयस के राजा थे ।^१ विष्णु पुराण के अनुसार थावस्ती भावस्ती का निर्माण सूर्यवती राजा युवनाश्व के पुत्र राजा भावस्त ने किया था ।^२ भावस्ती के इतिहास का विवरण देते हुए कनिष्क विषये है—“बुद्ध के समय में यह महाकोशम के पुत्र राजा प्रदेनजित की राजधानी थी ।”^३ भावस्ती का उल्लेख बज्रुत से जातकों में भी मिलता है । यह बौद्ध-काल की सर्वश्रेष्ठ महानगरियों में से एक है । भगवान् बुद्ध ज्ञान प्राप्ति से पूर्व एव उसके उपराज भी थावस्ती में रहे थे । राजा प्रदेनजित उनके अत्यन्त मत्तो में से एक था ।

पावा धीर उसके “अमृतसर” का उल्लेख केवल एक स्थाग पर “अजातशत्रु” में हुआ है ।^४ पावा मत्तों के राज्य में था, धीर उसका “अमृत सरोवर” पावा पाँच छी प्रधान मत्तों से सर्वत्र रक्षित रहता था । दूसरी बात का कोई भी उसमें जल नहीं पीने पाता था ।^५ पावा में ही बन्धुत ने छी मत्तों से अकेले बुद्ध किया धीर मत्तिका उस सरोवर का जल स्वेच्छा से पान कर कोमल भीट पाई ।^६

कनिष्क ने पावा के मत्तों के राज्य को वर्तमान पड़रौना में माना है ।^७ किन्तु अग्य ऐतिहासिकों ने मत्तों की राजधानी कुशीनवर से पूर्वोत्तर १० ११ मील की दूरी पर सठियाँ नामक स्थाग के पास पान मानी है । पावा नगरी को भी नहीं होना चाहिये ।^८ लका के इतिहासकारों ने पावा नगर को बुद्ध का अन्तिम स्थान बताया है । वहाँ ने कुशीनवर में निर्वाण प्राप्त करने के पूर्व रहे थे ।^९ काश्या क अनुसार सिद्धवि धीर बुद्ध तप के अष्टकला में से एक मत्त भी थे । वे कुशीनवर के रहने वाले थे धीर पावा उनकी राजधानी थी । प्रसाद ने जिस पावा के अमृतसर की बात ही है उसका उल्लेख जातकों में इस रूप में मिलता है — “.....धीर उसकी मत्तिका) बोद्ध-कालना थी कि वह उम कमल-शाल में प्रवेश कर उसका जल पान करे जिसका उपयोग शैबाली क राजकुमार अपने राज्यारोहण के समय ही कर

- (१) अजात० १।६१
- (२) विष्णु पुराण (विस्तार) ४।३
- (३) ऐ शिए ट बीडाफी पाफ इ डिया (कनिष्क) पृ ३६०
- (४) अजात० २।७४
- (५) अजात० २।७४
- (६) वही २।७३
- (७) कनिष्क पृ ४६७-६८
- (८) धारि भारत (काश्या) पृ १३८
- (९) कनिष्क पृ ४६७

सकते हैं। (उसकी इच्छा पूरी करने के लिए) बरबुल उसे बीगाली ले गया”-----
 जब लिच्छवि राजकुमारों ने यह सुना तो वे घबराए हुए और उन्होंने बरबुल के
 रूप का वीक्षण किया।^१ प्रसार द्वारा नृपति सौ मस्तों के स्थान पर इसमें पांच सौ
 लिच्छवियों का उल्लेख है।^२

सम्भव है बीगाली के कमल-नाम से ही प्रसार ने पाबा क प्रभूत घर का संबंध
 जोड़ा हो।

कपिलवस्तु का नामोस्मरण केवल एक स्थान पर, अर्थात् बरबुल नाटक में हुआ है।
 मल्लिका विद्वज्ज पर बोधारोपण करती है— ‘मुझे कपिलवस्तु के निरीह शानियों का
 किसी भूज पर निर्दयता से बंध किया।^३ नाटक से इतना
 कपिलवस्तु। पता प्रकृत्य पत जातः है कि कपिलवस्तु शाक्यों का नगरी थी
 वही विद्वज्ज की तनिहाम की।^४ विद्वज्ज माता राजकन्या न
 होकर एक दासी पुत्री थी।^५ शाक्यों ने प्रसेनजित के साथ छत्र किया। विद्वज्ज ने
 अपनी माता को इसी प्रपमान का प्रतिशोध लेने के लिए शाक्यों का निर्दयता पूर्वक
 महार किया।^६

कपिलवस्तु का उल्लेख जातकों एक अन्य बौद्ध ग्रन्थों में प्रचुरता से
 मिलता है। कपिलवस्तु पीठमबुद्ध की जन्मभूमि थी और वहाँ शाक्यकुमार जन दिनों
 प्रसेनजित के शाकीय थे।^७ कपिलवस्तु हिमालय की तराई में बसा है।

एक बार कपिलवस्तु जाने पर विद्वज्ज को घनायास ही यह पता चला कि
 उसकी माँ दासी पुत्री थी और उनके पिता के साथ उनका विवाह जोड़े में कर दिया
 गया था। उसने इसका प्रतिशोध लेने का प्रसन्न किया। सिंहासशाक्य होने पर जब
 वह एक बड़ी सेना लेकर कपिलवस्तु पर घाबमस करने को बढ़ा तो उसे उपागत
 शाक्य की सीमा में लगे हुए एक ठूठ-बुध के नीचे लड़े मिले। विद्वज्ज की सीमा में
 एक दरवार का विद्याम और छायादार बस था। विद्वज्ज ने ठूठ के नीचे लड़े तथा
 गठ से छायादार दरवार के नीचे बैठने की प्रार्थना की। तथागत ने कहा—“घात
 विद्या न करे मुझे अपने बांधवों की छाया ही कीतलता प्रदान करती है।” इस पर
 विद्वज्ज लौट गया। दूसरी बार भी यही बात हुई। तीसरी बार शाक्यों का विनाश

(१) विजयनरी घाट पाली प्रोपर मैन्स—‘बरबुल पृ २६६

(२) वही पृ २६६

(३) अजात ३ ११६ (४) वही ११२२ (५) वही ११२२

(६) अजात ३ ११६ अजात ११२३ ४११४

(७) विजयनरी घाट पाली प्रोपर मैन्स—विद्वज्ज—पृ ८७६-७७

प्रबन्धमायी जानकर उबागत उसके मार्ग से हट गये और उसने बिना विचार बिने
बाण्यबन्ध के स्त्री बन्धों तक का संहार कर डाला ।^१

बन्धमुक्त नाटक में लक्ष्मिणा एक महत्वपूर्ण स्वर्ण है । लक्ष्मिणा भारत
के उत्तर-पश्चिमी सीमा पर गांधार राज्य की राजधानी थी ।^२ सिन्धु गांधार
राज्य की पश्चिमी सीमा है ।^३ और विद्युता जमनी

लक्ष्मिणा

पूर्वी सीमा ।^४ इन दोनों नदियों के बीच में ही कहीं
लक्ष्मिणा की स्थिति की कल्पना की जा सकती है ।

प्रसाद ने लक्ष्मिणा को एक महान बिना केन्द्र माना है । बरहनि घोर बालुनय जैसे
दिशावी इसी पुच्छुन के स्नातक थे ।^५ इस पुच्छुन की व्याप्ति इतनी ऊँची थी कि
लक्ष्मिणा का स्नातक होना गौरव की बात समझी जाती थी । तत्कालीन राजनीति
की दृष्टि से भी लक्ष्मिणा का महत्व कम नहीं था । गांधार भारत का द्वार रक्षक
सम्बन्ध जाता था^६ और इसकी राजधानी होने के कारण भारत की उत्तर-पश्चिमी
सीमा की रक्षा कर भारत लक्ष्मिणा पर ही था । सिक्न्दर के शासन के समय
लक्ष्मिणाबीच प्राचीन ने पुच्छुन स्वर्ण पाकर शासनकारियों का साथ दिया और
इस प्रकार प्रायवर्त का यह भू-भाग द्वार विदेशियों के लिए खोल दिया । कालान्तर
में प्रायवर्त का यह भू-भाग बन्धमुक्त मौर्य के साम्राज्य का एक अंग बन गया ।^७

लक्ष्मिणा का सम्बन्ध महाभारत में भी मिलता है । अममेजय ने इसको विजय
किया था * बुद्धकालीन पौडक जनपदों में गांधार जनपद और उसकी राज
धानी लक्ष्मिणा की बर्णना हुई है ।^८ प्लिनी के अनुसार लक्ष्मिणा नगरी पुच्छुनावती
से ६० रोमन मील (बर्तमान २३ मील) दूरी पर निम्न समतल क्षेत्र पर बसे हुए
अमन्द (Amarda) नामक शिखर में थी ।^९ एरियन इसे सिन्धु और अमेज के बीच
के प्रदेश का सबसे बड़ा नगर मानता है ।^{१०} राय चौधरी इसका समर्थन करते हुए

(१) बन्धपर अट्टकया १।३४६-६ ३३७-६१ प्रबन्धान कल्पिता ११वाँ पस्तक

(२) अट्ट० १।५२

(३) बही १।६४

(४) बही १।२६

(५) बही २।११३

(६) बही १।२२०

(७) महाभारत (पारिवर्त) १।६८२-८३ ८३१-३४

(८) प्राचीन भारत का इतिहास—भार० एस० त्रिपाठी पृ० ४३

(९) प्लिनी ६।२३

(१०) एरियन (इन्वेन्टन) पृ० ८२—पैरिडस

लिखते हैं कि तलछिमा का राज्य गाँवार के प्राचीन राज्य का पूर्वी भाग था। स्ट्राबो इस प्रदेश को पत्युप्ट उरबाऊ धीर बना बसा हुआ मानते हैं।^१ यूनानी इतिहासकारों के अनुसार ई० पू० ३२७ में "टेन्साइस" तलछिमा के सिंहासन पर था और उसके पश्चात् "पाम्पी" (पाम्पीक) वहाँ का राजा हुआ।

अश्वघुप्त की भूमिका में प्रसार ने स्पष्ट लिख दिया है—“तलछिमा नगरी मयनी उग्रति की पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी। वहाँ का विभवविद्यालय पाणिनि धीरे धीरे ऐसे छात्रों का शिक्षक हो चुका था—.....”^२ जाटकों के अनुसार भी तलछिमा भारतीय विद्या धीरे संस्कृति का केन्द्र रहा है।^३ स्मिथ लिखता है—“तलछिमा उन दिनों पूर्व की सबसे बड़ी नगरियों में से थी और यहाँ उत्तरी भारत का एक प्रयात विद्यापीठ था जहाँ सभी जातियों के विद्वान विद्या प्राप्ति के लिए एकत्र होते थे।”^४

अश्वघुप्त नाटक में बरबरि पाणिनि को "शासातुरीय बयानकरण" कह कर उनके जन्म स्थान "शासातुर" की धीरे संकेत करते प्रतीत होते हैं।^५ पाणिनि ने स्वयं एक सूत्र में शासातुर का उल्लेख कर उक्त स्थान की प्राचीनता सिद्ध की है। इसी आधार पर इतिहासकार शासातुर को पाणिनि का जन्म स्थान मानते हैं।^६ जूनरॉय ने इसको "सोलो-नु-नो" लिखा है और इसे उ-नो-किमा-इन-नो (जो हिंद) के उत्तर-पूर्व बीच "सी" (३३ मील) दूरी पर बताया है।^७

कुमुमपुर अश्वघुप्त एवं स्कंदपुराण की अनेकानेक बटनाओं का केन्द्र है। इन दोनों नाटकों में प्रसार ने कुमुमपुर के लिए पाटलिपुत्र का भी प्रयोग किया है। अश्वघुप्त नाटक के अनुसार पाटलिपुत्र नगरी मयन शासातुर की कुमुमपुर या राबबाली थी जो गंगा धीरे सोण के संयम पर बसी हुई थी। पाटलिपुत्र। इस प्रदेश के लिए "प्राच्य" शब्द धीरे यहाँ के निवासियों के लिए "प्राच्य" मनुष्य का प्रयोग भी प्रसार ने किया है। मयनी समृद्धि धीरे वैभव के कारण पाटलिपुत्र या कुमुमपुर "महानगरी कुमुमपुरी" कहासती थी।

(१) स्ट्राबो (भूविज्ञान) पृ० २३

(२) अश्वघुप्त (भूमिका) पृ० २८

(३) नाटक २।२२, २६

(४) मनी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (स्मिथ) पृ० ६५

(५) अश्वघुप्त ४।२०४

(६) वही ४।१६३

(७) अश्व० १७५, २।११६

नंद महल राजा के कठोर शासन काल में भी यह नगरी संगीत और नर्तकियों का वैभव की कुसुमपुर के राजपक्ष, सरस्वती मन्दिर उपवनों और उद्यानों के से उल्लेख वहाँ के वैभव का चित्र नेत्रों के सामने स्पष्ट सा जाता है। कुसुमपुर पुस्तों की श्रेणी में ऊँच रहा है।^१—बाणभय की यह उक्ति कुसुमपुर के विनास की सुन्दर व्यंजना करती है। बाणभय सैनिकों को बंशिकों के रूप में कुसुमपुर में प्रवेश कराना चाहता है।^२ इच्छे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह नगरी उत्कालीन भारत के बाणभय का केन्द्र रही होगी और बंशिकों को एक स्वाम से दूसरे स्वाम में जाने की पूर्ण सुविधाएँ रही होंगी। कुसुमपुर का एक सुदृढ़ दुर्ग था और वहाँ सैन्य शक्ति भी अत्यन्त प्रबल थी। इसी से बाणभय की कृत्स्न नीति क झोठे हुए भी अक्षरों को उसके ध्वंस और नष्ट पराजय पर संदेह हुआ।^३

स्कन्दपुराण नाटक के अनुसार भी कुसुमपुर मगध साम्राज्य की राजधानी की कुसुमपुर के ऊँचे शीघ्र मन्दिर, समस्त बसती हुई कासायुध पारसीक मन्दिरों के मध्य में अत्यन्त धार्मिक विनास यहाँ के मणिरत्न मन्थार मुत्तवाजीन कुसुमपुर की समृद्धि और उसके वैभव विनास की कहानी कहते हैं।^४ यहाँ के मनुष्यों के लिए विनास के उपकरण बिखरे रहल पर भी अपर्याप्त है। प्रसार के अनुसार मुत्तवाजीन में अयोध्या को भी मगध साम्राज्य की एक और राजधानी होने का वीरव मित मया था और अजयपिनी में स्कन्दपुराण के राज्याभिषेक के साथ तो कुसुमपुर का महत्त्व बहुत कम हो गया था।^५

कुसुमपुर और पाटलीपुत्र को समानार्थक सिद्ध करने के लिए प्रसार ने यह पुस्तक की भूमिका में लिखा है—“त्रिकाश्रयेण और हेमचन्द्र प्रक्रियान में तथा मुद्राराक्षस में पाटलीपुत्र के दो और नाम पाये जाते हैं कुसुमपुर और पुष्पपुर। चीनी यात्री भी इन नामों से परिचित था कि जिसप्रियंज' और 'दाहिमान' में इसका विवरण है।^६

मेगस्थनीज के विवरण के आधार पर पाटलीपुत्र की भौगोलिक स्थिति के बारे में प्रसार लिखते हैं—“गंगा और कोण के तट पर मीर्य राजधानी पाटलीपुत्र बना था। मगर २० स्टेडिया लम्बा और ३० स्टेडिया चौड़ा था। दुर्ग में १४ द्वार तथा २७० दुर्ग थे। शीघ्र धेणी राजमार्ग सुबिरहृत पथ्य कीपिका से नगर पूरा था और व्यापारियों की दुकानें अर्धघी प्रकार से सुसज्जित और सुसज्जित रहती थीं। भारत की केन्द्र नगरी कुसुमपुरी भारतव में कुसुमपुरी रहती थी। सुसज्जित नगरों में अन्तर्गत लोग शायद राजमार्ग में दातायात किया करते थे।”^७ द्वितीयप्रेत में लिखा है—“अस्ति मागीरसी तीरे पाटलीपुत्र नाम नगरम्” पर चीकों ने गंगा और हिरण्यवाहा के तट पर अक्षरों को लिखा है। इन्हीं मुद्राराक्षस “गोण सिन्दूर जोना मगधपथय” पश्चिमि तट से जात होता है कि यह शोध व गंगा के तट पर था।^८

अर्थात् नाटक में प्रसार ने स्पष्ट ही गंगा और कोण के तट पर पाटलीपुत्र की स्थिति मानी है तथापि भूमिका के उद्देश्यों से पाटल सत्तमन में पड़ जाता

- (१) अ० ११० (२) अ० ११७२ (३) वही ११७३
 (४) स्कन्द० १११० (५) अ० २१७८ २९ (६) अ० (भूमिका) पृ० ४१
 (७) अ० (भूमिका) पृ० ४० (८) वही (भूमिका) पृ० ४३

कि यह गंगा तट पर या या गंगा या हिरण्यवाह के समकालीन अवस्था में लट पर । कनिष्क की टिप्पणी के आधार पर पाटलिपुत्र की स्थिति गंगा घोर 'एराना बोध्यास' के समकालीन मानी गई है । यह समकालीन तब स्वयं पर माना जाता था जहाँ गण्डक घबका हिरण्यवाही पटना के पास गंगा से मिलती । परन्तु रबेनली ने निम्नलिखित कथ से यह सिद्ध कर दिया है कि गंगा का समकालीन पटना के ठीक ऊपर होता था । अपने विस्तृत विवेक में बासुकामय तट के कारण गंगा की हिरण्यवाहा भी कहा जाता है । प्रथम यूनानी शब्द 'एराना बोध्यास' अपनी स्थिति और नाम साम्य दोनों दृष्टियों से हिरण्यवाहा का ही अर्थ प्रतीत होता है । शेष का हिरण्यवाह पर्याय रूपक तट से भी मिलता है । प्रथम पाटलिपुत्र प्रसाद की यह भावना इतिहास सिद्ध है कि पाटलिपुत्र 'गंगा घोर गंगा के समकालीन' कहा था ।

यूनानी इतिहासकार एरियन के अनुसार 'प्रसियना (प्राचीन) के राज्य में स्थित 'पतिबोध्यास (पाटलिपुत्र) भारत का सबसे विभास नगर था ।' एरियन के लेख पर अपनी टिप्पणी देने हुए मैक्समूलर लिखता है—'गौतम बुद्ध के समकालीन काल में गंगा के मुहाने से सिन्धु के तट पर सुदूरवर्ती प्रदेश तक फैला हुआ था 'अशोक' इस समय भारत का एकमात्र सम्राट् थे । एरियन और स्ट्राबो ने महात्त्वकीय के आधार पर पाटलिपुत्र की महत्ता और विद्यालया का जो विवरण किया है उससे यह ज्ञान होता है कि यह नगरी इन विद्यालयों का प्रायः ही राजधानी होने के लिए बनीया उपयुक्त थी । यद्यपि घोर के समय पर तथा गण्डक के समकालीन दूसरी ओर स्थित होने के कारण यह नगरी स्वभावतः वाणिज्य और व्यापार का महान् केन्द्र हो गई थी और उत्तरोत्तर इसका ऐश्वर्य और समृद्धि भी बढ़ि होती जा रही थी ।' ऊपर एरियन ने मयवधासियों के लिए 'प्रसियन शहर का प्रयोग किया है । पाटलिपुत्र के अनुसंधानों की प्रकृता के कारण कनिष्क 'प्राचीन' की व्युत्पत्ति 'पसास' शब्द से मानते हैं । (पसास परास प्राप्त प्राचीन) पर प्रसाद ने स्पष्ट ही इसका प्रयोग 'प्राच्य' या 'पूर्व' के अर्थ में किया है । याव ही पीक प्रयोग के अनुकरण में भी ।'

प्रसाद के समस्त ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसंधान से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाद नगरी के काल तक कुमुदपुर का विशेष ऐतिहासिक महत्त्व नहीं हो पाया था । मीथनाल तक पहुँचते पहुँचते यह नगरी उत्कल की पराजय तक पहुँच गई थी । मुत्तकाल में इसके ऐश्वर्य और समृद्धि में तनिक भी कमी न आई । यह धन भी गण्डक साम्राज्य की राजधानी बनी रही । पर मयोप्या और उज्जयिनी का महत्त्व बढ़ गया । इतिहास प्रसाद का समर्थन करता है । समय के अनुसार समुद्रगुप्त की विजय के पश्चात् मगध की राजधानी रहते हुए भी पाटलिपुत्र गुप्त शासकों का निवास स्थान नहीं रहा । वाचनी शरी में प्रयोग का गुप्त साम्राज्य का मुख्य नगर बन गया । परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि पाटलिपुत्र के समय का जो विश्व स्तर

- (१) ऐथोपेट बोध्यासि भाष्य इण्डिया (कनिष्क) मोहन पृ० ३१८
 (२) जनस भाष्य एणपाटिक सोसायटी भाष्य बयान—बी १५।२७ (वैदिक रचनाओं का लेख) () ऐतिहासिक इण्डिया—मैक्समूलर पृ० २०६ (४) बहीपृ० २११—१२
 पुट मोट (३) कनिष्क पृ० ३१८ (७) बही १७६ (९) पृ० ५।२२०
 (८) प्रभा. हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (सिमस) पृ० ३०६ ६) बही (सिमस) पृ ३१०

गुप्त' में मिलता है वह ठीक नहीं। इतिहासकार स्पष्ट लिखते हैं कि गुप्तकाल में पाटलीपुत्र की जनसंख्या घोर बीमब में कोई भी कमी नहीं आई थी।

'अश्वगुप्त' नाटक में पिप्पली कानन' मीरों के स्थान का निर्देश करता है। प्रेमिका में प्रसार लिखते हैं— यह मोरियों का नगर पिप्पली-कानन का और पिप्पली कानन के मीरों गुपति लोग भी बुद्ध के शरीर-मस्त पिप्पली कानन। क मान लेने वालों में एक थे।^१ क्षमसाय व पशुध्यान के यात्रा विवरणों के आधार पर कनिष्क लिखते हैं—'शोनों बीनी यात्री पिप्पली-कानन में बुद्ध के मस्माधरोपों पर बने हुए स्तूप के दर्शनो के लिए गये। प्रवेशो के लिए प्रार्थना करने में शिलम्ब हो जाने के कारण इस नगर के मोरियों को केवल बुद्ध के शरीर की मस्त सेवा ही संस्तोप करणा पड़ा।^२ प्रथम इस नाम का कोई स्थान नहीं मिलता प्रसार मीरों की प्रथम राजधानी मानते हैं।^३

'अश्वगुप्त' नाटक में उद्भाण्ड का केवल इतना ही उल्लेख है कि मासिका में उद्भाण्ड में सिन्धु पर पुन बसते देखा और उसका मानचित्र ले लिया।^४ स्पष्ट है कि गान्धार राज्य (तक्षशिला) की सीमा पर ही सिन्धु के तट उद्भाण्ड। पर कोई स्थान उद्भाण्ड कहसाता होगा और सिन्धु के धारक्रमण के समय गान्धार में उसकी मित्रता हो जाने पर सिन्धु की घना में उद्भाण्ड में कोई पुन बनाया होना जो गान्धार को सिन्धु के उस तट के बीच उपनिवेश से मिसाता होना।

पाणिनि काशीन भारत पर विचार करते हुए डा० प्रबला उल्लापन के बीच पढ़ने वाले स्थानों में उद्भाण्ड का उल्लेख भी करते हैं वहाँ पर व्यापार का सामान (भाण्ड पाणिनी ११२०) सिन्धु के पार पहुंचाने के लिए उठाया जाता था।^५ उद्भाण्ड का विवरण कश्मीर की राजतरंगिणी में भी मिलता है।^६ कनिष्क के सम्राज्य इनको सिन्धु के उत्तरी किनारे पर मानते हैं। यद्यपि यह नगर सिन्धु के पूर्वी घोर तक्षशिला के प्रवेश में न होकर उसके राज्य की सिन्धु परवर्ती सीमा पर रहा होना।

एरियन सिन्धु पर डा० सिन्धु पर एक पुन बाने जाने का उल्लेख करता है।^७ उस स्थान या नगर को 'घोह्व' माना गया है। कनिष्क के अनुसार यह पुन उद्भाण्ड पर ही बाधा गया था।^८ प्रसार ने भी इसी दृष्टिकोण को अपनाया है। पाणिनिकाल में उद्भाण्ड ही में सिन्धु के धारधार व्यापार होता था। वहाँ पर नावों का एक पुन भी था यद्यपि वहाँ पुन बनाया जाना बहुत स्वाभाविक है।

गान्धार के उपश्व के विषय में खर्चा करते हुए कार्यापन ने बाहरीक का उल्लेख कर दिया है।^९ नाटक से इनके बारे में घोर कोई विशेष परिचय नहीं मिलता है। बाहरीक शीलों का वैदिक-श्रद्धेय घोर धार्मिक बन्ध है। एतु की

- (१) अश्व १।१६ २) अश्व० (पुमिका) पृ० ११ (३) कनिष्क—देखिए पिप्पली-कानन' (४) वही (५) अश्व० (पुमिका) पृ० ११ (६) अश्व० १।८१
(७) इतिहास एव नोन डू पाणिनि (प्रबला पृ० २५२
(८) कश्मीर-राजतरंगिणी—(पार० एव० पंडित) पृ० १००/१५२ ५२
(९) ऐनाइदिस-एरियन ४।१८ (१०) कनिष्क-पृ० ११ नोट १७७
(११) अश्व० ४।२१३

बास्तीक विभिन्नय के प्रसंग में कालिदास के टीकाकार श्रीरसामी लिखते हैं—'बास्तीकदेशजं (बास्तीकम्) यदधोरत्तर दिग्भिजये पुत्रुपुर बाजिन स्कथास्सगममुत्तमसेसरात्'।^१ बास्तीक में बंधु तथा प्रवाहित होती है जिसका विवरण मयियों के प्रसंग में था हुआ है।^२ प्रायः बसव नृपुत्त सम्राट समुद्रगुप्त ने भी बास्तीक को विजय किया था।

'अश्वमेध' नाटक में कविता का स्वतन्त्र रूप से उल्लेख नहीं है। बतुर्भ घट्ट के सातवें हृष्य की बटना कविता में एम्मेजेट्रिया के राज 'कविशा मन्दिर' में बटित होती है।^३ स्कन्दगुप्त नाटक में भी 'कविशा को खेत हूणों ने पराजित कर लिया है।^४ मेघन इतनी सूचना भर देने के लिए कविता का नाम प्राया है।

जिगी के अनुसार कविता प्राप्त की प्राचीन राजधानी कविशा को फारस के राजा शिरस ने ब्रह्म कर दिया था।^५ टोलेमी कविशा को काबुल के उत्तर में बटाटा है।^६ पाणिनी के अनुसार भी काम्बोज के बलिष्ठ में कविशा राज्य की राजधानी कविशी थी। डा० प्रबवाल हिन्दुकुल के बलिष्ठ पूर्व प्राकृतिक वापिरि स्वान को कविशा कहते हैं।^७ अब प्रलय यही है कि कविशा में एम्मेजेट्रिया से प्रसाद का क्या अभिप्राय है ? श्रीक इतिहासकारों के धाबार पर कनिधम लिखते हैं कि सिक्खर के हिन्दुकुल की घाटी एम्मेजेट्रिया नगर बसाया था। एम्मेजेट्रिया की ठीक स्थिति कहीं भी नहीं हो पर हिन्दुकुल के बस्तेख से इतना तो निश्चय ही कहा जा सकता है कि कविशा में ही कहीं सिक्खर ने यह नगर बसाया होगा। जिगी के धाबार पर कनिधम ने कविशा में इसकी स्थिति को निर्धारित कर दिया है।^८ कविशा को खेत हूणों ने पराजित किया था यह बात भी इतिहास सम्मत है। हूण लोग ईस्वी सन् ४५२ तक बंधु के तट पर बस चुके थे और उसी काम में काबुल विजय कर उग्रहाने भारत पर भी आक्रमण किया। स्कन्दगुप्त ने हूणों के इस प्रथम आक्रमण को विफल कर उन्हें पुनः बंधु तट तक लदेड़ दिया।^९

परसिपोसिस का एकमात्र बस्तेख सिक्खर के इस भाष्य में है— एलिशाके टीज फिर तो परसिपोसिस का राजमहल छोड़ने की आवश्यकता नहीं।^{१०} परसिपोसिस फारस की राजधानी थी। इस नगरी की ३३० परसिपोपोलिस। ई पू में सिक्खर ने विजय किया था।^{११} और डेरियस के सिंहासन पर बैठने के उपरान्त सिक्खर ने परसिपोसिस पर अधिकार कर एलेस की एक पसिका प्राया के कहने से परसिपोसिस के राजमहल में प्राय लगा दी थी।^{१२}

बाणभय ने अनुसार 'दक्षिणावत का स्वर्णमिदि'।^{१३} बन्धुगुप्त के राज्य की

- (१) इण्डिया इन कालिदास (उदाह्याय) पृ० २१ (२) वही पृ २१
 (३) बन्धु ४।२३४ (४) स्कन्द १।११ (५) 'कविशी'—जिगी
 ४।२४ कनिधम (६) देखिए कनिधम पृ० २१ (७) इण्डिया एज मोनट्ट पाणिनी
 (प्रबवाल) ३० पृ २१ (८) कनिधम—पृ २२ २६-२७—एम्मेजेट्रिया
 (९) 'आहत हम्म प्राक प्राक्मस बीसी' ए डी ४३२-४४
 —मर्ली हिन्दू प्राक इण्डिया (सिन्ध) पृ० ३३४ (१०) बन्धु० २।१११
 (११) ऐसिएण्ड इण्डिया पृ ३० (१२) वही (१३) बन्धु० ४।२१६

सीमा है। स्वर्णगिरि का उल्लेख प्रथोक के विज्ञानसेवकों में मिलता है। स्मिथ उक्त नगर की स्थिति रायपुर जिले के मस्को नामक स्थान में मानते हैं। वहाँ प्रथोक का एक विज्ञानसेवक भी प्राप्त हुआ है। प्रथोक के समय में वहाँ सम्राट के प्रतिनिधि का स्थान था।^१ पर यह तो निश्चय है कि यह दक्षिणी सीमा प्रथोक ने नहीं बनाई। इसका भेय वा चन्द्रगुप्त को दिया जा सकता है या बिम्बुसार को। कुछ इतिहासकारों के आचार पर प्रसार चन्द्रगुप्त को ही यह भेय देते हैं।^२

‘मासक और उद्योगिता की सेवा हिरात क पत्र में लड़ी है। सीटना प्रथमक है’।^३ हिरात में प्रायके जो प्रतिनिधि रहेंगे उनसे समाचार मिलने पर और भी सहायता के लिये भार्यावर्त प्रस्तुत है’।^४ इन दो वाक्यों में हिरात हिरात का उल्लेख हुआ है। प्रसार के अनुसार सिन्धुकुस और चन्द्रगुप्त का यह कुछ सिन्धु तट पर हुआ। सिन्धुकुस की सेवा सिन्धु के पश्चिम में रही होगी तथा चन्द्रगुप्त की सेवा उसके पूर्व में। यद्यपि हिरात सिन्धु के पश्चिम का ही प्रवेश होगा। इतिहास के अनुसार हिरात पीकों का परिचायक है। स्टाबो एपियन प्लूटार्क अस्टिन और फ्लिनी सभी लिखते हैं कि चन्द्रगुप्त के सचिव हो जाने पर सिन्धुकुस ने उसे प्रायः एक काबुल (पैरोपनिथी) हिरात (परिया) कम्बार (ऐरेकोसिया एव मकरान (नेइरोसिया) की अन्वेषिया है ही।^५

उज्जयिनी के सम्बन्ध में स्कन्दगुप्त नाटक से केवल इतना ज्ञात होता है कि यह निरा के तट पर मासका प्रवेश की एक प्रसिद्ध नगरी थी^६ और महाकाम का प्रसिद्ध मन्दिर यहीं था।^७ मासकेस बन्धुवर्मा ने उज्जयिनी में स्कन्दगुप्त का राज्याभिषेक कर त्याग का एक उज्जयिन उन्नाहरण उपस्थित किया। स्कन्दगुप्त नाटक में ही प्रथम मासक की राजधानी बलपुर का उल्लेख है और इसका समर्थन कुमारगुप्त^८ के मगधौर क शिलालेख में भी होता है। तब क्या उज्जयिनी ही मासक की राजधानी थी? प्रसार इस सम्बन्ध में मौन है। परन्तु इन मासक के प्रसंग में बतला चुक है कि उज्जयिनी में गुप्त साम्राज्य के सम्राट का प्रतिनिधि रहता था—बयाद में भी इस बात का संकेत किया है।^९ उज्जयिनी मासक या घबली की राजधानी के रूप में तथा य विख्यात रही है। परन्तु जिस मासक का प्रसार में उल्लेख किया है उसका सम्बन्ध बन्धुवर्मा से है और बन्धुवर्मा कुमारगुप्त के ज्ञान प्राप्त में बलपुर का शासक था। यद्यपि प्रसार का उज्जयिनी को गुप्त साम्राज्य का एक शासक-रूप मानना स्थापित ही है। सीधेनाम से ही उज्जयिनी सम्राट के प्रतिनिधि का स्थान रही है।^{१०} और प्रसार के स्कन्दगुप्त की ही तरह प्रथोक अपने पिता के जीवन-काल में बहा का शासक रहा। उनकी मृत्यु का समाचार भी उसे नहीं मिला था।^{११}

उज्जयिनी को स्कन्दगुप्त की राजधानी बनाने का कारण भी स्पष्ट है।

- (१) धनी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (स्मिथ) पृ० १५० (२) वही पृ० १५६
 (३) बन्धु० ४१२४० (४) वही २१२४६ ५) धनी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया पृ० १५८ (६) इण्ड० २१०० (७) वही २१०२
 (८) सीसेक इन्फिक्जन्ड नं० २१ पृ २६० (नरकार) (९) स्कंध ११६
 (१०) धनी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (स्मिथ) पृ० १६३ (११) वहीपृ० १६३

प्रसाद 'स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य का सम्बन्ध शाकारि विक्रमादित्य से जोड़ना चाहते हैं, जिसे कच्छु ने 'हर्ष विक्रमादित्य' लिखा है।' और सम्भवतः जिस विक्रमादित्य के बरबार में कालिदास रहता था।^१ मातृगुप्त^२ तथा एक और हूणों की सम्मिश्रित सेना^३ का उल्लेख उनके इस दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है।

शिवा का उल्लेख-यस उन्न हुआ है।^४ उज्जयिनी के हिन्दुओं के साथ पश्चिमियों में से एक है। इसकी प्रसिद्धि का एक कारण महाकाल या 'कालप्रिय नाभ'^५ प्रसिद्ध मन्दिर है।^६ उज्जयिनी के बक-समरों को विजय करने का शायद मन्वुप्त विक्रमादित्य ने किया था।^७

स्कन्दगुप्त नाटक से नगरहार के सम्बन्ध में केवल इतना ही ज्ञात होता है कि नगरहार में हूण^८ तथा स्कन्दगुप्त^९ दोनों के स्कन्धाचार है और नगरहार कुमा के रणक्षेत्र के पास कहीं है।^{१०} घाज की काबुल नदी ही कुमा है।^{११} स्कन्दगुप्त और हूणों के बीच नगरहार के युद्ध का उल्लेख और वहीं बगुबर्मा की मुसु का विवरण आसबास बगर्मा ने अपने उपग्रह कश्मा^{१२} में किया है।^{१३} कनिश्क के सम्पादक धनुषार बाबर इसे 'नम्पेनेहार' लिखता है। यह सुबान नदी के दक्षिण किनारे पर जहाँ यह काबुल नदी से जयम करती है।^{१४} प्रसाद के कथन को इससे स्पष्ट ज्ञान मिल जाता है। कुमा के रणक्षेत्र और नगरहार की स्थिति भी इससे स्पष्ट ज्ञाती है। ज्ञानसाप ने इसको ना-कि-नो-हो लिखा है जिसका धनुषार बाटर्ष 'वरकोट' करते हैं।^{१५} संस्कृत नाम नगरहार का उल्लेख पाराशर उन्न में मिलता है।^{१६} नगरहार के घाटपास स्कन्दगुप्त का हूणों से संघर्ष सम्भव है क्योंकि हूणों ने पिदा और मान्यार पर अधिकार करके बड़ा अपना नया राज्य स्थापित किया है।^{१७}

सेनापति क्षिपत का चार चरलाकि तथा बोपाकि के दुर्नपतियों के साथ लिप्यन्त के दुर्नपति का उल्लेख भी करता है। इन सबको परिपक्व की भांजा से

- (१) कच्छु—राजतरंगिणी (घार० एस० पंडित) पृ० ६८ १२३
 (२) स्कन्दगुप्त—यात्र परिचय 'युवन पात्र' (यात्रगुप्त—काम्यकर्ता कालिदास)
 (३) स्कन्द ११२२ (४) वही ११५३ (५) (शिवा टट) महाकालका उल्लेख—स्कन्द० ३।८४ (६) इतिहासिका इण्डिया ७ फॉर्मे प्लेट्स
 (७) धर्मा हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (मिचल) पृ० ६७४ (८) स्कन्द० ३।१२२
 (९) वही ३।१०३ (१०) वही ३।१०४ (११) देखिये कुमा इसी लेख में
 (१२) कश्मा (उपग्रह) पृ ३७८ (१३) कनिश्क (मोदर) पृ० ६७४
 (१४) बाटर्ष—बीस्युम १ पृ० १८५-८७ (१५) कनिश्क पृ० ६७४
 (१६) कश्मा की भूमिका (बाबरर धर्मा मुलेरी)

स्कंदगुप्त से विद्रोह करने के लिए भेजा गया था।^१ कनिषम के प्रतिष्ठान। टीकाकार तीन प्रतिष्ठानों का उल्लेख करते हैं। एक काबुल में (चीनी यात्री का लो-सि-सा-यांग) दूसरा यमुना पर घोर तीसरा गोवावरी पर।^२ विशिष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता कि यही प्रसार का तात्पर्य किन दुर्गों से है परन्तु विद्रोह के लिए भेजे जाने के कारण वह माना जा सकता है कि घातविद्रोह के लिए यह सब किया गया है। फलतः उनको मगध साम्राज्य के केन्द्र स्थानों में मानने की इच्छा होती है "कदवा" में प्रतिष्ठान का उल्लेख हुआ है जिससे ज्ञात होता है कि दुर्गों से स्कंदगुप्त का प्रतिष्ठान युद्ध यमुना घोर सरस्वती के संगम पर प्रतिष्ठान के पास हुआ।^३ स्पष्ट है कि प्रतिष्ठान इलाहाबाद के पास धातुनिक मूठी के धर्म में प्रयुक्त हुआ है। सम्भव है प्रसार का प्रतिष्ठान से यही धर्म रहा हो। योपाधि दुर्ग का उल्लेख भी कदवा में ही है यह मानक के उत्तर में या घोर बनर्षी के अनुमान से यही स्कंद ने दुर्गों पर विजय पाई थी।^४

जासगढ़ का उल्लेख मात्र "स्कंदगुप्त"^५ और "राज्यधी"^६ में हुआ है। कनिषम के अनुसार कामड़ा के पार्वत्य प्रवेश का नाम जासगढ़ था। घातवीं नवाग्री में श्वेतसांग के अनुसार उत्तर में जम्बा पूर्व में नरि घोर मुखेत, जासगढ़ दक्षिण पूर्व में उत्तर, जासगढ़ में सम्मिलित थे।^७ प्रवाद है एत प्राचीन धर्म में इसका प्रयोग किया है यद्यपि प्रत्यन्त प्राधुनिक धर्म में यह नाटक से स्पष्ट नहीं होता।

काश्मीर के स्थापतिकरण में पातुगुप्त नन्दीग्राम के दण्डनायक देवनन्द से प्रसन्न करता है।^८ स्पष्ट है कि नन्दी ग्राम का ही कोई ग्राम होना चाहिये। समस्त राज-उदरगिणी में कहीं भी नन्दीग्राम का उल्लेख नहीं। नन्दीग्राम मिलता नन्दी क्षेत्र का उल्लेख यद्यपि मिलता है जो हरमुमु (हरमुम) का एक तीर्थ है।^९ सम्भव है प्रसार ने नन्दी क्षेत्र को ही नन्दी ग्राम मिल दिया हो।

(१) स्कंद० ३।१२

(२) कनिषम (मोद्स) पृष्ठ १७२

(३) कदवा (राज्यासदास बनर्षी) पृष्ठ ३०१

(४) कदवा (राज्यासदास बनर्षी) पृष्ठ ३१८

(५) स्कंद० ३।१४

(६) राज्यधी २।३२

(७) कनिषम पृ १२६

(८) स्कंद० ४।११९

(९) राजतरगिणी—दण्डण (सार० पृ० पण्डित) १ ३६, १४८ २, १७०।

धीनगर काश्मीर का एक प्रसिद्ध नगर था ।^१ कन्हूण के अनुसार काश्मीर की राजधानी धीनगर के संस्थापक सभ्राट् धसोक थे । यह नगर प्राच्युतिक धीनगर से तीन मील ऊपर था । प्राच्युतिक धीनगर की नींव प्रवरसेन धीनगर द्वितीय ने रखी थी ।^२ प्रसाद का अनिश्चित प्राचीन धीनगर से ही होना चाहिए, क्योंकि प्रवरसेन द्वितीय मातृगुप्त के उपरान्त काश्मीर का शासक हुआ था ।^३

प्रसाद में धयोध्या का मस्केख स्वरुप में केवल दो स्वार्थों पर किया है ।^४ इतने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाद गुप्त शासकों की नई राजधानी की ओर संकेत करते हुए एक ऐतिहासिक तथ्य का उल्लेख कर रहे धयोध्या हैं । सिनध धयोध्या को ही गुप्त-शासकों की राजधानी मानते हैं ।^५ इसकी बर्षा हम कुमुमपुर के सम्बन्ध में कर चुके हैं ।

“स्वरुप” नाटक के अनुसार वसपुर मालव की राजधानी है ^६ श्रीर बन्धु बर्मा वहाँ के शासक हैं ।^७ कुमारगुप्त प्रथम तथा बन्धुबर्मा मालव के मन्सौर के तिलालेख में वसपुर का उल्लेख इस प्रकार मिलता है —

भाट—विपयाप्रगावृत्—वीलावज्जयति—प्रवित—शिल्पा ते देव-

वसपुर पार्लिंब—गुणपट्टता प्रकाय मत्तादिवाग्यनिरताम्बसुखाम्पास्य ।

भातादरा बसपुरं प्रथमं मनौमिरत्वा मतास्समुत्—बन्धु—जना

स्समेत्स ।^८

बसाक लिखते हैं— “राना बन्धुबर्मा मालव संवत् ४१९ में मालव की राजधानी वसपुर के शासक थे यह राज्य कुमारगुप्त प्रथम के प्राचीन था ।”^९

प्रसाद का वसपुर के प्रति संकेत स्पष्ट है । वे लिखते ही उसे पत्थनी मालव की राजधानी मानते हैं जिसके शासक बन्धुबर्मा थे । वसपुर प्राच्युतिक मन्सौर ही है ।^{१०}

(१) स्वरु ४।११६

(२) राजतरंगिणि १ १०४ तथा फुटनोट

(३) वही ३।३२० ३२१

(४) स्वरु १।१० १।३९

(५) धर्मा हिस्ट्री आफ इण्डिया

(६) स्वरु १।१२

(७) स्वरु १।१३

(८) संक्षेप इतिहास

(९) हिस्ट्री आफ मार्च-बीस्टन इण्डिया (बसाक) पृष्ठ ४५

(१०) कनिष्क—नोट्स पृष्ठ ७२६

स्फंदगुप्त ने विद्रोह करने के लिए प्रेरणा देना चाहा।^१ कनिष्क के प्रतिष्ठान। टीकाकार तीन प्रतिष्ठानों का उल्लेख करते हैं। एक काबुल में (बीबी माबी का फौ सि-सि-सा-टांग), दूसरा यमुना पर घोर वीतरा घोशवरी पर।^२ विशिष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता कि यही प्रसार का तात्पर्य किन दुर्गों से है परन्तु विद्रोह के लिए एक भेजे जाने के कारण यह माना जा सकता है कि अन्तर्विद्रोह के लिए यह सब किया गया है। अन्तः उनको मयक साम्राज्य के केन्द्र स्थानों में मानने की इच्छा होती है। "कस्मि" में प्रतिष्ठान का उल्लेख हुआ है जिससे प्राप्त होता है कि हूणों से स्फंदगुप्त का अन्तिम युद्ध यमुना घोर घण्टवनी के संघर्ष पर प्रतिष्ठान के पास हुआ।^३ स्पष्ट है कि प्रतिष्ठान इलाहाबाद के पास प्रायुक्तिक मूसी के घर्ष में प्रयुक्त हुआ है। सम्भव है प्रसार का प्रतिष्ठान से वही घर्ष रहा हो। घोषात्रि दुर्ग का उल्लेख भी कस्मि में ही है। यह मानक के अन्तर्गत से वा घोर बदन की घण्टवनी से वही स्फंद ने हूणों पर विजय पाई थी।^४

जालन्धर का उल्लेख मात्र "स्फंदगुप्त" और "राज्यपी" में हुआ है। कनिष्क के अनुसार नायका के पार्वत्य प्रवेश का नाम जालन्धर का। जालन्धी जालन्धी में खेनपाव के अनुसार उत्तर में जम्हा पूर्व में अरि घोर मुकेत, जालन्धर दक्षिण पूर्व में अरु जालन्धर में सम्मिलित थे।^५ प्रसार में एक प्राचीन घर्ष में इसका प्रयोग किया है जबकि अत्यन्त प्रायुक्तिक घर्ष में यह शब्द से स्पष्ट नहीं होता।

काश्मीर के ग्यायाधिकरण में मातृगुप्त मन्वीग्राम के अन्तर्गत देवनाग से प्रस्तुत करता है।^६ स्पष्ट है कि मन्वी ग्राम काश्मीर का ही कोई ग्राम होना चाहिये। समस्त राज-दर-रिगली में कहीं भी मन्वीग्राम का उल्लेख नहीं मन्वीग्राम मिलता। मन्वी लेख का उल्लेख अन्तर्गत मिलता है जो हरकुमुत् (हरकुम्) का एक ठोस है।^७ सम्भव है प्रसार ने मन्वी लेख को ही मन्वी ग्राम निकल दिया हो।

(१) इकब० ३।६२

(२) कनिष्क (मोट्स) पृष्ठ १७२

(३) कस्मि (उत्तमनाथ बनर्जी) पृष्ठ ३८३

(४) कस्मि (उत्तमनाथ बनर्जी) पृष्ठ ३६८

(५) इकब० ३।६४

(६) राज्यपी २।३५

(७) कनिष्क पृ १५६

(८) स्फंद ४।११६

(९) राजतरिगली—कस्मि (भार० एच० पण्डित) १ ३६ १४८ २, १७०।

धीनवर काश्मीर का एक प्रसिद्ध नगर था ।^१ कस्तूर के अनुसार काश्मीर की राजधानी धीनवर के सत्यापक सम्राट् अशोक थे । यह नगर धार्मिक धीनगर में तीन मील ऊपर था । धार्मिक धीनवर की नींव प्रवरसेन धीनवर द्वितीय ने रखी थी ।^२ प्रसाद का अनिश्चित प्राचीन धीनवर से ही होना चाहिए, क्योंकि प्रवरसेन द्वितीय मानसुप्त के अरस्तु काश्मीर का शासक हुआ था ।^३

प्रसाद ने अयोध्या का मल्लिक स्वरुप से केवल दो स्थानों पर किया है ।^४ इतने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाद गुप्त शासकों की गई राजधानी की ओर संकेत करते हुए एक ऐतिहासिक सत्य का उल्लेख कर रहे अयोध्या है । स्विय अयोध्या को ही गुप्त-शासकों की राजधानी मानते हैं ।^५ इनकी चर्चा हम कुमुदपुर के सम्बन्ध में कर चुके हैं ।

“स्वरुप” नाटक के अनुसार दशपुर मातन की राजधानी है ।^६ और बभ्रु वर्मा बह्नी के शासक हैं ।^७ कुमारगुप्त प्रथम तथा बभ्रुवर्मा मातन के मन्सौर के शिलालेख में दशपुर का उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

शाट—विषयाध्याकृत—शैलाभ्यगति—प्रपिठ—गिस्था से देल-
बशपुर पारियंभ—गुणपट्टा प्रकाश मञ्जुविराज्यविरमात्ममुत्तमपास्य ।
बाठारदा बभ्रुवं प्रथम मनोविरत्वा गतास्वमुठ—बभ्रु—बना
समेत ।^८

बसाक लिखते हैं—“राजा बभ्रुवर्मा मातन संवत् ४१२ में मातन की राजधानी दशपुर के शासक थे यह राज्य कुमारगुप्त प्रथम के अधीन था ।”^९

प्रसाद का दशपुर के प्रति संकेत स्पष्ट है । वे निश्चय ही उसे पश्चिमी मातन की राजधानी मानते हैं जिसके शासक बभ्रुवर्मा थे । दशपुर धार्मिक मन्सौर ही है ।^{१०}

(१) स्वरु ४।११६

(२) राजतरंगिणि १।१०४ तथा फुटनोट

(३) वही १।१२० १११

(४) स्वरु १।१० २।११

(५) पर्सो हिस्ट्री आफ इण्डिया

(६) स्वरु १।१२

(७) स्वरु १।११

(८) शैलेश्वर इन्सक्रिप्शंस

(९) हिस्ट्री आफ नार्थ-ईस्टर्न इण्डिया (बसाक) पृष्ठ ४६

(१०) कतिपय—गोल्ड पृ० ७२६

पुष्करण का उल्लेख केवल एक स्थान पर 'सकंदपुराण' नाटक में बल्लुवर्मा द्वारा हुआ है "शकों के पतन-काल में पुष्करणाधिपति स्वर्गीय महाराज सिंहवर्मा ने एक स्वतंत्र राज्य स्थापित किया था।" महामहोपाध्याय हृत्प्रसाद पुष्करणा नारसी ने मैहरोसी मौह-स्तम के चन्द्र को चन्द्रवर्मा मानकर उते मन्सरीर शिकामैत्र के नरवर्मा इत्यादि को सबप्रथम पुष्करणाधिपति बाद में मानवाधिपति माना है। पुष्करण या पोकरण मारवाड़ (राजपूताना) का प्रसिद्ध नगर था। यह २६०२२ अथवा ७१०२२ पूर्व खेलाखर में स्थित है।^१

'राज्यभी' के कथानक का एक बड़ा भाग काव्यकुम्भ में बटित हुआ। प्रसाद ने कहीं प्राचीन नाम काव्यकुम्भ^२ कहीं 'महोदय'^३ और कहीं धामुनिक नाम 'कन्नौज'^४ का प्रयोग किया है। काव्यकुम्भ एक उर्वर प्रदेश काव्यकुम्भ कन्नौज था^५ और उस राज्य की सीमा मानसरोवर की सीमा से मिली या महोदय हुई थी।^६ इस प्रदेश की राजधानी का नाम भी काव्यकुम्भ ही था। राज्यभी का पति ब्रह्मवर्मा मौलरी बहा का राजा था। इस काल में काव्यकुम्भ अत्यन्त समृद्धिवासी राज्य था। इसके वैभव-विलास के प्रदर्शनों और उपकरणों का राज्यभी में उल्लेख हुआ है।^७

उस समय उत्तरी भारत में दो ही शक्तिशाली राज्य थे एक मौलरियों का राज्य बुधरे बर्तनों का राज्य बिलम्बे राजधानी कन्नौज काव्यकुम्भ और स्वानवी शहर थी। ये दोनों ही गुप्तों के पौरव को मुप्त करने के कारण हुए।^८ काव्यकुम्भ के किसी युवक का उल्लेख भी प्रसाद ने किया है।^९ जिस पर मानसरोवर वैवकुण्ठ ने अधिकार कर लिया था।^{१०} धारगे बहकर राज्यबर्तन ने स्वयं वैवकुण्ठ के हाथ से उसका पुनरुद्धार किया।^{११} परन्तु काव्यकुम्भ के सुगोत के सम्बन्ध में प्रसाद मौन है।

(१) धर्ती हिस्ट्री भाग इण्डिया (सिम) पृ० १ ७ फुटनोट

(२) राज्यभी १।१५

(३) वही १।१५

(४) वही १।३९

(५) वही १।१५

(६) राज्यभी १।१६

(७) वही १।१६-१७

(८) राज्यभी १।२५-२६

(९) वही १।२७-२८ २।३५

(१०) वही १।२६ २६

(११) वही १।६३

प्रयाग के राज-धर्म से पूर्व हर्ष ने जो एक महत्त्वपूर्ण दान-धर्म काव्यकुञ्ज में मनावा था उस ऐतिहासिक बटमा का उल्लेख करना वे प्रशंस्य नहीं होते हैं ।^१

हर्षचरित के एक बाह्य 'मनु शारिकापि राज्यधी कालायसनिगडमुपलभुम्बि चरत्त चौरांगनैव संघता काम्यकुञ्जे कथया निसिप्या'^२ से भी मुकुर्बी ने यह अनुमान लगाया है कि काम्यकुञ्ज मीशरियों की राजधानी थी^३ हर्षचरित में 'धर्म्यथ पुष्टनाम्ना बह्वीते कुमस्थने^४ में 'कुमस्थन के नाम से कन्नौज का उल्लेख हुआ है । हर्षकालीन लेख धातुनिक कन्नौज से बहुत दूर पर मिले हैं । इस पर कुछ इतिहासकारों का अनुमान है कि जिस कन्नौज में राज्यधी बहनी थी वह मीशरियों की राजधानी न होकर उनके राज्य का एक भाग था ।^५ शीलादित्य (हर्ष) के जो सिक्के कन्नौज से समीप धातुनिक फेंकाबाद जिसे में मिले हैं उनके आधार पर ही मुकुर्बी ने उक्त कथन का अर्थन किया है । प्रसाद ने काम्यकुञ्ज को ही मीशरियों की राजधानी माना है और वहीं राज्यधी को काराबुह में बन्धी करवाया है ।^६ यह कथन बाह्य और मुकुर्बी दोनों के बर्णन से मेल खाता है । कनिष्क के टीकाकार न गाधिपुर महोदय और कुतस्थल काम्यकुञ्ज के ये तीन घोर नाम बतलाये हैं ।^७ पहले यह मीशरियों की राजधानी रही फिर हर्ष ने इसे अपनी राजधानी बनाया और कालांतर में मम्मदक यज्ञोन्मत्त ने भी इसे राजधानी बनाया था । मम्मदक इसी यज्ञोन्मत्त का धातित था^८ काम्यकुञ्ज के दान का उल्लेख जैनशास ने किया है ।

स्याम्बीस्वर बट गों की राजधानी थी घोर कम्मत् प्रसाकरबट न राज्य-बट न घोर हर्षबट न यहा के नामक रहे । काम्यकुञ्ज से इस कुल का विवाह सम्भव होने के कारण मंत्री की^९ उस काल में स्याम्बीस्वर घोर काम्यकुञ्ज स्याम्बीस्वर । की सम्मिलित शक्ति उत्कामीन धनेक नरैषो की धातो म लटक रही थी ।^{१०} हर्षचरित में बाह्य न स्याम्बीस्वर का विस्तृत बर्णन

(१) राज्यधो ४।६७

(२) हर्षचरित (बाह्य) (संकर टीका) अडा उच्छ्राम पृ० १६३

(३) कम्मत् धातु इण्डिया—घोर मुकुर्बी (हप)

(४) हर्षचरित-सप्तम उच्छ्राम पृ २२६

(५) कम्मत् धातु इण्डिया—घोर० मुकुर्बी (हप)

(६) राज्यधी २।४३

(७) कनिष्कान—मोट्स पृ० ७७

(८) वही

(९) राज्यधी १।२०

(१०) वही २।१५

क्रिया है। वहाँ के राजा पुष्यभूति से^१ इन्हीं छे बर्द्धनों का बंश बना था। ह्येन ता पुष्यभूतिबंश की राजधानी स्वाग्धीश्वर रही। ज्ञानसाय के समय में सा-टा-नि पञ्च-नं वा स्वाग्धीश्वर एक स्वतन्त्र प्रदेश की राजधानी थी। इसके किसी उत्क्रांति राज का उल्लेख नहीं हुआ है पर यह कर्नाटक के राजा हर्षवर्द्धन का प्राचीनत्व प्रदेश माना गया है।^२ इससे यह बात हो चाठी है कि पहलवों की मृत्यु पर हर्ष ने अपनी राजधानी स्वाग्धीश्वर से हटाकर काम्यकुम्भ में बना ली थी। कनिष्कम घटनक ने लेकर गया तक के प्रदेश को स्वाग्धीश्वर के अन्तर्गत मानते हैं।^३ स्वाग्धीश्वर बं महत्ता और उसके सीम्हबं का जो बर्द्धन बान ने किया है^४ वह स्पष्ट कर देता। कि प्रसाद ने स्वाग्धीश्वर की महत्ता के प्रति जो बंकेत किया है वह उचित ही है कनिष्कम के अनुसार पागेश्वर सरस्वती और बुपहूती के बीच कुरुक्षेत्र प्रदेश में स्थित घट्यन्त प्राचीन और प्रसिद्ध नगर था।^५ प्रसाद ने इसकी भौगोलिक स्थिति का जो विवरण नहीं दिया है।

‘राज्यधी’ में गंगातट पर प्रयाग में हर्ष के राजपर का उल्लेखमात्र है।^६

भौगोलिक दृष्टि से गंगा यमुना सरस्वती के संक्रम प-

प्रयाग

बसा हुआ तीर्थराज ही प्रयाग है और हर्ष के राज की घटन

॥७॥

की ऐतिहासिक है। ज्ञानसाय इस राजपर के प्रमुख बर्द्धन

में था।

- | |
|--|
| (१) बाण—हर्षचरित-तृतीय उच्छ्वास पृ २७-२८ |
| (२) वही पृ २७० |
| (३) कनिष्कम पृ० ३७६ |
| (४) वही पृ० ३७६ |
| (५) हर्षचरित—बाण-तृतीय उच्छ्वास पृ २७ |
| (६) कनिष्कम पृ ३७६ |
| (७) राज्यधी पृ० ४१७ |

यातायात के साधन

प्रसार के माटकों में बहुत थोड़े से यातायात के साधनों का उल्लेख हुआ है। इनमें से अधिकांश साधन तो उसी रूप में प्राप्त भी न्यूनतम होते हैं। रथ इत्यादि कुछ साधन ऐसे प्रचलित हैं जो प्राप्त के युग में अधिक प्रचलित नहीं किन्तु प्राप्त भी वैश्वकर्षों इत्यादि में ऐसे यातायात के साधन कभी हीस ही जाते हैं।

माटकों में सवारी के लिए 'रथ' का उल्लेख विने बुने स्थाव्यों पर हुआ है। रथ रथियों^१ राजकुमारों^२ तथा राजकुल के अन्य व्यक्तियों^३ की सवारी के लिए प्रयुक्त हुआ है। सवारी के प्रतिरिक्त युद्धों के लिए भी उनका प्रयोग किया गया है। मुरुर प्राचीन काल से ही भारत में रथ यातायात और युद्ध का महत्वपूर्ण साधन रहा है। अपने यौव राज्याभिषेक के घबसर पर राम 'वीर्य रथ' पर बठे थे।^४ प्राण्य देश के राजा न मुचिष्ठर के लिए भेंट के रूप में वीर्याग्र परिवारिठ रथ भेजा था।^५ माटकों में भी राजकुमारों सम्राठ नापरिकों भठियों और गणिकायो की सवारी के लिए घुस गिन रथों का प्रचुर उल्लेख पाया जाता है।^६ इन प्रकार साधारण यात्रा के लिये काम में जाने वाले रथों के लिये 'जीटिस्य मे पारियाणिक' नाम दिया है^७। युद्ध के रथों के लिये मे व लिखते हैं कि अपनी सना की रक्षा करना चतुरम बस का प्रतिरोध करना मिघ्र सभाम करना, प्राप्त वेना और ममानक रथ करना व सब कार्य रथों के हैं।^८ वस्तुतः रथ चतुरगिणी सेना के एक प्रधान अंग था।

जिबिका का उल्लेख प्रसार मे वेबस स्त्री बनों की सवारी के रूप में किया है। राजकुमारिजा जिबिका पर सवार होकर उद्यानों पर जाया करती थी और उन जिबिकाघों के साथ रही चलते थे। पर्वलेखर घलका से लिखिका। कहता है—'सिहरम के लिये रथ घायेमा और तुम्हारे लिये जिबिका।'^९ इसमे ऐसा जान पड़ता है कि उन दिनों सामान्यतः पुरुषों के लिए रथ की सवारी काम में जाती थी और स्त्रियों के लिए जिबिका। मुत्तकुल बहू सुवस्वामिनी भी जिबिका पर ही घाई थी जिबिका का प्रयोग भी

- (१) अजात० १।१०२ (२) अजात० १।१४७ (३) अम्य ६।२ २ २०३
 (४) रामायण २।१६।८ (५) महाभारत—सभापथ २।१।३३
 (६) जातक ६।४८ २० बीबनिकाय पु० १२७
 (७) धर्मशास्त्र १।३।३२ (८) धर्मशास्त्र १०।४।१६, १०

धरत्यन्त प्राचीन है। महाभारत में बहुत विविधास्त्र होकर इश्राणी से मिलते जाते हैं। पर्यन्तस्त्र में मान-बाहुन के साथ बौमिका (विबिका) का उल्लेख भी हुआ है। बिष्णुपुराण में बड़मरुत के प्रसंग में विबिका की चर्चा हुई है। आठकों में भी विबिका के पर्याप्त उल्लेख मिलते हैं। इससे इतना तो स्पष्ट है कि विबिका शिब्यों की ही सभारों में होकर पुरुषों की भी थी। 'रथियों का उल्लेख शाकुतल तथा अन्य संस्कृत ग्रन्थों में भी मिलता है।^१ बौद्ध ग्रन्थों से यह भी ज्ञात होता है कि मान-बाहुनों के साथ रथी भी जाता करते थे जो 'हुटो मार्ग' से^२ कहा करते थे।

माटकों में कुछ ही स्वर्णों में बौद्धों का उल्लेख हुआ है। अश्वगुप्त नामक अश्वमेध पर सवार होकर प्रबुद्धस्वामिनी की विबिका के साथ धामा वा^३ और परंतेरवर एक हजार धम्मरोहिणियों की सेवा लेकर सिकन्दर की सहायता के लिए गया।^४ बौद्धों का उपयोग धरत्यन्त ही प्राचीन है। कौटिल्य ने वृत्ति की दृष्टि से बौद्धों के तीन भेद किये हैं,—तीक्ष्णाक्ष मद्राक्ष और मंदराक्ष और प्रयोग की दृष्टि से दो भेद—मुठ संबंधी बौद्ध और सभारी के बौद्ध।^५ तीक्ष्णाक्ष को कौटिल्य ने तीक्ष्णामी और भीम-बाहुता भी कहा है।^६ प्रसाद का तीक्ष्णामी मन्त्र^७ कौटिल्य के तीक्ष्णाक्ष के ही लिये धामा हुआ प्रतीत होता है।

बसवानों के रूप में केवल गौका का उल्लेख इन माटकों में हुआ है। गौकायें सामान्य यातायात के रूप में काम में आती थीं और मुठ के लिये भी। विहरण गौका पर सवार होकर मालग की ओर जाता है।^८ 'मदन-बौद्ध के उल्लेख से स्पष्ट है कि वह मुठ में सेवा और मुठोपकरण से नाम के लिये बनाया गया था।^९

सिकन्दर का बस-मुठ ऐतिहासिक सत्य है।^{१०} मुठ गौकायों के लिये प्रसार के 'द्विचिका'^{११} का प्रमाण दिया है, जो सम्भव पर्यन्तस्त्र के आकार पर है।^{१२} व्यापार संतरण के लिये उप

(१) शाकुतल पृ ४५ पृ ८० (२) अथ १।२८ (३) अश्व० २।१४२

(४) वेदा तीक्ष्ण मद्र मरु बडेल पृ० ८० सानाहामीयबाहुकं वा कर्म प्रयोक्तेषु—

पर्यन्तस्त्र २।१।१५ (५) बही-२।१४।११ (६) अश्व ३।१९६ (७) अश्व० १।८२

(८) अश्व ३।१९१ (९) ही मार्चर्ड रि अटेल निमार्कस टू बेट रेडी ए पत्नीट ड्विष

वेद इविचियन फोनीसिबन एड साइप्रिपट मूष मुठ विरीट वि मेलम ए इडय टू

ति सी—ऐसिएट इ विमा (मेलम एड अथर्व) वेप्टर १।६० ११

(१०) अश्व २।१९१ (११) बौद्धापीन (बनार्दव मद्र) पृ० ४८

योग में धान वाली भौका को पाणिनि 'नाभ्य' कहते हैं जिसे जाठलों में 'नाबटिस' कहा गया है।^१ कासास्तर के लक्षों से ज्ञात होता है कि पश्चिमि के स्थान नामापुर में ही सिन्धु नदी पर सत्वरण के लिए भौका का स्थान (सत्तनोक्रम) था। इस स्थान के पास नाबों का एक पुस था जिसके द्वारा वर्ष के पाठ महीनों में सिन्धु को धार धार किया जाता था। दोप चार महीनों में नाबों से ही सिन्धु-सत्वरण होता था।^२ पर्यसास्त्र में उल्लिखित 'नाबभ्यस' प्रकरण से स्पष्ट ही जाता है कि उस कास में नाबों का प्रचुर प्रचसन था।

(१) इ द्विया एष लौन द्वु पाणिनि (सप्तमाम) पृ० १५५

(२) वही (सप्तमाम) पृ० १६५

सामाजिक परिस्थितिया

प्रसाद के प्रायः सभी नाटकों में प्राचीन भारतीय समाज के ढाँचे का विवरणन हुआ है। यह मानते हुए भी कि भारतीय हिन्दू समाज का यह ढाँचा किसी काल विशेष से उतना अधिक सम्बन्ध नहीं रखता बल्कि सामाजिक ढाँचा सब कामों में बहुत कुछ एक सा ही है, तो भी उसके विनाश विकास की स्पष्ट ऐतिहासिक भ्रंशिकाएँ इन नाटकों से मिल जाती हैं। उदाहरण के लिए हिन्दू वर्ण व्यवस्था को लिया जा सकता है। यह कहा जा सकता है कि अत्यन्त प्राचीन काल से उक्त व्यवस्था हिन्दू समाज को अपने लक्ष्मणासी बन्धन में बाँधे हुए है। मनु ने जो व्यवस्था विभिन्न वर्णों के लिए की है उसका किसी न किसी रूप में धात्र भी सम्मान किया जाता है। यदि इतिहास के पृष्ठों को पसटा जाय तो जात होगा कि समय समय पर हिन्दू समाज ने इस कठोर वर्ण व्यवस्था से फुटकारा पाने के लिए विद्योह किया। बौद्ध धर्म और जैन धर्मों ने कुछ काम के लिए इस परम्परा की श्रृंखला को ढीसा कर डी दिया। गुप्त-काल में पुनः ब्राह्मण धर्म अपने विकास की चरम-सीमा पर पहुँच गया और ये सामाजिक श्रृंखलाएँ हड़ हो गईं। इस प्रकार वर्ण-व्यवस्था का प्रभाव मने ही अविच्छिन्न रहा जो परन्तु प्रकाश के नाटकों में यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि समय-समय पर उसमें विचलता प्रबन्ध पायी रही। 'अजातशत्रु' के समय में सामाजिक व्यवस्था के पुरातन बन्धन डीले दीख पड़ते हैं, अश्वत्थामा का नासन 'सर्वभूमि ब्राह्मणत्व' का व्यवहार करता है, गुप्त साम्राज्य में विशेष कर स्कंद गुप्त के काल में सामाजिक संघर्ष हो रहे हैं और ढाँचा कमी बखर और कमी पुनः आगच्छ एवं लक्ष्मणासी दीख पड़ता है पर है वह विनाशोन्मुख ही। धर्म के समय तक घाटे घाटे समाज में एक आत्मबल-सा आता जात पड़ता है जो इतिहास की दुर्बल मीय शक्तियों के घाते अधिक नहीं टिक सका। एक से धात्र तक बहु बनता विपड़ता और पुनः बनता हुआ जाता पा रहा है। बौद्ध धर्म की प्रचलता के कारण 'अजात शत्रु' में प्राचीन हिन्दू सामाजिक संघर्ष की घोर प्रकाश का विशेष ध्यान नहीं गया और फिर भी इसमें कई शक्तियाँ इस बात का स्पष्ट संकेत करती हैं कि उत्कालीन समाज ब्राह्मण शक्ति बल और शूद्रों में बटा था। बसन्तक और विद्युत् के कुछ वाक्य ब्राह्मण और शक्तियों के विशिष्ट गुण-कार्यों को घोर संकेत करते हैं।' धर्म नाटकों में समाज के संघर्ष का विशिष्ट और स्पष्ट रूप मिलता है। अश्वत्थामा

योग के समय से लेकर पूर्ववर्द्धन के समय तक समस्त समाज ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों में विभक्त था। चंद्रगुप्त ने ब्राह्मणत्व को एक सार्वभौम साम्बन्ध मुद्रि वैभव कहा गया है। चंद्रगुप्त के काल में चाणक्य ने ब्राह्मण का एक 'घासक प्रयुक्त और व्यवस्थापक' की स्थिति पर का बड़ा निम्न।

ब्राह्मण ब्राह्मण न किसी के राज्य में रहता है और न किसी के भय से चलता है स्वराज्य में विचरता है और समृद्ध होकर भीता है।-----ब्राह्मण सब कुछ सामर्थ्य रखने पर भी स्वेच्छा से इन माया स्तुतियों को ठुकरा देता है प्रकृति के कल्याण के लिए अपने ज्ञान का दान देता है।-----इन बच्चों में धार्मिक ब्राह्मण का विभक्त है। उपनिषद् ब्राह्मण का वर्णन करते हुए शुक्राचार्य करते हैं—'उपनिषद् ब्रह्म है वा अप उपवास निवम कर्म और ध्यान में सदा रत रहकर दाम्भ समासीस तथा निस्पृह होता है।' 'चंद्रगुप्त' में भी चाणक्य एक ऐसा ही उपनिषद् ब्राह्मण है सभी बरकति उसके बीच करने पर भी उसे त्याग और ज्ञान का प्रमाण उपनिषि ब्राह्मण मानता है।^१

ब्राह्मण का निवास शोषड़ी,^२ बीबिका जल और समृद्ध एक सतका भोजन पत्र-पुत्र और अजमि से जल-भान इ।^३ घृमा का सुख और उसकी महत्ता का जिसको घामास मान हो जाता है उसको तबकर बरकतीने प्रदर्शन नहीं समिभूत कर सकते।—शास्त्रिक ब्राह्मण के इस कथन में ब्राह्मण की वैश्वीय निरीकता^{१०} की और प्रसार न संकेत किया है। ब्राह्मण तोम से, सम्मान से वा भय से किसी के पास नहीं आ सकते।^{११}

ब्राह्मण विद्या के साधारण है।^{१२} चाणक्य पर्यन्तत्त्व और दृष्टनीति का साधारण है।^{१३} बरकति पालिनि पर शक्ति विद्य रहा है।^{१४} शास्त्रायामन के

- | | |
|---|---|
| (१) चंद्र० ११६६ | (२) चंद्र० ११८८ |
| (३) चंद्र० ११६६ | (४) अपोपहासनिवम कर्म व्यापकतत्त्वज्ञान। |
| दाम्भ सभी निस्पृहत्व उपनिषद्. स अच्यते। | —शुक्र० ११७२—७६ |
| (५) चंद्र० ११८८ | (६) चंद्र० ११६८ |
| (७) चंद्र० ११६८—सुलगा कीरिने | |
| श्रुतायुषाम्या बीबिल, मुतेन प्रमुतेन वा। | |
| सकादुहाय्यामिति का न कृत्वा कदाचन ॥—मनुस्मृति ३७४ | |
| (८) चंद्र० १११०१ | (९) चंद्र० १११०२ |
| (१०) चंद्र० १११०१ | (११) चंद्र० ११०८ |
| (१२) चंद्र० १११०१ | (१३) चंद्र० १११०१ |
| (१४) चंद्र० ११८८—८६ | |

प्राथम में सिस्फूकन की कम्पा एत घोर हो दर्शन पवने जाती है और दूसरी घोर भाष्यीय संगीत सीखती है ।^१

ब्राह्मण राज्य करना नहीं जानता करना भी नहीं चाहता । हां वह राजाओं का नियम करना जानता है राजा बनाना जानता है ।^२ ब्राह्मणत्व के इस जब जबकार क पीछे प्रसार ने उस ब्राह्मणत्व की घोर संकेत किया है जो वैदिक ऋषियों की परम्परा में मन्त्र-श्रुति और धर्म का नियामक था ।^३ वह अपनी रक्षा के लिए, पुष्टि के लिए और सेवा के लिए इतर बरों का संभलन कर लेता था ।^४ बलिष्ठ का ब्राह्मणत्व जब पीड़ित हुआ था पत्सव इतद काम्बोज प्रादि क्षत्रिय बने थे ।^५

प्राथम्य ब्राह्मण के जातिगत आदर्श का प्रतीक है—“अत्रमुत्त । मैं ब्राह्मण हूँ । मेरा साम्राज्य कस्या का न्य मेरा धर्म प्रेम का था । घानन्द समुद्र में उत्ति द्वीप का अधिवासी ब्राह्मण मैं अत्र सुमे, महात्र मेरे द्वीप ने अनंत आकाश विठान था अत्यध्यामासा कोमस विश्वम्भरा मेरी जन्मा नी । बौद्धिक विमोद कर्म था महोप बन था ।^६ मेघ के समान मुक्त बर्षा सा जीवन शिव धूम के समान प्रवाह आसोक विकीर्ण करना सागर के समान कामता—नशियों को पचाते हुए सीमा के बाहर न जाना यही तो ब्राह्मण का आदर्श है ।^७ कार्त्तिसिवा भी ब्राह्मण को बड़ा तपस्वी और त्यागी कहती है ।^८ राजा न्याय कर सकता है पर ब्राह्मण दामा कर सकता है ।^९

ब्राह्मण की महानता का कारण यही था कि वे त्याग और क्षमा की मूर्ति थे । इसी के बन्ध पर बड़े बड़े सम्राट उनके प्राथमों के निकट निरस्त होकर बाते थे और वे तपस्वी श्रुत और धर्मवृत्त बुद्धि से जीवन निर्वाह करते हुए धार्य-भ्रात अग्निजाना में समयान से प्रार्थना करते थे —

सर्वेपि सुखिन सतु सर्वे सतु निरामवा ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखमाप्नुयात् ।^{१०}

ब्राह्मण धर्मशास्त्र का मुक्त था ।^{११} वह केवल धर्म से संबंधित होता था । धर्म किसी भी शक्ति को तुच्छ समझता था ।^{१२} बलिष्ठ भी उसे बालिक सत्य कहते थे नही रोक सकते थे ।^{१३}

(१) अत्र	२।११२
(२) बही	१।१७
(५) बही	१।१७
(७) बही	५।२२१
(८) बही	५।२५०
(११) अनु	१।११
(१३) अनु	३।१२

(२) बही	३।१५७
(५) बही	१।१७
(६) बही	५।२१०
(८) बही	५।२२५
(१०) स्कद	५।१२।
(१२) अनु	३।१२

ब्राह्मण के उपयुक्त जय घोष से प्रसाद का ठालपर्य यह प्रवर्तित करना नहीं है कि ऐतिहासिक परम्परा में समस्त ब्राह्मण समाज ही ऐसा था। जागजय एक आदर्श ब्राह्मण है और उसकी ब्राह्मणत्व की परिभाषा एक वैदिक ऋषि की सी है। साम्य स्वर्णों पर ऐसे ही ब्रह्मणों से ब्राह्मणत्व की कृष्ण मानकी ही पड़ती यद्यपि, यह कहा जा सकता है कि आज यह महत्ता सृष्टात न होकर कमपरक है। मुदाचार्य ने लिखा है कि ब्राह्मण, दक्षिण वैश्य शूद्र एव म्लेच्छ का भेद कम और मुण पर प्राथित है।^१ कर्मपरक होने के कारण ही प्रसाद ने स्थान स्थान पर ब्राह्मण के हीन कर्मों का उल्लेख भी कर दिया है। ब्राह्मण दुकड़ों के लिए घग्घ लोचो की उप बीदिका कर रहे हैं। एक वर्ण के सोय दूसरों की घग्घारी कृतियां प्रहृण करने मगे हैं। लोम ने उनके कर्म का व्यवसाय बना लिया है। बहिलाओ की घोम्पता से स्वर्ग पुत्र बन यम विजय और मोल बेचने मये— — — — — कर्म की बचाने के लिए उन्हें राजमणित की घग्घयकता हुई^२ इत्यादि। यह कास-विशेष से ब्राह्मणों के त्रास का एक चिह्न है। कुछ भी हो कमस्त उदरालों से यह मात होता है कि ब्राह्मण का विशेषकर एक घग्घ ब्राह्मण का स्वल्प और उसकी विशेषताए बना बी। ब्राह्मण के कम की रखा करने का कर्त्तव्य राजा का था।^३ राजा की घोर से ब्राह्मणों को बह्मणित भी की जाती थी।^४

ब्राह्मणों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण विवरण 'अग्निपुत्र' में प्राप्त है। प्रथम महा पर मीर्यकास के घीक इतिहासकारों के विचारों का भी उल्लेख प्राथम्यक है। ब्राह्मणों के विषय में वे लिखते हैं— "भारतीय ब्राह्मणों में दार्शनिकों का एक सम्प्रदाय ऐसा है जो स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करता है। वे मांस नहीं खाते और घग्घिवरक घोजन नहीं करते। घग्घती पर घिरे हुए कर्णों से ही वे समुष्ट रहते हैं कुसों से उन्हें लोडत तक नहीं। टपनेना^५ नहीं का जल पीते हैं। यह शरीर मघकान ने आत्मा के घग्घ्यादन के रूप में बनाया है इस विचार के कारण वे जीवन मर नमन रहते हैं। वे ईश्वर को घग्घोति-स्वरूप मानते हैं और मृत्यु से घग्घ भी मघमीत नहीं होते। मत्किदुर्वक घग्घ का नाम लेते हैं और मग्घों द्वारा प्रार्थना करते

(१) न आत्मा ब्राह्मणराज दक्षिणो वैश्य एव न न शूद्रो न कर्त्तव्यो
वेदिता मुणकमणि । — — — — — मुनगीति ।

(२) स्फर० ४।१२२२-२३

(३) स्फर० ४।१२२२

(४) अग्नि० ३।१७७ १।१६६ १।७६

(५) संभवत 'मुममत्रा' वेदिये 'ए'सिए ट इन्डिया — (मीरिडल) पृ० १।२०
पुटलीड

..... ।^१ शार्ङ्गिक ब्राह्मणों के सम्बन्ध में अपर्युक्त उद्धरण 'बन्धुवृत्त'
शास्त्र के शास्त्रायन (टीकों के शास्त्रमित्त) जैसे ब्राह्मणों की विशेषताओं पर पर्याप्त
प्रकाश डालता है ।

मनुस्मृति के अनुसार ब्राह्मण सब से बड़ा कोई पाप नहीं, परन्तु ब्राह्मण-वध
न बिचार तक नहीं करना चाहिए । राजा यदि चाहे तो पबिक से अधिक उनका
सेव भुङ्कना देने का अधिकार सर्वस्व समेत पञ्चत शरीर वैश-निग्रामे का हक है
कता है ।^२ प्रसाद ने मन्व के समय तक मनु के इमी प्रायेण के अनुसार ब्राह्मण
तो प्रबन्ध माता है ।^३ मनुज ब्राह्मण के छ प्रभान कम — धर्म्यापन-धर्म्यापन
वजन-वजन वान और प्रतिग्रह वतमाए हैं इनमें धर्म्यापन वजन और प्रतिग्रह
तीन कम जीविका के निमित्त हैं ।^४

प्रसाद ने अपने नाटकों में ब्राह्मण के प्रायः सभी कर्मों का उल्लेख किया
है । शासक^५ राजस^६ शास्त्रायन^७ सभी धर्म्यापन का काम करते थे । शासक^८
और बररश्मि^९ दोनों उल्लिखित के स्तरक थे । 'सरयू पर पड़े हुए मम पूर्णों'^{१०} का
उल्लेख और बसि^{११} करने के प्रयत्न ब्राह्मण के वजन-वजन कर्मों की धोर संकेत
रते हैं । धर्म का नियामक^{१२} होने के कारण विवाह^{१३} इत्यादि सभी धार्मिक कृत्यों
में बह करता है, स्वस्त्ययन और शान्ति कर्म^{१४} का उल्लेख भी धार्मिक संस्कारों

- (१) एतिए ट इष्यिवा—(मं किञ्चन) पृ० १२०-२१
- (२) न ब्राह्मणवधाद्भूमालकर्मो विद्यते धुवि ।
तस्मादस्य बन्धे राजा मनसापि न चिन्तयेत् ॥ मनु० ८।८१
- (३) मोक्ष्य प्राणातिको धंभो ब्राह्मणस्य निभीयते ।
इतौषा तु बर्णाता बह प्राणातिको येवत् ॥
न जातु ब्राह्मणं हुन्वारसर्वपापेष्वपि स्थितम् ।
राष्ट्राधेनं बहिः कुर्वीत्समप्रजनमन्नतम् ॥ मनु० ८।७६-८०
- (४) धर्म्यापनधर्म्यापनं वजन तथा वानं प्रतिग्रहवर्षेण पदं कर्माव्यप्रव्रजमतः ॥
पराक्षा तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका ।
वाचनार्ध्यापने चैव विदुःशान्ति प्रतिग्रह ॥ मनु० १०।७१-७६
- (५) बग्न १।५५ १।७८ (६) बग्न ५।२२१
- (७) बग्न० २।११२ (८) बग्न १।७६
- (८) बही १।७६ (९) लंघ ५।७६
- (९) स्कंद० ५।१२१ (१०) मूब ५।१२१
- (११) मूब ३।२२ (१५) बही ३।२१

की ओर ही संकेत करता है । बाह्यतः दान देता या घोर दान लेता भी था । अपने स्वर का बाणव्य से यह संभावना—इस मेरे अन्तिम समय में भी क्या कुछ दान बाह्यते हो ?” राजा से प्रतिग्रहण का उदाहरण है । बाह्यतः के सबसे महत्त्वपूर्ण कर्म त्याग का सबसे उदाहरण ‘वाग्दयापन’ तथा अन्तिम धनु का निष्काम बाणव्य है । ‘राजस तक को धारण्य मे कहना पडा—‘पार्थ साम्राज्य का महामन्त्री इस उपोषण में । दानव्यापन की धारण्यकताग ही परकारता की विभूति प्रकृति पूरी कण्ठी है, वह फलभूत जाकर अजसि से बलपान कर तृण-जम्ब्या पर धातु बन्ध किए सो रहता है । त्याग के ऐसे अन्तिम उदाहरण अत्यन्त दुर्लभ है ।

मनु ने ध्यापयर्म में बाह्यतः की कृपि घोरता घोर बाणव्य को जोबिना के रूप में ग्रहण करने की अनुमति दे दी है ।^१ हरिद्र बाह्यतः बाणव्य भी जीविका के लिए लासन व्यवसायी होन के बहने रूपक बनने की इच्छा प्रकट करता है ।^२ यहाँ बाणव्य से प्रसार ने बाह्यतः के ध्यापयर्म का ही उल्लेख करवाया है ।

मनुस्मृति के अनुसार ‘श्रवा का रक्षण’ क्षत्रिय का परम धर्म है ।^३ क्षत्रिय की परिभाषा देते हुए कुम्भधर्म कहते हैं—‘श्रवा का रक्षण क्षत्रिय करण में निपुण हो गुर घोर पराक्रमी हो को दुष्टों का वधन करने में समर्थ हो बही क्षत्रिय कहलाता है । क्षत्रिय अपनी जीविका शस्त्रास्त्र द्वारा करता है प्रसार के नाटकों के क्षत्रिय इन लासनीय धर्मों का स्वयं पालन करते हैं घोर धर्म्य बर्णों से भी धर्म-पालन करते हैं ।^४ अयमाना विषयों की, पीड़ितों और प्रमाथों की रक्षा में प्राण विसर्जन करना क्षत्रिय का परम कर्तव्य समझनी है ।^५ बभ्रुवर्मा कहता है—‘क्षत्रिय का कर्तव्य है—घात बाण परायण हाका विपद का हस्तते हुए प्रार्थित करना विभीषिकाओं की मुक्त्या कर अवहेलना करना और विपत्तों के लिए, अपने धर्म के लिए बरा के लिए गण देना ।^६ पर्युक्त कावना करता है कि बहु पवित्र धर्म धर्म का पालन करते हुए छठी के मत के लिए

(१) कृपि घोरतामास्याम जीवेद्वयस्य जीविकाम् मनु० १०।८२

(२) बभ्रु० १।७०

(३) ‘श्रवाणां रक्षण’—मनु० १।४

(४) जोक सरकले बल कुरो ब्रात पराक्रमी दुष्ट विग्रह सीतोभ्यः स मे क्षत्रिय उच्यते । —मुचनीति १।४१

(५) बभ्रु० ४।१०२ १११

(६) बही १।४३-६०

(७) बही २७१

मर मिटे ।^१ क्षत्रिय कुमार होने के कारण विद्वद् वाहुदस से उपासना करना और मृगया करना अपनी धार्मीयता मानता है ।^२ अश्वत्थ मुठ को धार्मीयता और क्षत्रिय का परम धर्म मानता है ।^३ पुनकेसिन आश्रम-धर्म की परीक्षा के लिये मुठ को अनिर्वाय समझता है ।^४ आश्वत्थ कहता है कि क्षत्रिय के उत्पन्न धारण करने पर प्राप्त बाणी नहीं सुनाई पड़नी चाहिए ।^५ प्रजा रक्षाय करने और धर्म का पालन कराने की क्षमता के कारण क्षत्रिय 'उत्पन्न' के उपयुक्त समझा जाता है ।^६

क्षत्रियों के घाप ही प्रसाद ने स्वान स्वान पर क्षत्रियों के धार्मिक का भी उल्लेख किया है । क्षत्रियों से बिरसंगिनी जड़-जटा का बिर लोह होता था ।^७ विजया क्षत्रियों को प्राण की चित्तगारिया और वज्रामुखी की सुन्दर लट कहती है ।^८ मुठ का संवेद्य क्षत्रियों के लिए शुभ समाचार माना गया है ।^९

'मुद्राराक्षस' में अश्वत्थ को वृषभ कहा गया है । इस वृषभ शब्द के कारण कुछ इतिहासकारों ने मोमों को ब्रह्म मान लिया है । पर प्रसाद के अनुसार पिप्पली कानन के मोम क्षत्रिय थे । बौद्धों के प्रभाव से घाने के कारण उनके बीच संस्कार छूट गये थे परन्तु उनके क्षत्रिय होने में कोई संशय न था ।^{१०} प्रसाद का मत है कि धार्मिक क्रियाओं का लोप हो जाने से क्षत्रियों को वृषभत्व प्राप्त हो जाता था ।^{११} उनके इस निर्णय को शास्त्रीय आधार प्राप्त है । मनुस्मृति की कुम्भकमट्ट की टीका के अनुसार क्षत्रिय क्रियाओं के लोप से और ब्राह्मण ध्यान अभ्यास तथा प्रायश्चित्तदि के प्रभाव से ब्रह्मता को प्राप्त हुए । मनु के अनुसार क्रियालोप से और ब्राह्मण के अवर्जन से क्षत्रिय जाति वृषभत्व को प्राप्त हो गई । पौंड्रक, बौद्ध प्रविद्ध धार्मिक इष्टी कोटि के वृषभत्व को प्राप्त क्षत्रिय हैं ।^{१२} मनु ने मोमों का उल्लेख नहीं किया है किन्तु प्रसाद ने उक्त सिद्धांत का उपयोग सामान्य रूप में क्षत्रियों के वृषभत्व को स्पष्ट करने के लिए किया गया है ।

(१) स्कंद १।६

(२) प्रजाप० २।७

(३) अश्व० १।१३ ४।२३६

(४) राज्यधी ३।३८

(५) अश्व० १।६७

(६) स्कंद ४।२२२

(७) बही १।४६

(८) बही १।४७

(९) राज्यधी १।२३

(१०) अश्व १।६६

(११) बही १।६६

(१२) शनैकस्तु क्रियालोपादिमा क्षत्रिय जातय । वृषभत्वं यथा लोके ब्राह्मणावर्जं
नेन च ।

पौंड्रकाश्वीन्द्रविद्याः नाम्बोजा यथा-सकाः । पारदा पद्मवाश्वीना किपठा

ररदा अथा ।

मनुष्मृति के अनुसार क्षत्रिय के लिए धारणिकाल में भी मित्राभूति को कोई स्वाम नहीं बसे ही यह वैश्य भूति धरना में ।^१ प्रसार ने मित्राभूति को क्षत्रिय का धारणार्थ नहीं माना है । पर्युत्तर वेद के दुर्दशाप्रस्थ और हृद्यों की सेवा के लिए मित्राभूति करता है और कहता है — मैं क्षत्रिय हूँ । मेरा यह पाप ही धारणार्थ होगा।^२ यही मित्राभूति को पाप माना गया है यद्यपि परिस्थिति तथा पर्युत्तर उसे भी धारणार्थ मानने के लिए विवश हो जाता है ।

वैश्य के सम्बन्ध में बहुत थोड़े से ही उल्लेख इस नाटकों में मिलते हैं ।

बाणभय के एक वाक्य से ज्ञात होता है कि ब्राह्मण के पोषक

वैश्य वैश्य, सेवक शूद्र और रसक क्षत्रिय हैं ।^३ बन्धित होने के कारण

त्रिषया को वेष्टि-कन्या कहा गया है^४, उसको 'स्वर्ण रत्न की

चपक पहनने वाली प्राँतें हैं ।^५ वैश्यों के विषय में धर्म्य जातिगत धारणों का प्रकाश ने कहीं उल्लेख नहीं किया है ।

शूद्र का कर्म सेवा करना है ।^६ 'अग्रगुण्य' नामक में शूद्र की हीनता की परिष्कारि कई स्थानों में हुई है । बाणभय नाम के प्रतिज्ञापी को 'शूद्र के धर्म से पने हुए कृष्ण' कहा है । पब्लेनवर बाणभय को 'शूद्र-साक्षिण

शूद्र पाट्ट में रहने वाला ब्राह्मण' कहकर विनित्त करता है । शूद्र के द्वारा नियुक्त-बद्ध किये जाने और क्षत्रिय के द्वारा निर्वासित

होने पर बाणभय का पदनिष्ठ ब्राह्मण एक बार धरणी न्याया से बचना चाहता है ।^७ मनु के अनुसार शूद्र का एक मात्र कर्म—ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य की सेवा भूमूया करना है ।^८ प्रसार के नाटकों में शूद्र की सेवामूर्ति और उसकी हीनता के उल्लेख के प्रतिरिक्त और कुछ नहीं कहा गया है ।

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों के विषय में इतनी सूचना देने के साथ कहीं-कहीं प्रसार ने इनके सम्बन्ध में वर्णवात्मक उल्लिखों भी कहीं हैं । जैसे 'धरे ब्राह्मण की मुक्ति घोबन करते हुए मरने में बन्धियों की दीवारों की चोट से फिर जाने में और शूद्रों की हथ तीनों की ठोकरों से मुक्ति है । महारेरी तो सजायी है संभवतः

(१) मनु० १०।५३

(४) अग्र० १।६८

(२) स्कंद० १।४६

(३) अग्र० १।६८

(६) अग्र० २७

(२) स्कंद० २।१३६

(४) धारा० २।१०१

(६) बहो १।४६

(८) अग्र० १।५१

(१०) अग्र० १।६७

(११) मनु० १।६१ एकमेव तुशू इत्य प्रभु' कर्म सामहितम् ।

एतेषामेव बण्णानां शुभूपामनभूयया ॥

उनकी मुक्ति तत्त्व से होती ।^१ इन व्यंग्यों के घटिरिक्त बाह्यण के कूट होकर चाप देने^२ और उनके पैर^३ होने की धोर भी संकेत किया गया है ।

सत्कामीन समाज में प्रबलित चार पाप्यों की धोर भी प्रसाद के नाटकों में बत-तन संकेत मिलत हैं । चाणक्य के कथन 'सौम्य । कुलपति ने मुझे गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने की आज्ञा दे दी है,^४ से ज्ञात होता है कि स्नातकों ब्रह्मचर्य को गुरुकुल में विद्याभ्यसन करने तक ब्रह्मचर्याभम में रहना पड़ता था । स्नातक होने पर गृहस्थ-जीवन प्रारम्भ होता था । प्रसाद ने कहीं भी यह उल्लेख नहीं किया है कि ब्रह्मचर्याभम कितने वर्षों तक रहता था और कब से गृहस्थ जीवन में प्रवेश किया जा सकता था । मातृगुण्य के एक वाक्य 'किसी धार्य सगृहस्थ के स्वच्छ और पवित्र प्राशन गृहस्थ ।^५ ही भुखी जाति के^६ निर्वासित प्राणियों को भलवान देकर संतुष्ट करेंगी से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रसाद सगृहस्थ उसको मानते हैं जो स्वच्छ और पवित्र जीवन व्यतीत करता हो और गृहस्थात्म में धीन-दुखियों को भलवान इत्यादि देकर संतुष्ट करता हो ।

गृहस्थाभम के पश्चात् बालप्रस्थ प्राभम आता है । बिम्बसार के कथन के अनुसार प्रसाद इस प्रथा की धोर संकेत करते जान पड़ते हैं ।^७ बालप्रस्थ । प्राचीन काल के शासित राजा अपने पुत्रों को राज्य देकर अपनी राजियों के साथ बालप्रस्थ पारस्य कर तपोवन में लसे जाते थे । मनु ने इस प्रथा का समर्थन किया है । वे कहते हैं कि जब गृहस्थ बृद्धावस्था को प्राप्त हो जाय तब अपनी समस्त को गृहस्थ-व्याभम का भार सौंपकर वन में लसा जाय ।^८ बालप्रस्थ की मानना के पीछे जो सहाय मानवी प्रवृत्ति कार्य करती है उसका उल्लेख प्रसाद इस प्रकार करते हैं — 'जीवन की सारी क्रियाओं का अन्त केवल धन्य विभ्रम में है । इस बाह्य हलचल का उद्भव आन्तरिक शांति है फिर जब उसके लिए ध्याकुल विपासा का ठे तब उसमें बिलम्ब क्यों करें ?^९

बासकी के अनुसार सच्चा बालप्रस्थ तब आता है जब व्यक्ति में त्याग की मानना आती है और वह मानान्मान से परे हो जाता है ।^{१०} शांति की प्रावश्यकता होने पर बालप्रस्थ बहस किया जाता था ।^{११} इसलिये चाणक्य भी विरक्त होकर अतिमज्जीवन विधान का निस्त्य करता है ।^{१२} चाणक्य ने बिना गृहस्थ जीवन के

(१) स्कन्ध २।११

(३) धजात० २।१ ४

(५) स्कन्ध ४।११८

(७) मन० १।२

(८) धजात० १।१६

(११) अश्व० ४।२५०

(२) स्कन्ध० २।६६

(४) अश्व० १।५२

(६) धजात० १।१३

(८) धजात० १।१७

(१०) अश्व० ४।२६०

ही बानप्रस्थ से लिया । स्कंदपुराण भी पुरुषसुप्त को सिद्धासन देकर बानप्रस्थ प्रहृत करने की इच्छा करता है ।^१

इससे यह भी ज्ञात होता है कि ब्रह्मचर्य का यह स्वधर्यन्त ही प्रतिक्रिया होगा और बालसभ्य तथा स्कंदपुराण जैसे प्राचीन कौमार-व्रत लेने वाले व्यक्ति धर्यन्त ही महान् समझे जाते होंगे ।

सम्यास का स्वतन्त्र प्रत्येक प्रसार ने कहीं नहीं किया है । चाणक्य, चन्द्रगुप्त मौर्य के पिता को 'घरने घमिमाम को मारने लिए' कापाय प्रहृत करने का आदेश देता है । यहाँ 'कापाय प्रहृत' का प्रयोग 'सम्यास' आशय के सम्यास । लिए ही हुआ है । वैसे 'कापाय प्रहृत' का प्रयोग शीघ्र-मिथु ब्रह्मणे के धर्म में प्रचार ने अनेक बार किया है पर वहाँ यह कापायब्रह्मण ब्राह्मण धर्म का स्वरूप नहीं है । अन्वय 'ब्रह्मणस' शब्द का प्रयोग भी सम्यास आशय के लिए हुआ है ।^२

(१) स्कंद० १।१४४

(२) अथ ४।४८

प्रधान धर्म एवं देवी देवता

प्रसाद ने अपने भाटकों में भारतीय इतिहास के जिन कालों को लिया है, प्रायः उन सब में ही भागिक क्रांतियाँ हो रही थीं। महात्तमजु का काल बौद्ध धर्म के उदय का काल था। बौद्ध धर्म का उदय भी इस से कुछ पूर्व ही हुआ था। वे दोनों धर्म कर्मकाण्डी ब्राह्मण धर्म के विरोध में उठ खड़े हुये थे। अपनी सरलता एवं जाति धीर वर्ण व्यवस्था के बन्धन से मुक्त होने के कारण इन धर्मों का प्रचार भी बहुत अधिक हुआ। बौद्ध-धर्मों में प्रसिद्धि धीर विम्वहार संबंधी जितन भी उल्लेख मिलते हैं उनसे यह ज्ञात होता है कि बौद्धधर्म उत्कालीन जासकों के जीवन में भी अपना पूर्ण प्रभाव डाल चुका था।^१ मौर्यकाल में जालुक्य को केन्द्र मानकर समस्त राजसत्ता धीर समाज उसके चारों ओर जकड़ जाटते प्रतीत होते हैं। धर्मशास्त्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज का समस्त वर्णभ्रम तथा स्मृतिकारों के नियमों से पुन बाँध दिया गया था।^२ यद्यपि लिखित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि अश्वमेध के राज्यकाल में बौद्ध धर्म कितना लक्षितबामी था तथापि धर्मशास्त्र धीर धीक इतिहासकारों के प्रमाण के आधार पर उस काल में लिख्य ही ब्राह्मण धर्म धीर विशेषकर वेदों धीर उपनिषदों के धर्म की प्रथमता रही होगी। धीक इतिहासकारों ने भारत के जिन देवस्वी एवं सुबोपासक धार्मिकों का उल्लेख किया है^३ वे ब्रह्म को ज्योति स्वरूप मानते थे। सुबोपासना ब्राह्मण धर्म में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। यह वर्णन ज्योति के 'गायत्री मंत्र' सविता की वैदिक पूजा का सूचक है किन्तु धार्ये जकड़ इसी मौर्यकाल की तीसरी पीढ़ी में ही अशोक ने बौद्ध धर्म का प्रचार मध्यजु के सूर्य की भाँति समस्त अश्वमेध के धाकाठ में प्रसारित कर दिया। गुप्तकाल में मानवत धर्म राजधर्म बना धीर विष्णु के माना रूपों की पूजा प्रारम्भ हुई। अस्वमेध धारि यज्ञों तथा कर्मकाण्ड की अधिकता के कारण ब्राह्मण धर्म में उपनिषद् कालीन धार्मिक पक्ष की कमी हो गई। गुप्तों के विना सेन ब्राह्मण धर्म के विकास के छात्री हैं।^४ उनकी उपाधियाँ भी उस धीर स्पष्ट संकेत करती हैं।^५ इस काल के इतिहास से यह भी ज्ञात होता है कि विनाको

- (१) महाभारत २ २३। अश्वमेध अट्टवशा (३) १८८ 'अश्वमेध सुक्त'
 (२) धर्मशास्त्र 'विमयाधिकारक' ३ ऐधिण्ट इ दिया' मैकिडस पृ १२० २१
 (४) गोविन्द पारापित जीवितेन' जूनागढ का सेन पंक्ति २३ 'विष्णोरथ पाद कर्मने'
 (५) 'परम मानवतो 'परम वैष्णव' इत्यादि

मुक्त होत हुए भी बौद्धधर्म अपने पुरा शक्ति से जीवित था ।^१ हूय के काल में दूसरा बौद्ध धर्म का महत्व बढ़ा । यद्यपि धर्म के सम्बन्ध में हूय समन्वयवादी समझा गया है तथापि दुःखान्धकार के विचारणों से उन्का धार्मिक प्रवृत्ति का अनुमान किया जा सकता है ।

प्रसाद के नाटकों में दो प्रधान धर्मों का ही उल्लेख हुआ है । उनमें से ब्राह्मण धर्म तो अत्यन्त प्राचीन है और बौद्ध धर्म उसकी तुलना में पर्याप्त नवीन । प्रसाद इतिहास के विभिन्न किस्मों को लेकर बने हैं । उनमें कभी तो एक धर्म की प्रधानता दिखाई देती है और कभी दूसरे की । समय समय पर भारत में महान्पुरुष सम्राटों ने जिस धर्म को राज्याध्यय दिया अथवा वे स्वयं जिस धर्म के अनुयायी बने वही धर्म उस काल का प्रधान धर्म बनकर उत्कर्ष को प्राप्त हुआ 'अशोक' नाटक में बौद्ध धर्म के चरम उत्कर्ष का चित्रण हुआ है । 'अशोक' में उपनिषदों के दार्शनिक पक्ष की प्रधानता है उसमें 'सर्वता' की उपासना के उत्सव का भी ऐतिहासिक महत्व है । बौद्ध ब्राह्मणों का सम्बन्ध सर्वसे पुरा ऐतिहासिक सम्बन्धों में एक है । अशोक देखा जाय तो मौर्यकाल ही बौद्ध धर्म के चरम उत्कर्ष का काल भी रहा है । प्रथम स्थानिनी में धार्मिक इन्धों का समावेश है । विष्णु उक्त नाटक का आधा ही ब्राह्मण धर्म का वैश्वकोपीय पक्ष है । इसका अर्थ है 'अशोक' में जोड़ा सकता है । उसमें एक ओर तो 'अशोक' और विश्वम्भर की धाराप्रवाह की कथा हुई है दूसरी ओर 'अशोक' इत्यादि के माध्यम से कर्मकाण्ड की धारा भी सर्वत्र बिया गया है । उसके साथ साथ ब्राह्मण बौद्ध संघर्ष भी उस काल की विशेषता प्रतीत होती है । उक्त संघर्ष का आचार ऐतिहासिक है । अशोक के काल में ब्राह्मण संघर्षों से ही नहीं धार्मिक संघर्षों से भी मुक्त साम्राज्य प्रवृत्ति हो गया था । 'अशोक' में बौद्ध धर्म के महान्-वीर्य का स्वल्प निखरा हुआ है ।

ब्राह्मण धर्म के स्वर्णोप में समय समय पर परिवर्तन होते गये । प्रसाद ने अपने नाटकों में इन परिवर्तनों की ओर धार्मिक ध्यान नहीं दिया है 'अशोक' और 'अशोक' नाटकों में ब्राह्मण धर्म के स्वर्णोप से कुछ अन्तर विकृता है । ठीक इतिहासकारों से प्राप्त जाता है कि 'दार्शनिक' धर्मवादी ज्ञानी को प्रसार के होते में ब्राह्मण धर्म आया । ब्राह्मण धर्म के उपरान्त में धार्मिक बनाकर रहत हुए और धार्मिक की श्रेष्ठता का भी ध्यान करते-करते अशोक के उपरान्त ब्राह्मण धर्म के चरम उत्कर्ष का परिचय करते-करते अशोक के निम्न रहते और इनमें जो भी अल्प विचार में सम्मिलित करते थे । विद्यालय के उपरान्त ब्राह्मण धर्म के चरम उत्कर्ष का परिचय करते-करते अशोक के साथ धार्मिक धर्म भीमते हुए धर्म धर्म और धर्म धर्म रहते और अशोक के चरम उत्कर्ष के निम्न धर्म धर्मों का अन्त के नहीं आते थे ।^१

१ रि मुष्ठा इत्यादि रामानुज मुखर्जी पु० ११२

२ मयास्त्रीय धर्म ४० इत्यादि ११ की ७१

मेगासमीच ने दूसरे प्रकार के चित्रों यर्बात धर्मों को 'प्रमाणाई' कहा है जो तर्क में प्रतीण प्रीर विशावलीन होने के कारण विश्राम्नेवण में बतुर होते थे । 'सरमेनस' शब्द सस्कृत के 'धर्म' से बना है और मुसर्मी इसका धर्म 'बीड और मिधु' लेते हैं । 'स्माओ' इनके विषय में लिखना है कि वे बाह्यों का उपहास करते थे ।^१

'अम्ब्रगुप्त' में बालव्य प्रीर शोधयान बाह्य धर्म के विषय स्वरूप को मानते हैं उसमें बार्शनिक पक्ष की प्रमाणाता है कर्मकांड की नहीं । शोधयान प्रकृति की चिरन्तन गतिशीलता का उल्लेख करता है जिसमें कभी रुकना नहीं होता 'पवन एक क्षण विराम नहीं लेता सिन्धु की जलधारा बही जा रही है बाधों के भीषे पक्षियों का झुंड उड़ा जा रहा है प्रत्येक परमाणु न जाने किस प्राकर्मिक में लिपे पसे जा रहे हैं ।^२ उपरोक्त विचार बारा उपनिषदों के 'अरेवेति अवेति' के सिद्धांत के अनुकूल है । 'स्कन्दगुप्त' में प्राचीन ऋषियों के सम्बन्ध में इस बार्शनिकता की चर्चा हुई है । प्रथम ब्रह्मण्य मक्ति तथा बाह्य कर्मकांड के स्वरूप का चित्रण हुआ है ।^३

बाह्य धर्म के समान ही बीड धर्म में भी कई परिवर्तन हुए और कर्म धर्म के वे परिवर्तित स्वरूप ही बीड सम्प्रदायों में परिणत हो गये । विद्वेष कर धार्मिक अन्धताओं से रहित मूल बीड धर्म प्रसोक के काल तक प्रायः वैया ही रहा यद्यपि बुद्ध के निर्वाण के चरान्त उनके प्रवचनों पर निर्मित स्तूपों का पूजन प्रबन्ध होने लगा था । २४० ई० पू० में 'स्वधिरवारी' प्रीर महाधर्मिक स्वरूप हो गये । महाबान के मूल 'महापारमिता' सूत्रों का बन्ध ई० पू० १९० में हो गया था यद्यपि स्वयं 'महायान सूत्र' ई० पू० ८ में लिखे गये यहीं से महायान धर्म का विकास हुआ ।^४

यहां तक बीड धर्म के बाह्य स्वरूप का प्रश्न है प्रसार के नाटकों में यह विकास किसी न किसी रूप में स्पष्ट परिलक्षित होता है । प्रसार में विन्मघार प्रजात बन्धु के जावन काल (३० ई० पू० के लगभग) में मिखा का जो महत्व विधिय किया है,^५ वह धर्म नाटकों एवं ऐतिहासिक कालों में उपबन्ध नहीं । इसका ऐतिहासिक साधार भी है । कालांतर में बीड धर्म के प्रवर्तित विधा से प्रभावकृत करने

(१) स्ट्राबो १५ सी ७१२

(२) अम्ब्र० ११०५

(३) स्कंद०

(४) बुद्धिग' ग्रेडरड कीमे चार्ट पृ० १६ तथा एपीकिस

(५) प्रजात० २८३

का वह उद्देश्य ही बाठा एक जो पूरा काल में था। प्रथम ने अपने योगशास्त्र में इसके सिधे तर्क प्रस्तुत किये। प्रथम केवल भिक्षा मात्र पर ही निर्वाह न कर अन्नसिंह विहारों और सचराजों में रहकर मिश्र भण्ड वपति स्वर्ण तथा रत्नमी बस्त्र तथा का व्यवहार करने लगे। प्रसाद ने 'राज्यभी' में हर्ष के शासन काल (७वीं सदी के प्रारम्भ में) शान और भिक्षा सम्बन्धी प्रश्न परसेक किये हैं। स्पष्ट ही एक प्रत्येक का उद्देश्य हर्ष राज्यभी की शान्तिता का परिचय देना है। मिश्र और मिश्रभण्ड के कठोर विचारों की कोई सूचना उससे नहीं मिल पाती।

'बोधिसत्व' की कल्पना का विकास महाजन के साथ साथ हुआ था। प्रसाद ने इनका उल्लेख 'स्कन्दपुराण' और राज्यभी में ही किया है, 'धर्मात्मक' और 'बन्धुगुप्त' में नहीं। इस प्रकार यहाँ भी ऐतिहासिक क्रम के अनुसंधान की रक्षा ही की गई है।

बीज बर्म में तांत्रिक क्रियाओं का विकास २० ई० के आसपास हुआ था। स्कन्दपुराण का शासन काल ४२२ ई० से ४६७ तक माना गया है।^१ इस प्रकार तथ्यात्मक काल स्कन्दपुराण के ३० वर्ष बाद माना गया है किन्तु प्रसाद ने 'स्कन्दपुराण' में बीज तांत्रिक प्रयोगों का विवरण दिया है जो तथ्यात्मक के विकास से कुछ पूर्व होने के कारण काल होय भी बन सकता है। किन्तु यदि योगाचार के विकास से लेकर तथ्यात्मक तक के मध्यवर्ती काल में तांत्रिक क्रियाओं के विकास को स्वीकार करें तो एक घोर ठो योगाचार के विज्ञानवाद और न्यायवाद के तांत्रिक धारणों के बीच की गड़ी कुछ जाती है और दूसरी घोर स्कन्दपुराण का राज्यकाल बीज-तन्त्र के विकास का काल विन्दु बन जाता है। वस्तुतः यही मत प्रसाद के अनुसंधान में है।

'बन्धुगुप्त' में शैत्य पूजा^२ का उल्लेख हुआ है। यह ऐतिहासिकानुक्रम है क्योंकि कुछ से निर्वाण के ठीक बाद ही शैत्य निर्माण और शैत्य पूजन प्रारम्भ हो गया था। राज्यभी में विकटभोज या तांत्रिकभिक्षु^३ जैसे निशुभों का उल्लेख बीज बर्म के विज्ञान की सूचना देते हैं। इसी प्रकार 'धर्मात्मक' में महिला, कल्याण और कुछ

(१) बुद्धिगम कीर्ति पृ० १७

(२) राज्यभी पृ० २७

(३) स्कन्द० पृ० १८

(४) राज्यभी पृ० २८

(५) भारतीय कीर्तिपरिचय बीस्मून्-बा० मन्थारकर का लेख पृ० २०५, भारतीय ऐतिहास के धार्मिक स्तम्भ (स्कन्दपुराण) उपाध्याय

(६) स्कन्द० पृ० १०३

(७) बन्धु० पृ० २००

(८) राज्यभी पृ० २७

सांख्यिक बर्ण का अपव्यकार मिलता है वैसे अश्व भाटकों में नहीं मिलता । असा ह्य् पहले कह चुके हैं यह शीघ्र बर्ण के इतिहास से अनुमोदित है ।

प्रसार के भाटकों में इस प्रकार क्वाग भेद के कारण विभिन्न बर्ण सम्बन्धी स्पष्ट प्रबन्ध प्रत्यक्ष विवरण जलन्वु होते हैं परन्तु प्रचुरता या तो शीघ्र बर्ण के सिद्धांतों एवं वर्णन की है अथवा बाह्य बर्ण के लौकिक एवं बेबी-बेवडा। वास्तविक बर्णों की अन्त बर्णों से सम्बन्ध रखने वाले अन्वेष प्राय नहीं है । इन भाटकों में निम्नलिखित बेबी बेवताओं का जन्वेष पाया जाता है :—

सरस्वती ^१ क्षिप्रमस्ता ^२ लक्ष्मी ^३ शारदा, ^४ बेबी की उद्य मूर्ति ^५ (संमत्त बेबी काली), लक्ष्मी ^६ एवम् विहवाहिनी ^७ (शुभा)
 अश्व, ^८ सविता ^९ यत् ^{१०} कुबेर, ^{११} मामून ^{१२} अक्षयसिन्धुबाय ^{१३} विश्व
 बेवता अश्व, ^{१४} महाकाल ^{१५} शेष पद्मकलायी, ^{१६} राम ^{१७} बटपम-
 कायी ^{१८} श्रीर इण्ड १ ^{१९}

(१) अश्व०	१ ७३		
(२) अश्व०	१ २८		
(३) अश्व०	१ २ ४ ४ १ २ ६		
(४) अश्वी	१ २ ६ ४ २ ० ४ ४ ३ ४ ७		
(५) लक्ष्मी ३ ६ १			
(६) अश्व०	५ १ ४ ४		
(७) अश्वी	१ १ ३		
(८) अश्व०	२ ४ ३	अश्व०	४ २ २ ०
(९) अश्व०	४ २ ४ ४		
(१०) अश्व०	१ ४ ६		
(११) अश्व०	१ २ ०		
(१२) अश्व०	१ २ १		
(१३) अश्व०	१ १ ८		
(१४) अश्वी	२ ६ ८		
(१५) अश्वी	२ ७ ३		
(१६) अश्वी	४ १ १ ४		
(१७) अश्वी	४ १ २ २ ४ १ १ ३ ४ ४ १ १ ०		
(१८) अश्वी	४ १ २ ४		
(१९) अश्वी	४ १ २ ८		

प्रसाद में घण्टरा, १ सुर सुन्दरिया २ धनदेवता ३ तथा यज्ञ ४ का नामोन्मेष किया है इनका घण्ट देवताओं की काटि में रखा जा सकता है यज्ञों में यैरव २ बैरवी २ इत्यादि भी इसी ढंगी में रके जायेंगे ।

अनुपुष्ट नाटक में सरस्वती की चर्चा 'सरस्वती मंदिर के समाज' प्रसंग में हुई है सरस्वती कम तो ज्ञान की अविच्छिन्नी वैदिक देवी है और ऋग्वेद एवं यजुर्वेद दोनों में उनका उल्लेख हुआ है १० किन्तु इस प्रसंग में सरस्वती सरस्वती की चर्चा कामसूत्र के आधार पर हुई है वात्सयान के अनुसार 'सरस्वती-मन्त्र में यज्ञ मा महीने के प्रतिष्ठ पर्वों के धनधर पर समाज' हुआ करते थे ११ यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि अनुपुष्ट के काल में सरस्वती पूजन का कितना प्रचलन था किन्तु कामसूत्र के आधार पर यह तो सांगता ही जा सकता है कि सरस्वती के मन्दिर होते थे और उनमें समीप नृत्य इत्यादि हुआ करता था मृदाचार्य के अनुसार ई० पू० तीसरी शती से लेकर पड़नी शती तक देवी के विभिन्न रूपों की उपासना का पर्याप्त प्रचार हो चुका था १२ उक्त आधार पर भीमकाल में सरस्वती पूजन होना स्वीकार किया जा सकता है ।

बाबरी संहिता में बलिष्ठ रथ की मयिनी अम्बिका अम्बिका में सगकी पत्नी बन गई और सगका अम्बिका मातृकाओं से जोड़ बिना गया, तैत्तरीय ब्राह्मण और कनोपनिषद् में उमा और पार्वती का उल्लेख मिलता है । महा धिष्णमस्ता भारत क भीष्मपर्व और विष्णुपर्व में भी उमा के कई नये नामों का उल्लेख हुआ है हरिवंश में बसे ही कुमारी कामी, कपाली, महाकाली जकी कालापत्नी कराला विजया कौतकी और कांताराजिनी कहा गया है १३ बौद्ध जन और हिन्दू लोगों का विकास मुक्त काल में ही हुआ होता क्योंकि कबि के अनुसार तत्रयान की प्रथम तिथि १०० ई० पू० है । १४ इन लोगों में इसी

(१) बही	२१९२	(२) बही	३१०१
(३) राज्यमी	११२७	(४) राज्यमी	२१४६
(५) स्कन्द०	११४०	(६) बही	११४६
(७) प्राणी देवी सरस्वती शारोमिर्बाजिनीवती	बीनामकिष्पस्तु	शुद्धेद	

१ १६११२१

(८) 'पञ्चस्य पाण्डस्य प्राध्याते इति सरस्वत्या पक्षे निमुक्तानां नित्य समाज — कामसूत्र नामक वृत्त प्रकरण ।
(९) माह्वर रितीनम सेकम् (एक की मृदाचार्य) एक धातु इन्मीरिवत मुनिटी

पृ० ४७०

(१०) बही पृ ४६७
(११) बुद्धिम् (बत्रि) बाहव चार्ट पृ० ६९ एच ऐपेण्डिच

देवी के धर्म कई नामों का उल्लेख हुआ है। क्षिप्रमस्ता को बामुण्डा तंत्र में बिद्या, श्यामा रङ्ग में महाबिद्या और विश्वसार तंत्र में सिद्ध महासिद्ध बिद्या माना गया है। धर्मिका के विभिन्न नामों के विकास के उपयुक्त ऐतिहासिक क्रम को स्वीकार कर लेने पर 'श्रवस्वामिनी' के गुप्तकालीन कथानक में क्षिप्रमस्ता का उल्लेख अनुचित नहीं प्रतीत होता।

'परम भागवत' युद्धों के काल में सक्मी और बिष्णु की उपासना के प्रचलन में धारण नहीं किया जा सकता। स्कंदगुप्त नाटक में 'स्वर्ग की लक्ष्मी के रूप में बिष्णु बिद्या सक्मी की धोर ही संकेत है। बिद्य प्रकार सरस्वती सक्मी ज्ञान की प्रविष्टात्री मानी गई है। उही प्रकार सक्मी ऐश्वर्य की प्रविष्टात्री देवी। भारत की प्रत्यक्ष प्राचीन वस्तु धोर बिष्णुकला में कमल बल बिद्यासिनी 'श्री' धरवा 'लक्ष्मी' का पर्याप्त संकेत किया गया हुआ है। मरुत स्तूप तक में लक्ष्मी के धनुष्म ही श्री का संकेत किया गया है। 'श्री' देवी धरवा सक्मी का उल्लेख जातकों में मिलता है।^१ गुप्तकालीन बिद्यालयों एवं मुद्राओं में कमल बल से युक्त सक्मी का बहुत संकेत हुआ है। स्कंद गुप्त के बुधायक के बिद्यालय में 'सक्मी' स्वयं वरदायकार के द्वारा स्कंदगुप्त के राज एवं ऐश्वर्य की धोर ही संकेत किया गया है।^२ श्रवस्वामिनी गुप्त कुस लक्ष्मी है। स्कंदगुप्त के ही मिट्टी के बिद्यालय में कुस लक्ष्मी की चर्चा हुई है। बिद्यसिद्ध कुस सक्मी स्तमनायोद्धतेन^३ में कुस लक्ष्मी का प्रयोग उपर्युक्त धर्म से कुछ भिन्न धर्म होता है। इस सम्बन्ध में मद्राचार्य लिखते हैं कि लक्ष्मी की पूजा का स्वरूप श्रीधर्म पूजन के स्थान पर ऐश्वर्य पूजन में परिवर्तित हो गया तो वह सम्राटों की बलनीया हो गई और इस प्रकार क्रमशः 'नवर लक्ष्मी' और 'राज लक्ष्मी' का पूजन भी होने लगा।^४ वन सक्मी^५ का प्रयोग वन देवी के धर्म में हुआ प्रतीत होता है। यहां भी लक्ष्मी की पूजा के प्रसरण का उपर्युक्त स्वरूप परिलक्षित होता है। संस्कृत ग्रन्थों में वन देवियों का उल्लेख भी मिलता है।^६

तारा का उल्लेख स्कंदगुप्त में कई स्थानों पर हुआ है। एक स्थान पर उसे "यत्र बिद्या पर ताडव गुत्य करती हुई यति के संहारकारी रूप में चित्रित किया

- (१) माहतर रिमीनस सेकटम् / एच डी मद्राचार्य) पृ० ४००
- (२) श्री काचकराठी जातक
- (३) सेकट इन्सक्रिप्शंस (सरकार) नं० २३
- (४) सेकट इन्सक्रिप्शंस (सरकार) नं० २८
- (५) वही (एच डी मद्राचार्य) पृ० ४०१
- (६) राम्यभी ३।३३
- (७) प्रमिताम बाकुलतम् प्रंक ४ पृ० ५० (का० ३०)

गया है। धर्मग्रन्थ इमे ही 'उपजाय भी कहा है जिसही साधना से विन्दु से
विष्णु कार्य सिद्ध होते हैं।^१ एक और स्थान पर इसे 'प्रज्ञापारमिता स्वरूपा तारा'^२
भी कहा गया है। तारा का सम्बन्ध बौद्ध धर्म के ब्रह्मपान
घोर उपपन्न से है। एवम् बौद्धों की प्रज्ञापारमिता घोर तारा
को प्रथम स्वतन्त्र बौद्ध देवियां मानते हैं। उनके अनुसार तारा
तारा के तन्मय प्रारम्भ हुई। तारा मन्त्र संस्कृत

की उपासना बौद्ध धर्म में ११० ई के तन्मय प्रारम्भ हुई। तारा मन्त्र संस्कृत
'तारयति' से बना है। जिसका धर्म 'रक्षणात्मक' प्रकृति पर स्यात् वाली है घोर
को मय को दूर कर मनोकामनाओं को पूर्ण करती है। तारा साधारण बुद्धि की उपर
पी। प्रज्ञापारमिता की धारणा योद्धे से साधु विचारकों के मस्तिष्क से उत्पन्न हुई
मन्त्र विज्ञान के रूप में ही नहीं बल्कि एक देवी के रूप में भी हुआ है। पारमिता
बुद्धि को संभवतः प्रथम ब्रह्मणी इसी के पासपास मूर्त रूप दिया गया होया।
'प्रज्ञापारमिता' मूर्त में उसे 'सर्व बुद्धों की बनती कहा गया है।^३ धर्मग्रन्थ इस देवी
के सर्वकार स्वरूप की कल्पना का कारण बताते हुए कतिपय प्रयत्न करता है। उन्हीं के
पह के विनाश के लिए को मूलम सहायक मानसिक प्रयत्न करता है।^४ कति
मूर्त स्वरूप को यह कति (देवी के सर्वकार रूप में) स्वीकार कर लेता है।^५ कति
के इस भीषण रूप की साधना समकाल में की जाती है।^६ कति ने तारा को प्रथम
स्वतन्त्र बौद्ध देवी^७ कहकर परिचित किया है किन्तु तारा बौद्ध धर्म में ही देवी
नहीं किन्तु धर्म की देवी भी है। 'वासुदेवा तन्त्र' में काली घोर तारा को
महाविद्या कहा गया है। पौडपी पुस्तकलेखी, 'संस्कृत' में काली घोर तारा को
विद्या है बगला मातंगी घोर कमला विद्विद्या है।^८ इयाना रहस्य में इन
धर्मों की 'महाविद्या' कहा गया है।^९ विश्वपार तन्त्र में काली घोर तारा महा
महा सिद्ध विद्या' है तथा धर्म 'सिद्ध महासिद्ध विद्या' है।^{१०}

- (१) स्कंद० १।२६
- (२) गही ३।०४
- (३) बुद्धिग्रन्थ ऐदवर्द्ध कति पृ० १६२
- (४) गही ऐदवर्द्ध कति पृ० १६४
- (५) 'विद्याविद्या घात विद्विद्या घोरकर्म संपुरती वि देवोत्प्रेषण विर वि
वरियस प्राड्ड स्ट्रेर वि मीटीरियन बीडी इन विद्विद्या।
- डा० पी० एच० बोस्ट : ऐन कोटेड बाइ कति इन बुद्धिग्रन्थ पृ० १६४
- (६) 'एवंत घीटीलोमस बुद्धिस्त घीटीर गही पृ० १६२
- (७) प्रिंसिपल्स ऑफ तन्त्र : धार्यर देवेलन पृ० ४१६
- (८) गही पृ० ४२६
- (९) गही पृ० ४२६
- (१०) गही पृ० ४२६

(१) गही ३।०४

वज्र मूत्र में योनिनि में प्राण त्याग करने के उपरान्त यज्ञी ने धनुष-बिक्रान्त रूप सिद्ध को बिसाकर प्रयागक घट्टाहास किया। सिद्ध भयभीत होकर भाग जाने लगे उन्हींने अपने अलक्ष स्वरूप को अपनी विभिन्न शक्तियों में विभाजित कर बिना घोर सिद्ध को बेर मिया। अन्त में देवी द्वारा प्रथम मुक्तने पर सिद्ध न कहा 'हे वृद्धापी देवी यदि प्राण मुक्त पर प्रसन्न हैं तो मुझे बताइये कि प्राणके ये भिन्न-भिन्न स्वरूप किन नामों से पुकारे जाते हैं। देवी ने प्रथम अक्षर सबका वर्णन किया। महासाध के स्वरूप के सम्बन्ध में उन्हींने कहा 'जो तुम्हारे ऊपर श्याम बर्ण की देवी है वह महाविद्या तारा है और महाकाल की पूर्ण कृति है।' महाकाल के स्वरूप की भर्ष करता से हिन्दू तन्त्र में भी महाविद्या तारा' के स्वरूप की भयकरता का अनुमान किया जा सकता है। अतः प्रपञ्च-सुक्ति ने 'सर्व चित्तों में तांडव नृत्य करती हुई जिस तारा की घोर संकेत क्रिया है वह बौद्ध तन्त्र की तारा के अनुकूल न होकर ताण्डव नृत्य करते हुए 'महाकाल की पूर्ण प्रतिरूपि' के रूप में है।

तारा तिब्बत की राष्ट्रीय देवी 'संग्युग्मस्ममन' (अन्वारण संभ वय जन म्) है। इसका अर्थ है, जो बुद्ध के मन की है।^१ इस प्रकार तिब्बत में तारा को बुद्ध की भाँज की पुत्रनी माना गया है। नेत्र का सम्बन्ध ज्ञान से है जो प्रज्ञा है। बुद्ध की प्रज्ञा बुद्ध होने के कारण पारमिता है। अतः तारा का सम्बन्ध प्रज्ञा पारमिता से सीधा जुड़ता प्रतीत होता है। तिब्बती बर्मण्डलों में तारा के १८ नाम हैं जिनमें सबसे 'मामकी घोर' 'डोसमा भी कहा गया है।^२ तन्त्रयान सम्बन्धी धरणी पूर्व मान्यता के आधार पर यह कहा जा सकता है कि स्कन्दवृत्त में तारा का उन्मेष ऐतिहासिक दृष्टि से समीचीन है।^३

वस्तुतः कामी का नामोल्लेख प्रसाद के नाटकों में नहीं पाया जाता किन्तु वस्तुराज देवी की जिस उग्र मूर्ति के सम्मुख चीनी यात्री ह्वेनसांग की बलि देना चाहता है वह सम्भवतः कामी ही होगी क्योंकि बायमार्गी साधकों एवं वस्तुओं की प्रधान पाराय्या कामी ही रही है और इन्हीं ही तन्त्रों में महा-काली विद्या कहा गया है।^४ हर्ष काशीन हिन्दू एवं बौद्ध दोनों वर्गों

(१) प्रसिपल्ल घाफ तन्त्र पृ० ३१७

(२) रि टिबेटन बुक सोसि रि डीड डब्ल्यू बाइ० इवाम्प तथा वेल्स पृ० १०८

(३) 'डोसमा : सं० तारा सेविमरेस ती इज रि बिबाइल कनसर्ट घाफ घबसो फिरेम्बर। बेमर धार नाड टू रिडोम्लाइड फीर्म घाफ बिप गीसि। रि प्रीन डोसमा ऐब बलिन्ड इन टिबेट एड रि झाइल डोसमा ऐब बलिन्ड चीनी इन बाइना एड मंगोलिया। बिबिपल घाफ तन्त्र मार्भन ऐबेलन
पृ० ११६ फुट नोट

(४) देखिए इसी परिच्छेद में 'बौद्ध धर्म'

(५) प्रसिपल्ल घाफ तन्त्र मार्भन ऐबेलन पृ० ४१६

ने तांत्रिक क्रिया—कलाओं की प्रकृष्टता हो चली थी । बरतुल इत
 काम में महायान की शक्तिवाली बाला प्रपन चरम उत्कृष्ट में थी । बाण प्री
 ज्ञानसाधन शक्तियों के विवरणों में तांत्रिक विधियों का उल्लेख हुआ है । हर्षचरित में
 नेत्रवाच्य की शक्ति साधना की धाराध्या लक्ष्मी है काली महा किन्तु बाल के ही
 प्रचार या । बाण ने स्वयं काली के बीस नामों का उल्लेख किया है ।^१

ज्ञानसाधन सम्बन्धी उक्त घटना का प्रचार ऐतिहासिक है । जब भीनी यात्री
 यशोव्या से पूर्व की घोर जल यात्रा कर रहा था तब कुछ शत्रुओं ने जोका पर
 पावसल कर भीनी यात्री को बन्धी बना लिया और अपनी धाराध्या देवी के सम्मुख
 उसकी बलि देन लये ।^२ अतः इसमें किसी प्रकार की सम्बन्ध नहीं किया जा सकता
 कि हर्ष के शाह में काली की उग्र साधना का प्रचार था ।

यहाँ पर दो तरह तरह बलि के सम्बन्ध में भी मिलना प्रासंगिक है । प्रसार
 के दो नाटकों में तर बलि की चर्चा हुई है । स्कन्दगुप्त नाटक में प्रपञ्चबुद्धि महाशय
 शान में बेबसेता की बलि देन का उल्लेख करता है और राम्यामी में बसुन्दा भीनी
 यात्री को बलिबन्धी पर लड़ा करता है । यह कहना कठिन है कि स्कन्दगुप्त के शान
 में तर बलि की प्रथा का प्रचलन था या नहीं । बसुन्दा गुप्तकालीन प्रथम प्रथा
 जल इतिहास किन्हीं से भी इस विषय से सम्बन्धित मामली उपलब्ध नहीं होती ।
 उत्तर गुप्त काल (हर्ष पूर्व से हर्ष के बाद तक) में तर बलि की प्रथा के प्रमाण
 मिलते हैं । हर्षचरित में प्रकाशरत्न न के हन होने पर राजकुमारी कायल नून मर्मा
 में तरमांस बेचना का उल्लेख हुआ है ।^३ ज्ञानसाधन के शत्रुत्व इन प्रथा की घोर
 स्पष्ट लक्षण करते हैं ।^४ मकमूति (७००-७१० ई०) के मानती मावब ने स्मरण
 बेचता गया है कि कानाविकं पञ्चोत्तं करासा देवी को मानती की बलि देने का
 उत्तर है ।^५ बसुन्दा स्कन्दगुप्त की बटना मानती मावब की इस बटना के समीप है ।
 हुए भी हो यह कहना कठिन है कि प्रसार ने कि प्रमाणों के आधार पर गुप्तकाल
 में तर बलि की प्रथा का बखन किया है । प्रपन इस दृष्टि से इन तर विचार करता
 प्रासंगिक है । यहाँ इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि जिह्वाहिनी दुर्गा की उपासना
 का ई० पू० पहली शती में पूर्ण प्रचार था । तुबिष्क के विवरणों में उमा की मूर्ति

(१) चण्डी मतक नाम १।२१७
 (२) दि साहस्य पीठ ज्ञानसाधन समल हृद ली एंड दैत पुत्र पृ० ८६ ८२
 (३) हर्षचरित । बाण पृ० १३५, १३६
 (४) दि साहस्य पीठ ज्ञानसाधन । हृद ली एंड दैत पुत्र पृ० ८६ ८२
 (५) मानती मावब मकमूति पृ० ५

घोर एजेस प्रथम के सिक्कों में मिहनाहिनी पम्बिका प्रथवा बुर्गा का प्रकन हुआ है। छठी छाठवीं शी घोर उसके उपरोक्त बुर्गा पूजा सम्बन्धी पर्वोत्सव उल्लेख मिलते हैं। बुर्गा सप्तमती 'बन्धी महात्म्य एवं मार्कण्डेय पुराण' में बुर्गा के महत्त्व की बर्णना हुई है।^१ अथ 'स्कन्दपुराण' में बुर्गा का उल्लेख प्रामुख्य नहीं कहा जा सकता। बर्धा एक शर्षी का प्रकन है वह इन्द्राणी है घोर उसकी नगरी धमरावती है।^२ इतिहास के किसी भी नाम में बर्धा पूजन का महत्त्व नहीं प्रतीत होता। प्रसार ने इसका उल्लेख इस धर्म में किया भी नहीं है।

प्रसार के नाटकों में दो बार इन्द्र का मामोत्सेव हुआ है घोर दोनों स्थानों में इन्द्र के दो विभिन्न स्वर्णों की घोर स्पष्ट संकेत मिलता है। 'अजातशत्रु' नाटक में इन्द्र का उल्लेख बीड़ धर्म की उजासिका मन्त्रिका करती है।^३ घोर 'बन्धुपुराण' में ब्राह्मण ब्राह्मण्य। मन्त्रिका उजासिका के उपवेशों की प्रार्थना करते हुए करती है।^४ छोट से लेकर इन्द्र तक की समता बोधित की।^५ इस वाक्य में इन्द्र शत्रु का प्रयोग दिक्कत ही बीड़ों के 'सक' (सक) के धर्म में हुआ है। ब्राह्मण्य पाखण्डि के सूत्र 'बन्धुपुराणमत्तद्विदे पर उक्तं करतं हुण इन्द्र का उल्लेख करता है कुत्ता कुत्ता ही रहेगा इन्द्र इन्द्र।^६ 'मीनों' के हाथ में इन्द्र का अधिकार चले जाने में जो सुख होता है उसे मैं भोग रहा हूँ।^७ बर्धा इन्द्र वैदिक देवराज इन्द्र है। इन दोनों ही उल्लेखों से इन्द्र की गरिमा स्पष्ट होती है।

बाहे बीड़ों का सकल ही प्रथवा ब्राह्मणों का इन्द्र दोनों के मूख वैदिक देवता इन्द्र ही हैं। समस्त ज्ञानों के एक बोधार्थ मन्त्रों का सम्बन्ध इन्द्र से है। सामवेद में भी 'पुत्रहृत पुत्रभृता पापान्तां सद्युतम इन्द्र इति बनीतन द्वारा इन्द्र की महत्ता का ध्यानात् मिलता है। ब्राह्मण घोर बीड़ दोनों के देवराज इन्द्र है।^८ प्रसार स्वयं इन्द्र की ध्यानात् का प्रथम प्रामुख्य सम्राट मानते हैं।^९ मीनों के हाथ में इन्द्र के अधिकार की बर्धा इन्द्र ने सार्वभौम नासकत्व की घोर ही संकेत करती है। बीड़ काल में इन्द्र की पर्वोत्सव बर्धा की। अतः अनुमान का धारणा नासक पर्वों में 'सक' सम्बन्धी प्रगणित उल्लेखों से होता है किन्तु इन पर्वों में सक की स्थिति कुछ विविध-ही है। वह वैदिक इन्द्र के समान प्रसुरों का सहाय करने वाला गायों की रक्षा करने वाला घोर सोमपान कर बल बरसाने वाला देव नहीं है। बर्धा उसकी स्थिति पौराणिक काल के इन्द्र के अधिक समीप है। उसके लिए वह धारणा का नाम नहीं जो वैदिक मन्त्र इन्द्राणी के मन्त्रों में था। वह अधिक से

- (१) माहुर रिमीजस ईकटस मद्राचार्य पृ० ४६७ (२) वही वही पृ ४६७
 (३) 'पुत्रोमजा बर्धाभ्राणी नगरीत्वमरावती' धमरकोप १।१
 (४) अजात० २।८१ (५) बन्धु० १।८१ (६) सिद्धि नासक १।४११
 (७) 'भारतवर्ष का प्रथम सम्राट' नागरी प्रचारिणी पत्रिका

पबिक बुद्धों का मेघक-मा प्रनीत होता है। उन अपने अधिकार क बन जाने का मय
रहता है।^१ उतकी मक्ति नी सीमित है।^२ कुछ नी हो प्रजातन्त्र में इन्द्र की
बर्षा का होता समीचीन है। इस पहले ही कड़ बुद्ध कि ब्राह्मण धर्म के धार्मिक
पन का स्वल्प चन्द्रपुण्ड मीय के काल में विकसित हुआ या ऐसी स्थिति में नाटक
म वैदिक देवताओं का उल्लेख धम्बामाबिक नहीं।

उपोषण में बैठा हुआ चाणक्य सविता की श्रायना करता है "मयवान
सविता पुम्हारा घालाक मयत का मयल करे"^३ यह वाक्य सविता के वैदिक स्वल्प
घोर पायभी मयत की घोर हमारा ध्यान धारणित करता है।

सविता

सविता बरों क तीन प्रमुख देवताओं म से एक है कहीं कहीं
उमे ही मूर्ध सावित्री घोर पादित्य भी कहा गया है। कहीं
सीता का प्रलय घलय भी माना गया है। कहीं बहू सो का पुत्र है घोर कहीं
घदिति का। एक मयत में उपम् उतकी प्रिया है घोर घय में बहू मया का पुत्र
कहा गया है।^४ प्रसाय का मयपुंक्त वाक्य ईतावास्यापनिपय क इस मयत के बिलने
-मीत है।

पुपने नये मय मूर्ध प्रामाण्य म्युत रघवीत समुह
तेजी मय ठे कर्न नम्यासुतय ततो पयपानि
यो मावसो पुरयः सोहमन्मि।

मौर्य काल में सविता की उपासना का प्रचार था। ब्राह्मण धर्म पर बिचार
करते हुए हम दिखला चुके हैं कि लोक इतिहासकारों ने भारतीय ब्राह्मणों का सविता
का उपासक बताया है। सविता की उपासना का स्वल्प मात्र भी मनी ई० तक नी
अत्यन्त प्रचलित था। हर्ष के सम्बन्ध में कहा गया है कि वह मूर्ध की उपासना नी
करता था। इस प्रकार यह निर्विचार है कि वैदिक काल से लेकर बहुत बाद तक
मूर्ध की उपासना होती रही है। मृग्य प्राचीन मुद्राओं एवं मरहण के एक पातु पत्र
में मूर्ध की मातृवी मूर्ति का अंकन हुआ है। इसमें कमल के मधु कोप मूर्ध से मूर्ध
की किरणों का आर मन्वित विद्या गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि ई० पू०
सीसरी मती में मूर्ध की पूजा का पर्याप्त प्रचार था। चन्द्रपुण्ड मौर्य काल मी ई०
पू० तीसरी शीपी ही है। मौर्य काल में मूर्ध-नामना के इस स्वल्प का
बैलते हुए चाणक्य द्वारा सविता के पाषाहत में ऐतिहासिक बरम्परा का यथातय्य
निर्बाह हुआ है।

(१) 'धर्म में सबकला चायेय्य धमम्भुम कातक १।१२३
(२) 'महाराज मर्हे संकी मर्हे देवताया नि न करेथं चन्नु वातु सत्तोमि
दिदि कातक १।४२३
(३) चण० ४।२४३
(४) एकाधिकस विद्वन्तरी घोड हिन्दू मार्वदीनोत्री इतिहास पृ ३१०

‘अर्धसप्तमयी महाभावा प्रकृति के निरंतर संदीन के संबन्ध में प्रसंग में उर को उल्लेख किया है।^१ इससे पुरत उर के रीर और संहारकारी स्वरूप को धोर ध्यान धारणित होता है। अत्रेद में उर साधारण खेती के देवता हैं।’

उर समस्त अत्रेद में केवल तीन गर्भों में ही उनका उल्लेख हुआ है। यहाँ वे घुरे रंन उरजबल कांति धोर सुन्दर अर्धों से युक्त है।

उनके हाथों में बल धोर अनुपबाण है। यहीं इन्द्र के श्रेय का उल्लेख भी हुआ है। वे मांभी तथा विनाश के देवता हैं।^२ यजुर्वेद के काल तक धाते धाते उर देवताओं की कोटि में आ गये। कालांतर में उर पूजा का समस्त भारत में प्रचार हो गया धोर उनका सम्बन्ध शिव से जोड़ा जाने लगा। धाप सतंम इन्द्र सुब्र^३ ०७ कोटिस्व के अर्धशास्त्र में उर को अधिक महत्त्व नहीं दिया गया है। धाप स्पष्ट है कि ई० पू० चौथी शती तक उर की महत्ता स्थापित नहीं हुई थी।^४ गुप्तकाल में तथा उसके उपरान्त उर अथवा शिव के मुखानियों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। कनिष्क इतिष्क धोर वासुदेव क सिद्धों में शिव या उर की मांभी युक्त धाकृतियों का ध कल मिलता है। उत्तर कुमान कालीन मूर्तियों में मांभी क सहारे बड़े हुये शिव धोर पार्वती की एक मूर्ति अस्तित्व ही प्रसिद्ध है।^५ धाप स्पष्ट है कि प्रथम धाकृती ईसवी से उर पूजा का प्रचार हुआ है धोर गुप्तकाल तक धाते धाते वे महत्त्वपूर्ण देवता हो गये। बंगाल होते हुए भी गुप्त कालको की एक उपाधि परम माहेन्दर की। यह उपाधी उनकी शिव अस्ति की धोर भी संकेत करती है। अत्रगुप्त विक्रमादित्य में सीराष्ट्र के विन अकों को परामित किया वे शिव मन्त के सीराष्ट्र के अत्र कालीन अर्धों के सिद्धों में सर्वत्र शिव की मूर्तिया बनी हुई हैं।^६ अतः ‘स्कन्दपुराण’ नाटक में उर को अर्ध किसी प्रकार भी इतिहास विरोधी नहीं बहूँ या सकती। अतः गुप्त काल में उर धोर उसके नाम साध शिव का उल्लेख तर्क पूर्ण प्रमाणिक है।

इसी प्रबंध में ‘महाकाल’ संघर्षी अर्धों भी समीचीन है। ‘स्कन्दपुराण’ नाटक ही उरजबली क महाकाल मंदिर का उल्लेख हुआ है। शिव के नामों में से महाकाल भी एक है। उर क संबन्ध में लिखते हुए हम बतला चुके हैं कि वैदिक देवता उर का अर्थ कालांतर में शिव से जुड़ गया धोर शिव स्वयं प्रभाव हो गये उर उनका एक विनाशकारी स्वरूप मान रह गया। कलासरिस्तापर में ‘विषय शीघ्र सम्बन्ध में

- (१) माह्वर रिनीजस सैक्रेट ऐन० बी अट्टाचार्य पृ० २६२
- (२) स्कंद० १।४६
- (३) इ टीलिवीट मैग्न बाइब टु इ डिमन फिलीसोफी पाठ्या। पृ० ३२ ३३
- (४) अंबिका टी० ऐम० पी० महादेवम पृ० ४२३ ऐन चौक इन्पीरियल मुनिटी
- (५) अही महादेवम पृ० ४६१
- (६) अर्ली हिस्ट्री भाक इ डिवा स्मिथ पृ० ११३
- (७) स्कंद २ ७३

उज्जयिनी के शिव का उल्लेख हुआ है और बिष्णुमंदिरों को उसी का प्रसार स्वरूप माना है।^१ कामिवास न मेघदूत में उज्जयिनी के महाकाल की घाटी का जो मधुर चित्र लीला है,^२ उससे यह निष्कर्ष सरलता से निकाला जा सकता है कि युष्काल में 'उज्जयिनी के महाकाल' की उपासना का पर्याप्त प्रचार रहा होगा। यहाँ इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि कालिदास ई० पू० प्रथम शती में के समय में।

युष्काल में बिष्णु का पूजा की सर्वाधिकार प्रचार था। गुप्त शासक स्वयं मानवत धर्म मानते थे। बसुण युष्काल में मानवत धर्म का प्रचार समुद्रयुष्क के काम से हुआ था क्योंकि 'नया के शासन में उसकी उपाधि शकमाणि भगवान् परम मानवत महाराजादिराज' है। बसुणयुष्क तृतीय के मयूर के एवं यदुवा के शिलालेखों^३ एवं नासिका की कुछ मुद्राओं में उसकी उपाधि 'परममानवत' है। इसी प्रकार कमारयुष्क प्रथम के मिट्टी^४ और यदुवा के शिलालेखों^५ एवं स्तूप के बिहार के शिलालेख^६ में शिवत् मानवत' शब्दों का प्रयोग हुआ है।

बैष्णव धर्म की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता वैदिक बिष्णु और बालदेव युष्क का एकीकरण है।^७ ई० पू० दूसरी शती में ग्रीक शासक मन्टीऐलिकिडस के राजदूत हिनियोडोरस ने बिहारा में मुञ्जयम स्तंभ का निर्माण किया था। उक्त शासक स्वयं बालदेव का भक्त था।^८ यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि युष्क काल तक प्रायः प्रायः बालदेव युष्क नारायण और वैदिक बिष्णु एक ही मयूर और शैल्यव धर्म भगवान् में इन सबकी उपासना समान रूप से प्रचलित हो गई। बुद्धि की युष्क मुद्राओं में यह चक्र यदा तथा घाबल (कमल के स्थान पर) धारण किए हुए बिष्णु का प्रकल हुआ है।^९ बुद्धि का काम दूसरी शती ईसवी^{१०} यद्यपि इस सम्बन्ध में कोई संदेह नहीं किया जा सकता कि दूसरी शती में बिष्णु के शकमाणि एवं बसु युष्क स्वरूप की पूजा का पर्याप्त प्रचार हो चुका था। स्तूपयुष्क के 'नानापद्म के शिला लेख का प्रारम्भ ही बिष्णु की प्रार्थना से हुआ है और उसमें उन्हें 'भगवन्मानवताया' धारणत् काम महाम्या स बपति बिबितातिबिष्णुरल्पन्त बिष्णु कहा गया है।

बिष्णु के ही इतर स्वरूपों में 'शिव पर्यकंशायी' एवं 'वृषभनाथी बिष्णु' के उल्लेख महत्वपूर्ण हैं। मातृयुष्क के एक शिलालेख में 'शिव पर्यकंशायी मुमुक्षिताय का:

- (१) कपारिल्लापर सोमदेव बिष्णुमीन सम्बक
(२) शक्यन्तिमन्त्रसवर महाकालमासाय कामे
स्वातर्ष्य से नवन बिषय पाबदलेदि बसु
कुर्वन्तम्या बनिपटहतां ब्रूतिन् बसापनीया
साग्राणा फलमधिकत्त सप्यसे गजितानाम्

- (३) पत्नीटा १ ई० पू० २३६ (४) बही २ ई० पू० १७७ ई० पू० १३०
(५) मैनोहरी प्राक प्राकेनोबिकस सब प्राक दंडिया हीराचक शाली में १९९ ई० पू० १५, १६
- (६) पत्नीटा ५ ई० पू० ४० (७) बही २ ई० पू० ४१
(८) बही ११ ई० पू० ४० (९) शैल्यवियम बी० सी० सरदार ई० पू० ४१
(१०) बही बही ई० पू० ४१२ बी एवं शीफ इम्पीरियम मुनिटी
(११) बही बही ई० पू० ४१२ (१२) पत्नी हिन्दू प्राक दंडिया ई० पू० २९

शेष पर्यवसायी
वटपत्रशायी

उल्लेख हुआ है। गुप्त काल में 'भागवत वर्म' में विष्णु के सभी अवतारों एवं सभी कर्मों की उपासना का प्रचार हो गया था। 'भगवत् के एकात्मकी हो जाने पर भगवान् विष्णु कल्पान्त तक शेष-शय्या में योगनिद्रा के बलीभूत रहते हैं।' मार्कण्डेय पुराण के इस उल्लेख में शेष पर्यवसायी

सुपुतिभाव विष्णु ही है। कालिदास के रघुवंश में विष्णु के शेषव भी स्वरूप की चर्चा हुई है।^१ इसी प्रकार 'वट पत्र शायी' विष्णु का पूजन भी गुप्तकाल में प्रचलित रहा होगा।

प्रसाद ने स्कंदगुप्त नाटक में ही विष्णु के शय्य अवतारों में से राम और कृष्ण का उल्लेख भी किया है हम पूर्व कह चुके हैं कि गुप्त काल भागवत् वर्म के प्रमुखत्व का काल या फलतः विष्णु और उनके अवतारों की पूजा राम और कृष्ण और चर्चा उस काल की सामिक स्थिति के सहज परिणामक है। भागवत वर्म की सबसे बड़ी विशेषता विष्णु और वासुदेव कृष्ण की शक्तिशाली थी। कालिदास के रघुवंश में राम कबा का विस्तार के साथ वर्णन हुआ है।^२ उसी में कौस्तुभ मणि से मुक्त कालिदास बन करने वाले कृष्ण की चर्चा भी हुई है।^३ कालिदास ने स्वयं 'गोपशेषव्य विष्णो' मिलकर कृष्ण का विष्णु स सीमा सम्पर्क स्थापित कर दिया है।

अप्सर

अप्सर और सुरसुम्बरियों की कल्पना भारत की अत्यन्त प्राचीन कल्पना है। ये स्वर्ग की मर्त्यिकाएँ हैं। वेदों में उषा की भी मर्त्यकी से उपासना दी गई है। पौराणिक कथाओं में ता अप्सराओं का प्रचुर उल्लेख मिलता है। भगवत् के नाट्यशास्त्र से ज्ञात होता है कि नाटक में स्त्री पात्रों के लिए अप्सराओं की सृष्टि की गई थी। कुछ भी हो अप्सराओं की कल्पना का गुप्तकाल में भी प्रचलन रहा होगा। प्रसाद ने सर्वश्री और रत्ना की चर्चा की है इन दोनों अप्सराओं का उल्लेख कालिदास के 'बिक्रमोत्तरीय' नाटक में हुआ है।

यक्ष

मानवैतर जातियों में यक्ष भी अप्सराओं की ही कोटि में माने जाते हैं।^४ अप्सराओं की तरह यक्ष कल्पना भी प्राचीन है। बौद्ध शास्त्रों में यक्ष सम्बन्धी प्रचुर उल्लेख मिलते हैं।^५ उपाध्याय इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि व्यवस्थित यक्ष उपासना भीम काल के प्रायःपाठ विकसित हो चुकी थी। भारतीय मूर्तिकला का सर्व प्राचीन मनुष्य ही एक यक्ष की विशालकाय मूर्ति है। उनका धनु मान है कि कम से कम गुप्त काल तक यक्ष की पूजा का

(१) 'योगनिद्रा भवा विष्णुर्ब्रह्मैकात्म्यीकृते धास्तीर्यं शेषममन्तकल्पान्ते भववान्प्रभु'
(२) 'मोदिभोमासनासीनं बहुसुस्ततं दिवोकसं' तत्कल्याणमन्त्रमोर्षिणं मणिसोदितं विग्रहम् (रघुवंश) १०-७ योग निद्राव विग्रहः पावनेरकचोत्तरीः (रघुवंश) १ १५
(३) रघुवंश सर्ग १ १४ अस्तेन तादृशलिङ्ग कालिदास मणि विमुष्टं यमुनीकल्पयन् बलास्वला व्यापि यक्षव जातः सकोस्तुम् ह्मेमतीव कृष्णम् (रघुवंश) १ ४६
(४) मेघदूत (५) अमरकोष (६) नाटक १ ९, २२

उपर प्रचार रहा होगा ।^१ प्रसाद ने यज्ञ का उल्लेख एकमात्र 'राज्यभी' में किया । इतिहास की दृष्टि से हर्ष का काम उत्तर गुप्त काल ही माना जायगा । उक्त उल्लेख में यज्ञ की शक्तियों की भी चर्चा हुई है । उसे बाण मारने पर बहु लीट कर भा जाता है ।^२ ऐसा प्रतीत होता है कि प्रसाद ने यज्ञ की शक्तियों का उक्त स्वरूप 'पंचायुग वातक' से लिया है । उक्त वातक से भाग होता है कि 'बोधिसत्व' ने हुला-हल विप से बुद्धा तीर बनाकर छोड़ा । बहु जाकर यज्ञ के रोमों में ही बिपक गया— यज्ञ ने उब सभी तीरों को ठोड़ मरोड़ कर अपने पैरों के नीचे पिटा दिया और बोधि-सत्व के समीप माया ।

भूतनाथ चित्र के कई पणों में से भैरव और मैरवी भी हैं । दस यज्ञ में बड़ी के मत्स्य हो जाने की सूचना जब नन्दी के द्वारा शंकर को मिली तो उनके क्रोध से भयंकर स्वरूप वाला भैरव उत्पन्न हुआ जिसका नाम भीरव पड़ा । इसी भीरव ने दस ब्रह्म का ध्वंस कर दस का बच किया । तन्मों में जयदम्बा की घनेक शक्तियों में से मैरवी भी एक मानी गई है ।^३ यह कहना कठिन है कि गुप्तकाल में भैरव मैरवी का क्या स्थान था । इतना प्रबन्ध

भैरव मैरवी

माना जा सकता है कि सम्भवतः महाकाल, ख्र और शिव की पूजा के साथ भैरव की पूजा भी होती थी, जबका तत्र सिद्धियों के लिए मैरवी ब्रह्म की साधना में इनके प्रतिरिक्त राज्यभी में 'अपदेवता' का उल्लेख भी हुआ है । तत्र प्रन्नों में भूत पिशाच यज्ञ राक्षस, यम्बर्ब एवं भैरव सभी अपदेवता माने गए हैं ।^४ हम यह मान चुके हैं कि यज्ञ और भैरव सम्बन्धी बन्धन इतिहास प्राम्य लोक विश्वासों की तरह अपदेवता सम्बन्धी विश्वास भी अत्यन्त प्रचलित रहा हो । स्वयं प्रसाद ने अपने नाटकों में यज्ञ-तत्र पिशाचिनी,^५ 'बुईल' पिशाच 'प्रेत' इत्यादि

अपदेवता

का उल्लेख किया है । बस्तुतः ये लोक विश्वास परम्परागत हैं और प्रायः अपने मूल स्वरूप में ही विद्यमान हैं ।

(१) 'ए रेघुनर बह कस्त सीमल टु हैव इंदलप्य ऐव भर्ती ऐव रि मौर्यन पिरिय ए ब स्पुर्मरत इस्तैष्ट इमेनेव घोक रि यज्ञाव सपेटे रि म्पु डेट देयर बरिय हैव स्पे ब मोकर ए लींग रे ब घोक दाइम डाडम टु रि गुप्ता पीरियव' ।— इण्डिया इन कालिदास पृ० ११८

- (२) राज्यभी (३) प्रसिपत घोक तत्र मार्बर् ऐगेतव पृ० ४१९
- (४) विरम्बर संहिता योग प्लावबी देवी कवच सप्तशती
- (५) स्कंद० २-६४ (६) राज्यभी २-४७
- (७) स्कंद० २-६१ ६४ (८) बही २, ६६

लोक-विश्वास

सभी जातों और सभी देशों में लोगों में कई प्रकार के लोक-विश्वास पाये जाते हैं। इस प्रकार के लोक-विश्वास स्वयं-नारक की कल्पनाओं से लेकर लघुतक प्रपञ्चतक तक को प्रपञ्च में समेटे चलते हैं। प्राचीन भारतवर्ष में भी इस प्रकार के लोक-विश्वास अनेक-अनेक प्रकार के लोक-विश्वासों की कमी नहीं थी और न आज ही ऐसा है। प्रसाद के माटकों में कई प्रकार के लोक-विश्वासों का उल्लेख हुआ है।

बाराहमिहिर के अनुसार ब्रूमकेतु प्रादि केतुओं का उदय और अस्त मनुष्यों के लिए अत्यान्त रूप होता है। ये ब्रूमकेतु कई रंगों के होते हैं और विभिन्न रंगों और आकार के अनुसार अलग-अलग फल देने वाले होते हैं—

ब्रूमकेतु

ब्रूम-ताम्र की-सी कांतिवासा ब्रूमकेतु अग्निष्ट फल देता है।
राजमहल ब्रूम और पर्यंत पर प्रकट होने वाला ब्रूमकेतु राजाओं

का नाश करने वाला होता है।^१ प्रसाद ने ब्रूमकेतु को 'भीत मोहित रंग का'^२ और 'भयावनी पूरु वासा'^३ माना है। यह 'भाकात का उच्छलन पर्यटक है'^४—कब इसका उदय और अस्त होता है यह कोई नहीं कह सकता। ब्रूमकेतु का उदय राष्ट्र या देश के लिए अमंगल सूचक है और इसके अनुम का निवारण करने के लिए शान्ति कराना आवश्यक माना है। अकराज के दुर्ग की और भयावक संकेत करने वाला ब्रूमकेतु अस्त के विनाश का पूरु सूचक बना। अमंगल भी सांख्यिक रूप में ब्रूमकेतु का प्रयोग प्रसाद ने किया है।^५ नारक और बाराहमिहिर इत्यादि न पूर्व पश्चिम, उत्तर दक्षिण में उदय होने वाले केतुओं के विभिन्न देशों पर पड़ने वाले प्रभाव की चर्चा के साथ-साथ उनकी शान्ति के उपाय भी बताये हैं। शान्तिवास ने तारकापुरको 'लोक की शान्ति के लिए ब्रूमकेतु बड़ा है।^६ बाण ने स्वाराजीश्वर के राजा प्रभाकरबडन की मृत्यु के पूरु होने वाले दिन सोलह प्रकार के सहोत्पातों का वर्णन किया है। उनमें ब्रूमकेतु का उदय भी एक है। राजा के अग्निष्ट की सूचना देने वाला ब्रूमकेतु अग्निश्वात से मुक्त ब्रूमकेतु भाकात में उदय हुआ।^७ स्पष्ट ही ब्रूमकेतु अनेक-अनेक लोक-विश्वास का सम्बन्ध व्योतिष के एक प्रकृ से है जो पर्याप्त प्राचीन है—इतिहासकारों के अनुसार कम से कम मुत्त-आसीन तो है ही। ब्रूमकेतु के सम्बन्ध में अनेक विवरण प्रसाद से मिलता हुआ है।

(१) बृहत्संहिता—(बाराहमिहिर) की मुद्राह मन्व हास्वी

परवात् सभ्याकाले संवत्तो नाम अन्नतामसिप ।

आनम्य विपरपत्तं ब्रूमप्रावस्विती रोह ॥

यत्नन्तेषु बृहत्सि हृष्यो वर्षसि हृत्ति तावन्ति ।

भ्रूयान् तस्व निपारतेस्वयस्य चापि पीड्यति । —११३१—३२

(२) अ. २।४४

(४) वही २।४४

(६) कुमार संभव २।३२

(१) वही १। ४

(२) स्कंद ३।१०६

(७) हर्षचरित २।१४४

कभी-कभी जलते हुए उषो या सुरदर की प्राणति के विषय भाकाय से पुष्पी की घोर गिरते हुए निर्धार देते हैं । इनकी सपट नीले रंग की होती है । इन्हें ही उल्कापात कहते हैं ।^१ ये उन्नावें भी कई प्रकार की होती हैं उल्कापात के समान ही बिनाय की सूचक हैं ।^२ प्रसार ने स्वभगुप्त म घनावाया के दिन नीलगणत से सर्वकर उल्कापात की सूचना देकर कुमारगुप्त की मृत्यु की घोर संकेत किया है ।^३ सासलिक रूप में भी स्वभगुप्त बिजया की अपनी सुवशावरी का उल्काविष्ट कहकर अपनी प्राचीन महोत्पात कहा गया है ।^४ हर्षचरित म भी ठीक इसी प्रकार उल्कापात की

सूचना देकर कुमारगुप्त की मृत्यु की घोर संकेत किया है ।^३ सासलिक रूप में भी स्वभगुप्त बिजया की अपनी सुवशावरी का उल्काविष्ट कहकर अपनी प्राचीन महोत्पात कहा गया है ।^४ हर्षचरित म भी ठीक इसी प्रकार उल्कापात की सूचना देकर कुमारगुप्त की मृत्यु की घोर संकेत किया है ।^३ सासलिक रूप में भी स्वभगुप्त बिजया की अपनी सुवशावरी का उल्काविष्ट कहकर अपनी प्राचीन महोत्पात कहा गया है ।^४ हर्षचरित म भी ठीक इसी प्रकार उल्कापात की

बुध मन्त्र बंश बिनाय का सूचक है ।^५ बाण द्वारा गिलाए हुए सोनह जलाती मे विद्याह ।
माना गया है । बिद्याया की यह प्रतिमा यदि पीली हो ता राजा वा घोर अशुभकाल हो तो राष्ट्र का घोर यदि सवाई से युक्त हो तो प्राय का नाश होता है ।^६ नाम वा'सो म विद्याह का

बुध मन्त्र बंश बिनाय का सूचक है ।^५ बाण द्वारा गिलाए हुए सोनह जलाती मे विद्याह ।
माना गया है । बिद्याया की यह प्रतिमा यदि पीली हो ता राजा वा घोर अशुभकाल हो तो राष्ट्र का घोर यदि सवाई से युक्त हो तो प्राय का नाश होता है ।^६ नाम वा'सो म विद्याह का

प्रतिमा का हस्तना

प्रतिमा का हस्तना
घोर प्रतिमा हंसती है उम देव का नाश होता है—एसा मुनियों का मत है । यहाँ के हंसने घोर मुस्कराने मे अन्तर मानते हुए मूर्ति के टटकर हंसने का अपभ्रुत मानते हैं ।^७ राम्यपी में प्रह्वर्मा की बिजय के निमित्त प्रायना करने के लिए राज्यधी मन्दिर में जाती है पर सहसा घट्टहास मुनकर प्रतिमा के हंसने की अपभ्रुत की घाबंका से वह मूर्छित हो जाती है । उसी समय सबभुव प्रह्वर्मा की मृत्यु का समाचार भी मिलता है ।

- (१) बृहत्संहिता १३ श्लोक १—३०
- (२) विविधभुक्तभुमफलाना पतनी क्पाणि यानि ताम्युक्ता
- (३) स्कंद १।२६ १।३३
- (४) स्कंद ३।२६
- (५) बाहो विमोत्तमजयाय पीतो देवम्य नागाय हुतागवण ।
बन्वाण्य स्यादपसम्यवायु स स्वस्य नाथं म करोति हृष्ट ।—
बृहत्संहिता (बाराहमिहिर) ३१
- (६) हर्षचरित ३।१४४
- (७) हर्षचरित ३।१४४
- (८) हर्षचरित ३।१४४
- (९) बृहत्संहिता ४० १४ । श्लोक ६
- (१०) गर्जनित कृपा प्रतिमा हसन्ति । तर्जना नामो मुनियो बरन्ति ।
मानस पीपुष (मीठना सहाय) कामनाम् २३२

प्राचीन काल में सिद्ध-महाराष्ट्रों के युद्ध से निःसुख भविष्यवाणियों व भोगों का बहुत विश्वास था। श्रीक इतिहासकारों के अनुसार भारत के कई राजा सही सही भविष्यवाणियाँ किया करते थे। यहि बैतान् कि। की वाली ठीक वा उतरती तो वह पात्रम्य मीन बारण कर लेता था^१ कालिका भविष्यवाणी ने 'देवचित्तों के कर में जिन भविष्यवाणियों का उल्लेख कि है। उनका सम्बन्ध ज्योतिष शास्त्र से है।^२ 'अग्रगुण्य' नाट्य न बाह्यायन धर्मशास्त्र को सावधान करते हुए अग्रगुण्य के भाषी भारत सम्राट् ही की भविष्यवाणी करता है।^३ सिक्खर जैसे बिदेसी घोर घोर पुष्य को भी भविष्यवाणियों के प्रायः सत्य होने में विश्वास है।^४

कालिका के ईश्वरचिन्तक के समान ही मुष्नीति में ज्योतिषी के लक्षण भी कर्त्तव्यों का उल्लेख मिलता है।^५ इन ज्योतिषियों में एक प्रकार के ज्योतिष 'मौजूतिक' कहाते थे। इसका कार्य मूर्त्त का शुभा-शुभ ज्योतिष विचार करना होता था। इसके अतिरिक्त सम्भवतः वे विद्या के लिए बर कर्मा की कु इसी का मिलन भी किया करते थे। धर्मशास्त्र में मौजूतिक का उल्लेख मिलता है। ऐसे मौजूतिक रात्र मृत्यु होते थे घी उन्हें एक सहाय मुद्रा वापिक बेलन मिलता था।^६ 'हर्षचरित' में मणक^७ घी मौजूतिक^८ दो प्रकार के ज्योतिषियों का उल्लेख हुआ है। राज्यघी के विवाह के लिये कु इसी मिलाने की चर्चा ही उसमें नहीं है किन्तु मणक द्वारा सम्भवतः का उल्लेख धर्मशास्त्र किया है।^९ वात्स्यायन ने विवाह के निर्णय के लिए बर घी कर्मा के विभिन्न प्रकार के साम्य विहित करने की चर्चा की है।^{१०} वात्स्यायन का युग भारतीय लक्षण विद्या तथा ज्योतिष शास्त्र दोनों के विकास घीर उत्थान का काल था घीर उसी समय बाराहमिहिर जैसे प्राचार्यों ने उक्त शास्त्र का विस्तार किया।^{११} अतः विवाह के सम्बन्ध में प्रह विचार को यदि प्राचीन मान लिया जाय तो कोई विशेष आपत्ति नहीं।

(१) ऐ सिष्ट इण्डिया (मिनिशंस) पृ० ११५-१७ (मिनास्वनीय, एरिबन)

(२) मालविक ४१६ (३) अ-३० ११०

(४) अ- २१११ (५) मुष्नीति २१०

(६) धर्मशास्त्र २।३।१४ (७) हर्षचरित ४।१४२

(८) हर्षचरित ४।१४६

(९) अणुमानिबुक्त नभक प्रहमास मन्त्र गुणम् ।—वही ४।१४२

(१०) कामसूत्र (स्ट्रीब ह्व—५० कस्कर) पृ० १२६

(११) वही पृ० १२६

बौद्ध धर्म के पतन काल में उग्रयान का विकास हुआ और उग्र सिद्धि में लोगों का विश्वास होने लगा। स्कंदपुराण नाटक में प्रबुद्धि बन्धुन* लूसोमुन बौद्ध धर्म का प्रतिनिधि है। वह प्रख्यात कठोर निवृत्ति का नीम तांत्रिक सिद्धि प्रावरण उठाकर भङ्गमे बामा है।^१ भूत मन्त्रिय और वर्तमान का निवामक रत्नक और द्रष्टा है।^२

कुमारपुत्र की मृत्यु उसके मारण-प्रयोग का परिणाम है और इस प्रयोग के लिए वह नाइबर की समावास्या का दिन चुनता है। अपनी वामसिद्धि के लिए वह महागमनाग में उग्रताय की साधना करता है और उस के लिए नरबलि देने में भी नहीं हिचकता। प्राचीन भारत में इस प्रकार के तांत्रिक और उग्रकी मारण-मोहन-उष्णान्त-बलीकरण प्रादि घमिषार नियमों पर लोगों का पूरा विश्वास था। बाइबर के बुद्ध धर्म सम्बन्धी विवरणों में ४०० ई० के आसपास एक काश्मीरी मिथु का उल्लेख मिलता है जो अपनी तांत्रिक सिद्धि के बल पर राज्यों के सम्बन्ध में मन्त्रियबालियाँ किया करता था। और उसके ये मन्त्रियकथन अधिकतर सत्य होते थे।^३ जिनके के बर्णनों से ज्ञात होता है कि देवी के उपासक तांत्रिकों में नरबलि : बलायी।^४ हर्षचरित में श्रीरत्नाचार्य के क्रियाकलापों के प्रतिरिक्त नरमांस विषय : उल्लेखों से तांत्रिक-सिद्धियों एवं नरबलि को और प्रत्यक्ष संकट दिया गया है।^५

-
- (१) स्कंद० ११२६
 (२) वही २१६०
 (३) बुद्धिष्ण रिहवर्त कोश पृ० ७६)
 (४) नाइबर प्राक ज्ञानसाय—पृ० ८६
 (५) हर्षचरित—तृतीय और पंचम उष्णवाक्य।

प्रणय विवाह

प्रसाद के प्रायः सभी ऐतिहासिक नाटकों में प्रणय तथा विवाह के सम्बन्ध में पर्याप्त चर्चा हुई है परन्तु प्रणय के सम्बन्ध में प्रसाद ने अपने पात्रों को बितनी अधिक स्वतन्त्रता दे रखी है उतनी स्वतन्त्रता कम से कम प्राचीन भारतीय समाज में भी मिलनी कठिन थी। प्रसाद स्वतन्त्र प्रेम को अपना लक्ष्य मानकर चले हैं। स्वभावतः उनकी मारियाँ भी उसी आधार को लेकर प्रणय के क्षेत्र में घाँस मूँदे बत पड़ी हैं। बासना या सुवत्या या बृजया चापि बोधिता न स्वातन्त्र्येण कर्तव्यं चित्कार्यं ब्रूहेष्मणि। बास्ये वितुर्बोधिष्ठेऽपानिःप्राहस्य यौवने पुत्राय भवतिप्रेतने भवेत्स्त्रीस्वतन्त्रताम्' ^१ भिकने वाला समाज का अविच्छाया पता नहीं प्रसाद के प्रेमी-भेमिकाधर्म के नियम में क्या मन्तव्य प्रसट करेगा। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्मुक्त प्रेम के बिना माना स्वरूपों को चिपित कर सकने से प्रसाद सफस हुए हैं वे सभी प्रसाद की स्वच्छन्द प्रेम सम्बन्धी भावनाओं के परिचायक तो अवश्य हैं किन्तु प्राचीन भारतीय समाज में प्रचलित प्रणय सम्बन्धी परिस्थितियों के अन्वय प्रकट नहीं हैं। यहाँ एक प्रश्न यह उठाया जा सकता है कि कालिदास जैसे प्रसिद्ध कवि एवं नाटककार ने अपने काव्य और नाटकों में भी उन्मुक्त और उद्दाम प्रणय के मनोरम चित्र खींचे हैं और इधरे उन्होंने भी संस्कृत के प्राचीन कवियों द्वारा प्रस्तुत मृदार योजना की परम्परा का ही निबँह किया है। अतः यह मानना अनुचित नहीं कि प्राचीन भारतीय समाज प्रणय सम्बन्धी स्वतन्त्रता का पक्षपाती रहा होगा। किन्तु यहाँ दो बातें ध्यान में रखना आवश्यक है जहाँ तक काव्यद्वयों का प्रश्न है, उनमें कवि स्वातन्त्र्य और कवि कल्पना को घरेली का कोड़ छोड़कर बाह्य में उन्मुक्त बिहार करने की पर्याप्त स्वतन्त्रता रखी है। अधिकांश नाटक दम्बों में भी कथानकों के पौराणिक अथवा बंत कथाओं के सिद्धित स्वरूप से सम्बन्धित होने के कारण व्यक्ति सम्बन्धी प्रणय की स्वच्छन्दता का चित्रण हुआ है। उदाहरण के लिए कथाचरित्सागर के उदयन सम्बन्धी एक ही कथानक को लेकर लिखे गए माघ के प्रतिज्ञावोम्बरायण और भी हर्ष की 'रत्नावली' को लिया जा सकता है। इन दोनों नाटकों में उदयन के ऐतिहासिक चरित्र की ओर रचना ध्यान नहीं दिया गया है। उसका प्रणय व्यापार ही नाटककार का लक्ष्य है। साथ ही इस प्रकार के नाटकों में नायक के पीरोदात्त होते हुए भी उसको एक सम्माननीय संस्था का स्वरूप देने का प्रयास नहीं किया गया है। यही बात कालिदास तथा संस्कृत के अन्य बहुत से नाटककारों के सम्बन्ध में भी

कही जा सकती है। इसके ठीक विपरीत विद्यालयों के मुद्रारासस एवं 'बिबीकामरूप' में ऐतिहासिक पत्र की प्रधानता होने के कारण तत्कालीन समाज द्वारा निर्धारित पत्र गृह गार एवं प्रणय का पक्ष मिलता है। प्रसार के नाटक रचना-कार की दृष्टि / सुमरी कोटि क है अर्थात् ऐतिहासिक है। पर इन नाटकों में विहित भारतीय समाज में स्वच्छ प्रणय की चर्चा नाटक के ऐतिहासिक स्वरूप को कुछ अपट घबस कर देती है।

कानिवास जैसे नाटककारों की रचनाओं पर भी सूक्ष्म विचार करने के उद्योग यह निष्कर्ष प्राप्ति तरह से निकाला जा सकता है कि कानिवास के काल में भी स्वच्छ प्रणय की समाजमाए अधिक नहीं थी। अत्रिजान यादुस्तस में दुप्यंत कहता है 'सुना बाता है (भूयते) कि अनेक राजबन्ध्यामा का विवाह गाँवर्ष पद्धति से हुआ और उनके माता पिता ने इस प्रकार के विवाह का अनुमोदन किया'।^१ इससे यह स्पष्ट है कि कानिवास के समय तक गाँवर्ष विवाह बेसी स्वच्छ विवाह की पद्धति की मायसा कम हो बनी थी।^२ इलोक में 'भूयते (सुना बाता है) उक्त यही सूचित करता है कि उक्त समय उन्मुक्त प्रेम के फलस्वरूप होने वाले विवाह अधिक प्रशसनीय नहीं माने जाते थे। पर प्रसार के नाटकों के किसी भी काल में स्वच्छ प्रम-अन्य विवाह सामाजिक रिवाज के रूप में प्रचलित नहीं थे मर ही नहीं एकाव इन प्रकार होते रहे हैं। स्तुति पर्यकारों द्वारा ही नहीं बरम् कामसूत्र प्रेरणा प्राप्त भी समाज में स्वच्छ प्रम उन्मुक्त प्रणय सम्बन्ध बाँधनीय नहीं माना गया है।^३ प्रसार के नाटकों में प्रणय के दो रूप मिलते हैं। एक समाज में स्वच्छ प्रेम जिसमें वेग नाम कानि बर्ष का कोई भेदभाव नहू। उन्महरण के लिए अष्टि कल्प विजया का स्वरु भटार्क तथा कही-कही पुरदुप्य के प्रति प्रम व धातिविद्यु व महारागी राम्यधी के प्रति धासति,^४ मालवराज बेबदुप्य का सुरया धातिन के प्रति प्रेम व सिन्धु वेग की साधारण कन्या मानविका का महापय चंद्रदुप्य के प्रति प्रेम *

(१) अत्रिजान यादुस्तस (कानिवास) ३ २०

(२) वि कस्टम हैड लीज विकम श्रीरसोली- एंड प्रीम वि ऐवब रम्बवामस धीक वि पोपट इट इव इविकेट ईन इव द ब ऐटलीस्ट नीट प्रिविकेट इरुगिग की टादम धीक वी पोपट इवसेट इन ईन धीक ए प्दू मैनिस्टीक विह्व ही सीम्स टू ईविकेट।

इतिव्या इव कानिवास (मगवतधरण चणाम्याय) पृ १८२
(४) स्कंद २११ २०१ ११५
(५) राज्यभी ११२२

(३) कामसूत्र (शास्त्रायन)
(५) राज्यभी ११२४
(६) चंद्र ४०७०

लिये जा सकते हैं। यह एक प्रकार का उच्चतम सस प्रेम प्रतीत होता है जिसे समाज में साम्यता से ही और समाज का एक सामान्य-ध्यापार हो गया। प्रलय का दूसरा प्रकार समाज कुसधीन और स्थितियों के व्यक्तियों में विवाह से पूर्व प्रेम सम्बन्ध है उदाहरण के लिए बाबिरा भसातछु^१, अम्बुपुत्र कानसिया^२ अलका सिंह^३ स्कंध देवसेना^४ का प्रेम लिया जा सकता है। इसमें समझे नहीं कि इस प्रकार के प्रेम सम्बन्धों पर कोई आक्षेप नहीं किया जा सकता। ये सब सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक संभाव्यताएँ होने के साथ-साथ प्राचीन नैतिकता एवं सामाजिक नियमों के विरोध में भी नहीं हैं।

प्रसाद के द्वारा विहित समाज में स्त्री पुरुष का स्वतन्त्र प्रणय चाहे वह कासान्तर में विवाह सम्बन्ध के रूप में परिमित हुआ हो अथवा न हुआ हो अत्यन्त प्रचुर परिमाण में मिलता है और ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह प्रणय उस काल के समाज में सहज था। यह प्रणय कभी स्त्री की ओर से सुन्दर होता है और कभी पुरुष की ओर से। बाबिरा^५, कोमा^६ विजया^७ सुवासिनी^८ और कस्यानी^९ का प्रणय नारी की ओर से सुन्दर हुआ है। अलका^{१०} कानसिया^{११} नालिका^{१२} अम्बुस्वामिनी^{१३} देवसेना^{१४} तथा सुरमा^{१५} का प्रणय या तो पुरुष की ओर से सुन्दरित हुआ है या दोनों के सम्बन्धों के अधिक विकास से। इससे प्रतीत होता है कि विवाह से पूर्व प्रेम के सम्बन्ध में पुरुष और स्त्री दोनों स्वतन्त्र थे। उन दिनों पाठि-पाठि और शैल-काल से परे पारस्परिक प्रेम का ही अधिक महत्त्व प्रतीत होता है। चाहे स्त्रियाँ कुलीन राजकुमारियाँ हों चाहे वे साधारण मानिन दोनों ही उन्मुक्त और स्वतन्त्र प्रेम का आशय लेती हैं और समाज इसमें किसी भी प्रकार का अक्षेप उपस्थित नहीं करता। इस समाज के नारी पुरुष के प्रणय का अन्त विवाह में ही हो यह आश्चर्यक नहीं बल्कि प्रणय केवल प्रणय के लिए ही किया जाता है। प्रेम और प्रलय का कोई बेश काल नहीं होता है। प्रत्येक बेश और प्रत्येक काल में उसके स्वरूप में निश्चयता भेद ही हो, परन्तु यह किया अक्षय

(१) असात = १११४

(२) अत्र = ११६२ (३) अत्र = २१५८ (४) स्कंध = ३१८७

(५) असात १११४ ११५ (६) अत्र २१५६ ३६ ३७

(७) स्कंध ५१४१ १४२ १४३ (८) अत्र १७२ (९) अत्र ५११५, ११६

(१०) अत्र २११४

(११) अत्र २११० ४२४१

(१२) अत्र ११७२, ४२०७ २१११

(१३) अत्र १२६ ११

(१४) स्कंध ५११६, १४० (१५) राज्यामी ११२३ २४

जाता है। प्रसार के नाटकों में विवाह से पूर्व प्रणय का कोई निरिपथ स्वरूप नहीं मिलता। वहीं-कहीं तो प्रथम दर्शन में ही स्त्री पुरुषों में प्रणय ध कुरित हो जाता है और कालान्तर से परिस्मृतियों के कारण बट बड़ जाता है वहीं वास्वावस्था के परिचय से प्रेम का विकास होना पड़ता है, कहीं केवल सौम्य और कहीं कसा धाष्यम रहे हैं। विजया और धलका का प्रेम प्रथम प्रकार का प्रेम है, सुवासिनी विद्यादृष्ट्य वस्पायी अग्रदृष्ट्य और कोमा राकराज का प्रेम दूसरे प्रकार का है देव सेना और वानसिया का प्रेम तीसरे प्रकार का है, बाजिरा का प्रेम सौम्यवर्तित है और सुवासिनी तथा रासस का प्रेम अन्तिम प्रकार का है। प्रेम के इन प्रकारों का इतिहास साही नहीं हो सकता। हाँ विवाह से पूर्व के प्रणय के महत्व का साही धापस्तम्ब पुस्तक 'सुत्र' का यह वाक्य है जिससे मन और वस धाबड़ हो जाय सकते हैं विवाह करना बाध्य है किन्तु इसका धर्म यह नहीं कि प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक का इतिहास में अनुराध और प्रणय के स्वरूप उपलब्ध नहीं होते। बावक प्रणयों नाटकों काव्य प्रणयों एवं सांस्कृतिक इतिहास की धन्य सभी उपलब्ध सामग्री में इस बात के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं कि उस समय भी गायी और पुरुष के इस स्वाभा विक धाकर्षण की मधुरता वपावत् थी। ऊपर 'धापस्तम्ब पुस्तक सुत्र' का जो वाक्य पशुत किया गया है वह तो केवल एक धाकर्षण को नैतिकता और सामाजिक स्वी कृति मर मरान करता है। प्रसार का यह वाक्य इनका समर्पण करता है कि प्रणयार्थी को कन्या के रूप और पुत्र का प्राहक सक्ता प्राहक होना चाहिए।^२

प्रत्येक देश जालि और समाज में विवाह के स्वप्नों में भिन्नता होती है और यह भिन्नता जो काल क्रम के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। भारत के सांस्कृतिक इतिहास पर इच्छिाठ करने से ज्ञाय होता है कि वैदिक काल में विवाह-पद्धति साधा रण्यता सरस थी। स्मृतियों के काल तक धाठै-धाठै सङ्घमें पर्याप्त विवाह परिवर्तन उपस्थित हो गए और विवाह के कई प्रकार भी बन गये। स्मृति के इन नियमों का प्रभाव कालान्तर के इतिहास में दूर तक चलता रहा इनकी पद्धतियों में भी कभी धिधिलता धाठी रही और कभी संशोध किन्तु इतने तन्वेह नहीं कि नामों के न रहने पर भी विवाह की पद्धतियों और प्रकारों में बहुत धाब तक भी अन्तर नहीं हुआ।

प्रसार के अनुसार 'विवाह एक सामाजिक नियम का अन्त है' परन्तु साध ही 'स्त्री और पुरुष के बीच परस्पर विश्वासपूर्वक धमिकार रना और सहयोग

(१) धापस्तम्ब पुस्तक सुत्र १।१ २० 'अस्वा मनस्वमुपैनिह्यस्तस्या मृदिनेतरामा द्विदेतेत्येके'।

(२) अं. २।११७

(३) वही २।११७

होना आवश्यक है।^१ यदि ऐसा न हो तो बर्म-धीर विवाह एक खेल है।^२ इसी उद्देश्य को सामने रखकर संभवतः प्राचीन बर्म ग्रन्थों में बर्म पत्नी धीर 'सहबर्मवर्षा'^३ जैसे प्रयोगों का महत्व होना। 'सहोमीवरता बर्ममिति वाचानुमाप्यन्'^४ में भी 'सहोमी' जैसे प्रयोग इस दृष्टि से अत्यन्त सार्थक जान पड़ते हैं।

प्रसाह के नाटकों में विवाह के विभिन्न प्रकारों का स्वतंत्र रूप से उल्लेख नहीं हुआ है केवल एक स्थान पर 'राक्षस विवाह'^५ का नामोल्लेख प्रबन्ध किया गया है। उक्त विवाह के विषय में यह बात होता है कि कन्या विधवापहार के स्वरूप कुप्ट कुल में भाई है,^६ धीर अग्नि की बेसी के सामने कुल-सुख में साप न छोड़ने की प्रतिज्ञा^७ धीर कुल पुरोहित द्वारा पढ़े गये मंत्रों से यह विवाह सम्पन्न^८ हुआ है। मनुस्मृति में राक्षस विवाह की परिभाषा इस प्रकार है 'रोटी बिस्ताटी हुई कन्या का उसकी धीर उसके माता-पिता की इच्छा के विपरीत बलपूर्वक हरण कर से जाना राक्षस विवाह है।'^९ अन्त परिभाषा की कसौटी पर कथने पर अन्तस्वामिनी धीर रामकुप्ट का यह विवाह राक्षस विवाह नहीं ठहर पाता। अन्तस्वामिनी का बलात् अपहरण नहीं किया गया था किन्तु इसमें भी संदेह नहीं कि कन्या प्रलय के कारण कुप्ट कुल में नहीं भाई थी। प्रत्यक्षी शम्भता^{१०} होने के कारण इस विवाह में उसकी अतिच्छा ही रही होगी। इस विवाह में उसके माता-पिता की इच्छा भी नहीं जान पड़ती क्योंकि नाटक में इस विवाह को माता-पिता के प्रमाणों से विहीन कहा गया है।^{११}

राक्षस विवाह का उल्लेख करते हुए वास्तव्यायन लिखते हैं 'अन्य ग्राम अथवा अग्राम से जाती हुई कन्या के सहायकों धीर रक्षकों को उड़ाकर अथवा मारकर कन्या का बलात् अपहरण करना राक्षस विवाह है'^{१२} अन्तस्वामिनी बलात् अपहृत तो नहीं है किन्तु प्रसाह ने उसके कुप्ट कुल में जाने का कारण यह माना है कि अनुपहृत

- | | |
|--|---------------|
| (१) अ.ब. ३१५२ | (६) अ.ब. ३१२३ |
| (२) अ.ब. ३१५२ | (७) वही ३१२४ |
| (३) कौटिल्य अर्थशास्त्र २।३ | (८) वही ३१५१ |
| (४) मनुस्मृति ३।३० | |
| (५) अ.ब. ३१५२ | |
| (६) मनुस्मृति ३।३३ 'हत्वा हित्वा च मित्वा च श्लेषती कर्तवी ब्रह्मात् । | |

प्रसाह कन्याहरण राक्षसो विचिकष्यते ।

- | | |
|---|----------------|
| (१०) अ.ब. ३/५५ | (११) अ.ब. ३/६२ |
| (१२) 'प्रामाण्यमुद्योग वा पयश्चाली विहित्वा सुसंभृतसहायो नायकरसवा रक्षित्यो विनास्व हत्वा वा कन्यामपहरेदिति विवाह योगा' | |

'कामसूत्र' पृ० २२२ (भारत संस्करण रामोदरसास मोस्वामी)

की विभिन्नय में उह उपहार स्वरूप भी गई थी।^१ अतः यह अपहृता व्यवस्था है इस अपहृता कन्या का अग्नि की छाती में विधिपूर्वक जो विवाह संस्कार कराया गया है वह भी शास्त्र-सम्मत है। श्रीभाष्य^२ और बघिष्ठ^३ दोनों का मत है कि बलात्कार हरी हुई कन्या का यदि विधिपूर्वक मंत्रोच्चारण से विवाह न किया गया हो तो वह कुमारी के समान मानी जायगी। वेदक श्री गान्धर्व वैशाख और राजस तीनों प्रकार के विवाहों में अग्नि छाती द्वारा वैवाहिक विधि आवश्यक मानते हैं।^४ इन तीनों संस्कार के उपरान्त फिर कन्या कुमारी नहीं मानी जाती।^५ अतः प्रसार में जिसे राजस विवाह बतलाया है उसमें विवाह की पूर्ण संपन्नता के लिये अग्नि की छाती तथा मंत्रोच्चारण आवश्यक है। इन दोनों का उल्लेख नाटक में किया गया है।

प्रसार के अन्य प्रकार की विवाह पद्धतियों का नाम नहीं लिया है परन्तु शास्त्रोक्त शास्त्रों से निकले-जुलते वैशाख और गान्धर्व विवाह का संकेत अवश्य किया है।

मनु के अनुसार सोती हुई जन्मत कन्या के साथ एकान्त में बलात्कार वैशाख विवाह कहलाता है और यह सबसे निष्कृष्ट विवाह है।^६ इस प्रकार वैशाख विवाह प्रसार के नाटकों में बस्तुतः कहीं हुआ नहीं है। “(पर्वतराज) वैशाख मुझे भ्रष्ट करके अपनी संपत्ति बलात्कार पूरे मगध पर अधिकार करना चाहता था। परन्तु मीर्य कन्यास्त्री ने वरम किया था केवल एक पुरुष को वह वा ‘अशुश्रुत’* कन्यास्त्री के इस कथन से वैशाख विवाह की अग्नि व्यवस्था निकलती है। यहाँ यह प्रश्न उठता था सकता है कि कन्यास्त्री न तो सुता भी न सत्ता और न प्रसत्ता अतः वैशाख विवाह की अर्थात् संपन्नता किन्तु वह अशुश्रुत और कन्या स्त्री।^७ अरविता कुमारी से बलात्कार करके संपत्ति बलाने का प्रयत्न वैशाख विवाह के अन्तर्गत ही था सकता है।

(१) सूत्र० १/२९

(२) श्रीभाष्य अर्थ सूत्र ४/१ १५ बलात्केत प्रहृता कन्या मंत्रोपधि न संस्तुता।

(३) बघिष्ठ १७/७१ अग्न्यस्य विविधत्वात् यथा कन्या लक्षणा।

(४) गान्धर्वो विवाहोपु पूर्ववैवाहिको विधि (कर्त्तव्यस्य विभिन्नैः) समवेतान्निष्ठासिद्धि वेदक (द्रुमुकमदट मनुस्मृति में) ८/२२६

(५) मनुस्मृति ८/२२६

(६) ‘सुतां सत्तां प्रसत्तां वा रहोऽशोऽप्यश्रुतिः। स पाप्मिणे विवाहानां वैशाखरथाष्ट योऽथम मनुस्मृति १/१४

(७) अंश० ४/११५

(८) अंश० ४/११५

यद्यपि प्रसाद ने गान्धर्व विवाह का भी उल्लेख नहीं किया है, तथापि उनके नाटकों में कुछ विवाह गान्धर्व विधि से हुए घात होते हैं। गान्धर्व विवाह का लक्षण मनु ने इस प्रकार दिया है 'कन्या धीर वर दोनों की इच्छा से गान्धर्व होने वाले विवाह को गान्धर्व विवाह कहते हैं धीर यह विवाह कामनामूसक होता है'।^१ इस विवाह का स्पष्ट रूप बाजिरा धीर अज्ञात का एक दूसरे को माला धीर पत्नी पहिनाने में बीच पड़ता है गान्धर्व विवाह की पारस्परिक प्रतिष्ठा का स्वल्प इन शायदों ने स्पष्ट उल्लेख है 'तव प्राणलाभ में अपना सर्वस्व तुम्हें समर्पित करती हूँ।' 'मैं अपने समेत उसे तुम्हें सौटा देता हूँ। प्रिये हम तुम धर्मिण हैं। यह जगन्नी हिरण इस स्वर्गीय संगीत पर चौकड़ी भरना शुरू गया है। अब यह तुम्हारे प्रयास में पूर्ण रूप से धाबध है।'^२ यह संवाद तुरन्त ही हमारा ध्यान कामिनास के धर्मिण भाग साकृत्त की ओर धाकृष्ट करता है जहाँ कन्ये अपि की अनुपस्थिति में अनुत्पत्ता धीर बुद्धि का इसी प्रकार गान्धर्व विवाह हुआ है। कन्या आत्मसमर्पण कर चुकी है अतः एक प्रकार से यह विवाह नहीं हो चुका है। कालान्तर में माता पिता की आज्ञा से 'वर कपू का देव'^३ बरान करना भी गान्धर्व विवाह का एक अंग है। इस प्रकार के विवाह के सम्बन्ध में वात्स्यायन का कथन है 'अपनी अमीष्ट कन्या को किसी प्रकार बुलाकर नायक किसी भोजिय के घर से अग्नि साए धीर कुपासन में बैठकर अग्नि में धाहुति देकर तीन बार दोनों उसकी परिजमा करें; तदुपरान्त माता पिता को इसकी सूचना दे दें।'^४ प्रसाद ने अग्नि की तीन परिजमाएँ न कराकर अगु ठी धीर माता पहिना की है। इस प्रकार इसमें धार्मिक संस्कारों की भी कुछ छाया प्रतीत होती है।

धीर भी कई विवाहों का वर्णन प्रसाद के नाटकों में आया है पर न तो उनके नाम प्रसाद ने ही दिये हैं धीर न उसके विषय में स्पष्ट संकेत ही मिलते हैं। इतना स्पष्ट है कि अंग सभी विवाह या तो कन्या के माता-पिता की आज्ञा

(१) इच्छाम्योस्य संयोगः कन्यया वरस्य च ।

गान्धर्वं स तु विज्ञायो मधुस्य काम संभव

मनुस्मृति ३/३२

(२) अज्ञात ३/११६

(३) अज्ञात ३/१२०

(४) प्रतिपत्नामभिप्रेतावडासतिनीं नायकः भोजिपासारावग्निमागाम्य कुपासास्तीर्य
यथास्मृतिं हुत्वा च त्रि परिजमेत् । 'ततो मातरि पितरि च प्रकाशयेत्' ।
कामसूत्र । वात्स्यायन पृ० २१६, २२०

से घबरा भाई की दृष्टि से ही संघर्षित हुए। घलका के विवाह में प्राचीक के पास से स्वयं निर्मित होकर, परिणय संपादन कराने इस बल के साथ सिद्धन्वर भी भागेगा^१ इस वाक्य से ज्ञात होता है कि आम्बीक ही घलका के विवाह का संपादन कर रहा है। सुवातिनी का राजस से प्रणय होते हुए भी यह विवाह के बिने पिता की अनुमति आवश्यक मानती है।^२ इसी प्रकार कार्नेलिया और अश्विपुत्र के विवाह में भी सिद्धन्वर अपनी प्रसन्नता प्रकट कर दोनों का हाथ मिलाता है।^३ कहना न होगा कि हाथ मिलाना^४ पाणिग्रहण का जर्न देता है किसी विरोध पीक पद्धति से इसका सम्बन्ध नहीं है। उपयुक्त सभी प्रकार के विवाह मनु द्वारा प्रसिद्ध बाह्य रूप, धर्म और प्राचापरम विवाहों से से किसी एक के अन्तर्गत रहे जा सकते हैं। ऐसा समझने के कई कारण हैं। एक तो उनके विषय में विभिन्न विवाह से पूर्व अर्थ किसी भी प्रकार के सांकेतिक विवाह अथवा बल प्रयोग इत्यादि का उल्लेख नहीं मिलता, दूसरे से विवाह सुदजनों की अनुमति से हुए हैं और तीसरे पिता के द्वारा कन्या संप्रदाय^५ तथा परिषय में आचार्य^६ का उल्लेख भी इनमें से कुछ विवाहों के प्रसंग में हुआ है। एक और प्रकार का विवाह 'घामुर विवाह'^७ कहलाता है जिसमें कन्या के माता पिता को बन देकर विवाह किया जाता है। प्रसाद ने स्पष्टतः किसी घामुर विवाह का उल्लेख नहीं किया है किन्तु यदि प्रसाद मुरमा तथा देवदुष्ट और मार्गशी तथा अवयम के विवाहों का उल्लेख करते तो ये विवाह घामुर विवाह कहे जा सकते। देवदुष्ट और अवयम दोनों राजा हैं, मुरमा यासिन हैं^८ और मार्गशी स्वयं अपने प्राय को बरिह^९ कन्या बतसाती है। कन्या अथवा कया के मातृपितृ में महत्त्वाकांक्षा और वैषम्य की दृष्टि इस प्रकार के विवाह में सहायक होते हैं।^{१०}

स्कंदपुराण^१ नाटक में एक विभिन्न प्रकार की विवाह पद्धति का निर्देश हुआ है। विजया धनपेक्षित ही राजसमा में कह देती है मैंने मटाई को बरछ किया है।^२ इतने मात्र से यह विवाह मान लिया गया है। इसीविधे महादेवी देवकी की समाधि पर मटाई स्पष्ट ही अपने को उबका पति बतसाता है।^३ इस बरम को

(१) अं० ४/११७

(२) अं० ४/२५१ (३) अं० १/१५६

(४) अं० ३/१५१

(५) अं० ४/२१५

(६) राम्यकी १/१२

(७) अजात० १/४४

(८) 'जातिभ्यो इविलंहरता कन्यायै वैम पसित'।

कयाप्रदायं स्वाशुभ्यानासुरो धर्म उच्यते।

मनुस्मृति १/३१

(९) अं० २/८२

(१०) वही

घोषित करने के पूर्व न तो विजया और भटार्क के प्रेम की सूचना कही गिती है न कही उन दोनों के प्र भासाप की । बीरत्न व्यंजक मनोहर मूर्ति^१ पर वह धावृष्ट हुई है वहीं पर वह धारुण्य एक पक्षीय है । गोविन्दगुप्त द्वारा भटार्क के कन्या^२ किये जान के कारण उन दोनों में इससे पूर्व विवाह सम्बन्धी किसी बर्षा का होना भी संभव नहीं । 'मैंने भटार्क को बरण किया है' से कामसूत्र की स्वयं प्राप्तिता कन्या^३ का स्मरण हो पाता है बिछके धनुषार मणि मातृ पितृ-हीन कुलीन युववती किन्तु मनहीन यौवन प्राप्त कन्या का बरण समान कुलधीन का व्यक्ति नहीं करता तो कन्या स्वयं घाना वर भुन केती है । स्वयं प्राप्तिता होने पर भी विजया का यह कार्य प्रतिहिंसा के आवेश में हुआ है^४ बनहीना होने के कारण नहीं ।

प्राया सभी विवाहों की घुच्छभूमि में प्रणय का उल्लेख है । केवल दो विवाह इस प्रकार के हैं जिनमें प्रणय के लिए विशेष स्थान नहीं । एक तो भ्रुवस्वामिनी रामगुप्त का और दूसरे विजया भटार्क का इन दोनों की परिबृति असफलता में रही है । इसका अर्थ यह है कि प्रस्ताव विवाह के पूर्व प्रणय को महत्त्वपूर्व मानते हैं । यह उनकी व्यक्तिगत मान्यता है इतिहास से इसका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं ।

इसके प्रतिरिक्त जहां-जहां भी विवाह से पूर्व स्वयं प्रणय की बर्षा हुई है वहाँ प्रस्ताव ने प्राय सभी स्थलों पर स्वीकार करने या अस्वीकार करने का पूरा अधिकार स्त्री को दिया है । कन्या के द्वारा प्रणय प्रस्ताव टुकराये भी जा सकते न । युनान की कन्या ने फिलिप्स के प्रेम प्रस्ताव को टुकरा दिया^५ और बलका^६ ने भी 'पर्वतेश्वर की कई छानियों में से एक बनना अस्वीकार कर दिया । यत यह निश्चय है कि प्रस्ताव के धनुषार प्राचीन भारत में विवाह के सम्बन्ध में कन्या की सम्मति भी आवश्यक होती थी । अश्वगुप्त और कान्ठिया के विवाह में साहचरिपस राजकुमारी की सम्मति भी आवश्यक समझता है ।^७

(१) स्कंद० २/७५

(२) बही २/७५

(३) मन्वायशा युववत्यपि कन्या बनहीना कुलीनापि समानैरप्याश्वमाना माता पितृ विमुक्त्य वा ज्ञातिकुलवर्तिनी वा प्राप्तयौवना पांसिप्रहृण स्वयमधीप्तेत् ।

कामसूत्र पृ० २१३

(४) स्कंद० २/५३

(५) पन्द्र० २/१०३

(६) बही २/१३३

(७) अन्द्र ४/२४१

अध्ययन समाप्त कर एक बसिन्दा बूजाने पर ही मुख की धामा से स्नातक
 गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था। चापत्य को उसके कुलपति ने गृहस्थाश्रम में प्रवेश
 करने की आज्ञा दी थी।^१ सिंहल और अश्वपुत्र के विवाह भी
 स्नातक होने के बाद ही हुए हैं। याज्ञवल्क्य कहते हैं वेद और
 ऋत दोनों में अथवा एक में पारबल होकर ही प्रकृत्याही सुसंभारा
 स्त्री से विवाह करें।^२ यशु ने भी स्नातक को एक की आज्ञा से ही सर्वत्र और
 सुसंभारा स्त्री से विवाह करने का विधान किया है।^३ कामसूत्र का 'भूतवान्
 धीमयेत्'^४ भी इसी धोर संकेत करता है। अतः बर्हस्पति धर्म के अथ रूप को
 स्वीकार कर लेने पर विवाह के लिए पञ्चीस वर्ष की उम्र ही सर्वाधिक उपयुक्त
 प्रतीत होती है।

प्रसाद के माटकों में एक और उच्च कुल से विवाह सम्बन्ध के महत्व का
 निर्देश किया गया है, दूसरी धार हीन और अमान्य कुल से भी अनेक विवाह हुए
 हैं। इनमें से कुछ विवाहों के पीछे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है और
 विवाह और कुछ प्रसाद की स्वतन्त्र मान्यताएँ हैं। ये मान्यताएँ प्राचीन
 कुल परम्परा सामाजिक परम्पराओं के अनुकूल तो हैं परन्तु इन्हें ऐतिहासिक
 तथ्य का अर्थ है और कहीं नहीं। अजातशत्रु और बाजिरा दोनों
 ही कुलधीन और सामाजिक स्थिति में समान हैं।^५ किन्तु पर्वतेश्वर अपने 'लोक
 विमत कुम्भ'^६ की कुमारी का विवाह कायर धार्मिक से नहीं इला चाहता और
 वह स्वयं भी बौद्ध और भूय राजा मन्द की कन्या कन्याशी से अपना विवाह करने
 को तैयार नहीं।^७ ये बटनाएँ विवाह सम्बन्धों में कुल धीरव की महत्ता की ओर
 निर्देश करती हैं। इनमें पहली बटना तो स्पष्ट ही ऐतिहासिक है और तीसरी
 काव्यमय। दूसरी बटना धार्मिक और पर्वतेश्वर के कुलो से विवाह सम्बन्ध तो
 ऐतिहासिक है परन्तु कुलप्रतिष्ठा के नाम पर पर्वतेश्वर की इस सम्बन्ध में अमहमति
 प्रसाद की धार्मिक कल्पना है जो तत्कालीन समाज की व्यवस्था से मेल खाती है।
 हायनवन्ध के अनुसार बाल्यायन भी सभी प्रकार के अथ विवाहों को अनुचित
 समझते हैं और केवल अनुधा सबर्गा कन्या से ही विवाह का विधान करते हैं।^८

(१) अथ० १/५५

(२) अनुश्रुति १/४

(३) अथ० १/११५

(४) अथ० १/५४

(५) अथ० १/७६

(६) स्त्रीय इत कामसूत्र हायनवन्ध ५० १२०

(७) याज्ञवल्क्य सिंहल १/५१ ५२

(८) कामसूत्र ५० १५४

इससे बौद्ध और द्रुह राजा की कन्या से विवाह न करने का समर्थन तो प्रचलित होता है किन्तु इतिहास इस बात का साक्षी है कि बौद्ध-काल से पूर्व के काल तक प्रथम विवाहों में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई ।

बासी पुत्री मानिन यवन कन्या तथा हरिज कन्या प्रादि हीन कुलों की कन्याओं से भी कुलीन राजपुत्रों के विवाह सम्बन्धों के बनेक उल्लेख प्रयाद के नाटकों में हैं । प्रसंगिकत का बासी पुत्री से विवाह ऐतिहासिक घटना है । क्षत्रिय बासी पुत्री से विवाह कर उसे राज महिषी का सा सम्मान भी दे सकता था ।^१ वैशम्पत्य का भीष कुल की कन्या सुरमा मानिन से विवाह नाटककार की कल्पना है^२ पर उत्काचीन सामाजिक वातावरण के विपरीत नहीं । क्षत्रिय भटार्क और अश्वि कन्या विजया का भी इसी प्रकार प्रथमान कुल विवाह है^३ साथ ही कल्पना प्रसूत भी । क्षत्रिय सम्राट् स्कन्दगुप्त तक अपने से हीन कुल की अश्वि कन्या से विवाह कर उसे महादेवी बनाने को प्रस्तुत है^४ इससे ज्ञात होता है कि इस सम्बन्ध में प्रयाद की मान्यता प्रथम विवाहों को वैय मानने की है । प्रस्तुत स्मृति प्रकों से इसके लिये प्राच्यस्यक नियम भी खोजे जा सकते हैं । मनु स्मृति के अनुसार क्षत्रिय का विवाह क्षत्रिय वैश्य और द्रुह की कन्या से हो सकता था ।^५ शुक्लचार्य ब्रह्म सवि की शर्तों में एक यह शर्त भी मानते हैं कि विविध राजा विवेका को अपनी कन्या स्थाह है^६ ता स्पष्ट ही वे राजाओं को देश और जाति की सीमाओं से परे प्रथम कुल कन्याओं से भी विवाह की अनुमति प्रदान कर देते हैं । प्रवस्वामिनी नाटक में जिस कन्या का संकराच से विवाह सम्बन्ध स्थिर हो चुका था वह गुप्त कुल बहू बनी ।^७ एक प्रस्तुत उल्लेख है ।^८ अतः स्पष्ट ही राजा के लिए कन्या का प्रह्व कहीं से भी सम्भव था ।

‘प्रवस्वामिनी नाटक में चन्द्रगुप्त की बाम्बता होती हुए भी प्रवस्वामिनी का विवाह उसके बड़े भाई रामगुप्त से हो जाता है ।^९ प्राचीन भारत में बाम्बान विवाह से पूर्व किया जाता था और बहुत कम ही बाम्बान वाग्दत्ता पत्नी लेकर उस संकल्प को छोड़ा जाता था । प्रवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त के बीच वाग्दत्त होने की घटना ‘मुचमुस त्तवारीख’ के प्रचार पर है । एक सीमा तक उक्त घटना को ऐतिहासिक मान सकते हैं । मनु स्मृति के अनुसार वाग्दत्ता क अपने देवर से विवाह का विधान तो है किन्तु जिसके लिए वाग्दत्त हुआ

(१) अजात० १५२

(२) राज्यधी २१४१

(३) स्कंद० २१८२

(४) स्कंद० ५११३३

(५) मनुस्मृति ३।१३

(६) शुक्लीति ४।७४

(७) प्रु.ब० १।२३

(८) मनु १०।३६४

(९) अ.ब० १।२६

१ है उसकी मृत्यु हो जाने के अनन्तर ही यह संभव है।^१ किन्तु घनने नाटक में प्रकाश
 २ ने रामचन्द्र की जीवितवस्था में ही बागदाज के संकल्प छोड़कर शुद्धवामिनी को
 रामचन्द्र को पत्नी बना दिया है। यह कहना उचित है कि यह कभी एक प्रथा के
 रूप में प्रचलित थी वरन् नहीं क्योंकि इतिहास में इस प्रकार की घटनाएँ कम ही
 देखने को मिलती हैं।

बहुत्र शास्त्र का प्रसार के नाटकों में कही भी प्रयोग नहीं है किन्तु काशी का
 राजा 'घोषण से मिला है'^२ 'पीरू से मिला है'^३ 'धीर रत्नित बन'^४ 'मजातगजु
 बान्क में इन शब्दों द्वारा स्त्री बन की धार प्रबन्ध संकेत किया
 बहुत्र की प्रथा गया है। घोषण ने काशी का भांड पहले बामनी को बहुत्र रूप में
 दिया था 'उद्धत' काशी प्रथम का उद्धत उसका धीर उसके पति
 का प्राप्ति था।^५ काशाश्वर में काशी के लिए कई संभव हुए धीर अन्त में यही प्राण
 पुत्र 'घोषण की 'उद्धत'वादी बाबिरा को स्त्री बन के रूप में प्रदान किया गया।
 बस्तुतः ये दोनों घटनाएँ नाटकों से ली गई हैं।^६ प्रथम इन दोनों को इतिहास का
 समर्थन प्राप्त है। 'रुद्रचन्द्र' नाटक में देवदेवा के एक रूप में बहुत्र की धीर स्पष्ट
 संकेत किया गया है। शीघ्र कहेंगे कि मातृव देकर देवदेवा का विवाह किया जा
 रहा है।^७ इस वाक्य में बस्तुतः यौगुक्त की ही शर्तें जान पड़ती हैं। स्त्री बन के
 सम्बन्ध में सर्वथातः का मत स्पष्ट है साव ही उसमें स्त्री बन के उपयोगों की भी
 शर्तें हुई हैं। कौटिल्य लिखते हैं वृत्ति "कहीं पर सुरक्षित रत्ना हुआ बन" धीर
 धारण्य "धामुयण इत्यादि" स्त्री बन है। परिवार पर धारें हुई किसी विपत्ति
 इत्यादि के प्रतिहार में पति या बली इस बन को कार्य कर सकते हैं।^८ 'मजातगजु
 नाटक में बासबो ने स्त्री बन की मांग हमीलिए की है कि उसे धीर बिबनार को
 कपली पुत्र के विवाह पर जीवन विवाह न करता पड़े।^९ 'बानिहाम' ने भी धन

[१] यस्या प्रिये कस्यामा वाया सत्ये ह्ये पति' सामनेन विमानेन त्रिजो
 विन्देत् ईश्वर'

मनुस्मृति ११७८

(२) पञ्चाङ्ग ११३७

(३) श्रुती ११३६

(४) श्रुती २१६६

(५) श्रुती ११३८

(६) नाटक २१२३७ २१२४२

(७) स्कन्द ११८६

(८) धर्मशास्त्र २१६,२०

(९) पञ्चाङ्ग ११६९

घौर इतुमति के विवाह में यथासामर्थ्य यौतुक का उल्लेख किया है।^१ इससे स्पष्ट है कि यौतुक प्रथा का प्रचलन भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से है और प्रसार के संकेत प्रामाणिक है।

प्रायः सभी नाटकों से ज्ञात होता है कि जन दिनों बहु-विवाह प्रथा का प्रचलन रहा होगा। नाटकों में पटरानी^२ छोटी रानी^३ तथा सपत्नी^४ जैसे प्रयोज इसके साक्षी हैं। राजा बो-बो तीन-तीन ही नहीं कई विवाह बहुविवाह एक साथ कर सकते थे। बिबसार ने दो ब्याह किये तो उनके बामाह उदयन ने तीन।^५ पर्यतेश्वर की कई रामियां थीं।^६ नये-नये राज्य विजय करने के समान ही नये-नये विवाह की भी एक प्रथा सी बन पड़ी।^७ बहुविवाहों का उल्लेख प्रायः क्षत्रिय राजाओं के ही प्रसंग में है। ये बहु विवाह राजनीतिक कारणों से भी हुए हैं और विभास साधना के निमित्त भी। बिबसार^८ और अरय न^९ के दोनों विवाहों का राजनीतिक महत्त्व इतिहास ने भी स्वीकार किया है। बौद्ध इतिहास से ही इस बात की पुष्टि हो जाती है कि उदयन का मानवी से जो तीसरा विवाह हुआ है वह विभास-साधन के निमित्त है (अथवा संभवतः इच्छावाह्य की कन्या से विवाह न होता)।^{१०} राजासवास बनर्जी के अनुसार कुमारगुप्त का अगता से विवाह भी केवल विभास साधन के निमित्त हुआ था। उनकी मान्यता है कि वह गट की कन्या थी।^{११} स्कंदगुप्त नाटक में अन्तर्देवी का विजय विभास की सहायरी के रूप में हुआ है। बहुविवाह प्रथा की कल्पना मात्र न होकर इतिहास और गणकालीन साहित्य से पुष्ट होते हैं।

क्षत्रियों के लिए बहुविवाह तो शास्त्र-सम्मत है ही साथ ही इसका राजनीतिक महत्त्व भी स्वीकार करना ही पड़ता है। ब्राह्मण के सिपे भारो बणों की कन्याओं

-
- (१) रघुवंश ७।३२
 - (२) अनाठ १।२६
 - (३) गद्दी १।२१
 - (४) गद्दी ३।१४०
 - (५) गद्दी १।५०
 - (६) अश्व २।१३३
 - (७) राज्यसी २।४०
 - (८) सीक्रेड बुक ऑफ वि ईस्ट आक्सफोर्ड १/१२ १५ २२ पृ० १६३ २५६
 - (९) कथासरित्सागर (सोमदेव) २ परिच्छेद C, वासवयत्ता १।५ के बाह
 - (१०) बिबसनरी बौद्ध पाली प्रोपर नेम्स पृ० ५६६ ५६७ अन्वय १।१६६ ३ १६३ प ४।१
 - (११) अकस्मा (उपन्यास) राजासवास बनर्जी

से विवाह का विधान है।^{१)} प्रसार के नाटकों में ब्राह्मण पात्रों के बहुविवाह नहीं नहीं हुए हैं। केवल एक स्वाम पर आत्मव्यय कात्यायन से एक स्त्रिय और सही कहकर उपहास मात्र करता है।^{२)} वही एक स्मृतियों और शास्त्रों का प्रथम है ब्राह्मण को बहुविवाह के सम्बन्ध में और वहाँ से भी अधिक सुविधा ही गई है। पर यहीं वह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि शास्त्र विहित होते हुए भी ब्राह्मण के लिए एक पत्नीव्रत ही प्रचलित है। प्रसार ने ब्राह्मण का जो उच्चारण उपस्थित किया है उसके अनुसार यही प्रतीत होता है कि वे स्वयं भी ब्राह्मण के लिए बहुविवाह अनुष्ठान नहीं मानते हैं। आचरण तो शास्त्र ब्रह्मचापी ही रहा है। वीक इतिहासकारों के अनुसार भी उस समय के दार्शनिक अठेर दृष्टाचर्य का पालन करते थे।^{३)}

'भ्रूवस्वामिनी' नाटक में प्रसार ने विवाह सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण समस्या विवाह मोक्ष को उठाया है और उसका उचित समाधान भी किया है। शास्त्रीय और ऐतिहासिक प्रमाणों से प्रसार ने यह प्रतिपादित किया है। विवाह मोक्ष कि प्राचीन भारतीय समाज में विवाह मोक्ष की प्रथा प्रचलित थी।^{४)} क्या प्राचीन क्या धार्मिक समाज में इस प्रकार की समस्या क्या से रही। यदि विवाह से परस्पर विस्वास्त्यूर्वक अधिकार रखा और सहयोग का महत्व माना जाय तो उसके अभाव में मोक्ष का अधिकार होना स्वाभाविक ही नहीं आवश्यक भी है। यदि प्रसव के अभाव में कन्या की इच्छा या अनिच्छा पर विचार किये बिना ही उसका विवाह कर दिया जाय तो मोक्ष के अधिकार का महत्व और भी बढ़ जाता है विशेषकर धामुर राजस और पैसाच विवाहों में। भ्रूवस्वामिनी में विवाह मोक्ष के समर्थन के लिए परिस्थितियाँ उपस्थित की गई हैं। भ्रूवस्वामिनी विनयोपहार के रूप में कुस में घाई^{५)} और अन्तर्गुप्त से उसका वाग्दान हो गया। रामगुप्त ने कुस और वस से उससे विवाह किया।^{६)} उस विवाह में अग्नि का साक्षी कर मन्त्र भी पढ़े गए^{७)} और पति के सुक-दुक में साथ न छोड़ने की प्रतिज्ञा भी

(१) मनुस्मृति ३।१२।११

(२) अन्त० ४।२१४

(३) मेगास्थनीज अथरस ४० निघांतस एवं स्माको १५ जी ७१८

(४) अन्त० (सुविधा)

(५) अन्त० १।२१

(६) वही ३।५५

(७) वही ३।११

(८) वही १।२४

की।^१ पति राममुण्ड अपनी माया का संरक्षण करने में असमर्थ रहा और उसने उसे कापुरुष की तरह महाराज की शय्या के लिए श्रित दासी बनाकर बेच दिया।^२ अपनी इस कायरता को ढकने के लिए राममुण्ड ने द्रुवस्वामिनी पर बन्धुगुप्त की अनुसामिनी होने का दोषारोपण किया।^३ इस प्रकार तिरस्कृता, धरिता और लाजिष्ठा द्रुवस्वामिनी ने 'वर्मशास्त्र के मुक्त' पुरोहित से अपना निर्भय मांगी कि वह वास्तव में राममुण्ड की सहसामिनी है या नहीं। पुरोहित ने अपना निर्णय इस प्रकार दिया कि वह की विधि में बेबी द्रुवस्वामिनी और राममुण्ड को एक प्रति पूर्व बन्धन में बांध दिया है। धर्म का उद्देश्य इस प्रकार परवर्तित नहीं किया जा सकता। माता और पिता के प्रमाण के कारण से धर्म विवाह केवल परस्पर ही से द्रुव नहीं सकते। परन्तु यह सम्भव उन प्रमाणों से भी बिहीन है। और भी यह राममुण्ड मृत और प्रवर्तित तो नहीं पर औरन से नष्ट आचरण से पतिव्रत और आचरण से राक्षसिस्वयी कभीन है।^४ वह 'कमीन की व्याख्या इन शब्दों में करता है अपनी स्त्री को दूसरे की सहायिनी बनने के लिए सेवने में जिसे कुछ संकोच नहीं वह कभीन नहीं तो और क्या है'।^५ इस प्रकार धर्मशास्त्र राममुण्ड से द्रुवस्वामिनी के मोक्ष की धारा देता है।^६ विवाह मोक्ष के इस निर्णय के साथ ही नाटक की समाप्ति हो जाती है। बन्धुगुप्त द्रुवस्वामिनी के पुनर्लिंग का घन्ट में उन दोनों की वय वयकार कर सकेत भर दे दिया गया है।^७

इतिहासकारों ने द्रुवस्वामिनी के पुनर्लिंग की घटना को ऐतिहासिक मान लिया है घट सामाजिक दृष्टि से उक्त प्रथा के प्रचलन को भी समाप्ति मान देना पड़ पा। प्राचीन काल में विवाह मोक्ष शास्त्र-सम्मत था या नहीं इस प्रश्न पर प्रचार ने नाटक को सुमिका में स्पष्ट विवेचन किया है। नारद और पाराशर के जो उद्धरण दिये गये हैं उनमें पुनर्विवाह का विधान स्पष्ट मिलता है किन्तु विवाह मोक्ष का केवल अनुमान भर किया जा सकता है। प्रसार का यह तर्क समीचीन है कि इन प्रमाणों पर केवल मृत स्थिति में ही पुनर्लिंग के लिए विवाह मोक्ष की आवश्यकता नहीं होती। पति के नष्ट प्रवर्तित कमीन तथा पतिव्रत होने पर तो बिना विवाह मोक्ष के पुनर्लिंग सम्भव ही नहीं।^८ परन्तु कौटिल्य^९ के दसोह में 'शरीर का उन्मेष

(१) अथ ३१५७

(२) वही ३१६१

(४) वही ३१६२

(५) वही ३१६२

(८) अथ० (सुमिका)

(९) वही (सुमिका)

(३) वही ३१६१

(१) वही ३१६२

(७) वही ३१६२

ही नहीं' और 'व्याम्य एव के द्वारा उपयुक्त परिस्थितियों में उन्हींसे विवाह मोक्ष' का स्पष्ट विधान कर दिया है। पाराशर और कौटिल्य की विनाई हुई धर्मों में से प्रसाद ने पाराशर की तीन—नष्ट, क्लीब और पठित—और कौटिल्य की चार—बीब क्लीब राजकिस्रियो और पठित धर्मों को विवाह मोक्ष का आधार बनाया है और इन धर्मों की अपनी स्वतन्त्र व्याख्या भी की है। पति 'सुग और प्रव्रित्त तो नहीं पर औरत से नष्ट धारण से पठित और कर्मा से राजकिस्रियी क्लीब' है। सुप्त कुल के विद्याम को ठोडने के कारण रामगुप्त को राजकिस्रियी कहा गया है। अपनी स्त्री को दूसरे की 'धनुमायिनी के लिये भेजने में बिसे संकोच नहीं वह क्लीब नहीं तो और क्या है' बहा क्लीब' एव का उसी व्यापक अर्थ में प्रयोग हुआ है जिसमें नीला के 'कल्लेव एव का हुआ है। नष्ट पठित और राजकिस्रियी की उक्त व्याख्या तो स्त्रीकार की भी जा सकती है पर क्लीब एव का जो अर्थ प्रसाद ने माना है वह पाराशर और कौटिल्य के अर्थ से मूल नहीं जाता। वस्तुतः 'क्लीब' एव से इन दोनों का अतिशय अनुसरण से ही और इनका समर्थन मारद के 'शेव भोजयते वेमं नाबीबी शेव महुंति' तथा विद्यावदन के 'वसुः क्लीब' जनीचिठेन चरितेन, सन्धा कोप विवाह धीत्यरतिभिः शेषीहृता तथा रम्या चारतिकारिणी' से हो जाता है।^१

अर्थशास्त्र के 'अर्थस्त्रीय प्रकरण' में जहाँ 'अर्थ (पति द्वारा पत्नी के अरथ पोषण का प्रसङ्ग आया है वहाँ कौटिल्य कहते हैं यदि इममुरकुल में प्रवेश करने पर जो पत्नी पति से स्वतन्त्र रहना चाहे (विमनताया) उसे अरथ—पोषण देना पति के लिए धारण्यक नहीं।^२ यहाँ इस स्पष्ट पर मोक्ष का उल्लेख तो नहीं है पर इसमें संदेह नहीं कि उक्त परिस्थिति मोक्ष की पहली सीढ़ी है। इसी प्रसङ्ग में आगे चल कर कौटिल्य ने मोक्ष का कारण 'परस्पर द्वेष' बताया है।^३ मोक्ष के लिए दोनों पक्षों में परस्पर द्वेष भाव होना धारण्यक वाग पड़ता है क्योंकि एक ही ओर से द्वेष होने पर दूसरे की इच्छा के समान में मोक्ष की सम्भावना कौटिल्य भी नहीं मानते^४ परन्तु यदि एक का द्वेष भाव से हो और दूसरा मोक्ष के लिए प्रस्तुत हो जाय तो ऐसी स्थिति में यदि स्त्री के द्वेष भाव से पुरुष मोक्ष की इच्छा करे तो जो कुछ स्त्री से प्राप्त हुआ वह उसे लौटाकर मोक्ष पा सकता है और यदि पुरुष के प्रति द्वेष से स्त्री मोक्ष की इच्छा करे तो जो कुछ स्त्री को प्राप्त हुआ है उसे लौटाना पुरुष को धारण्यक नहीं।^५ इन दोनों धर्मों में 'मोक्ष' अर्थ का प्रयोग हुआ है और सम्भवतः प्रसाद भी इस अर्थ के लिए कौटिल्य के ही श्रेणी है।

(१) वही (भूमिका)

(२) 'इममुरकुल अविष्टया विमनताया वा नाभियोजय (पति) अर्थशास्त्र ३।७

(३) 'परस्पर' द्वेषान्मोक्ष अर्थशास्त्र ३।११

(४) वही ३।१५

(५) वही ३।२०-२१

कौटिल्य के अनुसार ब्राह्मण सेव धार्य और प्राजापत्य इन चार वर्ग विवाहों में साधारण द्वैप विवाह मोक्ष का कारण नहीं ही सकता।^१ प्रसार ने सम्भवतः इसीलिये द्रुवस्वामिनी और रामगुप्त के विवाह को माता पिता के प्रमाणों से विहीन और क्षत्र-क्षत्र से किया हुआ 'राजस विवाह' सिद्ध किया है।^२ नाटक में द्वैप दोनों वर्गों में है। पत्नी पति को 'स्त्री' कापुत्र और स्त्री की मन्त्रा कूटने वाला वस्तु कहती है और पति उसे 'पर पुत्र्य में प्रगुरवत' काससपित्री ही स्त्री कहता है। द्वैप का कारण भी स्पष्ट है। पहला कारण तो यह है कि द्रुवस्वामिनी ब्रह्मगुप्त की बाम्पत्ता थी और उसी से प्रेम करनी थी। दूसरा कारण यह है कि चक्रवर्त ने द्रुवस्वामिनी की मांग थी और अपनी बाम्पत्ता के कारण रामगुप्त ने अपने बन्धु के लिये विवाहित पत्नी को अतिव्यती की तरह दुसरे की प्रकृत्यादिनी बनाने के लिये भेजना स्वीकार कर लिया। तीसरा कारण जिसे प्रसार स्पष्ट बतलाना नहीं चाहते वह है रामगुप्त का मनुसकत्व। नाटक में कई स्थलों पर इसका स्पष्ट संकेत है पर होने स्पष्ट मन्त्रों में कहे गये प्रसार निम्नलिखित हैं। वस्तुतः द्वैप का और इसी कारण विवाह मोक्ष का भी यही प्रबलतम कारण है और पारासर, कौटिल्य के मत के पूर्ण-अनुकूल भी है। नाटक में जो संदर्भ हुआ है वह परस्पर द्वैप-व्यय है तथापि यहाँ कब-क एक पक्ष द्रुवस्वामिनी ही मोक्ष के लिये उरमुक्त है। रामगुप्त को मन्त्र तक अपने न्यायपूर्ण अधिकार^३ को नहीं छोड़ना चाहता और पत्नी को वर्म का मय^४ दिखाता है। इस प्रकार यहाँ कौटिल्य का 'परस्पर द्वैप-व्यय' वाला नियम लागू नहीं हो पाता। इसीलिये प्रसार के लिये यह आवश्यक हो गया कि वे रामगुप्त को मन्त्र पठित स्त्री और राजकल्पिणी सिद्ध कर मोक्ष का कारण उपस्थित करें।

मनु, वासुदेवायन तथा कालिदास सभी मोक्ष की प्रथा के सम्बन्ध में मीन हैं। सम्भवतः प्रसार के स्वयं के मन्त्रों में ही इसका उल्लेख भी सम्बन्धित है। जिस प्रथा के लिये विधि और निदेश दोनों तरह की सूचनाएँ मिलें तो इतिहास की दृष्टि में वह उस काल में सम्भाव्य मानी जावती^५।

उक्त प्रसङ्ग में प्रसार ने एक और महत्वपूर्ण बात का उल्लेख किया है। मैं स्वीकार करती हूँ कि चाहेतक तुम्हारे विश्वास की सहजरी नहीं हुई^६ मुझे राजा

- (१) अर्धशास्त्र ३/२२ (२) अ ४० ३/६२ (३) वही ३/६१
 (४) अ ४० ३/६२ (५) वही ३/५८
 (६) अ ४० (पु मन्त्र) ५० ४
 (७) अ ४० १/०६

से कमी मरल सम्भाषण करने का बखतर ही नहीं मिला' १ द्रुवस्वामिनी के ये दो कथन सामिप्राय हैं और कुछ विधान संकेत करते बात पड़ते हैं। 'पर्यमपानु वेव कप्या धनिममथत' २ इस पाणिग्रहण मंत्र में 'धसतयोनि' कप्या को जो महत्त्व दिया गया है प्रसाद संभवतः उनी को प्रतिपादित करने के लिए द्रुवस्वामिनी को 'धसत योनि' सिद्ध करना चाहते हैं। यह भी सम्भव है कि 'बसीव' धस्य को महत्त्व देने के लिए इसका प्रयोग किया गया हो अथवा नाटक के धस्य में पुनर्विवाह के उद्देश्य से (जो ऐतिहासिक बटना है) प्रसाद ने कप्या के महत्त्व को बढ़ाने के लिए उसे 'धसत योनि' रखा हो।

मनु विधवा विवाह को स्पष्ट धर्मों में दर्शनीकार करते हैं ३ किन्तु यदि विधवा धसत योनि हो तो उसके विवाह संस्कार का विधान उम्होंने भी किया है ४। द्रुवस्वामिनी को धसत योनि मानकर उसके पुनर्जन्म को प्रसाद ने मनु विहित सिद्ध कर दिया है। कौटिल्य ने पति के मरने के उपरान्त देवर से विवाह मान्य ठहराया है ५। इसका समर्पण धर्म वेद बौधायन धर्मसूत्र पाराशर नारद और आपस्तंब धर्मसूत्र ने भी किया है। इस कारण से भी अत्रगुप्त और द्रुवस्वामिनी के पुनर्जन्म में कोई आपत्ति नहीं हो सकती।

प्रसाद के नाटकों में कहीं-कहीं सत्री प्रथा का उल्लेख हुया है। कोमा द्रुवस्वामिनी से गणकपत्र के घब के लिए प्रार्थना करती है। इस पर द्रुवस्वामिनी कटती है 'बसो ध्रेम के नाम पर जनना चाहती हो तो तुम घब को से बाकर बसो। ६' राजधी का सती होने को प्रस्तुत होना हर्ष चरित के अनुसार एक सती की प्रथा ऐतिहासिक बटना है ७। उक्त बटना का उल्लेख करते हुए प्रसाद 'सती होना शिष्यो' का पवित्र कृत ८२ 'पासन करना मानते हैं ८' प्रसाद ने तो गुप्त काल और उत्तर गुप्तकाल में ही इस प्रथा का उल्लेख किया है। सती प्रथा भास्य को धरमस्य प्राचीन प्रथा है। कापिशाम के पतिव्रतर्था ९ तथा

(१) द्रुव० ३/५१

(२) मनु० ८/२६ कुसुमवृत् की टीका में उद्धृत

(३) 'न विवाहविवायुत् पुन' मनुस्मृति ११६५

(४) सा धसतयोनि स्वायुवतप्रयासतापि वा।

पौनर्जन्ममर्णा सा पुन' सप्कारमर्हीति

मनु० १०७६

(५) तन पति सोऽयं पत्नीन् धर्मगास्त्र ५।४५

(६) द्रुव० ३/५३

(७) हर्षचरित धस्य उवधस्य' वाकर टीका पृ० २४१

(८) राजधी ३।६२

(९) कुमार बंकर कापिशाम ४।३३

'स्वामनुयायि' जैसे उल्लेखों से यह अनुमान करना प्राधान्य है कि गुप्तकाल में तो धम्मपद ही सती प्रथा प्रचलित रही होगी। सती के महत्त्व का उल्लेख कामिदास ने इस प्रकार किया है जिस प्रकार धम्मपद के छात्र कौमुदी मुक्त जाती है मेघ के बिलीन होने के छात्र ही विद्युत् भी बिलीन हो जाती है, उसी प्रकार स्त्री को पति के मार्ग की अनुयायिनी होना चाहिए^१।

प्रसाद के नाटक की गारी पुरुष के समान ही स्वतन्त्र है। अस्मिन्ती सेनापति को धारण देती है^२। स्वप्ना मगध का शासन करती है।^३ मोर्य पत्नी भरै राजदरवार में अपने पति और पुत्र की मुक्ति के लिए प्रार्थना करती है^४। धम्मपद का ललितता के नागरिकों को उत्साहित करती है^५ और मंत्राक्षिणी सामन्त कुमारों को उत्साहित करती है।^६ परन्तु धम्मपद के लिए प्रचरोप शब्द का प्रयोग कुछ और ही कहानी कहता है 'धम्मपद की मर्त्या बड़ी कठोर धर्मवा पूस से कोमल होती थी और उसकी रक्षा महत्त्व का विषय समझ जाता था'।^७ धम्मपद नाटक में केवल चरित्र (पवास) से भ्रष्ट होने के कारण परमावृत्ति पर चम्पेह किया जाता है।^८ इस विरोधाभास का समर्थन नाटक तथा धम्मपद सभी प्राचीन ग्रन्थों से हो जाता है। नाटकों में जहाँ एक ओर स्त्रियाँ उत्सवों तक में पुष्पों के साथ नृत्य कर सकती हैं कंस के रंग के वस्त्र पहिन कर पतिमों के वस्त्र से भगकर काविक मास की रात्रि के उत्सव में विचरण कर सकती हैं^९ वहीं दूसरी ओर नव्याओं से भ्रष्ट होने के धर्मपथ में चम्पे भी प्राप्त करती हैं।^{१०} इतिहास से ज्ञात होता है कि नारियाँ धम्मपद में रहती थीं फिर भी उन पर कोई विशेष सामाजिक बंधन नहीं थे। कामिदास कालीन स्त्री समाज का चित्र इसका समर्थन करता है। भगवत्संराज सपाध्याय लिखते हैं— कामिदास के युग में स्त्रियाँ धम्मपद में धर्मरक्ष नहीं रहती थीं। नरियों में सबके सामान्य स्त्रियों के स्नात करने का उल्लेख मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि स्त्रियों पर कोई विशेष प्रतिबन्ध नहीं होता था। इसका परिणाम यह नहीं कि उन्हें सबके सामने

(१) कुमार संभव कामिदास ४२१

(२) अस्मिन्ती यह याति कौमुदी यह मेघेन तद्विभूतीयत प्रमदा-
पतिवरमना इति प्रतिपन्न हि विवेतनैरपि। कुमार संभव ४३३

(३) धम्मपद ३।१२३

(४) वही ३।१११

(५) धम्म ३।१७८

(८) स्कंध० १।१७

(६) वही ४।२१८

(९) धम्मपद १।५१

(७) धम्म० १।३३

(१०) पुष्करत नाटक २।१४०

(११) धम्मपद पट्टकवा १।१११ ३।११३ ४।१

बैरोकटोक निकलने की स्वतन्त्रता थी। मन्वा जबका एक प्रतिबन्ध गुण माना जाता था। कभी-कभी 'मन्वु टनवती धौर मन्वुर्वन्पद्या' जैसे शब्दों का प्रयोग भी मिलता है।^१ प्रसाद ने 'स्कन्धगुप्त' नाटक में केवल एक स्थान पर ही 'मन्वु टन की बर्षा की है।' मानिनी न्यायाधिकरण में मन्वु टन धारण किए हुए पायी है।^२ यहाँ यह मन्वु टन प्रयास न होकर विविष्ट प्रयोगन मात्र से है। कुछ भी हो यह तो कहना ही पड़ेगा कि स्त्रियों के जीवन के जिस विरोधाभास को प्रसाद ने अपने नाटकों में चित्रित किया है, वह भारतीय संस्कृति के अनुकूल है।

प्रसाद के नाटकों में पिता और पुत्र के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा गया है। राम और बभरव को वे पुत्र और पिता का धारण मानते हैं। पुत्र के व्यक्तित्व को पूरा बनाने के लिए पिता और माता दोनों की मित्रता को वे प्राथम्य सर्वप्रथम दृष्टिगत करते हैं।^३ धार्य पद्धति में पुत्र की पणना पिता से ही होती थी।^४ इतना होते हुए भी दासी पुत्र स्वाभ्य माना जाता था और साधारणतया राक्षसिहासन का प्राधिकारी नहीं होता था।^५ मनु भी पुत्र की पणना पिता से ही मानते हैं।^६ वे एक घोर तो कहते हैं कि दूरा पुत्र को पिता की सम्पत्ति के बचने भाव से अधिक नहीं मिल सकता।^७ दूर ही भोर यह भी कह देते हैं कि ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य से उत्पन्न दूरा पुत्र सम्पत्ति का प्राधिकारी नहीं होता। यदि हमका पिता उसे कुछ दे दे तो वह उठने का ही प्राधिकारी होता है।^८ मनु ने ही धर्म्यम विजाति से दान का कार्य करने वाले ब्राह्मण को वह सो पण दण्ड देने का विधान किया है।^९ अतः विजाति को दान नहीं माना जा सकता। दूरा के दासत्व को उन्होंने स्वामिका बतलाया है।^{१०} अतः उत्तराधिकार के लिए पीठम की दासी पुत्री और मनु की दूरा समानार्थ मानी जा सकती है और इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि धर्मशास्त्र के अनुसार दासी पुत्री से उत्पन्न धौरस पुत्र पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी नहीं हो सकता। चाहे उक्त दासी पुत्री परिणीता पत्नी ही क्यों न हो। 'प्रजापदानु' नाटक में पीठम ने पिता की पणना पुत्र में होती है। इस विज्ञान के आधार पर विद्वत्क की राज्याधिकार विना दिया है। यह एक धरबार कहा जा सकता है।

(१) इतिहास इन कालिकास की० ऐत उपाध्याय पृ० ११०

(२) स्कन्ध० ४।११५ (३) प्रजाप १५२

(४) प्रजाप० ३।१४३ (५) बही ३।१११

(६) 'मनु' पुत्र विजाति एतु १।३२

(७) मनु १।५४

(८) 'यदेवास्य पिता बधात्तदेवास्य धर्म मनेत् मनु० १।५५

(९) मनु० १।१२

(१०) 'निर्मर्षं हि उत्तमं कस्तस्यात्तयोर्हृदि मनुस्मृति ८।१४

“मनु” पुत्रं विजानति’ वाला मनु का सिद्धांत दोनों घोर लागू होता है। महापद्मादि सूत्रागमोद्भव होने पर भी मन्त्र बंधी कहनाये’।^१ महापद्मानम्ब की रानी से नापित (मूत्र) द्वारा उत्पन्न पुत्र भी महापद्म का आर्य पुत्र’ माना गया।^२ इस प्रकार मनु से दोनों स्थितियों में पुत्र को गणना पिता से ही मानी है और उसके लिए एक सुन्दर दृष्टान्त दिया है ‘अपत्तं उत्कृष्टं यत्तत्रा निकृष्टं क्षेत्रे में स्वयं बीज बोने पर फल का अधिकारी क्षेत्र स्वामी ही होगा और दूसरे के क्षेत्र में किसी अन्य के द्वारा बीज बोये जाने पर भी फल का अधिकारी क्षेत्र स्वामी ही होगा’।^३

पिता पुत्र के सम्बन्धों के अतिरिक्त प्रसाद के ताठकों में माई-बहल देकर मामी भाभी-भगव, सौतेला पुत्र सौतेली माँ भतीजा भागिनिय और मातुल इत्यादि का भी उत्कृष्ट हुषा है।

(१) अम्ब० (सुमिका) पृ० २२

(२) अम्ब० १।६६ ३।१८५ ३।१७५

(३) ‘तत्रैवाक्षेपिणो बीजं परक्षेत्रं प्रदायिष्य

कुर्वन्ति क्षेत्रिणामर्थे न बीजी नमत फलम् ।

खान-पान

प्रसाद के नाटकों में खान-पान सम्बन्धी विवरण बहुत ही कम पाए हैं। कुछ तो इतना ही कि प्रसाद बटमाए राजनीतिक कुञ्जों और संघर्षों को केकर बनी है और कुछ इतना कि प्रसाद है जीवन के साधारण दृश्यों से दृष्टिकर्तों को न प्रभाव कर साधारण परिस्थितियों के सुजन की धोर प्राकृतिक ध्यान दिया है। इसके प्रति रिक्त नाटक में ये सब विवरण या भी नहीं सकते थे। भारत में जिन दृश्यों की रंगरंग पर बर्तना की है उनमें से एक खान-पान भी है। प्रसाद ने कल्पि युद्ध और युद्धु बीते दृश्यों की धोरता तो की है किन्तु खान-पान का विवेक उन्हींने प्रसाद स्वीकार कर लिया है। फिर भी सुरापान के दृश्य प्रायः उनके सभी नाटकों में मिलते हैं। कुछ खान-पान सम्बन्धी उल्लेख कबारों में आ गये हैं। कुछ विवरण कबानक के साथ धर्मिनक के साथ बनकर पाये हैं और कुछ का संकेत मात्र है।

सुरा के लिये प्रसाद ने निम्नलिखित नामों का प्रयोग किया है—आमक^१ मरिच^२ ह्याला^३ सुरा^४ कादम्ब^५ ब्राह्मसक^६ पारसीक मरिच^७ या पारस्य वेष्ट की मूर्त्यवान मक्ष^८ इन समस्त नामों में से मरिच सुरा प्रायः और मक्ष बीते कुछ नाम तो आज भी प्रचलित हैं। कादम्ब का प्रयोग अप्रचलित है। इतना तो स्पष्ट है कि ये सारे उक्त प्राचीन काल में सुरा के लिये प्रयोग में आये जाते थे। पाणिनी ने मक्ष और सुरा का उल्लेख तो किया ही है। साक ही सुरा के विशेष प्रकारों में मरेम और कापिष्ठापिनी का भी उल्लेख किया है।^९ नीटिम्य ने भी अपने अर्थशास्त्र में छः प्रकार की सुरा का उल्लेख किया है।^{१०} साक ही मरेम बनाने की पूरी विधि भी बतलाई है।^{११} ऐसा प्रतीत होता है कि ये सब नाम सुरा के विभिन्न प्रकारों को सूचित करते

- (१) बजाठ० १४१
 (२) बही १४४ अष्ट० १६३ स्कंद० २५६ प्रुब ११३ राजवपी ३५६
 (३) बजाठ० १४४
 (४) बही २१६
 (५) अष्ट० १६६ स्कंद० ११३० पृ० ११५
 (६) अष्ट० ३१६६; अष्ट० ११४
 (७) स्कंद० ११६
 (८) स्कंद० २१२३
 (९) इण्डिया एज मोन टु पाणिनि (अध्यात्म)पृ २१५
 (१०) अर्थशास्त्र २१२५
 (११) अर्थशास्त्र २१२५

से। धामे बलकर ये सुरा के पर्याय समझे जाने लगे। अमरकोश में मरिच हासा मद्य सुरा धौर कारंब (कारंबरी) ये सुरा के (११) तरह पर्यायों से हैं। धासब एक विशेष प्रकार की मरिच का नाम है।^१ प्रसाद ने इन सबों में प्रयोग पर्यायवाची शब्दों के रूप में ही किया है। कालिदास के नाटकों बाह्यणी कारंबरी धौर धीमु के अतिरिक्त अन्य धासबों का उल्लेख भी मिलता है।^२ मेघदूत में हासा का भी प्रयोग हुआ है।^३ पारस्य देश की मूल्यवान मरिच से प्रसाद का अतिप्राम मरिच विशेष से है जो समभवतः फारस या ईरान से मंगा जाती होगी। पाणिनी की कापिशायिनी को इसके समकक्ष रसा वा सकटा है प्राचीन काल में कपिशा में अत्यन्त मूल्यवान अगूरी सुरा बनाई जाती थी और दूर-दूर तक उसका निर्यात होता था। ई० पू० तीसरी सताब्दी में विष्णुसा ने सम्राट एन्टिओकस से अगूरी सुरा मगवाई थी।^४ बातकों से भी यह ज्ञा होता है कि उस काल में अफिकांस मनुष्य सुरा पीते थे और 'सुरा बल्यब' में मनाये जाते थे।^५

सुरा पात्रों में प्रसाद ने पान पात्र 'मरिचकलस' 'अपक' 'सुराही' तथा 'प्यासा' का उल्लेख किया है। स्पष्ट है कि सुराही धौर प्यासा अत्यन्त प्राचुरिक प्रयोग है। जिस काल के नाटक प्रसाद ने लिखे हैं उस काल में सुरा पात्र सुराही धौर प्यासा दोनों अत्यन्त प्रचलित थे। ये दोनों ही सुगन्धकारी नाम हैं। अपक का उल्लेख कालिदास ने भी किया है^६। अमरकोश में पान-पात्र को 'अपक' कहा गया है^७। मरिच पात्र को प्रसाद ने एक स्थान पर 'स्वर्ण कलस'^८ भी कहा है। स्पष्ट है कि राजपरवारों के बीच को अर्पित करने के लिए ही स्वर्ण कलस का उल्लेख हुआ है।

प्रसाद के विचार से ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में सुरापान की कोई रोक टोक न थी। प्रसाद के सम्राट उनके सामंत अमुचर बस्तु तथा उनकी नारियाँ यहाँ तक कि बौद्ध भिक्षु भी सुरापान करते हैं। राजा राममुत्त 'मरिच' में

(१) अमरकोश २।१०।३१ ४०

(२) इण्डिया इन कालिदास उपाम्याय पृ० ११७ (३) पूर्वमेख ५२

(४) फोर्गट्टा हिस्टोरिकारम थिकोरम मूलर बीम्पुम ४ पृ० ४२१

(५) सिगास बातक २।१४२ (६) अजात १।४२ अ अश्र० ३।१६६

(७) अश्र० १।६३ अ अश्र० २।३६ (८) अश्र० १।६३

(९) अश्र० २।६४ (१०) अश्र० २।३७

(११) इण्डिया इन कालिदास उपाम्याय पृ० ११६ (१२) अमरकोश २।१०।४१

(१३) अश्र० २।३८

रहता है। सरकार को 'स्पृष्टि के लिए एक प्यासा मरिचा ही चाहिए।' २
सबसे सामान्य को अठरियाँ सानुरोह पात्र' कराती है। ३ राज्यबर्द्धन के अनुभव
सब यथविज्ञान से। ४ विकटबोध को समता है कि सुरमा के
पात्र प्रया हापों से बाहर नकवी मरिचा भी मीठी और हल्की ही जाती

है। ५ घासको में रामगण्य सरकार राज्यबर्द्धन उदयन और
देवदुष्ट से सभी सहायन करत है। यह टीक है कि घडिकाया से ही घासक सहायन
करते हैं को बिमासी प्रवृत्ति के हैं या क्रूर हैं परन्तु हमसे यह ता स्पष्ट ही है कि
राजमघासों से लेकर साधारण अनुभवा तक को सुरापात्र करने की स्वतन्त्रता थी।

प्रसाद की नारियाँ भी कुमकर सुरापात्र कराती हैं। उदयन की रानी मायन्धी
को दाही नबीना पात्र कराती है। ६ बेदमा इयामा का पात्र करना तो स्वामाविक ही
है। ७ सुवासिनी 'न सवास सक्रम' तक पीती है। ८ बितासी मुक्क और मुक्किया
बसंतोत्सव में माग के रहे हैं 'परन्तु मरिचा का तो तुम्हारे सपात्र म घमात्र है फिर
घामो' कीया' ? ९ यहाँ इन घम्यां द्वारा इस ओर स्पष्ट संकेत किया गया है कि
उरसकों में सभी पुरुष साय-साय पात्र भी करते थे।

प्रसाद में सैनिकों के सुरापात्र करने की ओर भी संकेत किया है। राजनाय
महिरोग्यत घबस्या में कादम्ब कामिनी और कचन का उल्लेख करता है। १ बौद्ध
कापालिक प्रवृत्तबुद्धि शर्बनाय क साय मरिचा पात्र करता है और उससे महादेवी
देवकी की हत्या का दुष्कर्म करवाने के लिये सुरापात्र का आशय लेता है। ११ यहाँ
मरिचा के लिए 'सात मरिचा' १२ का प्रयोग केवल कविमान है। मरिचा का रंग सदा
ही सात नहीं होता।

मरिचापात्र के विषय में सम्भवतः और भी दो एक विशेष प्रयाजा की धार
प्रसाद का ध्यान गया है। घडिकाया स्पृष्टों पर बहो पुरुष और नारियाँ साय हो
बहो नारियाँ ही पात्र पात्र भरकर पुरुषों को देती है। उदयन को मायन्धी मरिचा
पिसाती है। समुद्रगण्य इयामा से तीव्र मादक पिमा देने की धाकाला करता है।
राजम को जाने के मूस्य के रूप में एक पात्र कादम्ब चाहिये और सुवासिनी उषे
पात्र भरकर देती है। नन्द को भी सुवासिनी पात्र भर कर देती है। सरकार के

(१) प्रब०	१११३	(२) बही	२१३७		
(३) बही	२१३६	(४) राज्यधी	११६१		
(५) बही	३१२६				
(६) घमात्र०	११८२	(७) घमात्र	२१६७	(८) बग	११६४
(९) बही	११६३	(१) स्फड	२१६२		
(११) बही	२१२८	(१२) बही	२१६०		

लिये कोमा स्वर्ण के कसघ में मखिरा सेकर घाटी है। सामन्तों को नर्तकियाँ पान कराती है। समस्तदेवी के संकेत पर बिजया ही पुष्पुन्त को मखिरा पिसाती है। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि जब कोई ऐसी प्रथा रही होगी जिसकी घोर प्रशंसा ने संकेत किया है तथापि यह सम्भव है कि वासियों एक नर्तकियों की स्थिति नहीं बरत पत्नी, प्रियतमा और मित्र की स्थिति में गारी ही इस कार्य को करने में अधिक शोभनीय मगती हो।

वासिवास के नाटका में मखिरापान का उल्लेख करते हुए उपाध्याय लिखते हैं^१। सुरापान अत्यन्त प्रचलित जान पड़ता है कामिबास में सुरापान के उल्लेख प्रचुर संख्या में हुए हैं। पुरुष ही नहीं बरत स्त्रियाँ भी सुरापान करती थीं। कुमार सम्भव में विष सुरापान करते हैं और अपनी पत्नी को भी कराते हैं। यह कहा जा सकता है कि विवाहित दम्पति नित्यप्रति सुरापान करते थे। अग्निहोत्र शास्त्रमूल में नागरिक घोर उसके सैनिक सुरापान करते हैं। रघुवंश के अनुष्ठार रघु की समस्त सेना 'नारिकेलासब' पीती है सम्भव है मिलते हैं 'यह सम्भव है कि वासिय सुरापान करते थे पर बाह्यण नहीं 'कुछ भी हो कवि के उल्लेखों से इस घासव की स्पष्ट और पर्याप्त साक्षी मिल जाती है कि साधारण स्थितियों में भी सुरापान का अत्यन्त ही प्रचलन रहा होगा।^२

सुरापान के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि भिक्षु भी सुरापान किया करते थे।^३ बिष्णुमण्डल के बिहार में मैत्री नामक एक ठाँविक भिक्षु के पास मद्य पाई गई थी। उसका कहना था कि वह उक्त मद्य को बौद्ध योगियों के लिये लाया है।^४

मसाल ने घापानक शब्द का प्रयोग भी किया है। 'घापानक' 'घीर' घापानकों का समारोह' दोनों ही पीने वालों के व्यवस्थित समूह' का अर्थ देते हैं। धार्मिक पाषाणक सम्प्रदाय में विष उच्छ की कारकैत पार्टीज हुआ करती है घापानक कुछ-कुछ इसी तरह का अर्थ देता है। 'समापानकम्'^५ का उल्लेख अस्त

(१) इण्डिया इन कामिबास उपाध्याय पृ० ११६

(२) इण्डिया इन कामिबास उपाध्याय पृ० ११८

(३) लाइफ ऑफ जूनिमान बीजपूर १ पृ० २१५

(४) इण्डियन पब्लिस इन बि अंड ऑफ सीरो पृ० ११ १२

बेलिये वास हिस्ट्री ऑफ इण्डिया १ डिप्लोमोफी

(५) स्कंद १।१८ (६) बहो ३।१४

(७) कामसूत्र सूत्र २६ पृ० ४१

अर्थात् में कामगुन में भी प्रचलित है । अमरकोष में घासानक के लिये घासगोष्ठी^१ सर्वप्रथम अर्थ का समर्थन करता है ।

इस बातको में भोजन के विविध पदार्थों का उल्लेख नहीं के बराबर ही हुआ है, जो दो एक नाम धारण हैं वे भी किसी विशेष अर्थ को ध्यान में रखकर नहीं माने गये हैं । अस्मत्क के द्वारा वैवाहिक उपहारों के सम्बन्ध में मनु^२

भोजन का उल्लेख हुआ है पर यह विद्वयक के पेट स्वभाव के प्रदर्शन मात्र के लिये है सम्भवतः बहु अर्थ ही है । ऐसा ही एक उल्लेख स्कन्दपुराण में भी मिलता है परन्तु वह भी महत्वहीन सा ही है । स्कन्दपुराण में 'गुण पर के मांस'^३ का और 'रोटियों'^४ का उल्लेख दोनों निरर्थक से हैं क्योंकि दोनों का अर्थ अर्थ की दृष्टि से किसी भोजन वस्तु की ओर संकेत करना नहीं है । 'अमरकोष'^५ में मूष पर लिखा हुआ मांस भी आद्य पदार्थों में विभाया गया है और इसके ठीक प्रकार 'भूलाहृत 'मर्तम'^६ और मूष्य माने गये हैं । रोटियों के स्थान पर कोई अन्य प्राचीन शब्द उपयुक्त होता ।

भोजन के सम्बन्ध में 'मिता'^७ का उल्लेख कुछ महत्व रखता है । यन्त्रिका सारिपुत्र और घासानक के पद प्रस्तावी है । दोनों बँटते हैं और भोजन करते हैं ।^८ यह परम्परा से जमी धारण हुई भारतीय भाषण-व्यक्ति का विवरण है और बौद्ध धर्म का यह एक पद था ।^९ यही भोजन के लिए स्वर्णपात्र का उल्लेख भी प्रमाण कर गये हैं ।

बाणवापन के अर्थ में उपस्थितों के भोजन पत्र मूल का उल्लेख हुआ है ।^{१०} इसी प्रकार बंदिपों के भोजन का संकेत भी बाणवस्य और अकटार के कवनों में हुआ है ।^{११} बाणवस्य एक मुट्ठी जने और अकटार गानी से मिले सत्त का उल्लेख करते हैं । परन्तु वे भी निष्कृत आहार के प्रतीकमात्र मात्र पकते हैं ।

पाकघाता^{१२} और पान्घघाता^{१३} के नाम भी प्रसाद के दो पदों में मिले हैं । पान्घघाता का प्रतीकारणक उल्लेख घलका द्वारा हुआ है और पाकघाता का नाम विद्वयक केवा है ।

(१) अमरकोष	२११०१४२		
(२) घासानक	११११५	(३) स्कंद०	५११२६
(४) मही०	५१११६	(५) अमरकोष	२१५५
(६) अमरकोष	२१८१	(७) मही०	२१८१८४
(८) एरिकाई चौक वि बुद्धिस्ट रिलिजन : इटलिय ५ ४०			
(९) अमर०	११११		
(१०) मही	११८७		
(११) स्कंद०	१११८		
(१२) अमर०	११११		

‘द्रुवस्वामिनी’ में ‘पान धीर ‘पान के दिव्ये’^१ का उल्लेख हुआ है। इसमें स्पष्ट नहीं कि पान भारतीय संस्कृति में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझा जाता रहा है। वेदार्थों के पूजन में भी इसके बिना काम नहीं चलता। वात्स्यायन कहते हैं कि प्रातःकाल नाभरिक पान खाकर अपने कार्य में लग जाय।^२ काशियस ने तांबूलवस्त्री का उल्लेख किया है।^३ पत्नीट के अनुसार कुमारमुष्ट प्रथम के काल में प्रसाधन धीर सर्व्व बुद्धि के लिए तांबूल अर्बन्ध किया जाता था।^४ बाण ने कारद्वरी में ‘तांबूल करंके बाहिनी का प्रयोग कई बार किया है।^५ किन्तु इन सभी स्त्रियों पर तांबूल का ही प्रयोग हुआ है पान का नहीं। इसका कारण यही कहा जा सकता है कि प्रसाध वेद्य (बनासी पान) कास से प्रभावित होकर ही तांबूल घण्ट को घूसकर मुष्टकाल में भी ‘पान अम्ब का प्रयोग कर बैठे हैं। यही बात ‘पान के दिव्ये के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है, क्योंकि प्राचीन कास में ‘तांबूल करंके और ‘पटलापार’ जैसे घण्टों का प्रयोग हुआ है। अस्तुतः तांबूल की अर्था हमें ‘प्रसाधन के अन्तर्गत करनी चाहिए भी किन्तु अर्बन्ध के उपरांत ही तांबूल प्रसाधक होता है अतः इसकी अर्था इसी अर्थ में करना उपयुक्त प्रतीत होता है।

- (१) द्रुव० १।१६२०
 (२) इहीत मुञ्जवास ताम्बूल कादायमुत्तिष्ठेत् कामयुजसूत्र
 (३) रघुवंश १।१५४
 (४) कौर्पस इ तिक्कणनसु इ डिक्कारम ११८ पृ ८२
 (५) कारद्वरी वाज ।

वस्त्र और आभूषण

प्रसाद के नाटक में वस्त्र और आभूषणों के नाम भी बहुत कम पाए हैं। कहीं-कहीं प्रसाद ने ऐसे संकेत प्रदाय किए हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि प्राचीन काल की नारी भी बेप-भूषा और बनावट-सजावट से अपने पतियों को प्रसन्न करती थी।^१ सहुज सुन्दर रूप होते हुए भी बेप भूषा को घोर विनोद ध्यान रखा जाता था।^२ विभिन्न व्यवहारों के उपयुक्त बेप-भूषा की घोर प्रसाद ने कोई संकेत नहीं किया है केवल एक ही स्थानों पर 'बर बभ्रु के बेप'^३ का उल्लेख पाया गया है। वैवाहिक वस्त्र प्राचीन काल में भी विनोद प्रकार के होते थे। मालविका विवाह के समय विरोध प्रकार के वस्त्राभूषणों से सुसज्जित की गई थी। वह घिर पर एक छोटी सी मोड़नी जोड़े हुए थी और नीचे से ऊपर तक घनक प्रकार के बल्लकारों से सजी हुई थी।^४ उपस्थाय के समुत्तार बर बभ्रु दोनों के वैवाहिक वस्त्र रंघम के होते थे और उनमें हंस कड़े हुए शोथ थे।^५ हर्षचरित में शम्भुदी के विवाह के व्यवहार पर कई प्रकार के वैवाहिक वस्त्रों का विस्तृत विवरण मिलता है।^६ भारत में न जाने किस काल से नारी के चलन-चरों को महत्त्व प्रदान किया गया है। वात्स्यायन का कहना है कि एकान्त में भी पत्नी पति के पास चलकर रहित होकर न रहे।

'नायकस्य च न विमुक्ता मूपर्य विजने संबर्धने विच्छेते'^७

इस पर टिप्पणी करते हुए चण्डाकर लिखत हैं कि यह विचारधारा वैदिक युग में भी प्रचलित थी।^८

प्रसाद के नाटकों में जिन वस्त्रों का उल्लेख मिलता है वे हैं : उत्तरीय कंबुक उम्पलीय परिच्छद, कमरबंद।

मनुस्मृतिमें स्वर्णयुक्त उत्तरीय में मख घस दियाए हुए जाती है।^९ इस कथन से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उत्तरीय पर्याप्त लम्बा जोड़ा होता था और उससे समस्त घस टके जा सकते थे। उत्तरीय स्वर्णयुक्त उत्तरीय होता उसके कमरव्यक्त सीन्धुर्य और उसकी बहुमुखता को नूतित करता है। प्राचीनकाल में सामान्यतः दो वस्त्र काम में लाए जात थे। कटि के नीचे के अंगों के ढकने के लिए जो वस्त्र उपयोग में आता था उस

- (१) प्रकाश ११४२ (२) बही ११४२ (३) प्रकाश ११२० अन् ११५६
 (४) मालविका ५१७ (५) इदिया इन कासिदास उपाध्याय प १६६
 (६) हर्षचरित भाग्य समक उपाध्याय (७) प्रथमसूत्र वात्स्यायन मूत्र १३ पु० २२५
 (८) ए० ए० ए० ए० ए० ए० पु० १७४ (९) प्रकाश ११५६

प्रबोधसूत्र (बाटी) कहते थे धीरे कटि के ऊपरी भाग के लिए उत्तरीय कर्म में सावा बाटा न । काशिकास के कुकुममुग्ग^१ में एक उत्तरीय है^२ जिसे प्राथमिक 'धाम' का पूर्वज कह सकते हैं ।^३ बाण ने भी उत्तरीय का उल्लेख किया है । कुकुमराग कोमलोत्तरीयान्तरिषोत्तमांशे^४ इन्होंने पता चमता है कि उत्तरीय-धे उत्तमान (धिर) भी बका जाता था । हर्षचरित की शंकर टीका में 'प्राञ्छरनमुत्तरीयम्' से यह भी पता चमता है कि शरीर के ऊपरी भाग में कंचुकादि बस्त्रों के ऊपर भी इसे घोडा जाता था ।^५ उत्तरीय मुख्य धीरे स्त्री बोलों ही चारण करते थे । प्रसाद ने केवल स्त्रियों के ही उत्तरीय का उल्लेख किया है । लिखा था धामस्यकटा पङ्के पर उत्तरीय से प्रबुद्ध का भी काय केटी थी ।^६ बौद्ध ग्रन्थों में इसे उत्तरासय^७ कहा गया है । वात्स्यायन ने नागरिक के दो परिवान किया है बाधस् (बस्त्र) तथा उत्तरीय । तत्र महाहर्षण उत्तरीयसे जान पड़ता है कि यह उत्तरीय महर्षि(मुन्यवान) एवं बंधपुत्र होता था ।^८

बाधार राजकुमारी धमका धपने कंचुक मे मानचित्र लिपा लेती है ।^९ इन्होंने ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ कंचुक नाम का कोई बस्त्र पहनती थी । सास्टोर महारण्युर्ष्यक्षियों के बस्त्रों में 'कंचुक का उल्लेख करते हैं ।^{१०} कंचुक का उल्लेख मातृती के बस्त्रों के बखन में बाण ने किया है । हर्षचरित से जान पड़ता है कि मातृती ने एक प्रत्यन्त निर्मल स्वेत केजुस से भी पहना कंचुक पहिन रहा था जिससे उसका छाग शरीर प्राञ्छरित था । उसके भीतर उसका बखन चर्चित शरीर स्पष्ट दिखाई पड़ता था ।^{११} बौद्ध ग्रन्थों से जान पड़ता है कि स्त्रियाँ भीर मुख्य बोलों कंचुक पहिनते थे । धायद यह कुरता बीसा कोई बस्त्र रहा हो लेकिन यह कहना कठिन है कि यह बस्त्र धागे से बुना रहता था । प्रचवा बंध ।^{१२} बाण के बाधार पर ही सास्टोर लिखते हैं कि यह धागे से बांधा जाता था ।^{१३} सम्भवत कंचुक का रूप धावरस की बसबस्त्री के समान रहा हो । पुर्यों के कंचुक का उल्लेख भी बाण ने किया है ।^{१४} संस्कृत नाटकों की कंचुकी

(१) इ खिया इन काशिकास उपाध्याय पृ १११

(२) बाहफ इन दि हुप्ता एव सास्टोर पृ ३१५

(३) हर्षचरित बाण सप्तम उच्छ्वास पृ० २०७

(४) बही : शंकर टीका : पृ २०७ (५) शाकुतल ५।५१३

(६) महाभाग ८।१३ ४५ (७) कामसूत्र २१ पु० २६१ (८) बन्ध १।८२

(९) बाहफ इन दि हुप्ता एव सास्टोर पृ० ४०७

(१०) हर्षचरित बाण प्रथम उच्छ्वास

(११) प्राचीन भारतीय बेष सूया डा० मोतीचन्द्र पृ० ३७

(१२) बाहफ इन दि हुप्ता एव सास्टोर पृ० १११

(१३) हर्षचरित सप्तम उच्छ्वास पृ० २०६

सम्बन्ध-कीर्तनीय का नामकरण ही 'कंचुक' के आकार पर किया गया है। कंचुकी एक लम्बा कंचुक बालक किया करता था।

समाप्तसङ्ग में 'उष्णीय का पून बनाया'^१ जैसे वाक्य में उष्णीय शब्द पयड़ी के लिए प्रयुक्त हुआ है। प्राचीन काल में पुरुष कभी-कभी त्रिजवी भी त्रि पर उष्णीय बाँधती थीं। उष्णीय के सम्बन्ध में डा० मोट्रीबन्द लिखते हैं।
 उष्णीय उष्णीय शब्द का पयड़ी के अर्थ में प्रयोग सबसे पहिले घबबिद (१५ २ १) और पचबिद ब्राह्मण (१७-१ १४) के द्वारा प्रकरण में आया है। ऐतरेय (९ १) और शतपथ (३ १ २ ३) में इस शब्द का प्रयोग रामायण और ब्रह्मों के बहगणों के सम्बन्ध में आया है। रामायण काजरेय (घ० ब० ५ ३ ५ २३) और रामायण (नेत्रायली संहिता ४ ४ ३) के अन्तर्गत पर उष्णीय बालक करते थे। इत्यामी साधनामी की हृदयव से उष्णीय पहनती थी (घ० डा० ५ ३-५ २३) बालों का उष्णीय छेद होता था। सुषों के अनुसार उष्णीय म कई फेंटे होने से और बहु जरा एक तरफ झुका कर बाँधा जाता था (कात्यायन भी सु २१ ४) यज्ञ के अन्तर्गत पर उष्णीय के दोना छोर धागे भाकर उल्टी तर्हों में जोड़ दिए जाते थे (घ० ब्रा० ३ ५ २०) लक्षणा है कि रामायण का उष्णीय के छोर बाहर लटके रहते थे।^२ कासांतर में उष्णीय का व्यवहार सम्भवतः पुरुषों तक ही सी मर रह गया होना क्योंकि वास्कार और पथुरा रीतियों की मूर्तियाँ में त्रिजवी त्रि पर पून मामाए अथवा पुरना मामाए पहनो हुई दिखाई देती है।^३

मासिका बहसुप्त का परिच्छेद पहन कर 'उष्णी की रीया पर लटी थी।'^४ यही परिच्छेद से अथवा के समय पहने जान बाक बरतों का शब्द होगा है। घांटे महोदय ने परिच्छेद के कई अर्थों में एक अर्थ परिधान का अर्थ भी परिच्छेद दिया है।^५ इस अर्थ के पाठ्य के लिए इन्होंने किराना कुंभीय (७ ४०) का उद्धरण दिया है। पहनने पाय्य वस्त्रों के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग नहीं के बराबर हुआ है।

मस्तों के कवरबंद के अर्थ में^६ वा उल्लेख समाप्तसङ्ग में हुआ है। वस्तु सत्री घटी तद्र कटि के लिए कमा सप्य का प्रयोग नहीं हुआ था। इसमें उल्लेख नहीं

(१) समाप्त १।५६

(२) प्राचीन भारतीय वेदशास्त्र डा० मोट्रीबन्द पृ० १६.२०

(३) काश्यप इन दि कृता एव सांठोर पृ० १६५ १६

(४) बह० ४।२११

(५) संस्कृत अथ भी कोय घांटे पृ० ५६३

(६) समाप्त २।७५

कि मोटा कटिबंध बाँधते थे। इसका प्रमाण बीड़ व नों में हुईया जो कमरबंद चकटा है। बीड़काम में सिद्ध भिक्षुभियों के 'कायबंध' का उल्लेख मिलता है जो सामान्य कटिबंध से भिन्न होता था। 'ये कायबंध साधी धीर फैरदार बनाबट की पहियों से बनते थे। इन कायबंधों के किनारे फटने के डर से उलट कर सी दिए जाते थे। कायबंधों में हुक भी सयते थे। पर ये बीड़ (हुक) सदा हठी तक धीर डोरे से बने होते थे मित्र धर्मों के लिए सोने चाँदी के बोक बनिच थे।'

धामूपण

प्रसाद के पाठको में बहुत ही कम धामूपणों का उल्लेख हुआ है और वे भारत में धार भी प्रायः उसी रूप में व्यवहृत होते हैं। ऐसा एक ही धामूपण प्रसाद ने नहीं गिनाया है जो केवल प्राचीन काल में ही व्यवहार में आया जाता होया। धामूपणों में प्रसाद ने केवल कु डल व गूठी ककच और सुपुर का उल्लेख किया है।

प्रसाद ने मोतियों के 'कु डल' का उल्लेख किया है। बनिच लोग इन कु डल को अपने कानों में पहिना करते थे।^१ कालिदास के समय में भी विभिन्न प्रकार के धामूपणों से कानों को सजाया जाता था जिन्हें 'कर्णसूषण कर्ण पूर' 'कु डल' तथा 'मणिकु डल' कहा गया।^२ हर्षचरित के 'धिय कचा एव सुमगा कर्णलक्षरा भावस्वर कु डलादि'^३ में भी कु डल का उल्लेख हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन भारत में कु डलों का प्रयोग मुख्य धीर स्त्री दोनों ही किया करते थे। अचता के भिन्न विधों में पुरुष धीर स्त्री दोनों ही कु डल धारण किए हुए हैं।

'अजातशत्रु' में बंदी अजातशत्रु बाजिरा को अपनी स गूठी पहिनाता है।^४ अश्वमेध में सामान्य राजत को स गूठीय मुत्रा' से मन्त्र के द्वारा से उच्च के प्रति सन्देश का बीजारोपण किया जाता है।^५ अतिक्रान्त धामूपण स गूठी म मकु तथा से निरा होते समय कुर्बत ने स्वनामांकित को स गूठी पहिनाई थी उसके लिए 'स दुसीमक' धीर 'मुत्रा'^६ का प्रयोग हुआ है। स गूठी प्राचीन काल में नागरिक का अत्यन्त प्रचलित धामूपण रहा है।

- (१) प्राचीन भारतीय वेद सूत्रा (मोठीबंध) पृ० ३५ ३६
- (२) राम्यधी २।३७
- (३) रघु० ७।२७ अशु० ३।११ अशु० २।२०
- (४) हर्षचरित बाण दुनीय अशुवाच १५
- (५) अजात० ३।११३ अशु० १।५३
- (६) अशु० ३।११३ (७) साकुतल ६।११३
- (८) साकुतल ६।११२

वास्तव्यायन ने अपने कामधूम में इसका यथार्थ उल्लेख किया है ।^१ 'ललित विस्तर के अनेक 'पठ सङ्ग्रह' मुख्यमंथनीकम्^२ वं वा गुणीयन की महत्ता की सूचना भी मिलती है । 'अ गुणीयन मुद्रा और उसके राजनीतिक उपयोग की चर्चा 'मुद्राराक्षस' में हुई है । अम्यन भी वागांकित अ गुणीयन'वा मुद्रा के राजकार्यों में विशेष व्यवहारों पर काम में लाए जाने के दृष्टान्त मिलते हैं ।^३

संकरण
संकरण 'अजातशत्रु में वासवी अपना कर्पण उतार कर वान दे लेती है ।' यह कथन हावों में पहिना जाने वाला अत्यन्त प्राचीन ग्राम्यपद्य है और भाग में इसका उल्लेख किया है ।^४ अकर टीका में इसका एक और पर्याय 'प्रतिभर' भी मिलता है ।^५

सुपुर
सुपुर 'स्फंरयुक्त' में 'शूररों की अंकार' के द्वारा विमास और कसाधों की घोर संकेत किया गया है । शूरर और अमना अंकार का विषय बर्लेन प्राचीनसाहित्य में मिलता है । 'हर्षचरित' में राज्यवर्द्धन के समय के समय नृत्य करती हुई अंकारियों के मंगिनपुरों की अंकार से विचारें सुचरित हो उठी थी । ये नौसम मणि में अने हूप सुकर सुपुर वरों में पहिने जाते थे ।^६

'शु गार मञ्जुपा' और 'रत्न मञ्जुपा' के उल्लेख भी प्रवाद न किए हैं । दोनों नामों से स्पष्ट है कि इन दोनों प्रकारियों में से प्रथम तो शु गार सामग्री शु गार और रखने के लिए काम में जाती थी और दूसरी रत्नों को सुरक्षित रखने के लिए । प्राचीन काल में इस प्रकार की वेदियाँ शु गार इत्यादि के लिए अमहार में लाई जाती थीं । बौद्ध वातकों में इस प्रकार की 'मञ्जुपा' का उल्लेख हुआ है । वास्तव्यायन ने इसी प्रकार की एक अन्य वेदिका 'सीदन्नि पुटिका' का उल्लेख किया है ।^७ उक्त वेदी में मिल-जिन्न प्रकार के इन रत्न करते थे । इतिहास में भी 'शु गार वेदिका'^८ का उल्लेख किया है 'रत्न मञ्जुपा'^९ का बर्लेन भी 'माल-विद्वानिनिधि' में हुआ है ।

(१) कामधूम सूत्र २० पृ० २६२
(२) ललित विस्तर लेखन १३।१४२
(३) वाङ्मय १।१२ मालविका ४ पृ० ३२२ :
(४) अजात १।४० (५) हर्षचरित चतुर्थ अण्डहास पृ० १४३
(६) संकरण प्रतिभर' अंकार टीका पृ० १४३
(७) स्फंर ३।६४ (८) हर्षचरित चतुर्थ पृ० १३०
(९) अजात १।१० स्फंर ३।६४ (११) कामधूम सूत्र ७ पृ० ४४
(१२) निचनावेदीय १।१२१ (१३) मालविका ३।७३

पुष्पामरणों का उल्लेख प्रसाद के नाटकों में कई स्थलों पर हुआ है। 'मासविका चन्द्रसुप्त' को पुष्पमासा पहिनाती है। 'सुरमा मासिक' 'राजाजी विलास मासिका' मस्त्रिका का बाल व्यवसाय बताने तथा अन्य प्रकार की 'पुष्प रचना' के कार्यों में अत्यन्त पटु है। 'देवसुप्त' उसकी सिखा 'कुम्भरता' को प्रशंसा भी करता है। 'पुष्प और पुष्प मासिकों' से शृंगार करनेकी पुष्पामरण प्रथा अत्यन्त प्राचीन है और साहित्य में इसका पर्याप्त उल्लेख मिलता है। नाटकग्रन्थों में पुष्पमासाओं एवं पुष्पामरणों का उल्लेख मिलता है। 'कागों में कनिकार और कमल के फूल सिपाई हो नहीं पुका भी नटकावा करते थे। कालिदास ने 'घापीक (बूढ़े) में कम्पा के फूलों की माला अपेटन' या 'कुरबक के फूल खोलने या प्रच्छकों में प्रच्छक के फूल खुलने' और 'नक्षत्र मस्त्रिका की मासा भारत करने की वर्षा की है।' वास्तव्यत ने 'नामरिक के बाघ हूह में अन्य सामग्रियों के साथ मास्यम् तथा 'कुरंटक मासाद' का भी उल्लेख किया है। 'पुष्परचना अनेक प्रकार से की जाती थी। जिनमें से 'वेष्टित वितत छाटप' प्रचिमत आकृतिवत सुत्तक मबरी और 'स्तवक' से छाट प्रकार प्रभात थे। 'अपने निर्मम श्वेत वर्णों और भीनी भीनी सुगन्ध के कारण मस्त्रिका का पुष्प 'पुष्परचना के लिए प्रतिक्राम में लाया जाता था।'

में बही है जो अत्यन्त पटाक्रम कुमारसुप्त से बालों को सुगन्धित करने के लिए 'नक्षत्र' जलजाती थी। 'अत्यन्त' के इन वाक्य द्वारा प्रसाद ने स्थलों के शृंगार की एक प्राचीन पद्धति का निर्वण किया है। केशों को अम्य प्रसादन अन्तर अम्य इत्यादि से सुगन्धित किए जाने का उल्लेख कालिदास में भी हुआ है। 'जल उल्लेखों से ज्ञात होता है कि लोग के उपरान्त बालों को सुगन्धित एवं उन्हें सुगन्धित करने के लिए स्थलों विभिन्न प्रकार की नक्षों के धूप का उपयोग करती थी। पति पत्नी या मित्र प्रियतमा के बीच स्नेहातिरेक

- | | |
|---------------------------------------|------------------------------------|
| (१) अम्य० | (२) राजमयी १११ |
| (३) अम्य० ११३, ११४ ११७ | (४) बही ११३ ११४ |
| (५) बही ११४ | (६) मुत्तिस जातक २१०।१४३ |
| (७) अम्यसंहार ६३ | (८) बही ६६ |
| (९) हर्षचरित | (१०) कामसूत्र सूत्र ५।१२ सू० ४३ ५५ |
| (११) प्राचीन भारत का कला-विलास पृ० ७१ | |
| (१२) कामसूत्र सूत्र० ७ | |
| (१३) स्कन्द० ४।१०१ | |
| (१४) अम्य० २।२९, कुमारसंभव ७।१४ | |

घबरा श्रीदा विलास की भावना की अभिव्यक्ति धकुठना के प्रति कुप्युण्ड के इस कथन में हुई है :

कि धीठकै कमविनोदिभिउर्र'वाठै'
 सञ्जामयामि नलिनीदल तालवृत्तम
 अके निधाय अरमदुत पद्मताम्री
 सवाहयामि करमोद बभामुत्त ते^१

यद्यप्य देवी की उपयुक्त गर्वोक्ति में कुमारगुण्ड के श्रीदा विलास का ही संकेत है किसी विशेष प्रथा का नहीं । विलास सामग्री में कामाचरु के गंध धूम^२ की भी बर्णना स्कंद गुण्ड में हुई है । प्राचीन काल में कामाचरु की गूँध से केप ही सुगन्धित नहीं किए जाते थे बल्कि सित्रवाँ अपने वस्त्रों को भी इनसे सुगन्धित करती थी ।^३



(१) साङ्गुत्तम अंक ३

(२) स्कंद ०

(३) भाइठ इन गुण्डा एव साष्टीर १० ४१४

उत्सव

प्राचीन भारत के सामाजिक जीवन में उत्सवों का बड़ा महत्व था। संस्कृत साहित्य में उत्सव सम्बन्धी बिचने भी उल्लेख हुए हैं। उनसे ज्ञात होता है कि प्रायः के भारतीय समाज में प्राचीन उत्सवों का एक खीका या ध्वजिष्ट स्वरूप रह गया है। सब ऐसा न था। लोक उत्साह तथा ध्यान के रस में डूबकरियाँ सेते हुए अपने उत्सवों को मनाया करते थे। सिद्धुधों से लेकर बृह तक इन उत्सवों के रंग में रंग जाया करते थे।

प्रसाद न साधारणतया नागरिकों के मनोविनोद के लिए समय-समय पर किए जाने वाले उत्सवों की समा को समाज^१ कहा है। ऋतु सम्बन्धी उत्सव प्राचीन भारत की अपनी विशेषता रहे हैं और होखी बीषावली इत्यादि के रूप में प्रायः भी प्रचलित है। प्रसाद ने 'बसन्तोत्सव'^२ तथा 'मन्तोत्सव'^३ के उल्लेख किए हैं। उक्त उत्सवों में केवल बसन्तोत्सव के स्वरूप की थोड़ी सी ध्वजिष्ट भाँकी प्रसाद ने ध्वजय की है। अन्य उत्सवों का नामोल्लेख मात्र कर दिया है। अन्य साधारण उत्सवों में से वैवाहिक महोत्सव^४ विषयोत्सव^५ तथा बुधवारमासिकोत्सव^६ जैसे उत्सवों का उल्लेख भी प्रसाद ने किया है। किन्तु इनके सम्बन्ध में इन बातों से अधिक नहीं जाना जा सकता।

प्रसाद के मतों से केवल इतना ज्ञात होता है कि कभी-कभी 'सरस्वती मंदिर में समाज' होते थे। इन समाजों के सम्बन्ध में वास्त्यावन लिखते हैं 'ये समाज प्रत्येक पक्ष ध्वजवा मास में निश्चित दिनि को सरस्वती के मन्दिर में हुआ करते थे।^७ जिस प्रकार धार्मिक काम में संगीत और नृत्य संबन्धियाँ या अन्य कलाकार नगरों के केन्द्र स्थान ध्वजवा 'रंगशाला' इत्यादि में जनता में अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं उसी प्रकार प्राचीन काम में सरस्वती मंदिर में विद्या की देवी के चरणों में इस प्रकार के

- | | | | |
|-------------|--|---------|------------|
| (१) चन्द्र० | १७३ | | |
| (२) बड़ी | १६३ | | |
| (३) राज्यधी | ११६ | | |
| (४) ध्वजवा | ३१३५ | चन्द्र० | ३१३५ |
| (५) चन्द्र | ४२० | २०१ | प्रब० २१३८ |
| (६) ध्वजवा० | १२६ | | |
| (७) | 'पक्षस्य मासस्य वा प्रजाते इति सरस्वत्या नवने निकुणतानां नित्यं समाज | | |

प्रदर्शन हुआ करते थे। यहाँ का यह कर्तव्य होता था कि वे घाम्भुकों के स्वागत उत्कार का उचित प्रबन्ध करें। इस प्रकार के उत्सवों का सम्बन्ध केवल सरस्वती पूजन से ही नहीं था बल्कि अन्य देवी देवताओं के सम्मान में भी इस तरह के उत्सवों का आयोजन किया जाता था। नियमित रूप से जो समाज होते थे उनमें मायिक तथा सरस्वती पूजन के लिए नियुक्त गतक शबक इत्यादि भी प्रादुर्भूत थे।^१

राजकुमारी कल्याणी समाज के सम्बन्ध में जानने के लिए संभव है प्रचार इसके यह प्रकट करना चाहते हों कि प्राचीन काल में सरस्वती मंदिर में होने वाले समाजों में स्त्रियाँ भी अत्यंत कमिश्न रखती थीं। कल्याणी का बीमा की भजना इस ओर जोड़ा सा संकेत अवश्य करता है। कामसूत्र से यह भी ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में मायिक के प्राकल्पण और प्रेम की सख्यता समाजों की शक्ति में उसकी सख्यता पर निर्भर करती थी।^२ इसके यह स्वाभाविक ज्ञान पड़ता है कि चाहे स्त्रियाँ उच्च समाजों में स्वतंत्र रूप से भाग लेंगी भी नहीं हों परन्तु उनके लिए, विशेषकर कुमारियों के लिए उन समाजों का प्राकल्पन प्रबन्ध होता होगा। मोठी कलाप्रिया शक्ति शक्ति युगा^३ इन शब्दों से वास्तविक यह स्पष्ट कर देते हैं कि शक्ति मोठी में तो भाग लेती ही थी चाहे समाज में अनिर्वाह रूप से न लेंगी हों। कामसूत्र से यह भी ज्ञात होता है कि सरस्वती मंदिर अथवा अन्य मंदिरों में होने वाले समाजों के साथ ही कनी-कनी उन देवी देवताओं की यात्रा भी निकाली जाती थी। संभव है कि उन यात्राओं में स्त्री-पुरुष दोनों भाग लेते हों क्योंकि देवता सम्बन्धी वाता अथवा अज्ञान शीघ्र के अर्थों पर मायिक अनी प्रियतमाओं से मिल

(१) सुपीतवारवाचनम् प्रोक्षणकमेयां दत्त ।

द्वितीये इति तन्म्य पूजा नियतं अनेरन् ।

तथा यथावत्तमेवां दर्शनमुरसर्गो वा ।

व्यसनोत्सवेषु श्रियां परस्परस्वीकृताव्यता ।

घाम्भुनी च इतत्तमपामानां पूजनमभ्यपपत्तिद्यैति गणवन्दी ।

एतेन तं तं देवता विशेषपुद्गल्य संभावित स्थितयोर्विधिषु चटा व्याख्याता

कामसूत्र, सूत्र २८.३१

(२) 'ए मायिक वाज एतदेवैव दुवी निबन्धन इत स्वीकृत्य प्रीत मोस्तीव एव द्वि मन्वैत इत कोटीय एव लव विदेवैव इत मो स्पीत मेजर प्रीत द्वि पावर दु पावन इत वि स्वीकृत्य एव फेल्निविटीव इतमूर्ध्व दि मोस्तीव एव तथा ।

स्टडीव इत कामसूत्र अकास्तर ६० १६०

(३) कामसूत्र सूत्र ११

सकते थे।' पर 'सरस्वती मंदिर' के सम्बन्ध में राजकुमारी का उत्सुकता प्रकट करना अव्यक्त स्वाभाविक है।

चन्द्रगुप्त नाटक में प्रसाद ने 'बसंतोत्सव' का जो स्वल्प रखा है वह इस प्रकार है "कुसुमपुर के नागरिक मन्व सभ्राट के विभास-कानन में बसंतोत्सव मनाते थे। उक्त उत्सव में राजा भी भाग लिया करता था और उत्सव के बीच राजा अपने को उन लोगों का सङ्घर मात्र समझता था। कुम्भों में चपक बसंतोत्सव और मन्दिर कक्ष रखे होते थे और सभी नागरिक नगरी में सम्मिलित हो जाते थे। यहाँ तक कि स्त्रियाँ तक अपने को न समझ पाती थी। जगती धाँसों में काम का मुकुमार संकेत और धनुष्य की लाली ही प्रमोद के प्रधान लक्षण समझे जाते थे। उत्सव के साथ संगीत और देवयानी जैसे प्रसिद्ध भाष्यार्थों पर अभिनय होते थे। बसंतोत्सव की राती जैसे अस्त्रैर्लो से यह भी ज्ञात होता है कि किसी कला कुशल और सुन्दर सुवासिनी" जैसी स्त्रियों में से किसी को उक्त उत्सव में राजा का पत्र दिया जाता था और उसकी आज्ञा सबको पारोचार्थ होती थी। इस प्रकार आभोद-प्रसोद से उत्सव सम्पूर्ण होता था।"^१

संस्कृत साहित्य के आचार पर आचार्य द्विवेदी बसन्त के कई उत्सव मानते हैं। इनमें सुवर्णतक और महानोत्सव का बर्तन सबसे अधिक जाता है। सुवर्णतक और महानोत्सव को उन्होंने भलग-भलग उत्सव नहीं माना है। बसंतोत्सव के ही अन्तर्गत महानोत्सव सुवर्णतक बहूतक और अथोक के बूजों के पास बिहार शास्त्री मूल बलन इत्यादि कई उत्सव आ जाते थे जिनमें वह महानोत्सव प्रधान होता था।^२ राज्यधी में प्रसाद ने महानोत्सव का उत्सव किया है। परन्तु किसी प्रकार के विवरण के अभाव में इस सम्बन्ध में उनके स्वयं के दृष्टिकोण का अनुमान नहीं किया जा सकता। "रत्नावली" में महानोत्सव का विवरण इस प्रकार मिलता है "बोपहर के बाद सारा नगर महानोत्सव के दिन पुरवासियों की करतल ध्वनि मधुर संगीत और मृदय के मधुर शोष से सुश्रित हो उठता था। नगर के लोग पीरबन मरमत हो जाते थे। राजा अपने ढंग से प्रसाद की सबसे ऊपर वाली चम्पूनामा में बैठकर नगर वासियों के आभोद प्रमोद को देखा करता था। नगर की कमिनियाँ मधुपान करके ऐसी मतवाली हो जाती थी कि सामने जो कोई पुरुष पड़ जाता उस पर पिचकारी (शुभक) के जल की बीछार करने लगती थी। बड़े-बड़े रास्तों के चौपट्टे मरदान नामक बाड़े के गम्भीर रोय और बर्कटी की ध्वनि से सम्भामन हो उठते थे। डेर

(१) साधु (समापन) (देवताभिगमने यात्रायामुधानत्रीवायां असावतरणे विवाहे ब्रह्मसन्तोत्सवेपु अम्पेत्पाठे श्रीरविभ्रमे जनपदस्य पचारोहणं प्रेक्षायापारेपु तेय च कार्येभिर्वेत्त वाभ्रवीणा) कामसूत्र-सूत्र ४१

(२) बंर १/१३ १४ १५, १६ १७ (३) प्राचीन भारत का कला-चिन्ता ५११०

का डेर सुपबिध धबीर बसों विद्याओं में इतना जड़ता रहता था कि विद्याएँ रचीन हो उठती थीं। जब नगरवासियों का साम्राज्य पूरे जड़ता पर घा जाता तो नगरी के घारे राजपथ केघर मिथित धबीर से इस प्रकार नर उठते थे मार्गों तथा की छाया पड़ रही हो। लोगों के धीर पर दोमायमान प्रकृति और शिर पर पहिने हुए घयोके के आस फुल इस आस-पीसे सीखने की धीर भी बड़ा देते थे। ऐसा जान पड़ता था कि नगरी के सभी लोग मुनहरे रंग में डूबे दिने पर हो।^१ प्रचार के 'बसंतोत्सव' के वर्णन करने पर समानता केवल इतनी ही है कि दोनों में मनुष्यता से मतवाली नगर कामनिर्वा की बर्षा है। मकमुति के मासही मासक^२ से मकन मही तसब का जो विवरण प्राप्त होता है वह प्रसाद क बसंतोत्सव के विवरण से पत्किचिद् मिलता है। प्रचार का 'विनायकान्त मकमुति का मकन'दान है। दोनों में नगर के सभी पुरुष उत्सव मनाने के लिए एकत्र हुए हैं। धीर बोना ये ही नृत्य गीत का उल्लेख है धीर कोई समानता इन दोनों विवरणों में नहीं है। मकनोत्सव कर्षण पूजा के विहित होया है। पर प्रसाद में इस कर्षण पूजा की बर्षा भी नहीं हुई है। मकमुति में पूस कुनने माना बनाने धीर धबीर कुछ से भीड़ा करने का उल्लेख है पर प्रसाद में नहीं। प्रचार के 'अभिनेय धीर 'कुम्भों' में मधिरापान का उल्लेख किया है जो मकमुति में नहीं मिलता।

बसंत में उत्सवों का एक नम था चलता रहता था धीर सुबसंतक के दिन कामदेव की पहली पूजा होती थी। उस पुम की विनायिनियाँ कठ में कुबसय की माला धीर कानों में दुग्प्रान्य धारमबरी धारण करके घाम को बधमय कर देती थीं।^३ बसंतोत्सव के अवसर पर ही नाटक भी बैसे बाठे थे। कामिदास का 'मास विनायिनिय' धीर धीहर्ष की 'रत्नावली'^४ दोनों बसंतोत्सव पर ही बैसे गये थे। इसी आधार पर प्रसाद ने संभवतः बसंतोत्सव के अवसर पर 'कच देवयानी के धमि नय का संकेत किया है। नाटक ब्रम्हा में कातिक उत्सव की प्रत्यक्ष बर्षा हुई है। जयमें पुसक और विद्या केघर से रमे हुए रेघनी दुग्गल बरप कर नृत्य किया करते थे।^५ प्रचार के इस प्रकार के सामूहिक नृत्य एक उत्सव समायोजन का स्वरूप ही अपने नाटक के बसंतोत्सव में ग्रहण किया प्रतीय होता है।

(१) प्राचीन भारत का कला-विनायक पृ १०० (२) मासहीमासक (मकमुति) धाडू १

(३) प्राचीन भारत का कला-विनायक पृ १११

(४) 'अभिहितोत्सव विवर्णरिपवा कामिदास प्रविध बन्धु मासविनायिनिय नाम नाटकविनायकबसंतोत्सव प्रदोक्त्यमिति ।

मासविका धाडू १ ३ १

(५) रत्नावली धीहर्ष : धाडू १ पृ. १

(६) नाटक २/१२१ २/१४७ २/११८

इस प्रकार प्रसार का बसंतोत्सव बहुत कुछ प्रशंसा में उतकी निम्न कल्पना है। और एक बिलासी राजा का ध्यानक मात्र प्रतीत होता है। बसंतोत्सव का सम्मान भी इसमें नहीं मिला।

बसंतोत्सव की राजी १ का विवरण प्रसार ने संभव है बीड़ प्रशंसा से लिया है। उक्त प्रशंसा में कलाविद बनपद कल्याणी के सम्मान की प्रशंसा नहीं हुई है।^२ बिलासी की बनपद कल्याणी धम्मपासी के सम्मान को देखते हुए^३ सुवासिनी को 'बसंतोत्सव की राजी कहना अनुचित नहीं प्रतीत होता। प्रसार ने ठीक इसी प्रकार का उल्लेख अपनी कहानी 'सामयती' में भी किया है।

'भ्रमराक्षत्र के विवाहोत्सव में नाचरिक्त द्रुम-द्रुम कर मगर में धामोकमालाओं का ध्यानक लेते हुए बताया गए हैं। इससे धार्मिक विवाहोत्सव के सम्मान में प्रसार के नाटकों से कुछ भी ज्ञात नहीं होता। यहाँ पर यह ध्यान देने की बात है कि धामोकमाला का प्राचीन विवाहोत्सव में कोई विशेष महत्व नहीं प्रतीत होता। काश्मिर ने पार्वती के विवाह^४ का और बाण ने राज्यभी के विवाह^५ का उदाहरण विस्तृत विवरण दिया है पर धामोकमाला का कहीं उल्लेख नहीं। इसके परिचित मूल गीत को प्राचीन विवाहोत्सव की महत्वपूर्ण विशेषता मानी जाती थी उद्यक्त उपयुक्त विवाहोत्सव में नाम भी नहीं। विवाहोत्सव के धर्म्य विवरणों को छोड़कर केवल धामोकमाला को महत्व देने में प्रसार अपने द्रुम से प्रभावित हुए प्रतीत होते हैं।

विजयोत्सव का उल्लेख दो स्थानों पर हुआ है। एक तो चन्द्रगुप्त मौर्य की इतिहास विषय के उपसंहार में^६ और दूसरे ब्रह्मस्वामिनी नाटक में चक्रराज की विजय के उपसंहार में।^७ प्रथम तो मनाया ही नहीं गया था। पर उक्त कोई विवरण संभव नहीं था। हमारे में 'सोमे की भाँक वाली नाच'^८ तथा 'विजयोत्सव' व्याप्तियाँ भर भर कर पीने का^९ उल्लेखनाम है। प्राचीन भारत में विजयोत्सव का स्वरूप नाटकों से लेकर काश्मिर के प्रशंसा पत्र में मिलता है। काश्मिर के रघुनाथ के अनुसार जब राम लका को भीतकर धर्मोपमा

(१) पत्र

(२) भाग २/१२८

(३) शीर्षिका २/१ पृ १२७

(४) कुमारसम

(५) हर्षचरित

(६) पत्र ४/२०

(७) पत्र २/३८

(८) वही २/३८

(९) वही २/३९

सोटे तो उनके स्वामय के लिए अयोध्या इन्द्रबागों से सुसज्जित की गई थी। वहाँ के स्वयं प्रासादों के भद्रोर्धों से पीर बनियाएँ खींचें बरसा रही थी। पीर नगर दुखी धारि बागों के बीच से दूधर हो रहा था।^१ प्राचीन काल के इस विजयोत्सव में हर्ष पीर उत्साह का कलात्मक स्वरूप दिखावाई पड़ता है। 'सोने की मंजु बामी नाच तथा 'प्याके भर-भर कर पीन पित्ताने' में शुभम कालीन मारुत की ज्ञाना स्पष्ट होक पड़ती है।

सौवर्ण्यामिषिक को भी प्रसाद में उत्सव कहा है पर उत्सव के स्वरूप का का पता उनका नाटक से नहीं चल पाता। नाटकों में अमिषिकोत्सव का सुन्दर स्वरूप मिलता है।^२



क्रीड़ा विनोद

उपरोक्त नाटकों में प्रसार ने प्राचीन काल के क्रीड़ा विनोदों की एक शृंखला का प्रयास किया है, परन्तु विवरण किसी एक का भी विस्तार से नहीं मिलता।

मुग्धा का उत्कृष्ट प्रायः सभी नाटकों में मिलता है। मुग्धा और क्षत्रियकुमारों का प्रयोग्वाच्य सम्बन्ध ज्ञान पड़ता है। छोटे-छोटे राजकुमार भी चिकारी सेवकों साथ जाते थे। अजातशत्रु में मुग्धा सिकाने वाले चिकारी का 'मुग्धक' नाम सार्वज्ञिक पड़ता है। पामिनी ने मुग्धा को 'मुग्ध मोक्ष' कहा है और कौटिल्य ने 'मुग्धक' का अर्थ 'अभिजात'। अभिजात ने पामिनी को धातु तल में चिकिया पकड़ना बताया है। पामिनी के अर्थ में मनुष्यी मुग्ध शब्द का प्रयोग किया है।

पद्मवर्मा संवीर और नृत्य की अपेक्षा 'मुग्धा' को क्षत्रियों के लिए उपयुक्त विनोद बतलाता है। 'अभिसन्धिकारिक' प्रकरण में कौटिल्य अन्वय अर्थ के माय-साव मुग्धा को भी राजाओं का एक अवसन मानते हैं परन्तु दूत, संगीत नृत्य और मुरापान की अपेक्षा इसे अल्प्य समझते हैं। इसी प्रसंग में उन्होंने मुग्धा को अनेक नाम बताये हैं।

प्रसार ने अष्टगुण नाटक की मूमिका में देगास्वनीय इष्ट अष्टगुण की पहे यात्रा का वर्णन इस प्रकार किया है "मुग्धा खेले के समय कुबेर पर खाना निकलती। उस समय अष्टगुण स्त्रीगण से विद्य रहता था जो अनुप बाण पार्श्व लिए उसके शरीर की रक्षा करती थी। उस समय राजमार्ग छोटी से विद्य रहता था और कोई भी उसके भीतर नहीं जाने पाता था"। नाटक में अष्टगुण के घड़े यात्रा का प्रसंग नहीं नहीं आया किन्तु लम्बे की घड़े यात्रा का उत्कृष्ट मीर काल भी इसी प्रसिद्ध घड़े यात्रा की धोर संकेत करता है। प्रायः राजा लोग मुग्ध प्रसंग में पकड़े हुए हिंस्र पशुओं के दाबकों को पकड़ पालतू बना लेते थे और उनसे चिकार में सहामता लेते थे। अष्टगुण नाटक में इस प्रकार के एक 'घड़े की पीठ' का उल्लेख हुआ है। कभी कभी चिकड़े में अष्ट विभक्त (पीठा) भी राजकुमारों के मनोविनोद का साधन बनता था। उनके चिकड़ों में कभी-कभी मुग्धाचक्र को छोड़

(१) अजातशत्रु २/७०

(२) क्रीड़ा १/२४

(३) इन्द्रिया ऐव तोल तु पामिनि वासुदेवविरचन अष्टगुण पृ १९०

(४) अर्थशास्त्र १३ ३/५२ उदयवीर शास्त्री पृ ५६५

(५) अभिजात धातु तल पृ ५६ (६) राजवर्षी १/१५

(७) अर्थशास्त्र ५/३/५० (८) अष्टगुण : मूमिका पृ ४२

(९) अष्टगुण १/७५

दिया जाता था और राजकुमार इस कुर खेस का शास्त्र लेते थे^१ । इलाहीप्रसार विधेयी में राजपरिवारियों के मनोविमोह के साधनों में राजसभा के बाहर राजा के विद्यालय प्रसार के एक पारस में धर्म वस्तुओं का विवरण देते हुए सिद्ध, व्याघ्र आदि हिम जन्तुओं के पित्रों का उल्लेख किया है^२ । मुख्यतः कहते हैं कि मृगया में इस ठो इतने ही हैं पर हिमा शेष उनसे कहीं अधिक है^३ । बौद्ध धर्म के प्रभाव से घनातघनु में भी मृगया के इस हिमा शेष की ओर संकेत किया गया है । मुगलशासक को पकड़ते ही मुख्यक एक को मृगी की कदमावरी हटित विवसित कर देती है^४ । बासबी मृगया को धातुरवक मानते हुए भी विवक धीर मुगलशासक की कुर कीड़ा के ठाण घनातघनु की निर्दयता सिखाने का विरोध करती है^५ ।

प्रसार ने नाटकों में मनोविमोह का दूसरा साधन बनविहार है । बासी के संकीर्ण बदन में छिपकर रहते-रहते बिल बबरा नाम के कारख मय बहलाने के निमित्त श्यामा धीर ईर्लेट घाबस्ती के एक उपवन में बसे बाटे बनविहार है^६ । वहाँ सरीठ के घाब कीर्त्य धीर मुरा में संकेत को घमिसूत कर लिया है^७ । इस प्रकार के मनोविमोह को प्रसार ने 'बनविहार ही कहा है^८ । बनविहार के उपरुक्त उद्यान केवल राजकीय ही नहीं होते व सामुहिक और सार्वजनिक भी होते थे जिनमें पुरय धीर सिखा बिरोक टोक या सकती थी । राजकुमारों कस्याभी घपबी शक्तियों के साथ जिस उद्यान में जाती है वहाँ 'रवेण सिखाए है अघोक की मनोहर छाया है धीर मुग्धर माबबी लता फेल गही है । ऐसी इतै मरी लताए म्हागज के उद्यान में भी नहीं है^९ । बग्भसूत नाटक में तो प्रसार ने जय संकेत द्वारा 'मयच सम्राट के विनास काल में विनागी बुवक धीर बुवडिबों के विहार का स्पष्ट उल्लेख किया है^{१०} । उपरुक्त विवरण से ज्ञात होता है कि प्रसार का 'बनविहार वास्त्यायन की उद्यान दाया वा समामार्भक है । कामसूत्र के अनुसार ये उपवन नगर के बाहर होते थे । प्रातःकाल ही सवे सजाए नापरिकों की टोली बोंडों पर बड़ कर बलिकाओं धीर मृत्यों को घाब लेकर नगर से चल पडती थी । बड़ी इतर-उतर भ्रमण करने भोजन का प्रबंध करने मुमें बटेर बबबा मेंडे को लड़ाई घबवा अन्य बधिकर खेस खेलने में उनका सारा दिन व्यतीत हो जाता

(१) घनात०	१।२३	(२) प्राचीन भारत का कला-विनास वृ०	११५
(३) घकौठि	१।३३	(४) घनात०	१।२३
(५) बही	१।२४	(६) बही	२।१९
(७) बही	२।१७	(८) बही	२।१८
(९) बग्भ०	१।७३	(१०) बही	१।६३

बा' १ । इन यात्राओं में संभवतः स्त्रियाँ भी अपनी अपनी टोसियों में जाती थीं । वात्स्यायन के अनुसार ये उद्यान यात्राएँ अपने प्रेमियों से मिलने और प्रेम प्रदर्शित करने के लिये उपयुक्त अवसर प्रदान करती थीं । इनका रूप बहुत कुछ प्राभुलिक पिकनिक पार्टी से मिलता जुलता है । प्रसाद के बगिचों में सम्मिलित और स्वतंत्र टोसियों का उल्लेख हुआ है । साथ ही प्रेमी युग के साथ मिलन संबंधी सुरापान गणिका की भी चर्चा यथास्थान हुई है ।^५

एक विशिष्ट प्रकार के मनोविमोद के साधन का उल्लेख द्रुवस्वामिनी में हुआ है । विद्वत् वेद्यमूपा तथा उनके हाथ-माथ माथि सदा ही हास्य के साधन होते पाये हैं । पर ऐसा प्रतीत होता है कि विकसांग भी लोगों के कुबड़े बीने हास्य के साधन हुआ करते थे । रामगुप्त के अष्ट-पुर में कुबड़े और हिजाड़े बीने और हिजाड़े मनोरंजन के उद्देश्य से रखे गये थे ।^६ वे अपनी कुबड़ता और व्यंग्यारमक एवं विनोदात्मक उचितमो से लोग का मन बहलाते थे । रामगुप्त के 'उद्यमकर हंसने' और 'ताली पीटकर हमने' से इस बात की पुष्टि होती है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी प्राचीन काल में कुबड़े बीने लपुसक गू गे और बहरे आरमियों को यात्राओं और दरबारियों के मनोरंजन का साधन धिष्ठ किया है ।^७ 'मासविक्रान्ति' में एक कुबड़ा अष्टपुर का सेवक है^८ और 'हर्षचरित' में भी रामगुप्ती गू गे कुबड़े और बहरे सेवकों से चिरी हुई दिखाई गई है ।^९ इस प्रकार बहुत प्राचीन काल से अष्टपुर की रक्षा और मनोरंजन दोनों उद्देश्यों से विकसांग और आर्यपण्डित पुरुष काम में लागे जाते रहे हैं ।

अष्टपुर नाटक में स्वांग भरने का उल्लेख प्रसाद ने किया है ।^{१०} 'सिहरण और अलका नट और नटी बनते हैं, अष्टपुर सेवक बनता है और आशुनय ब्रह्मचारी और वे सब परबतेवर की सेना के सामने अपना यह स्वांग दिखाते हैं । स्वांग स्वांग भरने की यह क्रीड़ा अत्यन्त प्राचीन रही होगी । प्रो० पंत ने स्वांग को आहार्य अभिनय (किसी भी वेद्य दृषा के

(१) स्टडीज इन दि कामसूत्र हायनअम्र पृ० १९८

(२) वही पृ० १९९

(३) अम्र १९९ (४) अजात ३१९९

(५) द्रुवस्वामिनी १२० (६) वही १२

(७) वही १२२ (८) प्राचीन भारत में कला-विज्ञान पृ० ११५

(९) मासविक्रान्ति पृ० ५८९

(१०) हर्षचरित नाम अष्टम उच्छ्वास पृ० २४२

(११) अम्र २१९७

प्रयुक्तियों) के अन्तर्गत माना है।^१ 'बाँधों में घाब भी होती घाब के घबघरों पर 'स्वाय' के रूप में नाट्यकला का यह पूर्व रूप वर्तमान है।" इस कथन में बाँधों में घबब यह बतलाता है कि 'स्वाय' जनसाधारण के मनोरंजन का साधन था। उपरोक्त उदाहरण में भी आरक्षण धारि साधारण सैनिकों के मनोरंजन के लिए स्वाय रखते हैं। शास्त्रायण ने स्वाय भरना एक कला माना है और इनको समित्त योग कहा है।^२ वेध बांधी धारि के परिवर्तन से दुसरो को हलना या बनेक रूप धारण करना ही समित्त योग है किन्तु उक्त प्रसंग में 'स्वाय रत्ने' का प्रयोग उद्देश्य मुत्तपर बनकर काय धारण है। सैनिकों का मनोरंजन तो योग है।

ऊपर विवरण और प्रसङ्ग के तट नटी का स्वाय भरने की चर्चा हमने की है। यहाँ तट नटी का प्रयोग भय के अनुसार धमिलता और धमिलेनी रूप में त होकर रस्सी और तलवार पर नाचते हुए धारीरिक वैचित्र्य के तट नटी केम विज्ञाकर लोगो को रिम्भाने बाँधों से है। इन्हें घाब भी नट' ही कहा जाता है। प्रसाद ने सपेरे का वेध धारण किये हुए चन्द्रयुज के सिधे भी 'तट' उधर का प्रयोग किया है।^३ दन्तशास्त्र के विज्ञानाधिकारिक प्रकरण में नटों के वेधो का उल्लेख हुआ है। यहाँ 'तट' के सिधे कुशीनय धन्व का प्रयोग हुआ है। नटों के वेध हविजार बजाता धाम विर धारि के वेध वेधना विज्ञ-विज्ञ प्रकार के बाँधे बजाता धारि य। इनके वेधों में घोड़े रूप हाथी तथा गन्ना प्रकार के धरलकार भी काम में लाये जाते थे।^४

ऊपर चन्द्रयुज के वेधो बने को चर्चा हुई है। यह सैनिकों के पास जाकर धिपेरी की धी बघटा करता है और विज्ञो के धीय बोलकर सैनिकों से नाय धरान की प्रायना करता है। ये सपेरे कुटिल नियमरो को भी मनीषिक के सपेरे धाले से बस में कर लिया करते थे।^५ घाब भी भारत के बाँधों और नपरो में सपेरे बुफले-फिरले बीन बजाते हुए लोगो का मनोरंजन करते रीक पड़ते हैं। निरक्षर ही मनोरंजन का यह स्वल्प धरलत शशीन र्था होना। इसीलिए मुद्राधधर में विधासधर के भी धारो की पिठारी केकर

(१) भारतीय नाट्य-शास्त्र और संवर्धन पृ० ३

(२) प्राचीन भारत में कला-विज्ञान पृ० ११५

(३) पृ० २/१२०

(४) कुशीनय शास्त्रायणवर्धन नर्मदेयु । आतोधावि वेधायन्तस्तिष्ठे मुद्रधरध विज्ञानशास्त्र । धर्धनस्य १/२१/३३ ३४ टीका उधयवीर शास्त्रा पृ ८६

(५) पृ० २/११६

साँपों के खेल दिखाने वाले धीरे धीरे नामक घपेरे का उल्लेख किया है।^१ तसखिला विद्यापीठ के शिक्षाक्रम में ब्रह्म कौशलों के साथ साँप को बध में करने की विद्या और बाहु के खेल का भी नाम थाया है।^२

अभी-कभी हमने तसखिला में बाहु के खेल या इन्द्रजास का उल्लेख किया है। अश्वपुत्र नाटक में इस प्रकार बाहु के खेल या इन्द्रजास की बर्णना हुई है।^३

अश्वपुत्र ऐश्वर्यात्मिक का बेष बाण करता है। इन्द्रजातियों का बाहु के खेल या बेष सोवों का ध्यान आकर्षित करने के लिए साधारण बेष से इन्द्रजास बिरुद्ध कुछ घटपटा सा रहता होगा और अपने अश्वपुत्र सेलों से बतता का मनोरंजन करते होंगे। प्रसाद से इस प्रकार के खेलों की विस्तृत जानकारी नहीं थी है। हमारी प्रसाद विवेकी ने 'रत्नामेय तंत्र और इन्द्रजास तंत्र संग्रह' के आधार पर इन्द्रजास के सम्बन्ध में विस्तार से विवेचन किया है।^४ मनुष्य को पशु या पक्षी बना देना हिन्दु बन्धुओं की स्तम्भित एक निरुपेक्ष करता जाग बाँध देना घाब लमने का भ्रम पैदा करना मारण मोहल उष्वाटन बसीकरण प्रादि करता ये सब इन्द्रजास के अत्यन्त घाते हैं। घाब की माध्य में हम इन सब प्राक्पर्यवेक इरयो को 'बाहु' कह सकते हैं।

भारतवर्ष के इन्द्रजास की अश्वपुत्र प्राक्पर्यवेक सीमा की सारे संसार में प्रसिद्ध थी। और इन इन्द्रजातियों को राजदरबारों में उच्च स्थान प्राप्त था। 'रत्नामेय' से ज्ञात होता है कि इन्द्र और शबर इस विद्या के आचार्य हैं। राजाओं के मनोरंजन के सम्बन्ध आचार्य ने भी इन्द्रजातियों का उल्लेख किया है।^५

प्रसाद के खेल दो नाटकों में बिरुद्ध थाया है। अजातशत्रु में अर्जुन^६ और स्कन्दगुप्त में मुद्गम।^७ दोनों खेलों पर बिरुद्ध का उद्देश्य राजाघों का मनोरंजन करना है। संस्कृति के प्राचीन नाटकों में बीच बीच में हँसाने के बिरुद्ध और लिए बिरुद्धों का प्रयोग हुआ है। बिरुद्ध राजा का मित्र और हस्तोड सजाहकारी होने के साथ-साथ अपनी बेष-भूषा किया-कसाय माया प्रादि से राजा का मनोरंजन करता था। बुध्मन्त का बिरुद्ध असाका मित्र सजाहकार और सहायक भी है।^८ कामसूत्र में भी नागरिक के मित्र

(१) मुहाराजम विद्यासदत अक २

(२) इन्धियन ऐन्थ्रोपलोजी इन एन्डिण्ट ऐन्ड केंटर टारन्स के : ५ १४२

(३) अक १/१२७ व १३१

(४) प्राचीन भारत में कला-विज्ञान पृ० १३३

(५) मुलनीति १ म २०

(६) अजात०

(७) स्कंद०

(८) अमिहान साहु वलमु

रूप में विद्युरूप की भी गणना की गई है। स्वयंसेवक नाटक में विद्युरूप मूर्त्त के प्रतिरिक्त एक और बिंबेरी हूँमोड़ बाबुसेन धारण है। इस प्रकार के चरित्रों का ही स्वच्छन्दता थी।^१

मनोरंजन का एक और साधन है गर्तकियाँ। प्रसाद के प्रायः सभी नाटकों में समय-समय पर नृत्य की योजना की गई है। मनोरंजन के लिए राजपर्विरो^२ में पितृविर में^३ विजयसमारोहों^४ में तथा अन्य उपयुक्त स्थलों से मत्तही गर्तकियों के मत्तों की योजना की गई है। स्वयंसेवक में 'पारसीक गर्तकियाँ बुवाई गई हैं।' संभवतः सौरभ प्रथमा कला-कुशासता के कारण उनका विशेष मान रखा हो। पारसीक दासियाँ जो बय करके प्रारण माने की प्रथा का उत्प्रेक्ष्य 'पेरिप्लम साफ एरीस्मिथ' (एक दानी ईस्वी) में मिलता है। गुप्तकालीन एवं सम्राट भी पूर्व के बौद्ध साहित्य के अनुसार भी राजकुमार पौतम के मनोविमोह के लिए पारसी या पारसोही दासियाँ लिखन की गई थी।^५ मनोरंजन के लिए गर्तकियों का उत्प्रेक्ष्य प्रायः सभी प्राचीन यकों में हुआ है। कांतशास ने रघुबंध में गर्तकियों को बिलासिनी के रूप में उपस्थिति किया है।^६

गणिका का उत्प्रेक्ष्य एकमात्र अजातशत्रु में हुआ है। मारुधी ने स्वयं अपने को 'निस्संख यमिवा' कहा है।^७ प्रसाद ने इसके हीन नाम रखे हैं। चाणकी दण्डना और चाणक्यनी। मारुधी के रूप में वह उदयन की दानी थी। मारुधी रूपवती होने के कारण ही उदयन का तीसरा विवाह इस बरिष्ठ क्रम्या से हुआ था। दण्डना के रूप में उनके सौरभ की प्रसंसा सुनकर समुद्रगण्ट उसके पाक उसके रूप की स्वास्ता में पतंग बनने को जाता है।^८ वह सुन्दरियों की महारानी है और मह दानियों की ताड़ ही रानी भी है।^९ यहाँ यमिवा के सौरभ और वैभव दोनों की ओर संकेत

- (१) 'योगनाम्बर पुस्तकारिका प्रसापन व्यापारा' लालक बुधकूटमेव मुद्रानि तास्ताएव कला-बीड़ा पीठमई विट विनुपकादम्या व्यापारा विवाशपाव नामसूत्र
- (२) स्कं० १/११
- (३) अजा० १/४३
- (४) स्कं० ४/१११
- (५) मू० २/१८ ३६
- (६) स्कं० १/१५
- (७) प्राचीन भारतीय वेदमूया मोतीचन्द्र पृ० १४१
- (८) अरी ५० १,४१
- (९) रघुबंध १६/१७ १५ १६
- (१०) अजात० १/१३६
- (११) अजात० २/७७
- (१२) अजात० २/७८
- (१३) अजात० २/७९ ७

है। बड़े-बड़े राजगुरु और श्री ७० व्यास के चरण छूकर अपने को भक्त समझने हैं। इन की कमी नहीं मान का कुछ ठिकाना नहीं।^१ ब्रह्मनायक तक उसकी धामा मानना अपना कर भव समझता है।^२ वह सगीत में निपुण है।^३ उसका कंठ सुरीला है।^४ रंग सङ्केत में यान और नृत्य मिलकर प्रसाद में गणिका की नृत्य निपुणता की धोर भी निर्देश दिया है।^५ व्यास में जो उन्केलनीय विशेषताएँ हैं। वह सिष्टाचार परामर्श है और यह सिष्टता उसके समस्त वार्तालाप में अभिव्यक्त होती है।^६ बूसरे या वेद ब्रह्मने की कृपा में विशेष निपुण है।^७ मय्य के 'गण्य प्राणिनि समुद्रवत् का वेद्य ब्रह्मकर इस प्रकार काया पकट कर बैठी है कि काशी का दण्डनायक उसे पहचान ही नहीं पाता और शंभु के स्वान पर उस घूमि पर चढ़ा देता है।

ऊपर प्रसाद के नाटक के आधार पर हमने गणिका का जो चित्र खींचा है वह भारत की धार्मिक और ऐतिहासिक परम्परा से प्राप्त गणिका के स्वरूप से मिलता जुलता है। प्राचीन भारत में गणिका का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। कामसूत्र से ज्ञात होता है कि सभी देशवासियों को गणिका की उपाधि से विभूषित नहीं किया जाता था। जो वेस्वाय सर्वस्य पठ सुन्दरी होने के साथ-साथ चौदह कलाओं में पारंगत विदुषी एवं धीम क्त यन्त्रित होती थी उसी को 'गणिका की उपाधि' प्रदान की जाती थी और राजा एवं गुणोन्नतों के द्वारा उसका सदा सम्मान किया जाता था और वह सबके लिये सुख और भावार्थ की वस्तु बन जाती थी।^८ गणिका सबको घपनी बना घादि से घानत्रित करती थी इसलिए यणसंघों में उसका अत्यन्त मान था।^९ आर्यवत् के रथ में गणिका अघंतसेना बैठी हुई है यह जानकर राजकर्मचारी सम्मान से उस रथ को बेलोक टोक जाने देते हैं।^{१०} आर्यवत् ऐसा महान् व्यक्त भी

(१) वही	२/७८	(२) वही	२/७८
(३) वही	२ ७९	(४) वही	२/७९
(५) वही	२/७८		
(६) वही	२/८१		

(७) धामिरम्बुच्छिता वेद्यया धीम क्त यन्त्रितता। समने गणिका शब्द स्वानं च जनसंसदि। पूजिता सा सदा राजा गुणवर्द्धिमवच सस्तुता।
प्राचीनीयाधमिगद्या च सधूमता च भायते। कामसूत्र सू० २०/२१
पूजिता गणिकासर्वैर्नमिनी को न पूजयेत्। कामसूत्र सू० ५२

(८) 'पूजिता गणिकासर्वैर्नमिनी को न पूजयेत्' कामसूत्र सू० ५२

(९) मुद्रकटिक

अपनी स्नेहमयी पत्नी के प्रति धार और प्रेम होते हुए भी पब्लिका वसंतसेना से परिचय की आकांक्षा करता है।^१ इससे उस काल में पब्लिका की सम्माननीय स्थिति का अनुमान सहज ही समया जा सकता है। राजा बुद्धीमन सिद्धार्थ के लिए शास्त्रविधि का जानने वाली कुसुम गणिका के समान बहू की कामना करने है।^२ कथासरित्सागर की मदनमाला^३ और देवचरिता^४ के विवरणों से भी उनकी उत्कालीन उच्च सामाजिक स्थिति का पता चलता है। बौद्ध धर्मों में गणिका को नगर घोमिनी कहा है। परमावती ऐसी ही एक नगर घोमिनी थी जिसको एक मछ उच्छ्विनी से राजबहू की सोमा वस्त्रा के लिए काया बा।^५ दीपनिकायों^६ के विवरण से भी सिद्धवि वसंतन की गणिका सम्प्रदायी के वैभव ऐश्वर्य एवं धार-सम्मान का एक स्पष्ट चित्र सामने आ जाता है। वह बड़े बड़े ठाठ-जाट के साथ भगवान बुद्ध को निर्मोहित करने जाती है। उसके पास इतना विद्याल ऐश्वर्य है कि वह भगवान को संबोधित निमन्त्रण दे सकती है। धार किसी भी मूक्य पर ममस्त सिद्धविगणतन के प्रमुख के बसे भी पर इस 'महान भाव' को छोड़ने को तयार नहीं। भगवान को निमन्त्रण देने का धार सिद्धवि युवकों के रथों के 'धुरो से धुरा' टकराने वाली इस गणिका की धाररक्षीय स्थिति के सम्बन्ध में अग्नेह का स्वाद नहीं रह जाता। भारत के अनुसार वहाँ तक गणिका के रूप गुण धीम धीमन माधुर्यगति संपन्नो धार बहुप्यप्यथा कलानिष्ठा' होने का प्रश्न है वह कामसुख से मिलता कुसठा है। पर भारत उसके प्रियवासिन्धु विनय और सिद्धाचार को विदोष महत्त्व देते हैं।^७

उपयुक्त विवरण के धार पर वह कहा जा सकता है कि प्राचीन काल में गणिका की सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति का वैसा चित्र उपलब्ध होता है प्रसार में उसका बहुत घटों में वैसा ही चित्र उपलब्ध किया है। वह रूप गुण धीम धीमन माधुर्य सम्पन्न है वह वैभव धामी है वह संगीत मूर्त धारार्थ वेद्यपरिवर्तन) यदि कसाधों में निपुण है वह धारार्थ मधुरमायिनी एवं विनयधीम है। धार बड़े-बड़े राजपुत्र धार कोट्यी उच्चका सम्मान करते हैं। उचित धिष्णाचार एक धार तो कसा का घ ब है धार दूधरी धार स्वभाव का। पब्लिका में दोनों धवेक्षित है धार प्रसार के संकेत दोनों धार स्पष्ट है। उक्त पब्लिका में बुद्धि को स्थिरता धार भाषण की

(१) धारवत् १/१३

(२) धाम्ने विदित कुसुमा गणिका पथैव ललितविस्तर १२/१३६

(३) कथासरित्सागर ३८

(४) वही २४

(५) विष्णुधर धीक पाथी प्रीपर वेम्स १० २८५.८९

(६) दीपनिकाय १२७

(७) नाट्यशास्त्र भारत २१/१० १२

मबूरता दोनों उरलम्ब हैं। समुद्ररत्न के घाटे ही अपने प्रिय शैलेन्द्र के स्थान पर उसको मेक बेने का योजना-कीर्तक किठनी शीघ्रता से उनके मस्तिष्क में खींच बाठा है।^१ परन्तु गणिका के सास्त्रज्ञान के सम्बन्ध में प्रसाद मौन है।

इतना सब होते हुए भी प्रसाद की कविपद्म उत्कर्षा से ऐसा प्रतीत होता है कि वे गणिका की जन्म एवं सम्माननीय स्थिति को पूर्णतया नहीं जिना पाये हैं। डाकू शैलेन्द्र तक क्यामा बीड़ी गणिकार्यों को डाकूओं से भी भयानक समझता है।^२ और उसके लिए पामरी^३ 'मगिन'^४ जैसे शब्दों का प्रयोग करता है। क्यामा अपने को स्वयं बार बिलाजिनी^५ कहती है। यहाँ पर यह नहीं कहा जा सकता कि प्रसाद के सामने प्राचीन गणिका का कोई निश्चित रूप नहीं होया। अशावधनु की भूमिका में वे लिखते हैं इस माकबी की घोर बौद्धों के साहित्य में वर्णित घाम्बपासी (अम्बपासी) को हमने कल्पना द्वारा एक में मिलाने का साहस किया है। अम्बपासी पतिता और बेवभा होने पर भी मीतम के द्वारा मस्तिष्क काल में पवित्र की गई^६ इस कथन में 'बेव्या' और पतिता दोनों शब्द प्रसाद के अपने हैं। बौद्ध साहित्य में घाम्बपासी के लिए कहीं भी अपमानजनक शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'क्यामा' का चित्रण करते समय प्रसाद के ध्यान में कनवेर बाटक की नादिका क्यामा रही होगी। यह क्यामा डाकू के रूप में अवतरित बोबिसल से प्रस करने लगती है और उसको बचाने के लिए अपने एक मददगार प्रेमी को सहस्र मुद्राएँ देकर बण्डनायक के पाम भंग देती है और वह घूमनी पर चढ़ा दिया जाता है। उसके इस निरदायघात के कारण बोबिसल बिरलक होकर उसे सवा के लिये त्यागकर चले जाते हैं।^७ दोनों कथानकों की एकता यह सिद्ध करती है कि गणिका के आदर्श चित्रण की अपेक्षा प्रसाद का ध्यान कथानक की घोर विवेक रहा है। बाम्बव में प्रसाद की मुनासिनी का स्वरूप बहुत कुछ आदर्श पणिका से मिलता जुलता है। जो तो वह राज मंत्री शकटार की कन्या होने से अभिजात कुल की कन्या है और प्रसाद ने कहीं भी उसके लिये गणिका शब्द का प्रयोग नहीं किया। पर जिस रूप में वह नाटक में चित्रित है वह गणिका का ही रूप है कुल-कन्या का नहीं। जिस जीवन में वह रही है उसे वह मलिनता का कीचड़ कहती है^८ जहाँ से उसके पिता ने कमल की तरह पवित्र मानकर उसका उधार किया।^९ परन्तु वह बेव्या भी नहीं है वह स्वयं अपने को 'रुपाजीवा' मानने को

(१) अशावध०	२१७८	(२) वही	२१७२
(३) वही	२१९७	(४) वही	२१९९
(५) वही	२१७२	(६) वही	भूमिका पृ० २०
(७) कनवेर बाटक		(८) अ०	४१९७ १९८

समार नहीं।^{१५} किन्तु गठक में सठके लिये सुन्दरियों की रानी^{१६} धर्मिणी^{१७} बसंतोत्सव की रानी^{१८} धर्मिनय-दाता की रानी^{१९} कुसुमपुर का स्वर्गीय कुसुम^{२०} गहराक से बेचन पाते शाली^{२१} घाटि शर्मा का प्रयोग और नंद एवं गणेश के साथ इस्वम में सुपनाग तथा मुरमपोठ उसका यशिका होना सिद्ध करते हैं। चामरय ने इसे 'बेरया'^{२२} प्रथम कहा है पर स्वर्गीय होने के कारण उस कथन को नियंत्रित महत्व नहीं दिया जा सकता।

जैसे पहिले कहा जा चुका है कि गणिका से सामान्य बेरया से कुछ विधिपट्टा होती थी। किन्तु गहराक्यों की समाप्ति के उपरान्त इतिहास की दृष्टि से भी गणिका के पूर्व सम्मान में कमी आ गई। बीठ-काल में गणिका का जो सम्मान था वह कौटिल्य तक घाटे-घाटे खीण हो गया। इसीलिए सर्वसास्त्र में गणिका और सामारम बेरया में बहुत कम अंतर रह गया है। गणिका राजासे से रूप का व्यापार भी करती थी।^{२३} परंतु क्वाबीबा के स्वतंत्र अस्तिव से ज्ञान पड़ता है कि गणिका और बेरया में कुछ न कुछ अंतर फिर भी रह गया है। गणिका राजा की धाका विभेय से ही रूप का व्यवसाय कर सकती थी और क्वाबीबा से उसका मुख्य यी धनिक होता था।^{२४} यी हमारी प्रसाद द्वितीय गणिका और बेरया के इस अंतर को विभेय महत्व नहीं देते और इनकी सामाजिक पर्याय का निर्धारण करने के लिए भाटक काव्य और कामशास्त्र के अर्थों की अपेक्षा स्मृति-ग्रन्थों की सान्नी को कहीं अधिक प्राथमिक और विश्वसनीय मानते हैं।^{२५} परंतु यह कथन धनिक समीचीन नहीं प्रतीत होता। एक ठो भाटककाव्य और कामशास्त्र के अन्त समाज की पर्याय शक्ति के परिचायक होते हैं और दूसरे स्मृति-ग्रन्थों के समाज से अन्त नियम और विधान से बने हुए नहीं होते। इनमें तत्कालीन सामाजिक मनोविज्ञान का चित्रण मिलता है।

(१) गही	२११६७
(२) गही	११६४
(३) गही	११६५
(४) गही	११६६
(५) गही	११६७
(६) गही	११७२
(७) गही	११७७
(८) कान्तवृत्त	११७१

(९) राजाजया पुराणमन्त्रिणकन्या गणिका पिंडा महत्त्व' समेत सर्वसास्त्र २१७१३१

(१०) क्वाबीबा भोगइयमूल भाठ वृत्त सर्वसास्त्र २१७१४०
 (११) प्रा० भा० का कला-विद्यालय १० ६१

मनुस्मृति में बहिका के साथ ही गणना को भी हेय बताया गया है।^१ पर स्मृति में विधान तरकाशील समाज की मनीषा का यथार्थ परिचय नहीं देता क्योंकि बी. काम में और उसके पश्चात् भी कई सतियों तक 'मनराज्यों' का बहुत सम्मान र है। बौद्ध और जैन ग्रन्थों में बहिकार्यों की मर्यादा के प्रचुर उल्लेख मिलते हैं।^२ उस काल में भी बहिका के अतिरिक्त सामान्य बहिकार्यों का समाज में ऊँचा स्था नहीं था। मनुस्मृति में बहिका के अतिरिक्त बहिका का ध्यान से उल्लेख हुआ है और उसको इतना हेय समझा है कि उसकी शास्त्री तक को वे प्रामाणिक नहीं मानते। अर्थशास्त्र में मर्तों के लिए^३ 'आपाजीव' 'स्वाजीव' आदि के शब्दों के प्रयोग से प ज्ञात होता है कि वे अपनी पत्नियों के रूप का व्यापार करते थे।

स्वामा को पणिका मानकर भी प्रसाद उसके प्राचीन धर्म को अक्षुण्ण ना रखा उनके हैं। बहिका के उच्च आदर्शों के साथ-साथ बहिका की कुदृष्टि भी उस का गई है। स्वामा अपने को स्वयं 'वार विनाशिनी' कहती है और अपने मित्रों 'वामोर्ष' का उल्लेख करती है। अन्वय भी प्रसाद ने बहिका की सामाजिक हीनता का स्वान-स्वान पर निर्देश किया है और उस का मुक्त की वासना पूर्ण करने वाली' और 'वारवनिता'^४ कहा है। बहिका का उपर्युक्त कीर्ति से वर्णित करने वासा समझ गया है।^५



(१) यज्ञ बहिकार्यं ब विदुषा च कुतूहलितम् मनुस्मृति ४।६

(२) मनुस्मृति ८।१५

(३) राज्याधी ३।५०

(४) राज्याधी ३।५२

(५) अजात० ३।१३६

(६) अजात० २।८०

इन्द्र युद्ध

एक और पौरुष युद्ध 'दूसरी घोर हर्ष' से दोनों प्रनाद के नाटकों की दो ऐतिहासिक सीमाएँ हैं। प्रसाद के प्रायः सभी नाटकों से ऐसा ज्ञात होता है कि इस युद्ध ऐतिहासिक काल में भारतवर्ष में इन्द्र युद्ध की प्रथा प्रचलित थी। इन्द्र युद्ध का साधारण अर्थ है दो व्यक्तियों में युद्ध। किन्तु पाश्चात्य संसार के मध्य युग में इस प्रकार के युद्ध एक स्वतन्त्र प्रथा के रूप में निश्चित नियमों के अनुसार बड़े बाँटे रहे हैं। प्रश्न यह है कि किन्हीं दो व्यक्तियों में बड़े गण युद्ध को ही प्रसाद 'इन्द्र युद्ध' की उन्हेति विशेष अर्थ में लिया है तो फिर यह प्रश्न होता है क्या इस तरह के इन्द्र युद्ध भारत में उपयुक्त काल में प्रथम इससे पहिले प्रचलित थे ?

इस नाटकों में इन्द्र युद्ध सम्बन्धी उल्लेख जहाँ कहीं भी हुए हैं उनसे निम्न निश्चित बातें ज्ञात होती हैं

- १ इन्द्र युद्ध का आह्वान किया जाता था अर्थात् एक व्यक्ति अन्य व्यक्ति को युद्ध के लिए निर्मजित करता था और उसके स्वीकार करने पर यह युद्ध बढ़ा जाता था।^१
- २ यह कोई आचर्यक नहीं था कि इन्द्र युद्ध सुरम्भ ही सड़ा जाय। इसके लिए कालांतर में कोई समय व स्थान निश्चित किया जा सकता था।^२
- ३ इन इन्द्र युद्धों का कारण प्रायः धारम-सम्मान अथवा प्रतिष्ठा की भावना पर आधारित प्रतीत होता है चाहे वह किसी प्रेमसी के कारण हो अथवा अपनी पुत्री या माता के समान की रक्षा के लिये। नाजिरा^३ 'कामेशिया'^४ और धर्मका^५ के निमित्त जिन इन्द्र युद्धों का आह्वान हुआ है, वे प्रथम कोटि के इन्द्र युद्ध हैं। महाभारत द्वारा धर्मका के निमित्त प्रभीक को भी गई 'जुतीठी'^६ और अपनी पाठा की रक्षा के लिए स्कन्दपुत्र द्वारा धर्मका से सड़ा गया इन्द्र^७ 'दूसरी कोटि के इन्द्र युद्ध' है। पञ्जस और बाणव्य में यदि रामस के कथानुक्रम सुवाचिनी

(१) स्कन्दपुत्र को द्रिस्तिस्य द्वारा दिया गया इन्द्र का आह्वान	बंद०
(२) वही	(३) अनात०
(४) बंद०	३/१११
(५) बंद०	२/१११
(६) बंद०	१/१५
(७) स्कंद	१/११

के लिए सर्व्व होता ^१ तो यह भी प्रथम प्रकार का दण्ड कहा जाता ।

- ४ वो विरोधी राष्ट्रों के शैतिक अधिकारियों में यदि दण्ड मुक्त होता है तो उसका राष्ट्रों से कोई सम्बन्ध नहीं सम्भ्रज्य जाता था । यह उनकी व्यक्तिगत बात मानी जाती थी । अन्तर्गुप्त मामल सुदूरकों की सेवा का महाबलाबिहृत है और फिलिप्ट मारत में सिकन्दर का लक्ष्य । फिलिप्ट के स्वर्ण के एक कवन के अनुसार इन दोनों का दण्ड मुक्त व्यक्तिगत है राष्ट्रों के संधि विग्रह से उसका कोई सम्बन्ध नहीं ।^२
- ५ दण्ड मुक्त समान स्त्रियों से लड़े जाते थे । प्रसाव के नाटकों में केवल वो ही दण्ड मुक्त लड़े गए हैं । प्रथम में लक्ष्य परीसा ^३ का स्पष्ट सम्बन्ध है । दूसरे में भी यह स्पष्ट संकेत ^४ मिस जाता है कि दोनों स्त्रियों पर प्रतिदण्डी लक्ष्यारों से ही लड़े थे ।
- ६ दण्ड मुक्त सुरक्षित रंगसालाओं में भी लड़े जाते थे । अन्तर्गुप्त और फिलिप्ट का दण्ड मुक्त प्रमुख यवन और धार्यगज की उपस्थिति में रंग सलाला में हुआ था । सिहरण उस रंगसाला की रक्षा में निवृत्त था ^५ अन्यथा स्तैव व मटार्क के दण्ड की तरह वह कहीं भी लड़ा जा सकता था ।

उपयुक्त बातों से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि प्रसाव ने 'दण्ड को साधारण मुक्त के धर्म में न लेकर एक विशिष्ट धर्म में ही प्रवृत्त किया है । ऐसना यह है कि प्राचीन भारत में क्या इस विशिष्ट धर्म में दण्ड मुक्त लड़े जाते थे । महाभारत^६ में भीम और दुर्योधन के दण्ड मुक्त का सम्बन्ध मिसला है । इस मुक्त के कुछ नियम थे । सरस्वती के तट पर यह मुक्त मराधों से लड़ा गया था । दोनों पक्षों के योद्धा इसके दर्शक थे और निर्णायक थे बलराम जिन्होंने इन दोनों को क्या मुक्त की खिताबी थी । कटि प्रदेश से गीचे गवा का धाबात करना धर्म मुक्त समझा जाता था । भीम ने इस नियम का उल्लंघन किया था और इसके लिए उसकी मरतंगा की गई थी । इस

- (१) पं० २/१४८
 (२) पं० ३/१६१
 (३) वही ३/१८२
 (४) मटार्क दो एक हाथ चलाकर चालन होकर गिर पड़ता है स्टां २/१६
 (५) पं० ३/१८२
 (६) महाभारत अम्य पर्व अध्याय ३१

इन्द्र के प्रारम्भ में ही यह वर्ण करली गई था कि इन्द्र मुझ के परिवाम पर ही महा-भारत युद्ध की बय पराजय का निर्णय हो जायगा। इन्द्र मुझ का यह स्वरूप बहुत बुद्ध भूतनाम और रोम के इतिहास में प्राप्त हुए हैकर और एबिसस एन्डिस और टर्नर होरेटी और ब्यूरेटी के इन्द्र युद्धों के स्वरूप से मिलता है। दो राष्ट्रों के परस्पर संघर्ष में सामूहिक बन्धुत्व को चकने के लिए प्राय इम प्रकार के व्यक्ति युद्ध (विपिन कौम्बिट्स) लड़े जाते थे। फिरदीजी के 'घाटनामा' में सोहुराव और इत्यम के बीच जिस इन्द्र का चित्रण हुआ है उसका जड़ रूप भी दो सेनापों के संघर्ष को बधाकर बय पराजय का नियम सेनापियों पर छोड़ देता है। महाभारत भूतनाम और रोम के इन्द्रों में यही भावना रही है। इन्द्र युद्ध का एक और स्वरूप प्राचीन 'मन्म युद्धों' में मिलता है। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण को रङ्गाशा में कम के 'मन्म युद्धों' में मिलता है। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण को रङ्गाशा में कम के मन्मों में मिलता है। इत्यम न उनस 'मन्म युद्ध' किया और मन्मों का संहार कर इन्होंने विजय प्राप्त की। बरतुठ य मन्म युद्ध श्रीका विनोद की वस्तु है और घाटीरक घाँक परीक्षा ही इतना जड़ रूप है।

प्रसाद क नाटकों में भवित इन्द्र युद्ध न तो राष्ट्रीय युद्ध ही नहे जा सकते ! और न मन्म युद्ध ही। वे वैयक्तिक युद्ध हैं जो धारम-मन्मान और प्रथम को लेकर लड़े गये हैं। साथ ही ये इन्द्र सामाजिक प्रथा के रूप में प्राये प्रतीक हुए हैं और उनका काम सैनिकों एवं मन्म श्रीकृष्णों के बीच न होकर मानाग्य समाज में हुआ है। अन्तर्ग्रन्थ और छित्तिय का युद्ध दो सैनिकों का इन्द्र न होकर दो प्रजापियों का युद्ध है। विसयन के अनुसार इस प्रकार क इन्द्र युद्ध किमो भी प्राचीन सम्प्रदा के इतिहास में लड़ी जाये जाय।^१ छपन प्रसाद के इन इन्द्र युद्धों का स्वरूप होने मध्यकालीन पारबाय सम्प्रदा में ही हुआ होता।

इसाइसोपेडिया ब्रिटानिका^२ में लिखा है इन्द्र युद्ध (इय एम) दो व्यक्तियों के उन युद्ध को कहते हैं जो वैयक्तिक जीवनस समयका धारम-सम्मान क मन्म का निर्णय करने के लिए बाउड परतों द्वारा किमो निवत प्रथा क अनुसार लड़ा जाय और जिस के लिए स्वान और समय पहिंके ही निश्चय कर लिया जाय।

- (१) श्रीमद्भागवत १/४४
- (२) ब्रिटिश एन और इय गोट फाउंड इय एमो पीक रि ऐ। एयू ड सिबिलिडेजन्स' ब्रिगमन कौन्सुम ५ पु० २६६ इसाइसोपेडिया ब्रीक सीनल साइडिड
- (३) 'ए डिप्लोमेट इय फाउंड टट ब्रिटिश ड परमम विर ईडना बिन इय ऐडोडैण्ड इत्य विर सि श्रीकृष्ण ब्रीक श्रीकृष्ण ए परसनल बरैस और पीक रिमाइडिय ए पीकट पीक और। इसाइसोपेडिया ब्रिटानिका कौन्सुम ७ पु० ७११

इस प्राधुनिक धर्म में इन्द्र युद्ध प्राचीन सभार में कहीं भी नहीं लड़े जाते थे। इस प्रकार के इन्द्र युद्ध की वर्षा १९११ ई० में प्रकाशित कोरियेटस के 'ब्रिटिश पत्र' में पहले पहल हुई है। इस इन्द्र का पूर्ण रूप 'व्युत्पन्निक जाति के न्याय युद्ध' (बुद्धिचिपल कौम्बिट्स) में पाया जाता है। मानवीय न्याय से असंतुष्ट होने पर इसवीय न्याय की भावना से बौद्ध व्यक्ति युद्ध के देवता को साक्षी कर युद्ध करते थे और यह मान लिया जाता था कि न्याय दिवसी की ओर है।^१ किन्तु यह भी प्राधुनिक इन्द्र युद्ध का सही स्वरूप नहीं है।

इस इन्द्र युद्ध का दूसरा रूप धातु-सम्मान के इन्द्रों में (इण्डियन भाग धीनर) में पाया जाता है, जिसका विकास १२ वीं शती या उससे कुछ पूर्व फ्रांस में हुआ था।^२ इस प्रकार के इन्द्र युद्ध कहीं भी और कभी भी लड़े जा सकते थे। इसका कारण वैमनस्य न होकर आत्म-सम्मान पर चोट लगना था। किसी प्रकार का कट्टर व्यक्ति कोई भी जाति धर्म या प्रेमसी के रिश्ते के रङ्ग या उसके पत्र के सम्बन्ध में कुछ बया कोई बर्बाद प्रश्न से इस प्रकार के युद्ध के लिये पर्याप्त कारण होते थे।^३ इन्द्र युद्ध के इस प्राधुनिक स्वरूप को समझने पर यह कहा जा सकता है कि प्रसाद के इन्द्रों का कारण वैमनस्य न होकर आत्म-सम्मान की भावना और प्रकृत रहे हैं। अनातानु और वीर्यकायन के इन्द्र का प्रसङ्ग प्रथम से सम्बन्धित है और अनातानु और फिसिपस के इन्द्र का भी यही कारण है। फ्रांस में फ्रांस और इन्द्र में जो इन्द्र युद्ध लड़े गये उनमें प्रतिद्वन्द्वी के प्राण न लेकर उसे धातु भाव कर देना (कभी-कभी केवल खरोंच मान बना देना) पर्याप्त समझ जाता था। प्रसाद से बिना इन्द्रों की प्रायोजना की है जन्मे से एक में तो प्रतिद्वन्द्वी के प्राण से लिये जाते हैं किन्तु दूसरे से उसे धातु मर कर दिया गया है।

इतिहास बतलाता है कि फ्रांस के राजा 'चार्ल्स' मुई तथा फ्रांसिस प्रथम के शासन काल में इन्द्र युद्ध लड़ी धूम धाम से लड़े जाते थे। इस प्रकार के इन्द्रों के कुछ निश्चित नियम होते थे। इन युद्धों के वर्षाको में स्वयं सम्राट् उनके दरवाजी और अर्थात् नागरिक हुआ करते थे। ये युद्ध सुसज्जित और रक्षित रङ्गसालामों में

(१) 'बर्मोनिया टैसीटस' इ० ब्रिटानिका बी० ७ पृ० ७११

(२) इ० ब्रिटानिका बी० ७/७११

(३) वे फीट पाइ नाइट ड एंडे बाइ मुनसाइट एंड बाइ टोर्न साइट इन दि पब्लिक स्ट्रीट्स एंड स्क्वायर्स एंड ह्यूटी बर्डे, ए मिडकम्मीन्ड वीत्वर, ए क्वैररन ऐराउट दि क्लर प्रीफ ए रिज्ड और ऐन इप्रोडर्ड वीटर नथ दि कौमनेस्ट प्रिटेस्टस और ए इण्डियन इ० ब्रिटानिका बी० ७ पृ० १११

लगे जाते थे।^१ इन्धु वास्तव में दो व्यक्तियों में हुआ करता था किन्तु प्रत्येक के साथ एक या सवे प्रबल सहकारी (सिक्किन्ड) भी होते थे।^२ प्रकार न १६ की धारी के शीर्ष में प्रचलित एक प्रथा का सम्बन्ध भारतीय धीर पुताली 'धीर मुठों' से जोड़न का प्रयास किया है। चन्द्रमुठ धीर क्लिप्स का इन्धु मुठ इसी प्रकार का एक हीच इन्धु मुठ है जो एक विगत रक्तगता में भागों धीर पुताली के प्रमुख शीर्षों के समक लड़ा गया था। मुठ की बटना के बीच एकाएक सिक्किन्ड के सहकारी मुठमत्त का उल्लेख हमारा ध्यान उपयुक्त प्रकार के सहकारी (सिक्किन्ड) की धीर पाहल करता है।

कुछ भी हो इस प्रकार के इन्धु मुठ भारतीय इतिहास के किसी भी काल में नहीं लगे गये धन इन्हें ऐतिहासिक धीर प्रभारतीय कहने में हमें संकोच नहीं होता।

-
- (१) पण्डर मुठों टर्नेन्स ऐंड क्रानिड फुर्न की कानून कि विविधिय धीर डिम्पुनास धोड धीर । रि भास्ट इस्टैस धीर ए इन्धु ए मोबोराएडर बाइ रि मीजिस्ट्रेट्स ऐंड कम्पन्ड ऐकाडिन दू रि पोम्पे धीर ली बाय रि केमस वन बिटबीन फोर्को 'विबीनेदि ला गेटेनरे ऐंड पाइ रोपी रि बार-नेक । दि इन्धु एन बाय को-धीर धोत मटेन डिग्नीत फाईनिकन इन रि कोर्नार्ड धीर रि रोटी रि सेंट बम ऐन के इन्धु रि प्रॉस धीर रि रिक् एंड ए लार्ज ऐन्वेली धाक कोटिदर्य । इ० रिटानिका बोम्पूम ७ मु० ७११
- (२) इ० धाक लीवय बाइसेर 'विस्त्रम डी० बानिय' बोम्पूम ५ मु० २१६

शिक्षा और कला

५

प्रसार के माटकों से प्राचीन इतिहास और सस्कृति के धार-दाय प्राचीन भारत की शिक्षा के वास्तविक स्वरूप का भी ज्ञान होता है। प्राचीन भारत में शिक्षा किस प्रकार की होती थी उसका स्वरूप क्या था क्या-क्या विषय पढ़ाये जाते थे और गुरु शिष्य का परस्पर सम्बन्ध किस प्रकार का होता था इन सब का विवरण हमको मुख्यतः चन्द्रगुप्त माटक से मिलता है। यों तो शिक्षा सम्बन्धी कुछ न कुछ जानकारी उनके प्रायः सभी ऐतिहासिक माटकों से मिलती है।

चन्द्रगुप्त माटक का प्रारम्भ ही तक्षशिला के गुरुकुल से हुआ है। तक्षशिला गुरुकुल विषय प्रसिद्ध था और दूर-दूर के छात्र यहाँ शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते थे। सिद्धरत्न मानव था और चाणक्य और चन्द्रगुप्त मानव।^१ निम्न निम्न प्रदेशों के होते हुए भी छात्रों को अपने गुरुकुल की शिक्षा का समान रूप से यर्ष होता था। सिद्धरत्न को तक्षशिला की शिक्षा का यर्ष था^२ और बहबलि अपने ही गुरुकुल के स्नातक को परीक्षा करना गुरुकुल का अपमान समझता था।^३ गुरुकुल की शिक्षा का इतना महत्त्व होता था कि वहाँ शिक्षा पाने हुए छात्र अपने-अपने विषयों में सिष्णात मान लिये जाते थे। गुरुकुल राजाज्ञा से परे होते थे। गुरुकुल के अधिकारी आचार्य की आज्ञा वहाँ सर्वोपरि मानी जाती थी।^४

गुरुकुलों की परम्परा भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीन जमान से चली आ रही है। पाणिनि के कुछ सूत्रों में भी गुरुकुल का उल्लेख मिलता है।^५ माटकों में तो इस सम्बन्ध में प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है।^६ उनसे ज्ञात होता है कि भारत में गुरुकुलों और पाठशालाओं का जमाना विद्यमान था। बभारस राजगृह विधिता उपर्युक्त कोशल मध्यप्रदेश सिधिराज्य कुछ उत्तरी राज्य इत्यादि विभिन्न प्रदेशों राज्यों और जनपदों के अनेक विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे। इन विद्यार्थियों में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर विद्यार्थी उच्चशिक्षा प्राप्त करने के लिए तक्षशिला आया करते थे।^७ तक्षशिला भारतवर्ष की उच्चशिक्षा का केन्द्र था। वहाँ अनेक छात्रों

- | | | | |
|--------------|--|---------|-----|
| (१) चन्द्र० | १५६ | (२) वही | १५७ |
| (३) वही | १७७ | (४) वही | १५७ |
| (५) पाणिनि | २।१।४१ भाष्य १।३६१ | | |
| (६) माटक | ४।३६६ १।३४७ ४।३९२ १।३५६ ३।११५, ३।३६६, ५।१७७ | | |
| (७) तक्षशिला | बाय ए सीट मीट बीज ऐलिमेंट्री बट हायर ऐम्बुकेशन | | |
- ऐचिए ट इतिहास ऐम्बुकेशन - मुद्रणी पृ० ४७९

हैं। आचार्य प्रबन्ध और भीजिय। इनमें आचार्य की पचमर्माद्या सबसे ऊँची थी।
वाग्भ्यायन के शब्दों में आणक्य 'सर्व विद्याओं के आचार्य थे।

तलसिमा बसिष्ठ^२ कश्यप^३ आदि ऋषियों के प्राचीन पुत्रकुलों की
अपेक्षा विद्याल विस्वविद्यालयों के बलिक सपीप जान पड़ता है। उसको हम बातकों
में बसिष्ठ 'महाशासा' या स्नातकशासा के समकक्ष रक्त सकते हैं^४। प्राचीन मूकलों
की परंपरा में वाग्भ्यायन का आश्रम लिया जा सकता है। वहाँ जनका कोई रहस्य
नहीं निभूत मन्दिर नहीं और वहाँ सबका 'प्रत्येक धन स्वागत है'। यह बातकों में
'शुद्धि आरम्भ' के समकक्ष है^५। इसी आश्रम में तिस्रुकुक्ष की कथा भारतीय दर्शन
और संगीत की विद्या पाठी है^६। कामिवास ने बसिष्ठआश्रम^७ का जो विवरण दिया
है वह बहुत कुछ वाग्भ्यायन के आश्रम से मिलता जुलता है।

प्रसाद के माटकों में पठन-पाठन के बिन विषयों के नाम आने हैं वे हैं अथ
शास्त्र^८ ब्रह्मनीति^९ राजनीति^{१०} व्याकरण^{११}, मुठनीति^{१२} और धर्मशास्त्र।^{१३} इन
शास्त्रों का अध्ययन अध्यापन तलसिमा में अवश्य होता होना।
अध्ययन के विषय धर्मशास्त्र का अध्ययन तो आचार्य आणक्य कुलपति की आज्ञा
से स्वयं करते थे। धर्मशास्त्र के अतिरिक्त पाणिनी व्याकरण
और ब्रह्मनीति का उल्लेख भी आणक्य ने स्वयं किया है। अत्रयुष्ट मुठनीति छीसने
के लिए तलसिमा सेवा तथा था। उसना कलिक के राजनीतिशास्त्र के नामोलेख
मान है।

क्रीटिलीप धर्मशास्त्र के अनुसार विद्याएँ चार हैं। आन्वीक्षिकी जयी जाती
और ब्रह्मनीति। मनु के अनुसार जयी जाती और ब्रह्मनीति से तीन ही विद्याएँ
हैं और वे आन्वीक्षिकी को जयी का ही एक रूप मानते हैं।^{१४} बृहस्पति मतानुयायी

- (१) इडिमा ऐन नोल टू पाणिनि अणक्य
(२) रजुबंश ११५५ (३) शाकु तल ११२१ १२ ८४
(४) कश्यपक साइफ इन वि बुडिष्ट बातकस डा० बी० सी० जो० बर्नस पीफ
इण्डियन हिस्ट्री रिसेम्बर ११५४
(५) कश्यपक साइफ इन वि बुडिष्ट बातकस डा० बी० सी० जो० बर्नस पीफ
इण्डियन हिस्ट्री रिसेम्बर ११५४
(६) अण० २१११२ (७) रजुबंश १
(८) अण० ११५१८८ (९) बही ११८८
(१०) अण० ४१२२५ स्कंर ११११ (११) अण० ४१२२५
(१२) बही ११८८, ८१ ४१२२५ (१३) बही ११८
(१४) धर्मशास्त्र ११२ १२ १

७ बाधा और दण्डनीति को ही विद्या मानते हैं। और शुक्र के अनुयायी मात्र दण्डनीति को ही विद्या मानकर अन्य विद्याओं को उनके ही अन्तर्गत रख लेते हैं। कौटिल्य के अनुसार विद्या का सक्षम है बर्ष और अर्थ के यथार्थ स्वरूप का बोध करना। इस सक्षम के अनुसार विद्याएँ चार हैं। जिस विद्या से बर्ष और अर्थ के स्वरूप का ज्ञान होता है उसे 'वर्षी' कहते हैं जिसमें अर्थ या धन्य का बोध हो उसे 'बाधा और जिसमें ध्याय और अग्याय का भिन्न हो उसे 'दण्डनीति' कहते हैं। जो विद्या तर्क के द्वारा इन सब विद्याओं के महत्त्व का स्पष्टीकरण कर बुद्धि को स्थिर करती है और बुद्धि बाधो और विद्या में निपुणता लाती है उस 'धाम्नीशिकी' कहते हैं।

कौटिल्य को चार विद्याओं में से दण्डनीति का ही प्रभाव ने राज्य नाम से ही उल्लेख किया है और इसमें अर्थशास्त्र राजनीति तथा मुद्रनीति का समावेश किया जा सकता है। तोय त्रयी विद्या के अन्तर्गत अर्थशास्त्र, बाधा के अन्तर्गत व्याकरण और धाम्नीशिकी के अन्तर्गत तर्कशास्त्र का उल्लेख किया गया है।

— अनु ने चार वेद छः वेद के अथ सोमंसा ध्याय पुराण और अर्थशास्त्र से १४ विद्याएँ बतलाई हैं। शुक्राचार्य ने त्रयी के अन्तर्गत इन्हीं १४ विद्याओं को गिना दिया है। प्रसार के नाटकों में जिन विषयों की चर्चा हुई है वे सब इन्हीं विद्याओं के अन्तर्गत आ जाती हैं। उनमें यथास्थान वेद^१ सामवेद^२ अग्निवेद^३ रामायण^४ गोवा^५ वेदाङ्ग^६ और दर्शन^७ का नामोल्लेख हुआ है। उनमें से अनुवेद के अन्तर्गत वाचविद्या^८ की चर्चा हुई है। धातुवेद के विशेषों के रूप में अक्षर^९ और अग्निवेद^{१०} का नाम ध्याय है और अक्षरविद्या^{११} की ओर भी संकेत मिलता है। 'अक्षरस्वामिनी में बहुस्पति^{१२} और शुक्राचार्य^{१३} के शीतिलार्यों और अक्षरमुक्त^{१४} में अक्षर^{१५} और अक्षर^{१६} के राजनीति-शास्त्रों का उल्लेख हुआ है। इन भारतीय विद्याओं के प्रतिरिक्त यूनान के बार्थनिक मुकरात^{१७} और इपित्थमीज^{१८} के तर्क

(१) अर्थशास्त्र	११२८९१०	(२) वही	
(३) अर्थशास्त्र	११२८१२		
(४) शुक्रनीति	११५४	(५) स्कन्द	४१२४
(६) वही	४१२२	(६) अक्षर	४१२५
(७) अक्षर	३१५१	(७) अक्षर	२१२०७
(८) अक्षर	११५०५१	(८) वही	११५०
(९) अक्षर	११२५	(९) वही	११२५
(१०) वही	४१२२५	(१०) अक्षर	४१२२५
(११) अक्षर	४१२२९	(११) अक्षर	४१२२९
		(१२) अक्षर	२१०५
		(१३) वही	२१०५
		(१४) अक्षर	४१२२५
		(१५) अक्षर	४१२२५
		(१६) अक्षर	४१२२५
		(१७) अक्षर	४१२२५
		(१८) अक्षर	४१२२५

एवं धरतू की राजनीति की धोर भी निर्देश हुआ है। चन्द्रगुप्त और सेन्ड्रकस के युद्ध को एक ही काम में विकसित हो विभिन्न राष्ट्रों की विभिन्न विचारधाराओं की टक्कर बताकर जाणबय और धरतू के राजनीतिक विचारों के संघर्ष को धोर भी संकेत किया गया है।^१

कलाओं का उत्थेज स्वतन्त्र रूप से वास्त्यायन में किया है। उनके अनुसार चौसठ घिरुप कलाएँ और चौसठ ही पांचासिका कलाएँ होती हैं। समित कलाएँ पांचासिका कलाओं के अन्तर्गत आती हैं।^२ प्रसाद के नाटकों में संवीर और नृस्य का उत्थेज कई स्थलों पर हुआ है। प्राचीन रामों में बानीसवरी^३ मीरब^४ और धानर मीरबी^५ का तथा मत्स्यों में तांडव^६ का नाम आया है। इसके अतिरिक्त प्रमितय^७ का भी उत्थेज हुआ है।

तत्कालीन में उच्चशिक्षा प्राप्ति में साधारण घाठ बर्ष लग जाते थे और सोसह सगह बर्ष से पन्नीस बर्ष तक विद्यार्थी बहा अध्ययन करते थे।^८

चन्द्रगुप्त नाटक के अनुसार चन्द्रगुप्त को बहा केवल पांच बर्ष विद्यार्थी लगे थे।^९ यह नहीं कहा जा सकता कि प्रसाद ने पांच बर्ष का अनुमान किस आधार पर लगाया है। चन्द्रगुप्त केवल युद्धनीति की शिक्षा के लिये गया था इतने से भी इसका समर्जन नहीं किया जा सकता कि पांच बर्ष का का काम छत्र शिक्षा के लिये पर्याप्त होता था।^{१०} तत्कालीन में तो विशिष्ट शिक्षा प्राप्ति के लिये ही विद्यार्थी जाते थे घट छत्रका पाठ्यक्रम भी नियत समय में ही पूरा होना चाहिये। तत्कालीन से पूर्व शिक्षा प्राप्ति कर बुझने वाले विद्यार्थियों को स्नातक कहा जाता था और उसके प्रति राजा से लेकर साधारण प्रजा तक सम्मान प्रदर्शित करते थे। स्नातक को निमन्त्रण देना धोर की बात समझी जाती थी। मन्त्र जैसे व्यक्ति भी स्नातक का स्वागत करना नहीं भूलते।^{११} स्नातक के प्रति आदर भावना का परिचय मनुस्मृति में इस प्रकार दिया गया है उन सबके एकत्र होने पर स्नातक और राजा हो ही हो तो स्नातक राजा से मान प्राप्ति का अधिकारी है।^{१२}

(१) चन्द्र ३११६१

(२) स्टीव इन काम सुन हायमचन्द्र चक्रवर्त पृ १८६

(३) स्कंद १५४ (४) बही १४६ (५) बही

(६) बही १४६ (७) बही ११२६ चंर ११५४ ६५

(८) इन्डियन ऐज्युकेशन इन ऐसिएन्ट एण्ड सेटर टाइम्स के पृ० १४२

(९) चंद्र १/७५

(१) बही १/१७४

(११) बही १/७६

(१२) मनुस्मृति ६/४५/१३१

बातकों से जता चलता है कि तलसिला पुस्तक में प्रवेश के समय एक सड़क स्वर्ण बुझाएँ सुन्दर के रूप से ली जाती थी ।^१ 'मिलिम्ब पम्ह' से यह भी ज्ञात होता

है कि यदि कोई विद्यार्थी सुन्दर न ले सके तो उसे मुद्र लेवा करके मुद्र बलिष्ठा सुन्दर बुझाया पड़ता था ।^२ अधिकतर विद्यार्थी इसी वर्ष के होते थे जो दिन में मुद्र लेवा कर रात को पिसा प्राप्त करते थे ।^३

ऐसे एक मुद्रक का उल्लेख बातकों में मिलता है जिसमें पांच ही ब्राह्मण विध्य पिसा पाते थे और वे मुद्र लेवा के रूप में ग्रन्थ कार्यों के साथ जंबल से लकड़ियों एकत्र करके लाते थे । कभी-कभी कोई विद्यार्थी अपना सम्पूर्ण समय अध्ययन में लगाता था । वह न सुन्दर ले सकेता था और न मुद्र के लिए कोई विशेष कार्य ही करता था । ऐसे छात्र पिसा सहाय्य करते वर मुद्र की प्रतिनिधित्व वस्तु मुद्र बलिष्ठा के रूप में बुझा लेते थे । बनारस में एक विद्यार्थी का उल्लेख हुआ है जिसने पिसा प्राप्त कर मुद्र बलिष्ठा बुझाई थी ।^४

योग्य और अनुपयुक्त विद्यार्थी को उसी मुद्रकृष से सम्पादन कार्य (मिश्र भावा करवा) का धौर कमी-कमी मुद्र दक्षिणा बुझाने का एक वह भी उपाय माना जाता था ।^५ प्रसार के माटकों में सुन्दर का उल्लेख कहीं नहीं है किन्तु बादरय जैसे अधिकतर ने एक वय तक मुद्रकृष के माधी स्नातकों को प्रवर्धमान का पाठ पढ़ाकर मुद्र बलिष्ठा बुझाई थी ।^६

प्रसार के अनुसार मुद्रकृषों को स्नातकों की छात्रवृत्ति के रूप में राक्षकोप से भी सम बिवा जाता था । छात्रकोप से कभी-कभी कोई छात्रवृत्तियाँ एक साथ ही जाती थी । दो प्रकार की छात्रवृत्तियों का सुझाव ले उल्लेख किया है । एक तो वे छात्रवृत्तियाँ होती थी जो राजकुमारों के साथ जाने वाले राजकर्मचारियों के पुत्रों को पिसा करती थीं मुद्ररी को उदीयमान छात्रों को राज्य स्वतन्त्र रूप से देता था । कई स्नातकों का उल्लेख कर छात्र वृत्तियों की चर्चा से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कुछ धन्य साधारण प्रतिभाशाली स्नातकों को भी छात्रवृत्तियाँ दी जाती थी ।^७

(१) माठक १/२७२ ४/५० (२) मिलिम्ब पम्ह ६ सुवर्ण ५० ४७६

(३) ऐंतिपट इंदियन ऐग्ज्यूकेषन सुझावों १५० ४७६ (४) वही ५० ४८४

(५) चन्द्र १/५६ (६) चन्द्र १/७६ ७७

(७) "बी पीठ श्रीक सम्भ श्रीक हि पीठ श्रीक श्रीक हि कोट श्रीक बनारस एंड राजबड़ ऐकम्पनी इत देयर रैसिडिन्ट क्रिसेन टु तलसिला और देयर ऐग्ज्यूकेषन कमेन हाउसेन, धार नोट वॉटिंग श्रीक स्टूडेंट्स बीइय सेन चीन देयर कोन ऐकाइ ट औरहायर स्टडीय टु तलसिला ऐट स्टेट एक्सपेंस । हम बी रीड श्रीक ए ब्राह्मण बीव श्रीक बनारस बीइय सेट बाई दि निय एट रिज एक्सपेंस टु तलसिला और दि परेक श्रीक सेइसाइवैशन इन दि साइ स श्रीक पार्सरी ।"

गाटकों में मृद के लिए कुश्न^१ सुस्वेव^२ धार्या^३ शिष्यक^४ और धार्य^५ लब्ध
पाये हैं। इनमें धार्य शब्द किसी भी पूज्य या सम्माननीय व्यक्ति के लिए वा सकता

है, इसीलिए धार्य समुद्रगुप्त^६ धार्य चन्द्रगुप्त^७ धार्य पर्यायवत्^८
पुत्र शिष्य जैसे संबोधन प्राप्त गाटकों में देखने में आते हैं। गुह शिष्य को
सम्बन्ध संबोधन करते हुए सीम्य^९, शिष्य^{१०} और वस्तु^{११} का प्रयोग
करता है। मनु के अनुसार भी अभिवाचन करते हुए शिष्य को पुत्र
'आपुष्मान मव सीम्य^{१२}' इन शब्दों में धार्ष्टीवाद देता है शिष्य के लिए गुह की
धात्रा अनुस्मरणीय है और यह उनकी धात्रा से ही मूहस्वाभम में प्रवेश कर सकता
है।^{१३} मनु ने भी गुह की धात्रा पाकर ही सुसखता और सवर्णा धार्या से विवाह
करने का विधान किया है।^{१४} चाणक्य ने इस बात का उल्लेख किया है कि कुलपति
ने उसे मूहस्वाभम में प्रवेश करने की धात्रा दे दी है। राजा तक को गुह की मर्त्या
की रक्षा करनी पड़ती है।^{१५}

प्रसाद के अनुसार गुह का स्थान माता-पिता के समकक्ष ही है उनके अधिक
नहीं। चन्द्रगुप्त गुह की मर्त्या का ध्यान रखते हुए भी गुह के द्वारा अपने माता-पिता
के अपमान का विरोध करता है।^{१६} जैसे प्रसाद ने माता-पिता को भी पुत्र की शिक्षा
के लिये उत्तरदायी बतलाया है विशेषतः मुबराह को राज्य संभालन की शिक्षा देना
तो महाराज का ही कर्तव्य है।^{१७} कालिदास के अनुसार धन को धन्य पिता रघु
ने स्वयं ही देा था।^{१८}

- (१) चन्द्र० १/१००
- (२) वही १/१७ ४/१२६
- (३) वही १/५५
- (४) वही १/१०
- (५) वही १/५५
- (६) लब्ध १/१५
- (७) वही १/१२
- (८) वही १/१२
- (९) चन्द्र० १/५५
- (१०) वही २/१० (११) चन्द्र० ११०
- (१२) मनु० २/४१/१२५ (१३) चन्द्र० १/५६
- (१४) 'बुद्धसाधुमत स्तारवा समावृत्तो यथाविधि
सर्वे हेतुं विधो धार्या सवर्णा सख्यतापिताम मनु० १/६३/४
- (१५) चन्द्र० ४/२१० (१६) वही ४/२१०
- (१७) धनात् १/५१
- (१८) 'मपिभितास्त्र पितुषे' चन्द्रगुप्त १/३१

प्रसार के माटकों के अनुसार प्राचीन भारत में स्त्री शिक्षा का पूर्ण विचार हीन पड़ा है। समता अपने को प्रजात को शिक्षा देने की पूर्ण अधिकारिणी समझती है।^१ उसकी ही देखरेख में परिपक्व का काम चलता है^२ अतः स्त्री शिक्षा वह अवश्य ही सुविधिता रही होगी। कालेनिया 'राज्यापन' के नाम पर भारतीय दर्शन पढ़ने जाती है भारतीय संगीत सीखती है।^३ वह 'भुकरात के तर्क' पर विचार करती है^४ उग्रता और शक्ति की राजनीति^५ और रामायण^६ भी पढ़ती है। कोमा आचार्य मिहिरदेव की शिक्षा में पसी है।^७ जब सब उन्मुख इस धीरे संकेत करते हैं कि स्त्री शिक्षा की पूरी स्वतंत्रता थी। इसके अतिरिक्त ललित कलाओं में तो प्रायः सभी स्त्रियाँ निष्णात प्रतीत होती हैं। देवसेना संगीत में दक्ष है^८ मासबिका को मृत्यु कला का ज्ञान है^९ सुवासिनी अमिनय राजा की रानी है^{१०} पद्मावती बीणा बजाना जानती है।^{११} इससे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रसार के विचार से स्त्रियों को राजनीति से लेकर ललित कलाओं तक का ज्ञान दिया जाता था। राजकुमारो कल्याणी पर्वतेश्वर की सहायता के लिये पंचमह के युद्ध में भाग लेती है^{१२} अतः अनुप बाप लेकर मासव कुर्म की रक्षा करती है।^{१३} मासबिका रणयेव में भावसों की चिकित्सा और भोजन की व्यवस्था करती है।^{१४} इस प्रकार प्रसार ने प्राचीन काल में कई क्षेत्रों में स्त्री शिक्षा की संभावना को स्वीकार किया है।

कामसूत्र के आधार पर प्राचीन भारत में स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में ब्रह्मसूत्र^{१५} लिखते हैं कि आचारण स्त्रियाँ भी प्रेम पत्र टिक पत्र सज्जी थीं सामान्य स्त्रियाँ न उच्च शिक्षा प्राप्त करती थीं और न अस्त्र ग्रहण ही परन्तु राजकुमारियाँ तथा सभामन्त्र कुम की कन्याएँ युद्ध में भी भाग लेती थीं। यदिकाएँ छात्रों में पारंपर्य होती थीं। कामसूत्र में स्त्रियों के लिये जिन बीसठ कलाओं का ज्ञान आवश्यक

- | | | |
|---|-----------|-----------------|
| (१) अज्ञा० | १/२७ | (२) वही २/६७ |
| (३) अज्ञा० | २/११२ | (४) वही ४/२२५ |
| (५) अज्ञा० | ४/१२५ | (६) वही ४/२२५ |
| (७) अज्ञा० | २/४१ | (८) स्कंद० १/४९ |
| (९) अज्ञा० | ३/१७२ | |
| (१०) वही १/६७ | | |
| (११) अज्ञा० | | |
| (१२) अज्ञा० | २/११७ ११५ | |
| (१३) वही | २/१५० | |
| (१४) अज्ञा० | २/१४० | |
| (१५) स्कंदीय इन कामसूत्र अध्यायः पृ १८० १८१ | | |

बतसाया गया है वह सामान्य प्राथमिक ज्ञान से कहीं ऊँचा होता था। जिस विस्फुल्लता के ज्ञान की उद्भायता से प्रापित अर्तुका को धपना जीवन-मापन करना पड़ता होगा वह निश्चय ही उच्च कोटि का ज्ञान होता होगा। मुञ्जोवन सिद्धार्थ के लिये अनेक शास्त्रों में निपुण बन्धु चाहते हैं। मायादेवी के लिये बहुश्रुताया पंडितताया और 'कला विचक्षणता' आदि विशेषण भी प्राचीन काल में उच्च शिक्षा के छात्री हैं। मुकुर्बी की मान्यता है कि वैदिक काल से ही स्त्री शिक्षा का प्रचार ज्ञाना था रहा है।^१ मुबन्धुओं तक में छात्राएँ अध्ययन के लिये छाती थीं।^२ ब्राह्मण्य के धर्मशास्त्र में भी मुञ्जोवन में स्त्रियों को उच्चोचित करने उनके ज्ञान पाम की व्यवस्था करने तथा धाहर्तों की विकिरसा करने के लिए स्त्रियों को विशेष रूप से सिद्धित करने का आदेश दिया गया है।^३ विकम्बर से मड़े पये मुञ्जों में स्त्रियों के भी यत्र-तत्र भाव लिया था।^४

(१) हिल्डु सम्प्रता राजाकुमुद पृ ११३

(२) इक्षिया ऐश मोन टुपालिनि बामुवेवसरण पद्यबाल

(३) धर्मशास्त्र १०३/६२

(४) वि सिविलिसेसन इन ऐंघिए ट इक्षिया मुई रेनु पृष्ठ ७१

संगीत, कला और साहित्य

प्रसाद ने संगीत कला और साहित्य सम्बन्धी उल्लेख प्रायः सभी नाटकों में किये हैं। संगीत में केवल कुछ रागों के नाम कुछ पापन की परिपाटी और कुछ विशेष वाद्य-यंत्रों के उल्लेख भर हुए हैं। इन सभी उल्लेखों को सामने रखने पर भी संगीत और नृत्य की किसी विशेष प्राचीन पद्धति या परम्परा का विश्व प्रसार नहीं की जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि अपने नाटकों में संगीत और नृत्य के साधारण दृश्यों का उद्देश्य करने मात्र के उद्देश्य से प्रसाद ने संगीत और नृत्य को जोड़ना ही है। नृत्य से सम्बन्ध रखने वाले उल्लेख जैसे मालविका के नृत्य के वर्णन में काव्यशास्त्र में किये हैं¹ यथा नृत्य-मति इत्यादि के मीमांसकों को बिना प्रकार कापयट्ट ने करने हर्षचरित में उगायत है² यथा प्रसाद नहीं कर सके हैं। यथा कारण संभवतः प्रसाद की यह इच्छा थी जो काव्य के वातावरण में संगीत और नृत्य को बरताने यथा नर्तकियों के माध्यम से देखा करनी थी। इसलिए प्रसाद के नाटकों में अधिकतर नर्तकियाँ किमो भी अक्षर पर मरीच की तरह आकर नृत्य और संगीत प्रस्तुत करती हैं। कला और विश्वव्यापी इत्यादि का तो प्रसाद ने उल्लेख ही नहीं किया है। यद्यपि प्राचीन भारत के धर्म ग्रंथों में सजावटों तक का अनुरोध इसके माध्यम से होता आ रहा है। काव्यशास्त्र के वाङ्मय और मालविकाग्निमित्र में विश्वामा और विश्वकना के उल्लेख किये हैं।³ दुष्ट काम में सुकुमुपुत्र की प्रथम उल्लेख काव्य-कला और संगीत में निपुण बनता है।⁴ प्रसाद के इन नाटकों में नाट्यशास्त्र जैसे कवियों के होने किये भी काव्य-कीर्ति इत्यादि का उल्लेख नहीं हुआ है यद्यपि सम्भवतः एक दो उल्लेख संभव हुए हैं। पर उनके भी यद्यपि के विशेष विषय की धार ध्यान व देकर संकेत मात्र कर दिया गया है यद्यपि कोई संकीर्ण वातावरण उभरता नहीं आता है।

कार्त्तिकेय वाङ्मय के माध्यम में भारतीय संगीत सीखती है⁵ और टिकित्त का कथन है कि उसने भारतीय संगीत पर पूरा अधिकार कर लिया।⁶ इसने भारतीय

(१) मात० २/२४ (२) हर्षचरित ४/१११ (३) वाङ्मय १/१८
 (४) ०० ०० ०० निद्रिण-विदग्धमति-नाम्बर्-सुनिर्दिष्ट-विदग्धमति-
 पुष्पुत्तावादेविदग्धमति-नाम्बर्-सुनिर्दिष्ट-विदग्धमति-
 ००० ००० ००
 —सुकुमुपुत्र की प्रथम प्रथमिः सर्वत्र इतिवत्तु सरदार
 (५) पत्र २/१०३
 (६) वही २/१०३

संगीत संगीत की विशिष्ट दैवी की धीर संकेत किया गया जान पड़ता है। किन्तु उक्त स्वर्णों पर वह स्पष्ट नहीं है कि प्रसार भारतीय संगीत के स्वरूप का कौशा चित्र प्रस्तुत करना चाहते हैं। वैश्वसेना ने उर के जिस धीरे संगीत की वर्णा की है^१ उक्त वर्तमान धीरे उर से कोई संबंध नहीं है। यहाँ धीरे संगीत एक रूपक के अर्थ में आता है और इस प्रसंग में प्रसार ने वैश्वसेना के अर्था में संगीत के तीन अंग गीत नृत्य और वाद्य का एक साथ विवरण दे दिया है—उर का गृ गोनाद धीरे की का वाद्यन नृत्य धीरे अर्था का वाद्य इसके धीरे संगीत की सृष्टि होती है।^२ रागाओं और नात्रिकों के मनोविशेषों के साधनों में गीतवाद्य और नृत्य का अन्वेषण अर्थात्^३ धीरे वाद्यकों^४ में भी हुआ है। इसके यह तो स्पष्ट है कि प्राचीन काल में संगीत का प्रचुर प्रचार रहा होगा तथा संगीत के अन्तर्गत गीत वाद्य तथा नृत्य तीनों का आते होंगे। प्रसार ने धीरे संगीत का अन्वेषण केवल युद्ध और विनाय की अति बने के लिये किया है संगीत की किसी विशेष पद्धति को सूचित करने के लिये नहीं। अथवा वैश्वसेना ने वागेश्वरी की कलम कोमल तान का भी नाम दिया है। वागेश्वरी अथवा वागेशी अथवा एक प्राचीन और प्रसिद्ध राग है। इसमें आंधार और तियाव कोमल आते हैं। आरोह में रिषभ और पंचम अल्पप्रमाण में लिये आते हैं। इस में आशी मध्यम होता है और संधारी पद्धत। इसकी इति अम्भीर है तथा गृ मार और सान्त रस इसमें सुसंते हैं। प्रसार ने पुरुष को आकर्षित करने के उद्देश्य से गृ मार में ही इस राग का निर्णय किया है।^५ वागेश्वरी के माने का समय राशि है।^६

शास्त्रीय-संगीत के आधुनिक आचार्यों की मुद्राओं पर भी प्रसार ने एक व्यंग किया है। यह तो कहा नहीं जा सकता कि जिस प्रकार कई आधुनिक संगीतज्ञ * हाथ को ऊँचे नीचे हिलाकर मु ह बना कर एक भाव प्रकट करते हैं और फिर फिर को इस ओर से हिला देते हैं जैसे उर तान से शुरु में एक हिसोर उठ गई हो " ठीक उही प्रकार सुदूर अतीत के नायक भी करते होंगे। परन्तु स्पष्ट है कि उक्त व्यंग भारतीय संगीत के कतिपय गायनाचार्यों पर किया गया है जो आते हुए मु ह बनाते हैं और उद्यतकर करते हैं। अस्तु प्राचीन संगीतचार्यों ने इस प्रकार मुद्रा को

(१) स्कंद० १/१४६

(२) स्कंद० १/५४

(३) अर्थात्^३ २ अध्याय २७/स्तोक ४१ पृ २५४

(४) वाद्यक० ६/४० (५) स्कंद० २/५४

(६) प्राथमिक संगीत-संकर अन्वेषण व्यास पृ १३ (७) स्कंद०

(८) 'स्कंदपुराण' प्रो० पण्ड का लेख 'महापता मयवीन पृ० ३

संगीत में सदा बर्बाद माना है क्योंकि यह संगीत के रस में विपाठक होता है। प्राचीन काल के संगीत का प्रयोग दर्शकों की मनोद्वेषन कृति की सृष्टि के लिये होता था रहा है। प्रसार ने अपने नाटकों में जो गीत दिये हैं वे किसी 'विशेष' वर्ग के नहीं। इनका प्रयोग एक तो काव्य प्रवृत्तिवश है दूसरे अनुकरण मात्र और तीसरे निरहस्य और आम जनकृत्तव्य है। 'स्यामा के 'बहुत धिनामा उफन पड़ा' और 'निर्जन मोबुसी प्रान्तर में' विम्बसार का 'बल बसन्त जाता था बल से', अलका का प्रथम दौबल मन्दिरा से मत ' और किन्तरी किरण बसक ध्याकुल हो ' कल्याणी का 'सुखा सीकर से नहसा रो' मानविका का 'धो मेरी जीवन की स्मृति' मंशाकिनी का 'यह कसक धरे बासु सहजा' कोमा का 'जीवन तेरी खंख काया' मानुष्य का 'सृष्टि के वे सुन्दरतम लक्षण' ईशदेना का 'बने प्रेम तब तबे' और विजया का 'मयक धूम की श्याम महुरियाँ'—ये सब गीत केवल काव्य प्रवृत्तिवश लिखे गये हैं। अनुकरण मात्र से पद्य की काव्य परिभाषा है यह नहीं कहा जा सकता। प्रसार के नाटकों में यत्र-यत्र ऐसे गीत पर्यटित हैं जिनमें 'पारसी विद्येद्रिकल कम्पनी' के गीत और सयों का अनुकरण है। यदि यही प्रवृत्ति स्वीकार किया जाय तो वासवी का 'बच्चे बच्चों से बेलें' गीत का 'मोबुसी के राम पटल में' और 'बचस बस्र सूर्य है बचल' उदयन का 'हमारे बस में बनकर' पद्मावती का 'हमाच प्रेमनिधि' स्यामा का 'तुम्हारी मोहनी छवि' और 'अमृत हो जायवा दिव' पूष्य और स्त्रियों का द्विपाल हमारे निर्दोषों के बल' और स्तंबगुप्त का बवा दे बासु मनमोहन'—ये इसी कोटि में आते हैं। स्याम होने की बात यह है कि इनमें कई गीतों की तर्ज ही विद्येद्रिकल है और स्तंबगुप्त जैसे चरित्र भी ना बढते हैं। इस प्रकार के गीत ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि में सबसे बड़ा व्याघात उपस्थित करते हैं। तीसरे प्रकार के गीतों में नर्तकियों के गीत लिये जा सकते हैं जिन्हें गीत की दृष्टि से तो निरहस्य ही मानना पड़ेगा।

प्रायः प्रसार के सभी नाटकों में कुछ पात्र गाने वाले होते ही हैं परन्तु अलका सम्बन्ध संगीत के सांख्यिक आश से न होकर अपने भावार्थ की परिष्कृत से ही

(१) अनाठ०	२/७३	(२) वही	२/१६
(३) वही	२/१४१	(४) अना०	२/१३४
(५) वही	२/१४२	(६) वही	४/११४
(७) वही ४/२		(८) अना०	१/११
(१०) अना०	१/२३	(११) वही	२/५५
(१३) अनाठ०	१/४५	(१४) वही	१/३०
(१५) वही	१/४५	(१७) अनाठ०	१/५१
(१६) वही	२/९८	(१८) अना०	४/१२८
		(१९) अना०	२/४५
		(२०) वही	५/१४३
		(२१) वही	१/४९
		(२२) वही	२/५१
		(२३) वही	४/१२८

आन पड़ता है। क्यामा कार्नेलिया और देवेसेना ही ऐसे पात्र हैं जिनका सम्बन्ध संगीत के सांस्कृतिक पक्ष से जोड़ा जा सकता है। क्यामा नरिका है। यद्यपि उसके संगीत में निष्णात होने पर धार्ष्ण्य नहीं किया जा सकता। कार्नेलिया भारतीय संगीत का पाठ पढ़ रही है और देवेसेना को तो गाने का रोम है। 'संगीतसमार' में संगीत के तीन भग गान बाबू और नृत्य के भी घोर भी साह में संकेत किया है। सांस्कृतिक संगीत से सम्बन्ध रखने वाले 'याज्ञिक' 'मूर्च्छना' 'नीड' 'बीसे' 'सर्वो' का प्रयोग भी प्रसाद ने किया है।

11

विकटशोच अपने आपको 'पायक' बतलाता है। 'नरेन्द्र' उससे कहता है—
 "पायक नहीं हो तुम्हारे मुख पर तो कमा की एक भी रेखा नहीं है।" यहाँ गायक और सनकी कमा की एक विशेषता की ओर संकेत है। पायक का साधारण धर्म गाने वाला है परन्तु कौटिल्य ने नाटक को मनोरंजन करने के उद्देश्य से अपनी कमा बिलालाने वाले नट-नर्तक इत्यादि के साथ ही रखा है। इनको 'स्त्री सम्बन्धकारिणो' कहकर वे प्रत्यक्ष निम्न श्रेणी में रखते हैं। प्रसाद ने भी 'राज्यभी' में विकटशोच और सुरमा के ठीक इसी स्वभाव का चित्रण किया है। स्पष्ट है कि यहाँ पायक शब्द का प्रयोग पूर्णतया कौटिल्य धर्म से किया गया है।

प्रसाद के नाटकों में बीणा की ही अधिकतर चर्चा हुई है। उदयन की बीणा का नाम 'हस्तिकम्ब' था और वह बीणा बचाने में प्रवीण था। वह बीणा उदयन को वाक्यवास में एक शक्ति से प्राप्त हुई थी। इसके द्वारा उदयन हाथियों को बंध में कर लिया करता था। कथा चारित्र्यात्मक में इसका उल्लेख मिलता है।

पद्मावती के स्वामी (उदयन) उससे घसतुष्ट है। ऐसे समय में वह पने को भुमाने के लिए बीणा बचाना चाहती है। पर कई बार प्रयास करने पर भी फल नहीं होती। बार-बार बीणा उछलती है और रक्त देती है। प्रसाद का यह भाग्य परम्परागत है। बिरहिणी नायिका को अपने मन-बहुसाह के लिए बीणा बचाते हुए और वहाँ घसफस होते हुए अनेक कवियों ने चित्रित किया है। मेघदूत की बिरहिणी मधुिनी की मुद्रा का चित्रण कालिदास ने बहुत सुन्दर किया है। वहाँ

(१) अजात०	२/७८	(२) वही	२/७९
(३) अन्त०	१/६४	(४) वही	२/७९
(५) अजात०	१/६०	(६) राज्यभी	१/५२
(८) एतेन नट नर्तक पायक बाबूक वाग्भीवन कुशीनव			(७) वही ३/५३
			पञ्चक शैलिक चारपागा
			—धर्मशास्त्र २/२७/३८

(९) कथाचरित्रात्मक बुक २/ परिच्छेद ९

(१०) अजात १/५८

)

भी यह बार बार बोणा बजाने का प्रयास करती है परन्तु उससे यह मूर्खता भी बड़ी निकल पाती बिचक्य उसे पूर्ण धम्यास है ।^१ देवसेना भी बोणा के स्वर में स्वर मिसाकर बाने में धम्यस्त है ।^२ 'मजाठघनु' से यह भी ज्ञात हाता है कि बोणा के स्वरों के द्वारा वैतासिक राजदरबार में सम्राट के भायमन की सूचना भी दिया करते थे ।^३ कामिदास के धाधार पर केवल इतना ही पता चलता है कि वैतासिक सम्राटों को समय की सूचना दिया करते थे जिन्हें भिन्न-भिन्न कालों में करलीय कर्त्तव्य समय पर कर सकें । सम्भव है वे बोणा बजाकर भी यह सूचना देते हों^४ अन्यथा 'जयकार' से ही यह सूचना भी जाती थी ।^५

बीजा प्राचीन भारत का धरम्य प्रिय वाद्य-यंत्र रहा है । भरहुत और माची की मूर्तिकला में बीजा का बहुत धकूम हुआ है । जातकों में भी बीजाबीनि तुरयानी^६ जैसे वाद्यों में बीजा को धम्य वाद्य यंत्रों के समूह में प्रथम स्थान दिया गया है । पश्चिम के मूर्तों में भी बीजा के प्रचुर उल्लेख उपलब्ध होते हैं ।^७ बीजा का प्राचीन काल के नागरिक के जीवन से धरम्य गहरा सम्बन्ध था । भारतवर्ष के नागरिक के वाद्यमूह में 'नागदस्तावच्छा बीजा' को उपस्थिति धारणक थी ।^८ बसाकरुडर तो बीजा को भारत का राष्ट्रीय वाद्य मानते हैं ।^९ सम्राट समुद्रगुप्त को बीजा-बादन का इतना धनुराग था कि उनकी मुद्राओं में भी उसे बीजा बजाते हुए चित्रित किया गया है ।

धम्य वाद्य-यंत्रों में तुर्य^{१०} तथा गृवी^{११} का उल्लेख हुआ है । तुर्य का उपयोग सेना को एकत्रित करने तथा दुर्ग आर बन्द होने की सूचना देने के लिए हुआ है समीप के सिधे नहीं किन्तु प्राचीन काल में य दोनों संकीर्ण में भी प्रयुक्त होन थे । पाणिनि में 'तुर्य का प्रयोग वाद्य-यंत्र' (वेद) के लिए हुआ है^{१२} परन्तु कामिदास में तुर्य मुह में फुका जान वाला वाद्य है^{१३} जिसे धावकम सीमा कहा जाता है ।

(१) मेवहुत - उत्तरसेख/२९

(२) स्कंद. १/४६

(३) मजाठ १/१२७

(४) इण्डिया इन कामिदास (उपाध्याय) पृ १२५

(५) पालविकानिमित्त ५/१३३

(६) जातक/४०

(७) धरम्यवाची ३/३/६५

(८) काममून-सूत्र ५-१३

(९) 'नमनस इस्तु' वेद धावक म्यूजिक इन ऐंगिएट इण्डिया'

- स्टडीज इन नागमून पृ १५५

(१०) मूत्र २/४०

(११) स्कंद १/४६

(१२) इण्डिया ऐव नील द्विपाणिनि (धरम्यवाच) पृ १६५

(१३) रघुवंश ३/१३

एक स्थान पर प्रसार ने 'सोने की भाँस' का उल्लेख भी किया है। सकर ने बरमादिक सु सुधिरं कांस्यतातादिकं धनम् । अतुविचमिदं बाघ बाबिनातोचनामकम् में कांस्य-तास का उल्लेख किया है।^१ कांस्य-तास ही भाँस है किन्तु प्रसार की सोने वाली भाँस का कहीं उल्लेख नहीं मिलता।

नृत्य के वास्तवीय स्वरूप के सम्बन्ध में प्रसार ने कोई उल्लेख नहीं किया है।^२ ही नृत्य को कसा भवस्य कहा है।^३ कामसूत्र में बभित बौसठ कसाधो म नृत्यकता का स्थान महत्वपूर्ण था। संपीठ में वस्तुतः पीठ और बाघ के साथ नृत्य का होना अनिवार्य है।^४

नृत्य के विभिन्न प्रकारों में 'ताम्ब' का एक अन्तता था उल्लेख प्रसार ने किया है। ताम्ब और कांस्य नृत्य के ये दो स्वरूप धारण्य प्राचीन हैं। भरत के नाट्य-शास्त्र से ज्ञात होता है कि विपुरबाहू नाटक बहने पर सिन्धी ने तडु की सहायता से भरत को नृत्य की अनेक सुझाएँ सिखाईं। नृत्य पौरुष्य एवं उच्च था।^५ शूङ्गारादि रसों के लिए पार्वती की अभिजापा से पीछे मास्य भी नाट्य-प्रयोगों में सम्मिलित किया गया।^६

नृत्य सम्बन्धी धन्य बितने भी उल्लेख प्रसार ने किये हैं। वे सब गर्तकियों से सम्बन्ध रखते हैं। उनसे अंश यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रसार प्राचीन भारत में भी नृत्य का सम्बन्ध अधिकतर रूपाबीनाओं से ही जोड़ना चाहते हैं। धातु-निक काल तक धाते धाते नृत्यकता के साथ वेद्यों का ही मुख्यतः सम्बन्ध रह गया था। यह धरम है कि प्राचीन भारत में भी व्यवसाय के रूप में नृत्य करने वाली गर्तकियाँ होती थीं। वे व्याह पारियों तथा धन्य उत्सवों के धरहर पर बुलाई जाती थीं। बाण के उल्लेखों से भी इसकी पुष्टि होती है। प्रसार ने अपने नाटकों में सभी स्थलों पर गर्तकियों द्वारा नृत्य की आयोजना की है किन्तु नृत्य कसासंबन्धी इतने उल्लेख करने पर भी वे प्राचीन भारत की नृत्य-कता के गौरवपूर्ण स्वरूप का बिना नहीं कर सके हैं। यह उन पर स्पष्ट ही धातुनिक प्रभाव है।

(१) सूत्र २/३८

(२) हर्षचरित (संकर टीका) ४/१३१

(३) अमर ३/१७२

(४) कामसूत्र-सूत्र ३१

(५) एविचमिदं बाघ बाबिनातोचनाम अभिष्यति । इत्यादि.— नाट्य-शास्त्र ४/१३/१५ तथा ४/२५७-५८

(६) भारतीय नाट्य-शास्त्र और रंग मञ्च (पंठ) पृ २२

प्रसाद के अभिनय का उल्लेख बसन्तोत्सव के प्रसङ्ग में किया है। 'उक्त व्यवहार पर कच और देवयानी की कथा का अभिनय किया गया है। कुछ 'मूक अभिनय हुआ और सुवासिनी ने भाव-महिष्ठ माना था। सुवासिनी का कौशल ऐसा था कि उसका अभिनय अभिनय न रह कर वास्तविक बनना सा प्रतीत होने लगा।'

अभिनय चार प्रकार का होता है—प्रांगिक, नायिक, आहार्य और सात्विक। कच और देवयानी की मूकिका प्रमथ रासस और सुवासिनी ने सी है। इस आहार्य अभिनय को धोर संकेत होता है। सुवासिनी मान का मूक अभिनय करती है। यहाँ प्रांगिक और सात्विक दोनों प्रकार के अभिनयों की धोर दृष्ट भवना प्रत्यक्ष संकेत है। केवल प्रांगिक से यह अभिनय 'वास्तविक बनना, जैसे देखने में भावे वैसी ही' होना सम्भव नहीं था संवाद के रूप में नायिक अभिनय का यहाँ उल्लेख नहीं किन्तु 'भावे उद्यम का अभिनयपूर्ण मान' में नायिक अभिनय को धोर भी संकेत कर दिया गया है। परन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि प्रसाद अभिनय का कलात्मक स्वरूप चित्रण करने में सफल हुए हैं। यहाँ तो 'कच देवयानी के अभिनय के नाम पर दो स्वतन्त्र कविताओं का मानपूर्ण मान' मान है जिसका मूल कथा से कोई सम्बन्ध ही नहीं। 'वास्तविकताभिनिवेश' की नायिका मानविना भी नाटक में गीत के साथ मानपूर्ण अभिनय करती है। यहाँ भी किमी कथा की बर्णना नहीं। नाटककार ने इसे 'छासिक अभिनय' कहा है।^१ यदि कच और देवयानी की कथा का उल्लेख नहीं होगा यद्यपि इन दोनों का कच धार देवयानी की कथा से किसी प्रकार का भी सम्बन्ध होता तो हम इसे भी भाव-नायक की कानि में रख सकते।

प्राचीन साहित्य से सात हागा है कि ऐसे अभिनय उतनों के व्यवहार पर प्रेक्षापूर्वक या नायकतासाधनों में प्रवर्गित किये जाते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उस प्रकार के नृत्यगीत प्रधान अभिनय नाटकों के अधिक समीप न होकर नृत्य कला के ही अधिक समीप थे। भारत नाट्य में गीत धोर नृत्य का जो स्वरूप सामने आता है वह इस प्रकार के अभिनय के अधिक समीप है। कानिदास का मानविना का अभिनय ही इसी प्रकार का है। प्रसाद की सुवासिनी के अभिनय में न नृत्य ही है और न अभिनय ही।

(१) चन्द्र १/१४ १५

(२) अक्षरान्वित बचने शूचित सम्पन्नं
 पादप्यासो जयमनुमतस्तम्भयत् रसेषु
 पाषाणोनिर्मुहुर्भिनयस्तद् विवल्पानुवृत्ती
 भावोभावं नुवृत्ति विपयाद्यमन्त्रं स एव
 —मासिका २/२८

साहित्य सम्बन्धी उल्लेख प्रचार ने बहुत कम किये हैं। मातृगुप्त के द्वारा कविता सम्बन्धी जो विचार स्फुट किये गए हैं वे प्राचीन संस्कृति की दृष्टि से विशेष महत्त्व के नहीं हैं। मुद्गल मातृगुप्त से कहता है— 'युवराज मटारक साहित्य के पास तुम्हें रखना पड़ेगा। सम्बन्धी वृत्ति मिसने सन बायबी है स्वीकार।^१ तथा तुम जानते हो कि राजकुपा का अधिकारी होने के लिये समय की आवश्यकता है। बड़े लोगों की एक इड़ बारण होती है कि अभी टकराने दो। ऐसे बहुत धामा जाना करते हैं।^२ इन बायबी से यह निष्कर्ष निकालना जा सकता है कि कवि राज्यभय प्राप्त करने को लालायित रहते थे किन्तु राज्यभय प्राप्त करना धासान कार्य न था। राजदरबार में कवियों को धामय मिलता था इसके कई प्रमाण मिलते हैं। समुद्रगुप्त की प्रसस्ति से जान पड़ता है कि वह सुकवियों को धामय देता था और उनका सम्मान करता था।^३ कन्हूय ने राजतरंगिणी में लिखा है कि मातृगुप्त नामक कवि राज्यभय पाने की धामा में सीत धोर मूल सहता हुमा उरजयिनी के सम्राट् हर्ष निष्कामिरेक के दरबार के चकर काटता था धोर जते सर्वदा उपेसा ही मिसती रही।^४ ऐसा प्रतीत होता है कि 'स्वतन्त्र' में राज्यभय पाने के लिए टकरा जाते हुए मातृगुप्त का निज प्रचार ने जकत घटना से ही लिया है।

कार्नेलिया की उक्ति 'आह सखी ! तुम तो कवि हो'^५ यद्यपि साक्षात्क धर्म में कही गई प्रतीत होती है तथापि इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्राचीन काल में स्त्रियों भी काव्य कला में अधिकार रखती थी विशेषतः अग्निपय द्वारा धाधीनिका प्राप्त करने वाली मुबासिनी सहय स्त्रियों। सलित-विस्तर में कहा है— 'छास्ने विविज मुखसा नमिका यवैव।^६ इस प्रकार सर्व-धास्त्रों में प्राचीन स्त्रियाँ काव्य-कला से अपरिचित रही होंगी यह नहीं माना जा सकता।

(१) स्कन्द १/२२ (२) स्कन्द १/२२

(३) उत्काम्बधी विरोचाम्बुज-गुणित-गुणाज्ञाहृतानेव कृत्वा ।
विद्वस्तोके विनाधि-स्फुट बहु-कविता कीर्ति-राज्यं मुनक्ति ।
—इलाहाबाद पिसर स्टोन इ स्मिथन ।

(४) सातेनोद्वृष्टितस्व मापक्षिचिचि चिद्वन्तारुदि मज्जत ।
घांत नि स्फुटितावरस्य धमतः क्षुत्सामकंठस्य मे ।
नित्रा क्वाप्परबमनिठेव वयिता संयद्व्य कुरंगता ।
सत्याय प्रतिपास्तिव वमुषा न सीमते धर्बरी ।।

(५) अं० ४/२३१ — राजतरंगिणी-तृतीय तरङ्ग पृ १८१

(६) सलित विस्तर १२/१३६

काव्य रचना इत्यादि के सम्बन्ध में उल्लेख नहीं है परन्तु यहाँ इतना अवश्य बतल जा सकता है कि प्राचीनकाल में कामिदास और बिष्णुदास जैसे कवि और उनके प्राप्यशुभार्थों के साथ जिस प्रकार के वातावरण का विद्यमान प्राचीन काव्य कर्मों में उपलब्ध होता है अथवा इतिहास से जिस प्रकार के वातावरण का ज्ञान होता है वैसे प्रसाद अपने नाटकों में नहीं ला पाये हैं। कामिदास के काव्य तथा प्रसाद द्वारा कथित मातृगुण के मीठों में न तो वातावरण की दृष्टि से समानता है और न काव्य-कला की दृष्टि से ही। इस सम्बन्ध में प्रसन्न प्राचीन वातावरण की रक्षा नहीं कर पाये हैं।



राजनीति और शासन-प्रबन्ध

राजनीतिक घटनाओं की प्रचुरता के कारण प्रसार के नाटकों में प्राचीन
 वातावरण की सृष्टि के लिए सासक वर्ग के विविध
 राजा और उसके प्रकार के संबोधन तथा उनके शासन-प्रबन्ध से सम्बन्ध रखने
 विविध संबोधन वाले कई निवेपार्थक शब्दों का प्रयोग हुआ है। सासक, वर्ग
 में से राजा रानी तथा राजकुमारों इत्यादि के सिधे जिन
 सम्बोधनों का प्रयोग हुआ है वे ऐतिहासिक पात्रों के क्रमानुसार इस प्रकार हैं

विम्बसार के लिये — राजा महाराज राजन्, सम्राट् ममव-नरेश तथा
 राजाधिराज ।

उदयन के लिये — राजा महाराज पृथ्वीनाथ सम्राट्, तथा कौशाम्बी
 नरेश ।

प्रयेनजित् के लिये — राजा महाराज सम्राट् राजाधिराज पृथ्वीनाथ
 राजन् तथा कौशल-नरेश ।

धन्वातङ्गु के लिये — सम्राट् राजन् तथा मगध-राज ।

मन्व के लिये — सम्राट् राजा महाराज ।

नक्षत्रिभाषीष के लिये — महाराज माण्डार-नरेश एवं उत्तखिलाषीष ।

पर्वतेश्वर के लिये — महाराज पंचनभ-नरेश राजन् तथा भूपाल ।

सिक्खर और सिम्पूच्छ के लिये — सम्राट् बबन-सम्राट् ।

बन्धुपुत्र के लिये — सम्राट् ।

रामपुत्र के लिये — राजाधिराज राजा धृष्टारक परममहाराक महाराज
 तथा सम्राट् ।

बन्धुपुत्र विक्रमादित्य के लिये — राजाधिराज ।

कुमारगुप्त के लिये — परममहाराक, महाराजाधिराज धरवमेव-परम
 महैन्द्रादित्य तथा महाभाष्य परमेश्वर परममहाराक ।

स्वर्हपुत्र के लिये — परमेश्वर परममहाराक महाराजाधिराज ।

पुरवुत् के लिये — परममहाराक राजाधिराज प्रजापदित्य ।

विरवर्मा तथा बन्धुवर्मा के लिये — महाराज तथा नरेश ।

धरराज के लिये — सुकराज महाराज तथा राजा ।

- हेमचन्द्र के लिये —मानव-नरोप महापद्म राधा, मासवेरवर तथा मासवेद्य ।
 बृहस्पति के लिये —महाराज तथा राजा ।
 नरोत्तमगुप्त के लिये —गीतेन्द्र ।
 मयघ के हर्षकामीन शासकों के लिये —परमभट्टारक ।
 बानुभय के लिये —दक्षिणापचरवर ।
 हर्ष के लिये —सम्राट्, उत्तरापचरवर राजा राजाविराज तथा महाराज ।

उक्त संशोधनों पर विचार करते से यह स्पष्ट हो जाता है कि इतिहास सम्मत गुप्तकामीन राजावियों के प्रतिरिक्त अन्य सम्बोधन केवल राजा के पर्यायवाची हैं परन्तु प्रजातन्त्र की भूमिका में प्रसाद प्रजातन्त्र को उत्तरी भारत में इतिहास काल का प्रथम सम्राट्^१ कहकर सम्राट् शब्द को एक विद्यार्थ में ग्रहण करते से प्रतीत होते हैं । चन्द्रगुप्त नाटक में परवेरवर का यह वाक्य— मैं निश्चय ही कहता हूँ कि चन्द्रगुप्त प्रजातन्त्र का एकच्छत्र सम्राट् होने के उपयुक्त है^२ प्रजातन्त्र वाले अर्थ विशेष ही पुष्टि करता है । प्रसाद ने राजा महाराज नरोप जैसे सम्बोधनों का प्रयोग प्रायः सभी शासकों व सामन्तों के लिये किया है परन्तु सम्राट् के अधिकारी तो बिम्बसार उदयन प्रसेनजित् और अपने अभियेक के बाद प्रजातन्त्र, नन्द सिन्दर सिन्दर की मृत्यु के उपरान्त शिल्पकृष्ण चन्द्रगुप्त मौर्य रामगुप्त कुमार मण्ड की मृत्यु के ठीक बाद पुरगुप्त और स्वर्णगुप्त तथा हर्ष ही हुए हैं ।

शम्भेर के सातवें मंडल के बयामीसवें सूत्र में सम्राट् और स्वर्णगुप्त दोनों का उल्लेख मिलता है ।^३ जो भूमिभक्ति अभिषेक करके राजा बनाया गया हो, उसे सम्राट् कहते हैं ।^४ ऐसा प्रतीत होता है कि सम्राट् का अधिकारी भूमिभक्ति एक छत्र तथा परम अधिकारी शासक ही होता होगा । इन्हें को भारतवर्ष का प्रथम सम्राट् स्वीकार करते हुए भी^५ प्रसाद के सम्मुख सम्राट् का यही अर्थ रहा होगा क्योंकि वेरों में इन्हें परम अधिकारी और परमेश्वर्य मुक्त देवता है । संभव है कात्यायन में भी सम्राट् का यही अर्थ रहा हो यद्यपि शुक्लीति में सम्राट् से भी ऊपर विरट् तथा शार्ङ्गीय की कल्पना मिलती है । जहाँ से सामन्त से लेकर शार्ङ्गीय तक का अन्तर इस प्रकार है— तीन लाख कार्यालय कर प्राप्त करने वाले शासक को सामन्त तीन लाख से बस लाख की आय प्राप्त करने वाले को मांडलिक बस से नीचे लाख तक की आय वाले राजा नीचे से पचास लाख तक की आय वाले को

(१) प्रजातन्त्र (भूमिका) पृ० २० (२) चन्द्र० ३/१५७

(३) चन्द्रवेर मं० ७/प०५/सू० ८२ (४) "सम्भक राजत इति सम्राट्-भाष्य पृ० २०२

(५) नागरी प्रचारिणी पत्रिका—प्रसाद का छेक भारत का प्रथम सम्राट् इन्द्र

महाराज पचास से एक करोड़ तक की धान बाड़े को स्वराट् एक करोड़ से दस करोड़ तक की धान बाड़े को सम्राट् दस से पचास कोटि पर्यन्त धान बाड़े को विराट् और पचास काटि से अधिक धान बाड़े को सार्वभौम कहा जाता है। उसके बस में सप्तद्वीपा धूमो सदा सर्वदा रहती है।^१

सुप्रतीति में राजा महाराज तथा सम्राट् सम्बों का जो सूक्ष्म विवेचन किया गया है उसको देखते हुए यह कहना पड़ता है कि प्रसाद ने इन सम्बों का प्रयोग करने में निश्चित शास्त्र सम्मत आचार नहीं अपनाया है। मौर्य गुप्त तथा वर्धन समस्त भारत के न सही भारतवर्ष के विद्यास भू-भाग के स्वपति के और उनके अनुगत ऐश्वर्य का सही इतिहास है। अतः इसके लिये सम्राट् शब्द के प्रयोग में धीरिय का धर्मर्य किसी प्रकार किया भी जा सकता है किन्तु इनकी तुलना में बिम्बसार और प्रद्योतित छोटे-छोटे प्रवेशों के स्वामी रहे हैं अतः इनके लिये सम्राट् की उपाधि उचित नहीं प्रतीत होती। अजातशत्रु ने बिम्बसार के छोटे से राज्य में अग्रेसर और निष्कम्पि बलवान् को मिसा मिसा था। पर क्या इतने से ही उसे इतिहास काल का प्रथम सम्राट्^२ मान लेना ठीक होया - यह विचारणीय है।

सम्राट् सम्बोधन के लिए चाहे प्रसाद ने किसी आचार की कल्पना की करनी हो पर अन्य सम्बोधनों के सम्बन्ध में तो इतना ही किया क्या है—ऐसा प्रतीत नहीं होता। हां गुप्तकालीन मानव-शासकों के लिये महाराज^३ सम्बोधन ऐतिहासिक है और मन्वसौर के कुमारगुप्त के सिंहाजेब से इसकी पुष्टि होती है।^४

धर्मशास्त्र में राजा के लिये सर्वत्र महाराज शब्द का प्रयोग किया जाता है। गुप्तकाल में महाराजाधिराज तथा परमभट्टारक^५ की उपाधियों का प्रचार था। गुप्तकाल के बटोत्कचगुप्त अथवा धीगुप्त अपने बापको मन्त्राज^६ लिखते हैं। सामन्त मातृविष्णु की उपाधि भी महाराज ही है^७ और सम्राट् कुमारगुप्त भी कभी कभी अपने को केवल मन्त्राज लिखते हैं।^८ इनसे उक्त उपाधियों के अनिश्चित प्रयोगों की शक मिसती है। ऐतरेय ब्राह्मण में पूर्व इन्द्रिय पश्चिम तथा उत्तर के राजाओं

(१)-सुप्रतीति १८२-८६

(२)-अजातशत्रु (मूमिका) पृ० २० (३) स्कन्द० ३/३३

(४) अलेक इन्डियन्स (सरकार) नं० २१-कुमारगुप्त प्रथम और बंधुवर्मा मानव का मन्वसौर का सिंहाजेब।

(५) 'जो सर्वाधिक धीर सबसे ऊपर भद्रा का अधिकारी हो'

—कौंस इन्डियन्सोपिनियम इ इन्डियन्स (पी) ३(१) प १० १७ ३(३) पृ० २५

(६) वहीं (१३) पृ० ५४

(७) वहीं, (१८) पृ० ८८

(८) वहीं (११) पृ० ४७

की श्रमण-समाधि, नूराज स्वयंज तथा विद्या की उपाधियाँ दी गई हैं।^१ वैदिक काल से ही इन उपाधियों के स्वरूपों में अन्तर होता गया और छोटे-बड़े सभी शासकों के नाम के आगे समय-समय पर ये उपाधियाँ जुड़ती चली गईं। यहाँ तक कि मुत्तकाम में बल्लभी के भारसेन चतुर्थ जैसे साधारण शासक ने मुत्तकामाटों की तरह महाराजविराज परममहाराज परमेश्वर तथा चक्रवर्ती उपाधियाँ धारण की थीं।^२ प्रजा-प्रसाद के नाटकों में इन शब्दों के प्रयोग में यह सम्भवतया प्रस्तापान्त्रिक नहीं कही जा सकती—चाहे इनके औचित्य का समर्थन न किया जा सके। बहुतों तक इतिहास सम्मत् उपाधियों का प्रयोग प्रजास ने उनका प्रयोग सही सही किया है। अनाहरपण कुनारपुण स्वरुगुण तथा दुबदुण के लिए जमान महेन्द्रादित्य विष्णुादित्य और प्रजासादित्य उपाधियाँ इतिहास सम्मत् ही हैं। राजा महाराज देव इत्यादि उपाधियों का प्रयोगों में अधिक कोई महत्व नहीं और साधारण से साधारण राजा के आगे अनेक आध्य दाता को बने-बढ़ नामों एक बड़ी-बड़ी उपाधियों में संबोधित करते रहे हैं ऐसा इतिहास के अध्ययन में स्पष्ट हो जाता है।

इतिहासकार "रत्न" के अनुसार "विनय-विष्णु" ने राजा "देव" कहाया गया है।^३ वृषान शासकों ने तो अपने आगे देव-मुक्ता तक कहा है। कामिदाम में ने राजा के लिए "देव" संबोधन का प्रयोग किया है। तदनन्तर ही "मा" के नाटकों में भी राजा के विद उक्त संबोधन बहुत अधिक मिलता है। एक-दोनों की ऐतिहासिक उपाधि अत्र महाराज देवपुत्र गात्री एक गाहानुगात्री है।^४ महाराज का उपाधि भी उनके विषयों में मिलती है।^५ हर्षचरित में देवपुत्र को धामवराज तथा बरेन्द्रपुत्र को पौत्राधिपति कहा गया है। परुवर्मा के लिए उनमें किसी उपाधि का उल्लेख नहीं है। अतः के लिए हर्षचरित में मुद्राओं में और उनके सामग्रियों में भी महाराजविराज की उपाधि प्राप्त होती है। परन्तु इनके संबंध में प्रसाद के नाटकों में आई हुई उपाधियाँ इतिहास के अनुकूल हैं।

प्रसाद ने राजा के लिए अधिक उपाधियों का उल्लेख नहीं किया है। प्रधान राजा को वे महादेवी तथा साम्राज्यी कहते हैं और सामान्य राजा को राजपती

- (१) दो विधिविज्ञेयन चौक इ दिया—पृ० ११ (२) (अशोड) III १(३६) पृ० १८३
 (३) दो विधिविज्ञेयन चौक इ दिया—पृ० ६० (४) पाकुलम—अ ५/६९-६९
 (५) समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति ।
 (६) रत्न मणवानमान तथा विष्णु के लेख—के आर ए एम १८६० पृ० ६३६
 १८६६ पृ० ३५७

राजमहिषी, महिषी । भारतीय राजनीति में रानी का स्थान
 प्राचीन
 अत्यन्त महत्वपूर्ण है । यह राजा के साथ ही अभिषिक्त की जाती
 थी । प्राचीन प्रमाण रानी को "महिषी" लिखते हैं तथा
 अन्य रानियों को प्रजावती ।^१ कौटिल्य महिषी तथा कुमारमातृ का उल्लेख करते
 हैं ।^२ वातक ग्रन्थों में भी प्रधान रानी के लिये "रज्य-महिषी" तथा अन्य रानियों
 के लिये "प्रजावती" (स-प्रजावती)^३ शब्दों का प्रयोग हुआ है । साम्राज्यी प्राचीन
 संपाधि है और उसका संबंध सम्राट और साम्राज्य से स्पष्ट है । प्रधान रानी के लिये
 "महादेवी का प्रयोग मुत्तकाम में ही विशेष रूप से प्रचलित हुआ प्रतीत होता
 है । मुत्तकालीन सिंहासनों में महादेवी कुमारदेवी महादेवी मनमथदेवी तथा
 महादेवी प्रबुदेवी के नामों का उल्लेख हुआ है । प्रसाद ने बीड काब मौर्य-
 काल तथा अन्य सभी कालों में "महादेवी" संबोधन ही रखा है । यद्यपि प्राचीन
 वातक तथा कौटिल्य की साक्षी के अनुसार अन्य महिषी संबोधन ही उचित प्रतीत
 होता है ।

प्रसाद ने साधन प्रबन्ध तथा अन्य विषयों में भी रानियों को काफ़ी अधिकार
 प्रदान किये हैं । सम्मान की दृष्टि से महादेवी का स्थान सबसे ऊँचा प्रतीत होता
 है और यह स्वाभाविक ही है । राजनीति में राजमाता की स्थिति का एक विशेष
 महत्व है । "मैं राजमाता हूँ । प्रजात की धिंसा देने का अधिकार मेरा है"^४ सम्मान
 की उक्त बर्णना से ज्ञात होता है कि राजमाता को ही राजकुमार की शिक्षा इत्यादि
 के सम्बन्ध में पूरा अधिकार रहता था । इससे यह भी प्रतीत होता है कि महादेवी
 ही राजमाता हो यह आवश्यक नहीं क्योंकि महादेवी बासवी भी और क्षमता राज
 माता । वैसे ऊपर बताया गया है 'महिषी' राजा के साथ ही अभिषिक्त की जाती
 थी और उसी को राजा के साथ सिंहासन में बैठने का अधिकार भी दिया जाता था ।
 यही कारण है कि उसकी पूर्ण संपाधि पट्ट-महिषी अथवा पट्टामहादेवी थी । पट्ट का
 सम्बन्ध साधन से था । सम्भवतः साम्राज्यी के मस्तक पर एक विशेष पट्ट भी महादेवी
 पर को सूचित करने के लिए बांधा जाता था । इतिहास से ज्ञात होता है कि प्रसाद
 के माटकों के किसी भी काल में रानी स्वतन्त्र रूप से साधन करने की अधिकारिणी
 नहीं समझी गई क्योंकि राजनीति के धारकों तथा अन्य विचारकों के मत से स्थियों

(१) इच्छिया एव नोन दृ प्रासिनि (धर्मशास्त्र) पृ० ४०४-५

(२) धर्मशास्त्र (कौटिल्य)

(३) वातक २/६३२

(४) प्रजात० १/९७

में अपनी प्राकृतिक सीमाओं के कारण अपने शासक बनने की क्षमता नहीं होती।^१ परन्तु इस नियम के कुछ अपवाद भी मिलते हैं। अग्रपुत्र प्रथम ने बिम्बसिं राजा कुमारदेवी के साथ सम्मिलित रूप से शासन किया था।^२ बाकायक राजा प्रमावती पुत्र ने अपने पुत्र बिबाकरसेन तथा प्रवरसेन द्वितीय के बयस्क होने तक लगभग बीस वर्ष तक शासन किया था।^३ इन अपवादों के ही आधार पर ही सम्भवतः प्रसाद के नाटकों में छत्रनाथ और धनन्तदेवी दोनों ने अपने पुत्रों के लिए शासन सूत्र संभाला है। छत्रनाथ एक बार परिषद की मेजों के रूप में^४ दूसरी बार भजातण्डु के बन्दी होने पर मयक की साक्षिका के रूप से राज्य की देखभाल करती है,^५ और धनन्तदेवी पुरपुर के निर्भीक और विनाशी होने के कारण स्वयं उसके अधिकार धरने हाम में ले लेती है।^६ ये दोनों वस्तुतः महादेवी नहीं हैं पर बिजय परिस्थितियों में प्रसाद ने इनको महादेवी कहना दिया है। महादेवी वासवी के बिम्बसार के साथ बर्हीपुह में होने के कारण देवदत्त छत्रनाथ 'को महाराणी' सम्बोधन करता है^७ और मटार्ज एवं धैमिक धनन्तदेवी को महादेवी स्वीकार करते हैं।^८

अपने राजमन्दिर की सीमा में प्रसाद की महादेवी एकच्छत्र स्वामिनी है और वहाँ स्वयं सम्राट का भी अधिकार नहीं। वासुदेवता का कथन—'घापको मेरे इस राजमन्दिर की सीमा के भीतर इस तरह हत्या करने का अधिकार नहीं है। मैं इसका विचार करूँगी—'^९ महादेवी के उस अधिकार की धोर स्पष्ट संकेत करता है। कावम्बरी में बिजय मरिच को महादेवी की उपाधि प्रदान करने के साथ स्वयं सिंहासन प्रदान करता है जिसमें छत्र चक्र और रथ दोनों सम्मिलित हैं। इसके पठिरिक्त उसे समस्त अन्त-पुर पर एकच्छत्र अधिकार भी प्रदान किया जाता है।^{१०} इस प्रकार वायु के अनुसार भी महादेवी का अन्त-पुर पर निर्बाध अधिकार स्थापित किया जा सकता है।

प्रसाद के नाटकों से स्पष्ट है कि राज्यशक्ति पिता से पुत्र के हाथों में धाती थी।^{११} राजकुमारों की शिक्षा वीला का उचित प्रबन्ध किया जाता था।^{१२} उनको योग्य शासक बनाना राजा का कर्तव्य होता था।^{१३} राजकुमारों की विधेय शिक्षा

(१) धर्मिक निकाय १/१५-१६ धर्मशास्त्र ४/१

(२) नाटक इन गुप्ता एव (सास्टोर) पृ० २३२

(३) वही (सास्टोर) पृ० २३२

(४) अजात १/१६ (५) वही १/१११

(६) सन्द १/६१-६३

(७) अजात २/१४ (८) सन्द ३/१४ (९) अजात १/१०

(१०) (कावम्बरी बाण) पृ० १४० (कावेन-पामह)

(११) अजात १/५१-५३ (१२) वही १/५३

(१३) वही १/५३ →

के लिए पाँच वर्ष तक वसतिना जैसे विद्यापीठों में अध्ययन करना राजकुमार पड़ता था ।^१ बचपन में राजकुमार की शिक्षा वीक्षा का अधिकार श्रीर युवराज राजमाता की होता था ।^२ साधारण 'नीति विद्या' के आचार पर 'व्येष्टपुत्र' को ही राजविहासन पर बैठने का अधिकार मिलता था ।^३ मगध पुप्तकुसुम में उत्तराधिकार का यह नियम कुछ 'अभ्यन्तस्थित' हो जाता था । सम्राट उत्तराधिकार की व्यवस्था कर लिया करते थे और वृष्णि-कुसुम के अधिकारी श्रीर प्रजा वर्ग उस व्यवस्था का सम्मान करता था । यह राजा की इच्छा पर था कि वह अपने अभ्यन्तस्थित श्रीर नीच पुत्र को 'त्याग्य-पुत्र' घोषित कर उसे युवराज पद से वंचित करदे । यदि वह विवाह ही न करे बचना पुत्रहीन रहे तो उसके उपरान्त छोटे भाई को शासनाधिकार मिल सकता था ।

बालप्रस्थाभ्रम से सेने से पूर्व राजा परिषद का आह्वान करके पुत्र का यौव-राज्यविरैक कर देता था । युवराज मंत्री परिषद की सहायता से राज्य का कार्य चलाता था । सम्भवत युवराज के विवाह के सम्बन्ध में राजा की स्वीकृति आवश्यक होती थी ।^४ अपराज करने पर युवराज भी बन्ध व्यवस्था से ऊपर नहीं उभर पाता था ।

प्रसाद ने उत्तराधिकारी कुमार के लिये युवराज तथा अन्य स्थिति में केवल राजकुमार शब्द का प्रयोग किया है ।^५ स्मृति तथा जातक-ग्रन्थों से इस बात का ज्ञान मिलता है कि राजा के उपरांत उसका पुत्र ही विहासन का अधिकारी होता था ।^६ अतएव आह्वान से भी पैतृक राज्याधिकार सम्बन्धी संश्लेष बूझ जा सकते हैं ।^७ रामायण महाभारत काल के सभी संश्लेष इस परम्परा का समर्थन करते हैं । प्रसाद के सभी ऐतिहासिक कथानक इस सम्बन्ध में ऐतिहासिक तत्व को गानकर ही चले हैं ।

जातक प्रथों में राजकुमारों की शिक्षा सम्बन्धी प्रश्न सामग्री उपलब्ध है । उनके लिए 'उप्यहितसिन्धी'^८ तथा 'सम्बन्धिसु निष्प्रति पत्वा'^९ जैसे प्रयोगों से यह स्पष्ट होता है कि वे सब सिन्धी में निष्ठात होते थे । शिक्षा के सम्बन्ध में विचार

(१) चन्द्र १/७५

(२) घनात० १/२७

(४) स्कंद० १/१२

(६) जातक ४/१०

(८) सिन्धि जातक—४९६

(३) प्र० १/१७

(५) बही १/१५ १/३६ १/३७

(७) अतएव आह्वान ६-६/१/१

(९) समन्वय जातक-५२६

कठे हुए बताया जा चुका है कि विविष्ट सिसा प्राप्ति के लिये लक्षसिसा जैसे प्रतिष्ठ
 बुद्धुओं में धर्मयत्न करना होता था। कौटिल्य की भासा भी है कि राजकुमार की
 वर्षभे निदान और विनय से युक्त होता चाहिये।^१ पति एव सम्राट की उपस्थिति
 में भी राजमाता को ही राजकुमार की सिंगा बीसा का अधिकार होता था या नहीं
 इस सम्बन्ध में कोई निश्चित सूचना इतिहास से नहीं दी जा सकती। पति की मृत्यु
 के समय राजकुमार के अल्पवयस्क होने की स्थिति में जो महादेवी राजमाता के रूप
 में शासन करने की समता रखती थी वह धर्मय ही बुद्धराज की सिंगा बीसा का
 प्रबन्ध भी करती होगी परन्तु अन्य स्थितियों में भी ऐसा ही होता था यह निश्चित
 रूप से नहीं कहा जा सकता। कालिदास के अनुसार तो पुत्र की जिसा बीसा का
 उत्तरदायित्व पिता पर ही होता था।^२

उपमायन से ज्ञात होता है कि वनरज ने राम को युवराज पद देने का निर्णय
 केवल ज्येष्ठ होने के माते ही नहीं किया था बल्कि वीर-भावपय की इच्छा और प्रार्थना
 पर ही उन्हें बुद्धराज कोपित किया गया^३ राम की योग्यता ही इस चुनाव का
 कारण थी।^४ ज्येष्ठ-नाम से पिता द्वारा बुद्धराज के चुनाव से सम्पत्ता ही कसौटी
 थी। बातर्की के अनुसार ज्येष्ठ पुत्र को बुद्धराज धमका "उपरामा" की तथा दूसरे
 पुत्र को 'सेनापति' की उपाधि दी जाती थी। राजा के उपराम्त उपरामा राजा
 बना दिया जाता था और सेनापति उपरामा बन जाता था।^५ पाणिनि के अनुसार
 भी राज महिषी (प्रसाद-महादेवी) के पुत्र को बुद्धराज कोपित करता था। पाणिनि
 उसे 'पार्यकुमार' की उपाधि से अभिहित करते हैं।^६ कौटिल्य भी धर्मशास्त्र ऐश्वर्य
 ज्येष्ठ पात्रि तु पूज्यते' की भासा करते हैं।^७ कालिदास के अनुसार तो राजा का ज्येष्ठ
 पुत्र ही बुद्धराज होता था।^८

बातर्की के अनुसार ज्येष्ठ पुत्र के राजा बनने के उपरान्त कनिष्ठ पुत्र को
 उपरामा की उपाधि देने जाने से माई के बुद्धराज बनाये जा सकने की सम्भावना
 स्पष्ट है। बुद्धराज की 'स्व कनिष्ठं पितृभ्यं बानुजवापय ममवम' यह मुक्ति भी
 अनुभव को बुद्धराज बनाने का समर्थन करती है।^९ 'स्कंदपुराण' नाटक में स्कंदपुराण का

(१) धर्मशास्त्र १/११/२८

(२) अग्निवितास्त्रं पितृभ्यं-रघुवंश ३/३१ (३) 'अहोर्ग्राम परम प्रीत' प्रभावराजानुभो
 यम याने ज्येष्ठ भियं पुत्रं श्रीवराज्यस्वामिच्छय ।"—उपमायन ३/२

(४) हिन्दू पीठिका ४ २८१

(५) बातर्क ४/३०

(६) धर्मशास्त्र १/१८/५४

(७) रघुवंश ३/३५

(८) इन्द्रिया ऐव मोन द्व पाणिनि

५ ४०५

(९) बुद्धराज २/१७/१८)

घासन करना इतिहास सम्मत है। राम्यवर्द्धन की मृत्यु होने पर हर्ष का सिंहासनाधीन होना भी ऐतिहासिक बटना है।

प्रसाद ने गुप्तकाल के 'धर्म्यवस्वित उत्तराधिकार नियम' का भी उल्लेख किया है और स्कंदगुप्त तथा पुर्युप्त एवं चक्रगुप्त व रामगुप्त के उत्तराधिकार सम्बन्धी सर्वत्र इसके प्रमाण स्वल्प रहे गये हैं। पिता द्वारा उत्तराधिकार के नियम सम्बन्धी कई उल्लेख सिमा लेखों में प्राये हैं, कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं —

श्री समुद्रगुप्तस्य पुत्रस्तत्परिपृहीतो ॥^१

धामो हीतपगुह्य माव विद्युतैस्त्वभितै रोमभि
सम्येपूष्कवसितेषु तुस्य कुसव म्भानानमोवीक्षित
स्नेह भ्यामुठितेन वास्य गुरुणा तत्त्वोभिरण चक्षुपा
य पित्रामिह्यतो निरीक्ष्य निश्चिमां पाह्येभमुर्धामिति ।^२

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों से ज्ञात है कि किस प्रकार मुबराब पद के लिए योग्य राजकुमार का ही चुनाव किया जाता था। इसमें ब्येष्ट प्रबवा कनिष्ठ का प्रश्न जनवत स्वतः ही नहीं उठना होगा। इसी आधार पर इतिहासकारों ने राम गुप्त की समस्या को हल करने का प्रयास किया है। और प्रसाद ने भी इसी परम्परा एवं प्रवृत्ति को गुप्तकाल में स्थान दिया है। इसी को उन्होंने 'धर्म्यवस्वित उत्तराधिकार नियम' कहा है।

उक्त उदाहरण में "सम्येपूष्कवसितेषु" से ज्ञात होता है कि उक्त चुनाव घमा में होता था एवं सम्यों को (जिसके घन्तर्गत मंत्री एवं अन्य प्रमुख नागरिक भी होते थे) गुप्त सम्राट की घोषणा विरोधार्थ ही होती होगी। संभव है कि राम के चुनाव की तरह गुप्तकालीन मुबराब के चुनाव में मंत्रियों एवं अन्य प्रमुख व्यक्तियों घबवा जनपदों का भी हाथ रहता हो।

प्रायसवास से ज्ञात होता है कि पीर-जानपदों की आज्ञा यौबराज्याभियेक के लिए आवश्यक थी।^३ इस तरह का कोई स्पष्ट उल्लेख न करने पर भी प्रसाद ने अजातशत्रु के यौबराज्याभियेक के सम्बन्ध में 'परिपद् का आह्वान' धारण करवाया है। इतिहास से ज्ञात होता है कि परिपद् मुबराब के पद के लिए स्वीकृति देने से लेकर यौबराज्याभियेक के उत्सव तक का कार्य करती थी।

(१) सीलेक्ट इंस्क्रिप्ट्स (सरकार) नं० २८ (स्कंद का मिटारी का लेख)।

(२) बही (सरकार) नं० २५४ (समुद्रगुप्त की प्रमाण प्रशस्ति)।

(३) हिन्दू पीसिटी २१०

वीरराज्याभिषेक के समारोह की विधि के सम्बन्ध में प्रसाद मौन है। कामिदास ने वीरराज्याभिषेक का विवरण दिया है।^१ उपाध्याय के अनुसार उक्त धर्मिक के उपरान्त प्रभुसत्ता प्रसव युवराज को प्राप्त हो जाती थी।^२ प्रसाद के नाटकों में प्रभुसत्ता युवराज को प्रदत्त मिलने के स्थान पर या तो अजातशत्रु की तरह पूर्णतः प्राप्त हो गई है^३ या पुरसुप्त की तरह अल्पकाल ही नहीं प्राप्त हुई।^४ बौद्ध धर्म के अनुसार अजातशत्रु ने विचकार को बन्दी कर राजद से लिया था। "अजातशत्रु" नाटक में अजात को युवराज पद देते ही विचकार ने स्वयं संपूर्ण प्रभुसत्ता उसे सौंप दी। "सर्वरसुप्त" नाटक में पुरसुप्त को युवराज बनाना 'मात्री साहाय्य की नीति को 'बोधया' मात्र है। अतः प्रभुसत्ता के स्थानान्तरण का प्रश्न ही नहीं उठता।

गुरुनीति "मंत्रसयेश्वरपुत्रान" की धाता द्वारा राजपुत्रों की उचित रक्षा की ओर संकेत साध करती है।^५ कामिदास ने भी युवराज के साथ ससर्पि सहायता एवं सेवा के लिए मृत-युव भक्तिपुत्र एवं मामस्तपुत्रों का रहस्य का सम्बन्ध मिलता है।^६ राम्यवदन और हर्ष के साथ रहने के लिए अश्वत्थ के रूप में मामय राजकुमार कुमार गुप्त और साधकगुप्त नियुक्त किय गये थे।^७ "अजातशत्रु-नाटक में सेनापति शीर्ष कारायण का युवराज विचकार से—"राजकुमार प्राय अकेल क्यों है?" यह प्रश्न उक्त सर्दर्म के प्रकाश में स्पष्ट हो जाता है। प्रगाद में अजातशत्रु नाटक में प्रनेनजित के मुक्त से युवराज विचकार के लिए कहलसाया है—"क्या भेदिये की तरह मयातक ऐसी बुराबाटी सन्तान अपने माता पिता का ही बन्ध नहीं करेगा।"^८ इसी प्रकार की एक अल्प स्वरगुप्त नाटक में भी कहाई गई है—"राजपुत्र भंडिय है। इनसे पिता को सर्वैक सावधान रहना चाहिए।^९ यहाँ इसे कीटिस्य की उचित बतलाया गया है इसमें उल्लेह नहीं कि कीटिस्य और युक्त दोनों ही राजा को राजपुत्रों से उग्रप रहने की सलाह देते हैं—"विशेषतः बन्धु पुत्र को पिता से 'विराग' हो।"^{१०} अथवा राजा

(१) विक्रमोर्वशीय ११५-११८ एतुसंग ३/१५

(२) इतिहास इन कामिदास पृ २३

(३) अजात २/१२-१३

(४) सर्व ५/१५२

(५) गुरुनीति २/१७ (६) एतुसंग ५/१५-७५ ३/२० ३/३०

(७) हर्षचरित ४/११७ (८) अजात १/५२

(८) स्वर १/१५

(१०) अर्धशास्त्र १/१७/४२

जपने योग्य पुत्रों को छोड़कर इतर की यत्न से रक्षा करे।^१ यही नहीं भारद्वाज का उद्देश्य कर कौटिल्य ने राजपुत्रों को 'बनक-महाः धीर' 'कर्कटक' 'सबर्माण' भी कहा है।^२ शुक्र भी उन्हें 'विह्वलाया इव' कहते हैं।^३ परन्तु राजपुत्रों की तुलना बेड़िये से इन दोनों में से किसी ने भी नहीं की है। अतः इस प्रकार की उक्ति को एक ठो कौटिल्य की उक्ति बतलाना ही भ्रमपूर्ण है और यदि भारद्वाज और शुक्र के रूपन के अनुसृत्य ही इस उक्ति को किसी प्रकार कौटिल्य की मान भी लें तो प्रसेनवित की उक्ति को भी कौटिल्य के रूपन के समकक्ष रक्कना पड़ेगा और ऐसा करने में ऐतिहासिक प्रमाद हो जाने की शार्संका है।



(१) शुक्रनीति

२/१७-१८

(२) सर्वसारन

१/१७/६

(३) शुक्रनीति

२/१६

८

राज्याभिषेक

प्रसाद के माटकों में राज्याभिषेक सम्बन्धी विवरण केवल एक दो ही स्वरों पर प्राप्त होता है। चन्द्रगुप्त में मन्द के बन्ध के उपरान्त चामरस राजसस से कहता है सिंहासन धूम्य नहीं रह सकता। पवारस राजसस सम्राट का अभिषेक कीबिए उधस चन्द्रगुप्त का हाथ पकड़ कर सिंहासन पर बैठाता है' और सम्राट की बयनयकार के उपरान्त चामरस चन्द्रगुप्त को उपदेश देता है स्मरस रक्षता होवा कि ईश्वर ने सब मनुष्यों को स्वतन्त्र उत्पन्न किया है परन्तु व्यक्तिगत स्वतन्त्रता नहीं तक ही जा सकती है जहां तक दूसरों की स्वतन्त्रता में बाधा न पड़े। यही राष्ट्रीय नियमों का मूल है। बस चन्द्रगुप्त लोकश्रुति साधन का परिणाम तुमने स्वयं देख लिया है। धर धर्म परिषद की सम्मति से मयस और धामावर्त के कम्बाल में सनो।" १ स्कंद गुप्त का अभिषेक उग्रपानी की राज सभा में होता है। 'योविन्दगुप्त और बंधवर्मा हाथ पकड़कर स्कंदगुप्त को सिंहासन पर बैठाते हैं भीम उभर केकर बैठता है देवदेना चमर करती है परकप्यस केकर मधुवर्मा बड़े होते हैं पैचकी राजतिलक करती है योविन्दगुप्त लडग का उपहार देते हैं चक पकड़ोकि राजदण्ड देता है 'परममहाराज महाराजाधिपति स्कंदगुप्त की बय बोली जाती है। इसके उपरान्त मरी लमा में सब के सम्मुख योविन्दगुप्त को धर्मशोभन कर स्कन्दगुप्त धार्काला प्रकट करता है धार्ये इह मुकठर उत्तरधाविरस का सत्य से पालन कर सङ्ग और बार्बपाट्ट की रजा में सर्वस्व मर्पय कर सङ्ग - --- और धपने करीष्य से स्वदेश सेवा से कभी विचलित न होऊँ।" १

भारत में राज्याभिषेक का प्रचलन वैदिक काल से चला आ रहा है और ब्राह्मण-ग्रंथों और पुराणों में राज्याभिषेक सम्बन्धी पर्वोत्त विवरण मिलते हैं। वैदिक और ब्राह्मण कालों में राज्याभिषेक का स्वरूप इस प्रकार था राज्याभिषेक का प्रधान कृत्य ऐश्वर्यहाभिषेक कहलाता था। ऐश्वर्य ब्राह्मण के अनुसार ऐश्वर्यहाभिषेक के पूर्व धर्मिय को अज्ञापूर्वक राजस केनी पढ़ती थी 'यदि मे तुम से डोह कऊँ तो मेरे धारे पुष्य मेरा बर्ष मेरी धानु और मेरी प्रजाएँ मरघे मे बंधित कर दिया जाऊँ।"

- (१) चन्द्र १/२१२ (२) स्कंद २/७६
 (३) 'ऐश्वर्येण महाभिषेकेन धर्मिय धारयित्वा धर्मियिषेठ व इत्यात् सङ्ग अथवा बंध राजीमवापेइ बंध श्रैतासि तनुमयमन्तेरेलेप्टापुत' के लोक मुकठनाडु प्रजा वृ कीया यदि ते इहयेमिति
 ऐश्वर्य ब्राह्मण ८/२५

तब वह ऐश्वर्याभिवेक के लिए एक सोने के बाल पर खड़ा होता था और पुरोहित पवित्र मन्त्रोच्चार के साथ ही भवना सी छिद्रों वाले धर्म्य सुवर्ण पात्र द्वारा समस्त तीर्थों समुद्रों एवं नदियों के पावन जल से उसका अभिवेक करता था। अभिवेक के उपरांत जब वह सील पग चमकर काष्ठ सिंहासन (घासंबी) पर धारक होता तब पुरोहित उससे कहता 'तुम्हें यह राज्य दिया गया है। तुम्हें इसका संवाचक और नियामक है। तुम्हें यह धीर (इस राज्य का) चारण करने वाला है तुम्हें यह राज्य कृपि के लिए, कल्याण के लिए, संमति के लिए और पोषण के लिए दिया गया है।' इसके पश्चात् अभिविषय सम्राट मगर यात्रा करता। वहाँ से सीटने पर उसकी पीठ पर राजदण्ड से घावात किया जाता जिसका अभिप्राय यह होता था कि राजा भी दण्ड से बाहर नहीं है। जन्म में पुरोहित राजा को समुद्रिबद्ध क पवित्र अर्घ्य देता था।^१ वैदिक काल से जैसे प्राते हुए इस अभिवेक का स्वल्प बोड़े से परिवर्तनों के साथ छत्रपति धिवाभी के समय तक चमता रहा।^२ बस्तुतः भारतीय प्रथा से मूर्खान्त्रिपिस्त सम्राट के राज्याभिवेक को विशेष महत्त्व दिया गया है। राजठिलक प्रवशा राज्यारोहण को नहीं। अभिवेक में पत्नी के द्वारा सिंघन प्रावश्यक है। अभिपुत्रण में राज्याभिवेक का विस्तृत विवरण है। उसके अनुसार चार विभिन्न वर्णों के प्रमात्य बेटों से राजा को स्नात कराते थे।^३ प्रसाध के नाटकों में उक्त दोनों प्रवसरों पर अभिवेक का उल्लेख होते हुए भी अभिवेक संस्कार का पता तक नहीं। अभिवेक करने वाले चार प्रमात्यो मे से एक ब्राह्मण होता था।^४ ब्राह्मण्य संश्रुप्त का अभिवेक करने के लिए राजस को आदेश देता है। राजस प्रमात्य भी है और ब्राह्मण भी। ('यद्यपि प्रसाध मे ससे विचारों में ब्राह्मण होही और बौद्ध विहित किया है तथापि स्वर्ण राक्षस के अनुसार वह बौद्ध पर्ये का उसकी सामनिक धीमा तक ही स्वीकार करता है।^५) अतः कहा जा सकता है कि ब्राह्मण प्रमात्य को ही अभिवेक का आदेश देना सामान्यप्रचलित है। (यके ही अभिवेक किया न हो)

(१) इत्यं ते राट् । इत्थ्यै त्वा क्षेत्राय त्वा रवेत्या पोषाम त्वा यजुर्वेद १/२२
इत्यं ते राट् मन्त्राणि यमनो प्रु बौद्धि बस्य
इत्थ्यै त्वा क्षेत्राय त्वा रवे त्वा पोषाम त्वा ।
सतपथ ५/२ १/२५

(२) हिन्दू पौमिटी 'जायसबाम' २३१

(३) हिन्दू पौमिटी २५१

(४) अभिपुत्रण २२ २१८ ध १८ मेजिये हिन्दू सम्प्रदाय । मुसर्जी पृ १०३
'ब्राह्मण सत्रिय वैश्य केवल हीम अभिवेक करते थे ।

(५) अत्र १/७१

(६) अत्र २/७१

यहाँ यह कहना अनुचित ब होना कि घटना कम के अनुसार ही राजत को उपर्युक्त धारण दिया गया है किसी राष्ट्रीय-परम्परा को ध्यान में रखकर नहीं। स्कंदगुप्त म धर्मिण्ड का धारण भी नहीं है वहाँ राजघाटा देवकी स्कंद का 'राजविलक' करती है। बस्तुतः राजधर्मिण्ड मा राजविलक पारिवारिक कार्य नहीं राष्ट्रीय कार्य का। राजविलक यह क्रिया भी बताता तो राजपुरुषोहित द्वारा ही। राजगुण युग में राजपुरुषोहित ही राजविलक करणा था। 'वाम' के अनुसार चन्द्रापीठ के योगराजधर्मिण्ड के समय राजी निलासवती ने शुभचरण से कुबराज का अनुकेपन किया।^{१५} अनुकेपन को विचक का स्वरूप मानना युक्तिमयत नहीं प्रतीत होता। चन्द्रगुण और स्कंदगुप्त को ह्रास बकर कर सिंहासन पर बैठाने म राजा रोहण का संकेत मिलता है^{१६} पर वह प्रथा मो इस रूप म प्राचीन तथा कही जा सकती। धर्मिण्ड के प्रसंग में इस प्रकार की प्रथा का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। प्राचीन काल में राजा स्वय ही 'मासंधी' में धारोहण करता था। केवल 'विजयोर्ध' धीय में कुबराज धानु को मंत्रपीठ में बैठाने का उल्लेख धर्मिण्ड मिलता है पर यह उल्लेख भी राजधर्मिण्ड का है।

भारतीय परम्परा के अनुसार 'प्रतिष्ठा' धर्मिण्ड के पूर्व करनी होती थी। प्रसाद के नाटक में प्रतीक्षा का कहीं उल्लेख नहीं है परन्तु स्कंदगुप्त म प्रतीक्षा का स्वरूप धर्मिण्ड मिलता है और वह भी धर्मिण्ड क पश्चात्। स्कंदगुप्त धर्मिण्ड के अराजक गुहमार उत्तराधिविज का धरय से पालन करने और धर्मिण्ड की राजा में सर्वस्व धरय करने धर्मिण्ड की सामना करता है। यह कामना ही ऐश्वर्य बाण्य को धरय के समय राजी जा सकती है जिसे कालांतर म प्रतिष्ठा कहा जाने लगा।^{१७} किन्तु यह निदिधन का से नहीं कहा जा सकता है कि उक्त कामना की पोषणा करते समय उनके मानस में 'ऐश्वर्य बाण्य की धरय रही होगी। मभव है कि स्कंदगुप्त को धारिणिक विनोयता ही उसकी 'कामना' का कारण है। स्कंदगुप्त नाटक में इस प्रकार की प्रतिष्ठा तो नहीं है किन्तु धर्मिण्ड क शोचन 'पापम' के अत्यन्त समीप है। यह काल म राजन की बात है कि यहाँ धारण्य का कवन प्रकाशन के धारुणिक विद्वानों का धरयण करता प्रतीत होता है। 'स्मरण रचना' द्वारा कि ईश्वर व गज मनुष्यों को स्वतन्त्र उत्तरण दिया है परन्तु धर्मिण्ड स्वतंत्रता नहीं उठ ही जा सकती है वहाँ कुबराज की स्वतन्त्रता में बाधा न पड़े ठीक रही

(१) कादम्बरी 'वाम

(२) पृष्ठ १, १६२ स्कंद २/७६

(४) हिन्दू पीपिटी बापसवाल पृ १४४

बात को इस धातुनिक मुम में प्रकार कहा गया है—'सब व्यक्ति बन्ध से स्वतन्त्र उत्प
 होत हैं किन्तु सर्वत्र बन्धन में रहते हैं। 'व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और सामाजिक स्वतन्त्रता
 की सभी धातुनिक प्रजातन्त्र में 'अधिकार और कर्तव्य' के सिद्धांतों के पूर्णतः
 अनुकूल हैं।' नाटक के बटना क्रम को देखते हुए तो ज्ञानभय की यह उक्ति उचित
 प्रतीत होती है किन्तु यह न तो एक विद्यालय छात्रागम्य की नीति के पोषक ज्ञान
 के लिए और न भारत के एकच्छन्न सम्राट चंद्रगुप्त के लिए ही सोमनीय है। यत
 हम यह कह सकते हैं कि यहाँ भी अभियेक की 'प्रतिज्ञा का स्वरूप नहीं मिलता।

राजकीय समय के प्रवर्धन एवं अभियेक के लिए 'उष चंवर इत्यादि क
 छच्छेक धर्म प्राचीन प्रयोगों के अतिरिक्त अग्निपुराण 'आतकप्रश्न' अर्धशास्त्र' ए
 हर्षचरित' में भी हुआ है। गुप्तकाल में प्रागे जमकर हर्षकाल में और उसके प
 बाद राजपूत काल में उष और चंवर राजकीय विन्धु माने जाते रहे हैं। 'हर्षचरित' से
 तो यह भी ज्ञात होता है कि प्राचीनता स्वीकार कर लेने वाले राजा हर्ष की 'आया
 सेवा' स्वीकार करने में अपना मौरव समझते थे। 'स्कंदगुप्त' नाटक में भी स्कंदगुप्त
 के अधीनस्थ मातृवाधिराजि बंधुवर्मा इत्यादि सम्राट के अभियेक के अक्षर पर नाम
 उचित सेवा करते हैं।

राजा को 'दण्डधर' भी कहा गया है। क्योंकि चारों बंधों और धामय के
 भावों का साधन दण्ड से ही करता है।' पर राज्याभियेक के समय यह दण्ड अक्र-
 पालित जैसे साधारण पदाधिकारी द्वारा राजा को बिलाया जाता होगा यह बात
 अधिक विरहसनीय नहीं। राज्याभियेक के उपरंत बंधियों को मुक्त करने की प्रथा
 भी अत्यन्त प्राचीन है। प्रसाद का स्कंदगुप्त राजदण्ड धारण करने के पश्चात् तुरंत
 ही श्यायाधिकरण में दण्डप्रतिष्ठा का उपयोग करता है। अस्तुतः बंधियों का मुक्त करना
 दण्ड का सूचक भी है। यह राजा के दण्ड धारण करने की प्रथम हर्षपूर्ण सूचना है।
 नाटक में देवकी स्कंध से अतुरोध करती है अस्तु भाव तुम्हारे अभियेक में एक बूढ़

- (१) 'मैंन इन बोनी एंड द इन एन्डोर्शर इन बन्ध
- (२) विविध निबन्धों के इन्डिग्न्युमल राष्ट्रस ।
- (३) अज्ञात ३/१२९ स्कंध २/१७
- (४) गीत वाद्यादि निर्वोर्ध्वधामर अजनादिमि' अग्निपुराण २२/२५/२७
- (५) पञ्चमुक्त आतक २/१३५ पृ ८० निबान कथा 'आतक बौद्धम १ पृ ६६
- (६) तेषां बाह्यचार्द उष १७ गार अजना पादुकासन दान बाह्योत्तरादिम अर्धशास्त्र
- (७) सेवाधामराणिअपियन्मि' हर्षचरित उच्छ्रवास २ पृ ६ १/१२/९
- (८) अतुवर्त्साधमो लोको राजा दण्डेन जालित अर्धशास्त्र १/४/१६
- (९) 'अजनामरे अ वासदुद्ध्यादिनादिनां अ आतनलनपीर्णमसीपु विरर्कः ।
 पुण्यपीत्ता समयातुवत्ता वा बोप निष्कम दण्ड अर्धशास्त्र २/१६/५७/४८

रक्त भी न बिरे । तुम्हारी माता भी यही यह संकल कामना है कि तुम्हारा शासन
 लमा के संकेत पर चला करे ।' स्कंद सभी बंदियों को क्षमा कर देता है ।

'परिपद्' के प्रकरण में इस बात पर विचार किया गया है कि भारतवर्ष में
 एकत्रित शासन भी प्रजातन्त्रात्मक था । सम्राट के निधन के उपरान्त सिंहासन उसके
 ज्येष्ठ पुत्र को मिलता था किन्तु इसका धर्म यह नहीं था कि सिंहासन एक क्षत्र के
 लिए भी जाती न रहता हो । घटोत्कच की स्थिति में कोई भी सिंहासनासीन नहीं हो
 सकता था । इस बीच शासन कार्य जालपत्रों की सम्मति से परिपद् ही चलाया
 जाती थी । मुत्तकाल में उत्तराधिकार के नियमों में कुछ परिवर्तन आ गया था ।
 उत्तराधिकार की योग्यता ही उसके अधिकार का निर्णय करती थी । वहाँ भी
 नवीन सम्राट के सिंहासनासीन होने तक राज्य के शासन प्रबन्ध एक परिपद् ही
 शासन का कार्य चार चलाते थे । अतः 'अश्वमेध' में सिंहासन धूम्य नहीं रह सकता ।
 बाल्यवयव का यह कथन निश्चय ही प्राचीन भारतीय परम्परा का धनुस्त नहीं है ।

परिपत्र

1.

राज्यधी' के अतिरिक्त प्रसार के धर्म्य सभी नाटकों में परिपत्र की वर्षा हुई है और उसे मंत्रिपरिपत्र^१, राज्यपरिपत्र^२, अथवा परिपत्र^३ के नाम से अभिहित किया गया है। अन्ततस्तु में ऐसी परिपत्र का सम्बन्ध है जिसका संकलन पहले से ही हो गया है।^४ अतः यह नहीं कहा जा सकता कि इस परिपत्र में कितने सबसे से और किस प्रकार इसका निर्णय हुआ था। 'चन्द्रगुप्त' में परिपत्र का अनाम अनामिक रूप से हुआ है। मन्त्र की मृत्यु के उपरांत सामरिक अथवा चन्द्रगुप्त नाटकों में आनन्द राक्षस वररथि और अकटार की सम्मिलित परिपत्र की परिपत्र घोषणा करते हैं।^५ इसके अर्थ प्रतीत होता है कि यह परिपत्र केवल अमात्यों की परिपत्र नहीं है। राक्षस और वररथि तो मन्त्र के अमात्य से ही अकटार भी पहले अमात्य रहे चुका था किन्तु चन्द्रगुप्त और आनन्द का मन्त्र के सासन कार्य में कोई स्थान नहीं था। अतः यह दोनों साधारण सामरिक मात्र थे। इस परिपत्र में सबस्यो की सख्या केवल पाँच है। 'श्रुवस्वामिनी' में श्रुव स्वामिनी का लेकर उठे हुए रामगुप्त और चन्द्रगुप्त के बिबाह का निर्णय करने के लिए परिपत्र का आह्वान किया जाता है।^६ इस परिपत्र के सदस्यों की संख्या के बारे में प्रसार मौन है। उन्होंने केवल इतना ही कहा है कि यह परिपत्र मुत्तकुम के विद्याल के अनुकुम भी और इसके सबस्यो में कुमकुम और सामास भी थे। कुमार गुप्त की परिपत्र^७ के विस्तृत स्वरूप की जानकारी प्रसार ने नहीं दी है। इस परिपत्र की बैठक किसी महत्वपूर्ण समस्या के अनुमन्त्र के लिए नहीं हो रही है। कुल अर्थ विनोद के परचाए कुमारामात्य पृथ्वीसेन बुद्ध सम्बन्धी सृजना मात्र सम्राट को दिते हैं। इस परिपत्र में सम्राट के अतिरिक्त केवल चार व्यक्ति हैं जिनमें चातुसेन विवेकी है और मुत्तकुम पित्रुपक। अतः इनको परिपत्र का सबसे न मानना ही ठीक है। केवल साम्राज्य के महाबलाधिकृत मटार्क एवं कुमारामात्य सम्बन्धिप्रहक पृथ्वी सेन ही इसके सदस्य हैं।^८

- | | |
|---|----------------|
| (१) अनाम १/३१ अथवा ३/१२२ | (२) अनाम १/१२ |
| (३) अथवा १/३२, अथवा ४/२० स्कंद १/१५ अथवा ३/१२ | |
| (४) अनाम १/३१ | (५) अथवा ३/१२१ |
| (६) अथवा ३/५२ | (७) स्कंद १/१५ |
| (८) स्कंद १/१५ १६ | |

उपर्युक्त विवरण से जात होता है कि प्रसाद के माटकों में परिवर्ध के दो स्वरूप मिलते हैं ।

(१) कैबल मन्त्रियों एक प्रधान राज्यकार्यों की परिषद् ।

(२) मन्त्रियों के प्रतिरिक्त मापरिकों और कुलबुजों के प्रतिनिधियों की परिषद् ।

अत्रात्सक्तु और कुमारपुत्र की परिषद् कुछ कुछ प्रथम प्रकार की है । इस प्रकार की परिषद् का कार्य राजा को संस्था देना है । 'कल्पसूत्र' और 'शुद्धकर्मिणी' की परिषद् दूसरे कोटि की है अर्थात् जन परिषदे हैं । प्रसाद के अनुसार इनका कार्य विवेक महत्वपूर्ण है । राज्य संकृति के अन्तर्गत पर शासन काल से लेकर राज परिवर्तन तक के सभी निर्णयों का अधिकार इसी परिषद् को दिया गया है ।

बौद्ध ग्रन्थों में राज्य के छ प्रथम पुर्यों को राजकारण कहकर परिचित किया गया है, इन्हीं राजकारणों को शाह्याण ग्रन्थों में 'रत्नित् कथा' कहा गया है जिन को अपने अनुकूल करना राजा के लिए आवश्यक कहा गया है ।^१ परिषद् का उल्लेख शाह्याण ग्रन्थों में नहीं है । इन्हीं केवल 'समा' और 'समिति' हैं ।^२

इतिहास में इन दोनों का शासन कार्य म इतना महत्व था कि 'प्रजापति भी इनके बिना धरना कार्य नहीं कर सकते थे ।^३ पालिनि में 'परिषद्' शब्दों राजा कहकर राजा और परिषद् के विरामधाय की ओर संकेत किया है ।^४

'महायोग्य मुत्तस' में 'अपान्ण पण्डित' का भी उल्लेख मिलता है जो राजा के साथ राजकार्य में सहभाग देती है ।^५ कौटिल्य के अनुसार (१) मन्त्रपर (राजा के अन्तर्गत मन्त्रों) (२) अन्य विभागों के मन्त्री (३) विभागीय मन्त्री और (४) अन्य व्यक्ति । ये परिषद् के सदस्य होते थे ।^६ अर्थात् में एक धार तो 'इन्द्रस्य हि मन्त्रिपरिषद्दीप्यते सहस्रम् । तन्मन्त्रुः तस्मात्सिंघं अथ महामाधमात्' कहकर मन्त्रिपरिषद् की विद्यापता की ओर संकेत किया गया है । दूसरी धार 'अत्रात्सक्तु मन्त्रिपरिषद् की विद्यापता की ओर संकेत किया गया है । राजा भी बाध ही गई है । महाभारत में मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों की संख्या १२ बतलाई गई है ।^७ किन्तु कुछ म यह संख्या २०^८ और बृहस्पति ने १६ मानी है ।^९ गुरु के अनुसार परिषद् में तीन प्रकार के सभासद होते हैं ।

(१) महायोग्य मुत्तस ३२ दीर्घनिवास २, २३३

(२) गणपय शाह्याण ५/३/२/६ (३) बही ३/३/५/१४ अर्थात् ७/१२

(४) अर्थात् ७/१२ (५) शाह्याण उपनिषद् ८/१४/१

(६) इतिहास एव कोस दु पालिनि (अपान्ण) ('परिषद्') (७) अत्रात् १/२६४

(८) हिन्दू पौलिटि कापसवाल २/१३० (९) अर्थात्सक्तु कौटिल्य १/१५/१०

(१०) बही 'कौटिल्य' १/१५/५६ (११) हिन्दू पौलिटि कापसवाल २/१३०

(१२) अर्थात्सक्तु कौटिल्य १/१५/११ (१३) बही १/१५/११

१—सम्भ । २—अधिकारी एवं । ३—प्रकृति ।^१

वामसनाथ गोविन्दराव के आचार पर कौटिलीय मंत्रिपरिषद या मंत्री परिषद के समापति को सम्भ' तथा अधिकारसु अथवा विभागों के प्रधानों को 'अधिकारी' अथवा मंत्री' मानते हैं । 'प्रकृति' का अर्थ वे प्रजा के प्रतिनिधि अर्थात् पीर पीर बनपर के प्रधान सेठे हैं ।^२ रामानुज में प्रजा के प्रतिनिधि तथा मंत्री सम्मिलित रूप से प्रग्रहा समा में शैलक 'आत्यायिक' (विशेष महत्पूर्व) प्रश्नों पर विचार करते हैं 'मंत्रिपरिषद' अथवा अमात्य परिषद का उल्लेख कालिदास ने भी किया है । सास्टर का विचार है कि गुप्तकाल में परिषद का व्यवहार मंत्रियों की समिति के लिए होता था और समा का प्रयोग मंत्रियों तथा सामाज्यों इत्यादि की विशाल सम्मिलित समिति के अर्थ में किया जाता था ।^३ वैदिक काल में इसके ठीक विपरीत समा छोटी और समिति बड़ी है (हिन्दू सम्मता' मुद्रणी ५० १०८) । इस अर्थ के अनुसार स्कंदगुप्त की परिषद को मंत्रि परिषद और प्रभुस्वामिनी की परिषद को समा कहा जा सकता है ।

इस प्रसंग में अनायास दो प्रश्न उठते हैं एक तो यह कि प्रजाद ने अजात शत्रु में 'महामात्य परिषद के सम्भ' शब्द का प्रयोग क्या ठीक उसी अर्थ में किया है जिस अर्थ में ऊपर मुक्त और कौटिल्य ने किया है । दूसरे यह कि परिषद में मंत्रियों के प्रतिनिधित्व प्रथम नागरिकों का क्या स्थान होता था । अजातशत्रु कहता है 'परिषद के सम्भों को बुला माघा ।'^४ दौबारिक सूचना देता है कि महामात्य परिषद के सम्भवतः आये हैं ।^५ इन दोनों स्थलों पर सम्भ शब्द का प्रयोग 'सबस्य के अर्थ में हुआ है अथवा और कौटिल्य के अनुसार 'समापति' के अर्थ में नहीं । समुद्रगुप्त की प्रथम प्रवृत्ति में लिखा है कि जब अत्रगुप्त ने समुद्रगुप्त को पुत्रराज्य पद के लिए बुना तो सम्भ उल्लेखित हो गए ।^६ इससे ऐसा प्रतीत होता है कि नूत काल में 'सम्भ' शब्द का अर्थ 'परिषद के सबस्य' था । सम्भव है इसी अर्थ को ध्यान में रखकर 'अजातशत्रु' में 'सम्भ' का प्रयोग किया गया हो ।

- (१) मुद्रणीति २/३ (२) हिन्दू पीमिटी वायसनाथ २/१३१
 (३) मासविका (४) विश्वमोर्षसीयम् ४/१६
 (५) नाइफ इत वि बुटा एव ५० २४३
 (६) अजात० २/१४ (७) अजात० २/१३ (८) वही २/६४
 (९) सल्लिफ्ट इतिअसंभ' सरकार ५० २५३ C

परिवर्ध में यंत्रियों के अतिरिक्त अन्य नागरिक सदस्यों का प्रश्न केवल 'अशुभ' एक अनुभवामिनी की परिवर्ध के सम्बन्ध में ही घटता है। हम यह पहिंके ही बताना चुके हैं कि परिवर्ध में मंत्री के अतिरिक्त महति (युव के अनुसार) और 'मन्य व्यक्ति' (कौटिल्य के अनुसार) भी होते थे। प्रसार में बड़ी भी परिवर्ध के सदस्यों की संख्या नहीं बतलाई है। केवल 'अशुभ' में स्पष्टतः पाँच सदस्यों की परिवर्ध की योजना की गई है। पाँच की निश्चित संख्या का अनुमोदन मनु बहस्पति युक्त और कौटिल्य कोई भी नहीं करता। किन्तु यह परिवर्ध नए की हत्या के उपरान्त सहाय्य चुनी गई है और उस समय नए की मर्णा में एकत्र मयी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति इसमें था यह है। अतः स्थिति की यह विवक्षा देखते हुए उदात्तमन्वमिति कौटिल्य के आचार पर हमका भी अनुपादन किया जा सकता है।

प्रसार के नाटकों से ज्ञात होता है कि 'अति परिवर्ध' अथवा 'परिवर्ध' राजा या राजकुमार को सामन कार्य बनाने में सहायता करनी थी।^१ यदि युद्ध इत्यादि में जाने पर राजा अथवा राजकुमार कोई भी उपस्थिति न ले तो परिवर्ध स्वयं राज्यभार धरने फिर पर न लगी थी।^२ राष्ट्रीय महत्त्व अथवा ऐम ही महत्त्व विषय सम्बन्धी विषयों पर नीति निर्धारित करने का अन्तिम अधिकार परिवर्ध को ही था।^३ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य म पुर्न परिवर्ध की सम्मति आवश्यक होती थी। राजा ऐम सदस्यों पर स्वयं परिवर्ध का आह्वान करता था।^४ परिवर्ध परिवर्ध का कार्य

की बिना राजा के दीक्षारम्भादिदिदि भी समभव न था।^५ राजा की मृत्यु होते ही परिवर्ध की आयोजना आवश्यक होती थी और यही सब सम्मति से नवीन राजा को चुनकर राज विहायन पर बैठने का अधिकार देनी थी।^६ राजा एक मन्त्री की सम्मति को धर ही करता है।^७ किन्तु परिवर्ध की आज्ञा के बिना यह एक भी महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं कर सकता था। 'अज्ञातगण' से यह भी ज्ञात होता है कि कभी-कभी परिवर्ध स्वैच्छतः स भयना समस्त अधिकार राजा को धरवा किसी अन्य व्यक्ति को दे सकती थी।^८ परिवर्ध का स्वयं महत्त्वपूर्ण कार्य राजा को स्वैच्छतावापी होने से राहना था। बादवन के एक वाक्य से ही इसकी पुष्टि हो जाती है 'स्वैच्छतावापी भयना का परिणाम तुमने स्वयं देख लिया है धर मंत्री परिवर्ध की सम्मति से भयन और अर्थावर्त के कल्याण में नया 'राज्या

(१) अज्ञातगण	१/११	(२) वही	२/११
(३) वही	२/११	(४) वही	१/१२
(५) वही	१/१२	(६) अज्ञातगण	३३/६१
(७) अज्ञातगण	१/५३	(८) वही	२/११
(९) अज्ञातगण	३/११		

विकार सम्बन्धी प्रश्नों में परिषद का निर्णय ही सर्वमाम्य प्रतीत होता है और मूल कान में भी परिषद की उक्त शक्ति का विवरण करने का प्रयास प्रसार ने किया है। विधान के अनुक्रम परिषद ही इसकी अन्तिम निर्णायिका होती थी। परिषद का विचार राजा अमात्य अथवा अन्य किसी भी व्यक्ति को मानना पड़ता था यहाँ तक कि शासक पर सगाय गए आरोपों को सुनने का अधिकार भी परिषद को ही था और दोषी समझने पर परिषद सभ्राट् को राजसिंहासन से हटा भी सकती थी।^१ प्राचीन भारत में परिषद का जो असीत स्वल्प मिलता है उसके आधार पर प्रसार द्वारा चित्रित स्वरूप की तुलना आवश्यक है। जयसंघ ने कहते हैं कि हिन्दू विधान के अनुसार राजा बिना मंत्रि परिषद की आज्ञा तथा सहयोग के कोई भी कार्य करने में असमर्थ है।^२ प्राचीन स्मृतिकारों के विचार इस सम्बन्ध में विचारणीय हैं। मनु राजा को स्वेच्छा से शासन करने की आज्ञा नहीं देते। उसकी आज्ञा है कि वह सामान्य विषयों के सम्बन्ध में निरय परिषद से मंत्रणा करे।^३ मातृवस्वयं सै चार्थं चित्तयशस्व्यं के द्वारा परिषद की सम्मति से ही राज्य कार्य करने का विधान करते हैं।^४ कात्यायन के अनुसार 'राजा स्वेच्छा से एवं ग्यायकसा मंत्री पुरोहित इत्यादि से परामर्श नित्ये बिना ग्याय भी नहीं कर सकता।^५ कौटिल्य महत्त्व पूर्ण कार्यों में (धार्मिक कार्य) मंत्रियों तथा मंत्रिपरिषद के बहुमत को मानने की आज्ञा देते हैं।^६ शुक्लीति की आज्ञा है कि नव विचारों में निपुण एवं मन्त्रिद होते हुए भी राजा मंत्रियों से परामर्श किए बिना एक भी काम न करे।^७

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि परिषद का प्रधान कार्य शासक की स्वेच्छाचारी प्रवृत्तियों पर नियंत्रण करना होता था। शुक ने स्पष्ट ही यह दिया

(१) मूलस्वामिनी ३/१० ११

(२) हिन्दू पीसिटी २/११९

(३) सै चार्थं चित्तयेनित्यं सामान्य संक्षिप्तम् ।

स्वार्थं समुपमं वृत्तिं कल्पप्रथममिति च ।

मनुस्मृति

७/५९

(४) मातृवस्वयं १/१११

(५) सम्राज्यविचार सामान्य सभाह्वान पुरोहित

संघम्यं प्र साको राजा स्वमे तिष्ठति वर्मेत

कात्यायन हिन्दू पीसिटी में

२/११७

(६) धार्मिक कार्य मंत्रियों मंत्रिपरिषद् च आह्वान पाद्

तत्र यद्भवतिष्ठत् कार्यसिद्धिकरं वा ब्रूमस्तदनुमति

धर्मशास्त्र १/१५

(७) सर्वविद्या मुकुटानो नृपोऽपि सुमंत्रिविद् ।

मंत्रिमिस्तु बिना र्थ नैकोर्यं चित्तयेत्तत्रविद् ।

C

शुक्लीति २/२

कि राजा के उत्सु बस होने पर राज्य का विनाश हो जाता है ।^१ 'अहमुत्त मे महत्तय
 उसकी श्रेष्ठाचारिता के कारण हुआ है और इसीलिए आजकल अहमुत्त को
 यंत्रि परिषद की सम्मति से ही प्रजा का बन्धन करने का आदेश देता है । परिषद
 का दूसरा कार्य है धार्मिक कार्यों में राजा का सम्मति देना । 'अजातशत्रु' की
 परिषद वासी प्रायः प्रवेनचित से युद्ध और विन्दहार पर सैनिक निवृत्त
 जैसे महत्त्वपूर्ण कार्यों पर परामर्श देती है । अहमुत्तमित्री में भी परिषद राजा
 के विरोध में अपना निर्णय देती है । परिषद का तीसरा कार्य राजा
 की अनुपस्थिति या मृत्यु में राज्य का कार्य भार संभालना होता था । अजातशत्रु अन्त
 प्रवेनचित से युद्ध करने के लिए चला जाता है तब दूसरा ही हेमरेय में परिषद ही
 सारा साधन बसती है । 'रघुवंश' २ शाकुन्तलम्^२ तथा विक्रमादित्य^३ से प्राप्त होता
 है कि राजा के बाहर जाने जाने पर यंत्री ही राज्य का कार्य चलाया करते थे । अह
 की मृत्यु के उपरान्त तुरन्त ही परिषद का आह्वान किया जाता है और उत्साह ही
 परिषद अहमुत्त का सम्राट घोषित करती है । इससे परिषद के एक और कार्य की
 ओर ध्यान जाता है और वह है राजा का चलाय । रघुवंश के अनुसार राजा की
 मृत्यु होने पर मंत्रियों का यह कर्तव्य होता था कि मुबराक के सासन ग्रहण करने
 तक राज्य में उपद्रव भ्रमण विराह न हो ।^४ वातका में भी इसी प्रकार की एक
 घटना का विवरण मिलता है ।^५ अर्जुनाय के 'योगकृत प्रकरण' में लिखा है कि
 राजा की मृत्यु होने पर अमान्य तब महाभाषा (पीर जानपद के प्रतिनिधियों) को
 बुलाकर उनसे कहता था कि यह इस राजा-हीन साम्राज्य के आर ही धामक है^६
 अथ धार बतमाइये कि हमें क्या करना चाहिए । तब उनके आदेश से राजा का
 चुनाव होता है । परिषद द्वारा राजा के चुनाव की उपर्युक्त प्रथा केवल मौर्य और
 कुत राजों में ही नहीं बल्कि सातवीं शती में राज्य के लिए हर्ष का चुनाव भी
 'मंत्रिपरिषद्' में ही हुआ था । पुष्यभूषण ने लिखा है 'प्रमाकरबर्धन एवं राजबर्धन
 की मृत्यु के उपरान्त राज्य के भाग्यविहीन होने पर परमपरायणी महामात्य प्रधाना
 माल्य बर्धन ने यंत्रि परिषद् से कहा 'मान राष्ट्र के भाग्य का निर्णय करना है ।
 कुमार राज्यबर्धन की मृत्यु हो चुकी है और उनका भाई हर्षवर्धन मानवोपिध मुर्षो

(१) प्रभु स्वातन्त्र्य यथात्मनो ह्यनधिक कल्पते ।
 मिल्म राष्ट्रो यथेच्छयो मिल्म प्रकृतिरैव च पुष्पनीति २, ४
 (२) रघुवंश (३) शाकुन्तल०
 (४) विक्रम० (५) रघुवंश
 (६) पत्नीय चित्त वातक २/१/१५६
 (७) 'महामात्राभिनिगत्य प्रयात भवमानो धर्म बन्धु एवं स्वाभिन' एवं वा
 किशकिरिर्ति' ३

से पूर्ण और सहाय होने के साथ कर्तव्यपरायण और भाजाकारी भी है। अतः प्रजा उसका विश्वास करेगी। मैं प्रस्ताव करता हूँ कि राष्‍ट्राधिकार हर्षवर्धन को सौंपा जाय। इस सम्बन्ध में प्रत्येक अपना स्वतन्त्र विचार उपस्थिति करें। इस पर सभी मंत्रियों ने उसके गुणों को स्वीकार करते हुए इस प्रस्ताव का समर्थन किया। तब महात्माय और अन्य अधिकारियों ने राजकुमार से निवेदन किया कि प्रजा की इस समझापा की पूर्ति कर राज्यलाभन कर महन्धी बनें।^१ प्रघात के नाटकों से ज्ञात होता है कि मुबराज पर की घोषणा के लिए और यौवराज्याभिवेक एवं राष्‍ट्राभिवेक के पूर्ण की परिपक्व की सम्मति लेने के लिए उसका माह बाग किया जाता था। बिक्रमोर्ध्वीय नाटक में भी पुत्र प्रमात्य परिपक्व को ही राजकुमार धायु के राष्‍ट्राभिवेक की सूचना देते हैं।^२

बायसबाल के अनुसार 'पीर जानपद' समिन्धित रूप से मुबराज की नियुक्ति करते थे।^३ वे उत्तराधिकार के सम्बन्ध में राजा की घोषणा का विरोध कर सकते थे अयोग्य उत्तराधिकारी को मुबराज पर से बहिष्कृत कर सकते थे और समिवेक में प्रमुख भाग लेते थे।^४ अस्तुतः इन अवसरों पर पीर जानपद का प्रतिनिधित्व पीर बूढ़ ही किया करते थे।^५ प्रघात में पीर जानपद का सम्बन्ध नहीं किया है किन्तु उनका उल्लेख न करते हुए भी उनके समस्त अधिकार परिपक्व को दे दिए हैं। बायसबास के ही उल्लेखों से ज्ञात होता है कि बीडकास मीरकाल तथा कुपतनाम सभी में पीर जानपद की शक्ति पर्याप्त थी। पीर बर्ष के महत्त्व का उल्लेख स्कंभट्ट के जूनापद के सिन्धालेख में भी हुआ है।^६ इससे यह प्रतीत होता है कि प्रजा का प्रतिनिधित्व करने के कारण परिवार के पीछे पीर जानपद की शक्ति रहती थी।^७ फलतः सासक तथा परिपक्व के बीच किसी प्रकार का संघर्ष होने पर परिपक्व की विजय निश्चित होती थी क्योंकि वह अस्तुतः पीर जानपद की विजय होती थी। ऊपर पीर बूढ़ों की चर्चा हम कर आए है। ध्रुवस्वामिनी में महात्माय सिन्धरस्वामी उत्तराधिकार सम्बन्धी निर्णय के लिए 'कुम बूढ़ों एवं सामन्तों को बुलाता है।

(१) बुद्धिस्ट रेकर्ड्स ऑफ दि बैस्टर्न वर्ल्ड मील : १/११०११ पीर
हुमानक्यांस ट्रेवल्स इन इन्डिया वाटर्स १/१४२

(२) बिक्रमोर्ध्वीयम् ५/१०६

(३) हिन्दू पीसिटी बायसबाल २८०

(४) बही बायसबाल २/४२

(५) पीरबू डपुरस्वर बही बायसबाल।

(६) यो नामयामास च पीरबान् इलोक २२ संसेक्ट इन्डिकव्याम्स में २५ नू
२६६ ३००

(७) दि जानपद इन्डिस्ट्री एपोर्टेड दि मिनिस्टरी हिन्दू पीसिटी नू २१४५

परिपत्र के सम्बन्धी में कुछ बुद्धों का उल्लेख तुल्य ही पौरुष उपरस्वरी की घोर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है।^१ पौरुषानुभव की इस शक्ति का परिचय साहित्य में भी मिलता है। 'मूल्यांकन' में उत्कृष्ट शक्ति 'पालक को उनकी धामा से विहासनाच्छुत कर दिया जाता है।^२ महाबल^३ तथा 'रघुशुमार शक्ति' से भी इस शक्ति की पुष्टि होती है। संभवतः पौरुषानुभव एवं परिपत्र की इसी शक्ति के कारण सम्राट तथा अन्य शक्ति उनके सशस्त्रों के लिए अत्यन्त विनाश शक्तों का व्यवहार करते थे। अज्ञातधरु में उनके लिए महामान्यपरिपत्र के सम्बन्ध का प्रयास हुआ है और अपनी बहसुताओं में अज्ञात पौरुष देखना शर्मों ही उनके प्रति धर्म विनाश बायीं बोधने है। प्राचीन शक्तों में भी उनके लिए 'मन्त्र' सर्वनाम एवं मन्त्रमि संवत्सै जैसे प्रयोग इस बात की पुष्टि करने हैं।^४

प्रवाद ने परिपत्र दृष्टि^५ का भी उल्लेख किया है। बातों में एक शीघ्र शक्तों में इस प्रकार के परिपत्र शक्तों की बर्णना हुई है।^६ कौटिल्य ने मंत्रणा के लिए इस प्रकार के परिपत्र शक्त का विधान किया है जो एकान्त के साथ ही चारों घोर में इस प्रकार आकृष्ट होता चाहिए ताकि बातचीत का एक शक्त भी बाहर न सुनाई दे।^७

'अज्ञान' शक्त में एक पौरुष महत्त्वपूर्ण परिपत्र की घोर हमारा ध्यान आकृष्ट किया गया है। यह है मानवों की परिपत्र। मानव पौरुष शक्तों के साथ शक्तों की परिपत्र के स्वल्प घोर उनकी विचार विमल करने की शक्ति पर भी यही पर्याप्त प्रकाश शाना गया है। उक्त परिपत्र मिश्रण के मासकों की आरम्भ पर विचार करने के लिए सुझाई गई है। सर्वप्रथम परिपत्र परिपत्र का एक शक्त बहसुत परिपत्र के सम्बन्ध यह शक्ति उपस्थित करता है कि यवन युद्ध के लिए जो शक्ति मानव शक्तों में हुई है उसे शक्त बनाने के लिए आवश्यक है कि दोनों शक्तों की सम्मिलित शाना बनाई जाए और अपने मैत्राणों शक्तों के मनोनीत माग्य अज्ञान

-
- (१) महाभारत (उद्योगपर्व) पृ १४१/०२-०३
 (२) मूल्यांकन (मुद्रक)
 (३) महाबल ४/५९
 (४) रघुशुमार अध्याय ३
 (५) हिन्दू पोलिसी ०/१० १०
 (६) अज्ञान ४/२०० २०१
 (७) हिन्दू सम्प्रदाय (राधाकृष्ण शक्तों) पृ २११
 (८) सर्वनाम १/१५/१५

ही हों। उन्हीं की आज्ञा से तैय्य संघासन हो'।^१ परिवर्द्ध का अर्थ सदस्य नामरत्न इस 'विज्ञप्ति' का विरोध करता है 'मनम एक साम्राज्य है मिच्छिन्धि और नृपि पणत्तम को कुचसने वाले मगध का निवासी हमारी सेना का संघासन करे, यह मग्याय है। मैं इसका विरोध करता हूँ।'^२ इसके उपरान्त परिवर्द्ध द्वारा अधिकार प्राप्त बलाधिकृत सिद्धरण की प्रार्थना पर गण-मुस्य 'सत्तरापथ के विधिष्ट राजनी तिस्र धर्म आचक्ष्य के मन्त्रीर राजनीतिक विचार सुनने के लिए उन्हें ब्यास पीठ पर आने का आदेश देता है।^३ बालुस्य नागा तर्कों के द्वारा देववसत की 'विज्ञप्ति' को अनुमोदित करता है।^४ नाववत छिर भी इसका विरोध करता है किन्तु अन्त में आचक्ष्य के तर्कों को स्वीकार कर लेता है।^५ अन्त में गणमुस्य भोवणा करता है 'अस्तु महाबलाधिकृत पर के लिए अन्तमुष्ट का ही बरण करने की आज्ञा परिवर्द्ध देती है'।^६ इस प्रबान कार्य के अतिरिक्त एक और भी अचान्त कार्य परिवर्द्ध की स्वीकृति के लिए उपस्थित किया गया है। अचान्त और भैवज्य सेवा करने वाली स्त्रियों ने मातृशिक्षा को अपना प्रबान बनाने की अनुमति मांगी और परिवर्द्ध ने इसकी अनुमति देयी। इतिहास में अनेक मामलों के पण-सम्भों का पर्याप्त उल्लेख मिलता है। पानिनि ने गणपाठ में अनेक और मामलों की समुक्त सेवा के लिए अनेक मामलों का प्रयोग किया है।^७ श्रीक इतिहासकारों से ज्ञात होता है कि मामलों (मरुमोई) और अनेकों (धोकनीकुंकार) के पणसम्भों (रिपब्लिक ड्राइम्स) ने मिलकर गिन्धर का सामना किया। किन्तु इन उल्लेखों से यह ज्ञात नहीं होता कि उक्त पणसम्भों की वासन प्रणाली क्या थी। आचक्ष्यनाम का अनुमान है कि बौद्ध संघों की पद्धति में राजनीतिक सब पद्धति का अनुकरण किया गया था। अतः जिस प्रकार बौद्ध संघों में विचार विनिमय किया जाता था उसी प्रकार इन राज्यों में भी किया जाता होगा।^८

बौद्ध संघों से ज्ञात होता है कि अविशेषतः संघान्तर या उद्योग में होते थे। अविशेषतः में वे सत्री सदस्य उपरिबद्ध रहते थे जिन्हें उपस्थित रहने का अधिकार हो। निश्चित मामलों का निर्धारित एवं सूचित करने के लिये एक 'आसनप पक' नामक अधिकारी नियुक्त किया जाता था। अविशेषतः के समय उपस्थिति की क्रम

(१) अग्न २/१३८

(२) अही २/१३८

(३) अही २/१३८

(४) अही २/१३८

(५) अही २/१३८

(६) अही २/१४०

(७) पानिनि ४/२/४५

(८) हिन्दू पीपिटी (आयमनाम) १०१ (९) बुद्धवस्य १२/२७

से कम-संख्या का विचार था।^१ सब का धर्म्यक विनियमन कहलाता था।^२ संघ की कार्य प्रणाली इस प्रकार होती थी।

(१) कृत व्यथा (किष्कयता) पहले इस बात पर विचार होता था कि संघ के कृत व्य कर्मों का पालन किस प्रकार किया जाय।

(२) करणीयता फिर इस बात पर विचार होता था कि उसे और क्या-क्या काम करने चाहिये।

(३) व्यवसोकन कर्म उदरगत ऐसे विषयों पर निर्णय दिया जाता था जिनके लिए कार्य प्रारम्भ होने पर भी नियमानुसार जाजा लेना आवश्यक होता था। धीरे

(४) शक्ति बट्टि प्रत्येक वर्ष में शक्ति समिति प्रस्ताव पर विचार होता था। संघ में विचार विनियम शक्ति कर्म से इस प्रकार प्रारम्भ होते थे जैसे संघ में ही बात मुझे। शक्ति इस प्रकार है। इसके उपरांत शक्ति को प्रतिष्ठा के रूप में संघ के निर्णय के लिए रखा जाता। शक्ति के प्रस्ताव संघ में प्रस्तुत पूछा जाता था कि क्या वह शक्ति से सहमत है। 'मदस्य विस्तारों में से सहमत हो के मोन रहें धीरे जो कोई उसके पदा में न हो वह भाष्य करे (मापेव)। इस प्रकार उन शक्ति की तीन बार पुनरावधि की जाती थी और यदि तीनों बार संघ इसे मोन रहकर स्वीकार कर लेता तो शक्ति का संघ का अधिकार मिल जाता था। किन्तु सरस्य शक्तियों को मोन या सुस्वीभाव से ही संघा कहन न करते व प्राय वादविवाद भी उठ खड़ा होता था। सरस्यो में मण्डन कर्मध धीरे विवाद उठ खड़ा होता था।^३ धर्महीन भाष्य दिए जाते धीरे एक ही बात का अधिप्राय स्पष्ट नहीं होता था।^४ ऐसी रणना में समझौते के कई उपाय थे।

(१) शक्ति या समीप बैठके दोनों विरोधी पक्षों के नेता ध्यात में बैठकर जो निर्णय करते वह संघ को मान्य हो जाता।

(२) किसी बड़े संघ से निर्णय भी प्राप्त की जाती।

(३) उच्चाधिकार सभा (उच्चाधिकार) - विवाद प्रत्येक विद्वत् तारे संघ से हटाकर चुने हुए और योग्य सरस्यों की समिति (उच्चाधिकार सभा) को धपित कर दिया जाता।

(१) महाभाग १/११/२

(२) महाभाग ५/१३/१२

(३) किन्तु सम्मता पुस्तिका १० २०६

(४) पुस्तक ४/८/१ ३

- (४) बहुमत—इस पद्धति को 'येम्प्युसिसिस्टेन' (यह सुयसिका क्रिया जो बहुत कह-बैठी ही क्रिया करना) कहा जाता था। साथ ही संघ की समझ को कौमसराज बिहूबम के सिधे मर के द्वारा खोसकर उसकी प्राचीनता स्वीकार की जाय या नहीं इस प्रकार के जीवन मरण के प्रश्न भी बहुमत संघ करने पड़े थे। 'मठ के लिए' 'हं' संघ का प्रयोग होता था। मठदान 'आलाका' ग्रहण से होता था। घनाकाए लकड़ी की बनी होती थी। प्रत्येक संघस्य से कहा जाता था कि यह उस संघ की घनाका को चुने को उसके मठ के अनुकूल हो और यह निर्देश रहता था कि यह इसे किमी को दिखाये नहीं।

अब इस संघ पद्धति से चन्द्रगुप्त में वर्णित मासकों की कुछ परिपक्व की पद्धति से तुलना करने पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

- (१) प्रसाद ने परिपक्व में विचार विनिमय का प्रारम्भ वैबवम द्वारा उपस्थित 'अपि' से तो किया है किन्तु प्रस्ताव के लिए 'अपि' संघ न निकलकर 'विज्ञापित' सिद्ध दिया है। 'अपि' संघ धर्म विषय का सूचक है अतः 'विज्ञापित' का प्रयोग अनुचित ही नहीं अर्थहीन भी है।
- (२) 'अपि' के उपरान्त संघ संघ मोन रहकर स्वीकार करने अथवा भाषण लेकर विरोध करने की प्रार्थना का यहाँ उल्लेख नहीं किया गया है।
- (३) यहाँ परिपक्व में 'आमन्त्र' भी उपस्थित है। यह परिपक्व का संघस्य नहीं है। अतः 'आमन्त्र' उसे यहाँ उपस्थित रहने का अधिकार नहीं हो सकता और परिपक्व में भाषण लेकर निर्णय को प्रभावित करने का तो निषेध ही नहीं।
- (४) यहाँ भी एक संघस्य नागदत्त 'अपि' का विरोध कर करता है।
- (५) अतः में नागदत्त विरोध से हाथ खींच लेता है। इससे यह निष्कर्ष निरालता है कि 'अपि' को सर्वसम्मति से मान लिया गया है। अतः मुख्य नहीं चोपणा करता भी है किन्तु 'अपि' एक ही बार नहीं गई है। नियमानुसार तीन बार नहीं।
- (६) परिपक्व का प्रधान गणसूच्य है विनयकर नहीं किन्तु नाटक में 'धर्म संघ' की बैठक नहीं बल्कि परिपक्व की बैठक है। अतः 'अनुकूल' का प्रधान होना उचित ही है।

प्रसाद ने न तो 'अपि' का उल्लेख किया है और न 'घनाका' ग्रहण और 'सर्व' का। इससे स्पष्ट नहीं कि नाटक में उक्त दृश्य की योजना करते समय प्रसाद के सम्मुख संघ पद्धति का स्वरूप अथवा रहा होगा किन्तु नाटक के लिए अनापसक मानकर अथवा दृश्य के विस्तार के अर से प्रसाद ने उक्त स्वरूप को स्पष्ट नहीं किया है। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रसाद इस दृश्य के द्वारा नाटक या संघ के मन में तरासीन संस्कृति का जो स्वरूप चित्रित करना चाहते थे वह प्रयोग ही रह गया है।

अन्य कर्मचारी

प्रसाद के सभी नाटकों में एक प्रधानमंत्री का उल्लेख हुआ है और उस कहीं 'मंत्री' कहीं महामंत्री कहीं 'धमात्य' कहीं 'महामात्य' और कहीं 'कुमारमात्य' कहा गया है। अज्ञातयुग में प्रमनचित्त के मंत्री का उल्लेख हुआ है। उसे धमात्य भी कहा गया है। चाणक्य को स्वयं स्वयं पर धार्यनाभ्राज्य का महामंत्री^१ या महामात्य^२ कहा गया है और प्रथम मंत्री वह धपना मन्त्रिण^३ राज्य के लिए छोड़ देता है। राजस मन्त्र का 'धमात्य' है।^४ इतिहास के अनुसार गिब्रल्टरस्थो अश्वगुप्त विजयनाशिय का पंथी था।^५ उसे प्रसाद ने अपने नाटक में मन्त्रा^६ उस धमात्य^७ कहकर अभिहित किया है। स्कन्दपुत्र नाटक में पृथ्वीसेन कुमारमात्य है।^८ 'राजयया' में प्रह्वर्मा के 'मंत्री'^९ का उल्लेख है। उक्त सभी व्यक्ति अपने पर में घटेले हैं मन्त्रा^{१०} राम्यार्य की प्रमुख मंत्रालयों में उनका हाक है। राजकुमार विरदुक्त के मन्त्रण्य में लिए पर प्रवेनमिण के निर्णय का विरोध उनका मंत्री ही करता है।^{११} चाणक्य के लिए स्वयं नाटककार ने मन्त्रों के साथ महामंत्री और महामात्य शब्दों का प्रयोग किया है और चाणक्य का प्रधानमन्त्रिय इतिहास सिद्ध भी है। मन्त्र का धमात्य राजस प्रधानमंत्री है या नहीं इसमें संशय ही सद्यता है। मन्त्र उसे अपने धमात्यवग म नियुक्त करता

- (१) अज्ञात० १।५३
- (२) अज्ञ० ४।२१५
- (३) अज्ञ० १।६७
- (४) दि हिस्ट्री ऑफ़ मोरें ईस्टर्न इंडिया (राधापोषिन्ड बनाए) पृ ५०-५१
- (५) अज्ञ० १।२४
- (६) स्कंद० १।११५

- (७) अज्ञ० ४।२४४
- (८) अज्ञ० ४।४७

- (९) अज्ञ० १।२४
- (१०) अज्ञ० १।१२२

है।^१ धर्मपत्र मन्त्र के मंत्री सेनापति और अमात्यों कहकर मंत्री से भिन्न कई अमात्यों की उपस्थिति की ओर भी संकेत किया गया है।^२ मन्त्र बरखि को 'अमात्य' कहा है।^३ 'कनागरिस्त्रायर' में राक्षस नामक किसी मंत्री का उल्लेख नहीं है और मन्त्र का प्रधानमंत्री बरखि है।^४ वस्तुतः चन्द्रगुप्त में राक्षस की व्यवहारणा का आधार 'मुद्राराक्षस' नाटक है जहाँ यह मन्त्र का प्रधानमंत्री है।^५ 'चन्द्रगुप्त' में सफ्टार और बरखि दोनों बन्धी हो चुके हैं और मन्त्र के बितने भी कार्य हैं उनका कर्ता वस्तुतः राक्षस ही है। अतः बरखि के मन्त्र हो जाने के उपरान्त उसे ही मन्त्र का प्रधानमंत्री मानना युक्तिसंगत प्रतीत होता है। स्कंदगुप्त में मंत्री का स्वतंत्र रूप से कहीं उल्लेख नहीं। परन्तु कुमारगुप्त की परिवर्ण में दो महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हैं कुमारामात्य पृथ्वीसेन और महाबलाधिकृत मटार्क। पृथ्वीसेन यतिभक्तिप्रहृ जैसे महत्त्वपूर्ण करता है। उसके ही कारण मटार्क को पृथ्वीसेन के पुत्र में सेनापति की पदवी नहीं मिली।^६ उसी में मटार्क के महाबलाधिकृत बनाने जाने का भी विरोध किया था।^७ महाप्रतिहार भी उसी की आज्ञा से मटार्क पर आक्रमण नहीं करता और चरम प्रतिकार करने के लिए तैयार हो जाता है।^८ इन सबके प्रतीत होता है कि कुमारामात्य पृथ्वीसेन के अधिकार प्रधानमंत्री से किसी प्रकार कम न रहे हीने। 'राज्यधर्म' में मंत्री एक ही है और उसके समकक्ष किसी धर्म्य पद का उल्लेख नहीं। अतः यह निश्चय रूप से कहा जा सकता है कि प्रसाद के मटार्कों में वे सब नाम प्रधानमंत्री के लिए ही आए हैं। मनु प्रधानमंत्री या आमात्य को समस्त दण्डों का कारण करने वाला मानते हैं और राजा को आज्ञा देते हैं कि वह पूर्णतया उस पर निर्भर रहे इन्हींके वे उसका विद्वान् ब्राह्मण होना आवश्यक मानते हैं।^९

कौटिल्य एवं मुक्त उसके लिए केवल मंत्री शब्द का प्रयोग करते हैं।^{१०} आठकों में उसे अधिकतर 'अमात्य' (अमात्य) कहा गया है।^{११} विष्णुवदाण में राजगुप्त अमात्य है।^{१२} मुद्राराक्षस में प्रधानमंत्री के लिए अमात्य शब्द आया है।^{१३} यद्यपि

(१) चन्द्र० १/१७

(२) चन्द्र ३/१८४

(३) चन्द्र० १/७३

(४) कनागरिस्त्रायर (सोमदेव) १। अरण्य ५ (५) मुद्राराक्षस

(६) स्कंद० १/२८

(७) वही १/२८

(८) वही १/७७

(९) मनुस्मृति ७/१५

(१०) धर्मशास्त्र १/१/१/५/३३ मुक्तकीति २/२१८, ७३

(११) पाठक १/१५ ३/३/२७६

(१२) विष्णुवदाण

(१३) मुद्राराक्षस पृ० के ७ पृ० १०२ के एक पृ०

राज्य के कर्तव्य में सभी राज्य भी समात्य का ही दर्जा देता है।^१ यह ध्यान देने के साथ है कि समय कत व कौं म प्रसार द्वारा प्रयुक्त महामन्त्री या 'महामात्य का प्रयोग कही भी नहीं मिलता। गुप्तकालीन अभिलेखों में महा विरोपण का प्रचुर प्रयोग मिलता है अथ महाप्रतिहार महा रणनायक और महासचिव विग्रहक के समान ही प्रसार ने महामात्य या महामन्त्री राज्य भी बना लिये हैं तो इस प्रकार के आदर्श की बात नहीं फिर भी राज्यकाल में और मौर्य काल में भी इस प्रकार के अर्थ लटक ही जाये हैं। यह भी सम्भव है कि मनुस्मृति के मुद्रामात्य और सचिव इनको अन्वय पर इसका निर्माण हुआ हो। कानिदास ने सभी समात्य और सचिव इनको समानार्थक माना है।^२ यद्यपि इन सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। ऊपर हम समात्यवर्ग की वर्णना कर पाये हैं। कौटिल्य ने भी कई समात्यों का उल्लेख किया है जिनमें सबसे प्रधान समात्य को मंत्री कहा गया है।^३

गुप्तकाल में 'कुमारामात्य अथ का प्रयोग अत्यन्त प्रचलित जान पड़ता है। कर्मण्डा के शिलालेख में अत्रगुप्त विक्रमादित्य के मंत्री पितर स्वामी एवं कुमारगुप्त प्रथम के मन्त्री पुष्पीसन को कुमारामात्य कहा गया है।^४ समुद्रगुप्त की प्रयोग प्रचलित य हरिवंश के पूर्व तीन विग्रह प्रयुक्त हुए हैं।^५

१-सचिव विग्रहक २-महागमात्य और ३-महादण्डनायक। विष्णु इन सब उल्लेखों से यह ज्ञात नहीं हो पाता कि वस्तुतः कुमारामात्य का पर क्या था। संभवतः के बिहार भाग में शिलालेख में कुमारामात्य का उल्लेख हुआ है। उक्त सब म यह सर्वाधिक अधिकारी नहीं है। उनके पूर्व उपरिक्त पदानिकारी का नाम पाया है।^६ कौटिल्यकृत त्रितीय के देववरलाक केक म भी कुमारामात्य से पूर्व उपरिक्त का उल्लेख हुआ है।^७ कुमारामात्य एक विभे का वासक जान पड़ता है।^८ उक्त उल्लेखों से ज्ञात होता है कि कुमारामात्य की नियुक्ति उपरिक्त महाराज करता था। उपरिक्त की स्थिति प्राप्तोप राज्यपाल की ही होती थी और उसका

- (१) मुद्राचसव ७/२०० (२) इण्डिया इन कानिदास जगन्नाथ पृ० २२७
- (३) साहक इन दि गुप्ता एव मास्टोर : पृ० २५२
- (४) धर्मशास्त्र १/२/२ १/५/३३
- (५) दि हिन्दू प्राक मौर्य ईस्टन इण्डिया बसाक पृ० ५०/५२
- (६) महामंडनायक अथ मनुस्मृति पुस्तक संचिकिपट्टिक कुमाउवात्य महारणनायक हरिवंशस्य सर्वभूतहित मुद्रापास्तु
- (७) सैमेट इ स्किपघाम्य सरकार पृ० २५४
- (८) सैनेक इ स्किपघाम्य सरकार मं० २१
- (९) कौटिल्य इ स्किपघाम्य इ स्किपघाम्य वलीट ३/४६ पृ० २१५
- (१०) इपीपाकिदा इंडिका मं० ७ पृ० ११४

स्वामि सम्राट के ठीक बाव में ही घाटा था।^१ इस सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद होते हुए भी यदि क्षत्रिय को प्रांतीय राज्यवास मान लिया जाय तो कुमारामात्य को शिक का शासक माना जा सकता है। वा सहस्र ने अपने एक लेख में 'कुमारामात्य को प्रांतीय गवर्नर को सप्ताह देने का नाम मंत्री माना है।^२ उपर्युक्त तर्कों के आधार पर यह धर्म अधिक अनुपयुक्त नहीं है परन्तु उपर्युक्त धर्म को स्वीकार करने में तीन आपत्तियाँ हैं —

१—कुमारामात्य पृथ्वीसेन यहि शिके का शासक था तो यह समझ में नहीं आता कि प्रसाद ने उसे सम्राट कुमारगुप्त की मंत्रिपरिषद में मंत्रणा का अधिकार किस आधार पर दिया है।

२—यह समझ में नहीं आता कि समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रवृत्ति में संविधिबद्ध धीर महाबल्लभायक जैसे महत्वपूर्ण एवं उच्च राजकीय पदाधिकारी हरिदेव कुमारामात्य जैसे साधारण पद से क्यों भूषित किया गया है।

३—प्रसाद के मतों में केवल एक ही कुमारामात्य नहीं है। उसमें महा संविधिबद्ध पृथ्वीसेन के साथ साथ महाबल्लभायक भीरसेन^३ एवं काश्मीर के शासक मासुमुत्त^४ भी कुमारामात्य हैं अतः यह प्रश्न उठता है कि वे विभिन्न पदाधिकारी शिके के शासक किस प्रकार माने जा सकते हैं।

डा० सहस्र के धर्म से उपर्युक्त एक भी आपत्ति का निराकरण नहीं हो पाता। कुमारामात्य की वा मासुदेवसरण अप्रवासन इससे भिन्न एठ महीन धर्म दिया है। उनका कथन है कि धर्मात्य सब राजनीतिक क्षेत्र की एक विशेष पदवी का नाम न था। गुप्त सम्राटों में प्रयुक्त कुमारामात्य पद के धर्म पर विचार करने से इस धर्मात्य शब्द का अर्थ समझ में आ सकता है। धर्मात्य का एक अर्थ सखा या साथी भी था। परमभट्टारक सम्राट के साथ सखामात्र या बराबरी का पद किसी का भी नहीं हो सकता था। कुमार राज्यवर्द्धन के लिए कुमार गुप्त धीर माघवन्त सखा निरवकत किए गए थे। जान जाता है कि बहुत पहले से कुमारों के बराबर सम्मान के मापों उनके सखामों की निवृत्ति हुई गयी थी। पीछे चलकर बही गौरवपूर्ण पद कुमारामात्य के रूप में निवृत्त किया गया। कुमारामात्य पदवी मंत्रिपरिषद के मंत्री विभाषित आदि साधन के उच्चतम अधिकारियों को प्रदान की जाती थी। समुद्रगुप्त के प्रयाग स्थल क्षेत्र में हरिदेव के नाम के बहुत ही विराट् प्रयुक्त हुए हैं। —

(१) इतिहासिका इतिहास १५ नं० ७ पृ० ११४

(२) विवेचन—कईमालास सहस्र पृ० १६३

(३) स्कंद १/११

(४) स्कंद ४/११६

इनमें में महारणनायक शैलिक पय (मिमिटी रेंज) का शोतक का मन्त्रिप्रहृष पासन-
तन्त्र के अधिकार पत्र (आठिन) का सुचरु का और कुमारामात्य व्यक्तिगत सम्मानित
पदवी (टाइटिल) का वाचक था ।^१

अनुक्त विवेचन से दो बातें स्पष्ट हैं । एक तो यह कि कुमारामात्य
पासनधिकार सुचक पत्र न होकर व्यक्तिगत सम्मान सूचित करने वाली पदवी है
दूसरे यह कि सुप्तपासन में यह पदवी मन्त्रियों से लेकर विचरति तक के लिए
सुरक्षित थी ।^२ प्रसाद के शब्दों में प्रदुक्त 'कुमारामात्य पत्र का वा अक्षराल
हाथ निर्धारित अर्थ से पूर्ण साम्य है । इससे स्पष्ट है कि प्रसाद न उक्त पत्र की
सुप्तकामी अर्थ देने में पूर्ण ऐतिहासिकता का धारण किया है ।

'सकदपुत्र' में महारणनायक का उल्लेख मात्र हुआ है ।^३ उसमें यह अनुमान
नहीं लगाया जा सकता कि प्रसाद उन्ने किस कोटि का पत्र मालते
महारण्ड नायक है । इसी शान्ति में अन्तम अंतीग्राम के रणनायक का भी उल्लेख
रणनायक हुआ है ।^४ यह काशीर के कुमारामात्य के अर्चन सुरक्षा अधिकारी
है । 'अनातपुत्र' में 'रणनायक पत्र वाली के रणनायक' के
लिए प्रयुक्त हुआ है ।^५ जिसके कर्तव्यों का अनुमान इस प्रकार लगाया जा
सकता है ।

(१) यह काशी राज्य का प्रधान है ।

(२) काशी का राजस्व भी वही ग्रहण करता है क्योंकि प्रजा के कर न देने
पर अनातपुत्र काशी के रणनायक को ही बोनी टहराता है ।^६

(३) काशी के ग्नाय एवं सुरक्षा अधिकार भी (पोलिम प्रीवीरिटी) उसी के
पान प्रतीत होते हैं क्योंकि वह शय्या का प्रभो होने के कारण
जसकी इच्छा पर दीर्घकालीन शक को घुसी से मुरन कर देता है ।^७

(४) वह (रणनायक) इनका प्रशासकानी है कि लोगन का संतापति भी
असकी प्रनप्रता की कामना करता है ।^८

महारणनायक का उल्लेख समुद्रमुल की प्रयोग प्रदर्शित से हुआ है ।^९ जीवन

(१) हर्षवर्धन एक मौखिकिक अन्वयन अक्षराल पृ ११२

(२) कोशिकीविषये त्रिपुल्ल कुमारामात्य देखिए कामोदरपुर ताभरण

(३) स्कंद १/३९

(४) वही ४/११९

(५) अनात २/९२

(६) वही २/९९

(७) वही २/०८ (८) अनात २/९९

(९) 'सैलक इतिहास (सरकार) पृ २६४

गुप्त द्वितीय के देव वरगर्गादि श्रेष्ठ में भी महादण्डनायक का नाम पाया है।^१ सास्टीर के मत से सम्भवतः महादण्डनायक सेना एवं श्यायविभाग दोनों का अधिकारी होता था^२ दण्डनायक उसका अधीनस्थ अधिकारी होता था। उक्त धर्म और प्रसाद के धर्म में पर्याप्त अन्तर पड़ जाता है। काशी के दण्डनायक के पास सेना और श्याय का अधिकार तो है ही इसके अतिरिक्त उसके पास सुरक्षा और राजस्व सम्बन्धी अधिकार भी हैं। साथ ही वह एक राज्य का प्रशासक भी है। अतः उसकी शक्ति को देखते हुए उसे महादण्ड-नायक मिलना समीचीन प्रतीत होता है। महा दण्डनायक शब्द के प्रयोग का आभार कदम्बर आठक होने से प्रसाद का श्याय धर्म मिलता ही धोर नहीं जा सका है।^३

नन्दिग्राम के दण्डनायक को सुरक्षाधिकार सौंपकर प्रसाद पुनः मूल धर्म से अलग हुए हैं। काशी और नन्दिग्राम दोनों के दण्डनायकों की पहचान भी मिल मिल है। काशी एक राज्य है और नन्दिग्राम काश्मीर राज्य का सम्भवतः एक ग्राम है। काशी के दण्डनायक से धामन्त तक सतर्क है और नन्दिग्राम के दण्डनायक का आभारण छाठिरणक सेमिड से अधिक महत्त्व नहीं। उसका काम धोर का पता लगाना अथवा पण्ड भोगना है।

प्रसाद के नाटकों में 'दीवारिक' का उल्लेख कई स्थलों पर हुआ है। प्रसेनजित की राजसभा में दीवारिक मगध से बीरक के जाने की सूचना देता है और राजा मिलने पर उसे बिना साता है।^४ 'मजातस' में सम्राट मजातसनु को धर्म देवदत्त के जाने^५ और 'अश्वपुत्र' में आश्वय को माल बिका के जाने की सूचना^६ दीवारिक ही देता है। इसी प्रकार 'स्कन्दपुराण' में धामन्तदेवी को पर के जाने की सूचना देकर उसे बिना जाने का कार्य भी बही करता है।^७ इन सभी स्थलों पर दीवारिक का धर्म द्वारपाल ही है। प्राचीन काल में गुरुय और सभी द्वारपालों के लिये अथवा 'दीवारिक' और 'दीवारिकी' का प्रयोग पाया जाता है।^८ 'सुश्रायस' में करमक राजस से मिलने आता है तो द्वार पर किसी को न पाकर पुकार उठता है को अथ दीवारिकानाम्।^९ उही में राजस को

(१) सी प्राइ धार्ड (प्लीट) ३ १ पृ० १६ १७

(२) माहक इन वि गुप्ता एव (सास्टीर) पृ० २६४

(३) कदम्बर आठक ४/२/३१५

(४) मजात० १/५३

(५) वही २/६३

(६) अश्व० ४/२०२

(७) स्क० ३/३२

(८) रघुवंश ६/५६

(९) सुश्रायस पृ० ४ पृ० ५०

करवक के घाने की सूचना भी बीवारिक ही देता है।^१ अगार के नाटकों में चार स्थलों पर बीवारिक के विभिन्न सम्बोधन इन प्रकार हैं 'मजाराज की जय हो'। 'जय हो देव' 'जय हो धर्म और 'जय हो'। इन सम्मान सूचना स्थलों में 'मजाराजन' के 'जय जय' की प्रथा स्पष्ट रीक पड़ती है।^२ 'रघुवज बीवारिक के लिए शास्त्र'^३ और द्वार रक्षिका के लिए 'बीवारिकी' शब्द का प्रयोग हुआ है। प्रब^४ और शास्त्रों^५ महोदय बीवारिक का प्रथमी पर्याय 'द्वार रीपर मानते हैं। सर्वशास्त्र में मजारा के निम्नी श्रुतों में 'बीवारिक का उल्लेख भी किया गया है।^६

'प्रतिहार का प्रयोग केवल अन्तमुप्य नाटक म एक ही स्थल पर हुआ है। अन्त-प्रतिहार को विद्योरी नागरिकों को बन्धी करने और राजनिहासन को बचाने के लिए उनमें युद्ध काल का आदेश देना है।^७ 'अन्तमुप्य' म ही प्रतिहार शब्द की प्रथा है प्रतिहार चारुधम को चिका पकड़कर पड़ीटा है।^८ प्रबत्सामिनी में प्रतिहारी महाराज का खोवती हुई प्रबत्सामिनी के शासन में जाती है।^९ 'दाम्पती में महारथी को बन्धी का आयतन सूचित करने के लिए 'प्रतिहारी का प्रवेष्ट हुआ है।^{१०} 'प्रतिहार शब्द के रूप से ही सिद्ध होता है कि प्रतिहार पुरय ही होता था। प्रतिहारी का प्रयोग सर्वथ विचाररक्षोप है। गम्य कोप के अनुसार प्रतिहारी का कार्य मुख्यतः 'द्वारपालिका है और सामान्यतः 'द्वारपाल नाम के लिए उनका प्रयोग हुआ है।^{११} मस्तुय के नाटकों में प्रतिहारी प्रायः सर्वथ ही स्त्री है 'मजाराजन में प्रतिहारी 'विजया' और 'दोषोत्था' हैं और उनका काम किसी के आयतन की सूचना देना और पत्रपर्यन्त करना है।^{१२} 'प्रतिमा नाटक म प्रतिहारी का नाम विजया है और वह राजा की शाखा और संदेश को ले जाने का कार्य करती है।^{१३} अग्निमान पाण्डु तन में प्रतिहारी 'वेत्तवती' राजा दुप्यस्त का पत्र प्रवेष्ट करती है और आत्मकुओं के आयतन की सूचना देनी है तथा बाहर में मन्त्रियों के सन्देश एव अन्त-पुर के राजा

- | | | | | |
|------------------------------------|-------|-----------------|---------------|-------|
| (१) मजाराजन | पृ. ४ | पृ. ५० | (२) बही | ४/५१ |
| (३) रघुवज | | १/८८ | (४) बही | ६/५८ |
| (५) मजाराजन 'प्रब' | | अ प्रथमी अनुवाक | | |
| (६) नाटक इन श्रुतों एव (शास्त्रों) | | पृ. २५४ | | |
| (७) सर्वशास्त्र | | १/१२/५ | (८) अन्तमुप्य | १/१०६ |
| (९) अन्तमुप्य | | १/८१ | (१०) प्रब | १/१५ |
| (११) दाम्पती | | १/२२ | | |
- (१२) 'प्रतिहार (१) ए. सी. एम. डोरकीपर (२) ए. डोरकीपर इन अनरल :—
संस्कृत इ. दक्षिण हिन्दुनरी (बामन गिबराय शास्त्री) पृ. १५५
- (१३) मजाराजन पृ. ३ (१६) 'प्रतिमा अन्तक 'बात अ. क. ६ पृ. ७७

की भासा बहम करती है। 'अमरकोप' में तो प्रतिहारी सम्ब स्पष्ट ही स्त्रीत्व में प्रयुक्त हुआ है।^१ इस उदाहरणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रतिहार पुरुष होता था और प्रतिहारी स्त्री होती थी। उसका कार्य द्वार पर सड़ा रहना अन्त-पुर में या राजप्रासाद में ही अन्यत्र प्रांगणों का सम्बोध पहुँचाना, वहाँ से राजा का आदेश बाहर ले आना और राजप्रासाद में में राजा एवं अन्त्यायत का पथ प्रदर्शन करना होता था। इस निष्कर्ष के आधार पर पहले तो राज समा में नर के प्रतिहार की उपस्थिति ही प्रतीक्षणीय है फिर उसको विद्वेही नागरिकों का बंदी करने एवं राजविहासन की रक्षा के लिए युद्ध करने की भासा का तो किसी प्रकार भी समर्थन नहीं किया जा सकता। यह भासा किसी वैदिक अधिकारी के लिए अधिक उपयुक्त होती। अब रही प्रतिहारों। 'अमरकोप' में प्रतिहारी पुरुष है 'राज्यधी' में वह पुरुष है अथवा स्त्री यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता अन्यत्र वह स्पष्ट ही स्त्री है। नर का प्रतिहारी राजसमा में उपस्थित है और वह आनन्द जैसे पुरुष की सिखा पकड़कर बसीटने का पौरुष कार्य करता है। चाहे पुरुष हो या स्त्री प्रतिहारी के इस प्रकार के कार्य का कहीं भी प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। 'प्रबुद्धाग्निनी' और 'राज्यधी' में प्रतिहारी को उसके उपयुक्त कार्य ही दीये गए हैं।

इसी प्रसंग में बौद्धिक को से सेना भी समीचीन होना जहाँ तक बौद्धिक बौद्धिकी और प्रतिहारी प्रतिहारी के व्यत्यासर्ष का प्रश्न है वहाँ तक ये पर्याप्त ही प्रतीत होते हैं। बौद्धिक (की) द्वार सख से व्युत्पन्न है और कामिदास ने इसके लिए 'द्वारस्य अन्त का प्रयाग भी क्रिया है। उच्च प्रतिहार सम्ब भी द्वार का पर्याय है।^२ परन्तु अन्तहारत दोनों के अर्थों में स्पष्ट अन्तर प्रतीत होता है। बौद्धिक सम्भवतः प्रयाग द्वारों का रक्षक होता है और उसका कार्य प्रांगणों के आगमन की सूचना मात्र भेजना था। अन्त-पुर तक जाने का अधिकार भी सम्भवतः नहीं था जिससे भीतर जाने वाले अधिक उसे प्रतिहारी के द्वारा ही मित्रवाने पड़ते। ये प्रतिहारी या प्रतिहार प्रासाद के भीतरी कक्ष एवं अन्त-पुर के द्वार में उपस्थित रहकर निरिच्छ कार्य करते थे। सभी संस्कृत नाटकों में प्रतिहारी स्त्री की उपस्थिति हमारे उक्त अनुमान की पुष्टि करती है। (मुद्राराक्षस) में विजया (प्रतिहारी) मलयकेतु का सम्बोध केन्द्र राजसभ के प्रासाद तक जाती है और उसको

(१) शाकु तल कामिदास व पावनी पृ ५९ पृ ८५ ८६

(२) अमरकोप ३/३/१७१ द्वारि वा स्त्री प्रतिहार प्रतीहार्यप्यनगरे

(३) 'स्त्रीद्वार प्रतीहार' अमरकोप २/२/१६

(४) मुद्राराक्षस पृ ४४ रं व संकेत (संभी राजसभ के दर के बाहर का प्रांत)

लेकर मनबकैतु के प्रासाद में छाती है। इससे वह अनुमान किया जा सकता है कि नौपनीय कार्यों के लिए वह मुख्यद्वार के बाहर भी आ जा सकती थी जबकि बीमारिक को घण्ट-पुर में जाने का प्रतिवन्द्य रहता था।

ब्रह्मेले स्वरमुष्ट' में महाप्रतिहार शब्द का प्रयोग पाया जाता है।^१ उसके अनुसार वह घण्ट-पुर का प्रधान अधिकारी और वहाँ 'सम्राट का भी उतना अधिकार नहीं होता जितना महाप्रतिहार का^२ इस शब्द का महाप्रतिहार प्रयोग नाट्यशास्त्र अथवा संस्कृत के नाटको में नहीं मिलता। निश्चय ही यह शब्द महा पदबुद्ध उपाधिका के समान युक्तकाल की ही विशेष धर्माधि है। लीबितशुन द्वितीय के मर्यादा में इनका उल्लेख हुआ है^३ पर इसके काम का कोई विवरण नहीं मिलता। प्रभाव शुभकाल में महाप्रतिहार की यह मर्वाशा कुमारामात्य और महासंविधिपट्टक के समक्ष मानते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिहार बीमारिक एवं घण्ट-पुरी परिचारक उनके आधीन होते थे और घण्ट-पुर की मर्वाशा की रक्षा के लिए वहाँ उनका इतना अधिकार होता था कि सम्राट स्वयं भी उनकी आज्ञा के बिना घण्ट-पुर में प्रवेश नहीं कर सकते थे। कम से कम प्रसाद की यही मान्यता है और महाप्रतिहार के घण्ट-पुर मरवाको का उल्लेख इस बात का समर्थन करता है। माल्टोर महाप्रतिहार' और कचकी शीतों को एक मानते हैं।^४ संस्कृत नाटको के अनुसार एक सम्मान सम्पन्न सर्व कार्यकुशल मत्स्य सम्पन्न काम शीघ्र निर्वाहित वस्त्र बाध्य ही कचकी होता था। घण्ट-पुर के समस्त अधिकारों का प्रतीक दण्ड उमठ महत्त्वपूर्णे पद का निश्चय करता था।^५ वहाँ उक्त घण्ट-पुर की मर्वाशा की रक्षा का प्रयत्न है वहाँ उक्त माल्टोर का कथन उचित जान पड़ता है। स्वयं माल्टोर में सम्पन्न महारङ्गायक एक महासंविधिपट्टक को यैपी में महाप्रतिहार को भी रखा है परन्तु संस्कृत नाटको में कचकी की पर्याय मर्वाशा शब्द हुए भी उसे उपयुक्त सम्मान नहीं दिया है। अतः कचकी को महाप्रतिहार के समक्ष रखने में साम्यार में स्वयं प्रयत्ना विरोध किया है। 'अष्टवपुत्र नाटक में केवल एक बार कचकी का प्रवेश बन्धुमुष्ट को

- | | | |
|----------------------------|--------|-----------------|
| (१) स्वर० | १/१५ | |
| (२) बही | १/१५ | |
| (३) शी० घा३० घा३० (कपीट) | ३/४३ | पृ० २१६ |
| (४) स्फ० | १/१५ | |
| (५) नाटक इन दि मूक्त एव | ३० २५१ | |
| (६) 'नावानन्द अनुकर्मिणी म | २०१ | वागुत्पन्न ५/८० |

खयन के समय की सूचना देने के लिए हुआ है।^१ यहां केवल इतनी ही-जात के लिए एक नए पात्र का प्रवेश कराकर प्रघाव ने कंचुकी की स्थिति और-मर्यादा को और भी स्पष्ट कर दिया है। सास्टर लिखते हैं कि 'प्रतिहारी के ऊपर महा-प्रतिहार और उनका भी मुखिया उस काम में बीवारिक कहलाता था'^२ महाप्रतिहार को प्रतिहारों का मुखिया मानने में तो कोई आपत्ति नहीं हो सकती। किन्तु बीवारिक को महाप्रतिहार के भी ऊपर किस प्रकार माना है यह निश्चय है। हम पहले कह चुके हैं कि 'प्रतिहारी वा प्रतिहार' बीवारिक से अधिक निम्नसनीय घनवा पर मर्यादा में अधिक होता था। यदि महाप्रतिहार को कंचुकी के समकक्ष भी माने तो भी वह बीवारिक के ऊपर ही होता होगा। 'प्रतिमा' नाटक में कांचुकीय सभी द्वारों में स्थिति 'बीवारिकों' और 'प्रतिहारों' को छावभाग रहने का आदेश देता है।^३ निश्चय ही वहां वह इन सबका मुखिया है। अतः महाप्रतिहार को मंत्रियों की कोठि में रखना ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है। यही प्रघाव ने किया भी है।

भू-स्वामिनी' नाटक में पुरोहित उपद्रवों के बाध घाति कर्ग के लिए स्वस्वयम् करने जाता है।^४ मंत्राकिनी उसे सम्मानसूचक धार्क' कहकर धमिहित करती है।^५ गुप्तसाभ्राज्य के धमार्य को पुरोहित केवल सिसार' संबोधन देता है।^६ ये दोनों बातें पुरोहित की महत्त्वपूर्ण स्थिति की सूचक हैं। वह धर्मशास्त्र का मुख' माना गया है^७ धर्म के सम्बन्ध में उनका निर्णय समस्त गुप्तकालीन परिपद् को मार्ग्य है।

पाणिनि 'पुरोहितविणय' में राजा और सेनापति को भी सम्मिसित करते हैं और वे इस प्रकार पुरोहित के महत्त्व को स्वीकार करते हुए उसके लिए वेद और ब्रह्मिणी दोनों में पारंगत होना आवश्यक मानते हैं।^८ धर्मशास्त्र में 'पुरोहित का पद महत्त्वपूर्ण है। अस्तिक धार्कर्म मंत्री सेनापति मुखराज राजमाता एवं राज महिषी के साथ ही उसका स्वागत है एवं उसे भी इनके समान ही प्रतिवर्ष ४८००० पत्र वेतन देने का विधान है।^९ शुक्लीति को ६० वर्षवाल गुप्तघासन का क्रीटनीय धर्मशास्त्र मानते हैं। उसमें पुरोहित के सम्बन्ध में निम्न उल्लेख महत्त्वपूर्ण है

'पुरोधाः प्रथमं श्रेष्ठं धर्म्योराजराष्ट्रभूत्'

- (१) पत्र० ४/२०७
 (२) साहस्र इम दि गुप्ता पत्र पृ २५४
 (३) प्रतिमा नाटक भाग अंक २ पृ २४
 (४) पत्र० ३/५० (५) वही ३/५२
 (६) वही ३/५१ (७) वही ३/५१
 (८) इ दिया ऐम मोन दू पाणिनि : प्रबन्धाल देखिए पुरोहित
 (९) धर्मशास्त्र ५/३/४
 (१०) शुक्लीति २/७४

प्रसाद ने पुरोहित की वर्णा युक्तकाल में ही की है। यह उनके पुरोहित में भी युक्तकाल के पुरोहित का गौरव होना ही चाहिए था। कामिदास के उपसंहार से भी इसकी पुष्टि होती है कि धार्मिक कार्यों के संपादन में पुरोहित का प्रथम स्थान था। "पुरोहित को 'वर्मसाधन का मन्त्र' कहने में प्रसाद का यही धर्मिप्राय मान पड़ता है। स्वस्वयम् एवं वर्म सम्बन्धी निर्णय में प्रसाद ने इती कारण उसको सर्वोच्च स्थान दिया है।

न्याय एव न्यायाधिकरण

प्रसाद के नाटकों में राजा को सर्वत्र प्रथम न्यायाधीश के रूप में चित्रित किया गया है। कोष्ठक में आबस्ती की राजसभा में प्रवेतचित पिता के रूप में नहीं न्यायाधीश के रूप में अपने पुत्र विप्लव और राजमहिषी सक्तिमती के बिच्छू न्याय व्यवस्था देता है।^१ मगध की राजसभा में मन्व शकटार बरबिभ्याय मौर्य आराज्य और चन्द्रगुप्त की माँ का न्याय कर उनको बंदिब करता है।^२ चन्द्रगुप्त अपने पिता का न्याय करता है।^३ स्कंदगुप्त उज्जयिनी में अमिपित्त होते गी बरियों का न्याय करता है।^४ बर्म राज्यों में तथा अन्य प्राचीन राज्यों में दुष्ट बमन पूर्वक सति से प्रजा पामन के निमित्त राजा के लिए बंड भारण करने की आवश्यकता बताई गई है। बुद्ध के अनुसार वंभीति ही राजा के समस्त उपनमों को पूर्ण करने वाली है और दुष्ट ही समस्त बर्मों का उत्तम धरण है।^५ मनु भी प्रजा की रक्षा के लिए बंड भारण आवश्यक समझते हैं।^६ इसी बात को ध्यान में रखते हुए प्रसाद ने स्वान-स्वान पर प्रजा के लिए न्याय एव बंड के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। आभक्त्य चन्द्रगुप्त से कहता है सन्नाट न्याय करना तो राजा का कर्तव्य है।^७ चन्द्रगुप्त स्वयं भी अपने पिता के अपराध को क्षमा न कर न्याय करना चाहता है।^८ गौतम बिबसार से कहते हैं बिरत्तों को भी राजधर्मन की आवश्यकता इसलिए हो जाती है कि न्याय का पत्र बिबयी हो।^९

उक्त उक्तिओं से पता चलता है कि राजा सर्वोच्च न्यायाधीश के रूप में होता था और उसका निर्णय अन्तिम निर्णय होता था। स्कंदगुप्त नाटक में काश्मीर के एक न्यायाधिकरण का भी उल्लेख है जहाँ न्यायकर्ता एक कुमारामात्य है राजा नहीं।^{१०} इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि राजा में प्रजा के लिए न्यायव्यवस्था सुलभ करने को न्यायाधिकरण होते थे और उनमें राजा द्वारा नियुक्त न्यायाधीश होते थे जिन्हें कुमारामात्य कहा जाता था। राजा अपना कुमारामात्य को न्याय पत्र में प्रवृत्त करने के लिए राजबंड होता था। राज व्यवस्था करने वाला

(१) अजात १/१२

(२) बही ४/२४६

(३) मुञ्जनीति ४/४८

(४) चन्द्र ४/२४६

(५) अजात अक १

(६) चन्द्र १/११०

(७) स्कंद २/५३

(८) मनुस्मृति

(९) बही ४/२४६

(१०) स्कंद ४/११६

यह राजदंड बर्माशास्त्र और परंपरा के आधार पर होता था। बर्माशास्त्र के धर्म स्वीय प्रकरण में लिखा है कि 'शास्त्र के आधार पर ही निर्णय देना चाहिए उसके विरोध में दिया गया न्याय बर्मा मुक्त न्याय नहीं कहा जा सकता।' प्रमाण में भी बर्माधिकारी^१ तथा पुरोहित^२ को दंड व्यवस्था देते हुए प्रदर्शित किया है और उनकी व्यवस्था साम्य समझी गई है। प्रमत्तचित्त अपने पुत्र के लिये दंड की व्यवस्था स्वयं न कर बर्माधिकारी से व्यवस्था मांगता है। "किन्तु वह राष्ट्र का शाही है क्यों बर्माधिकारी उसका क्या दंड है।" पुरोहित बर्माशास्त्र के अनुधार प्रबन्धाभिनी को गणान् राक्षस्युत के विरुद्ध विवाह मोक्ष का अधिकार दे देता है और समस्त परिपक्व इस निराश को सम्मानपूर्वक स्वीकार कर लेता है। कोमल के राजदंड में इसके पूर्व युवराज को पञ्चभुक्त नहीं किया घन परंपरा का विरोध होने के कारण कोमल का प्रमात्य प्रमत्तचित्त के न्याय को न्याय नहीं मानता। बर्माशास्त्र के अनुधार राजा के जाल का विमात्रन कर एक विनाश विनाश न्याय व्यवस्था के लिए निर्दिष्ट होता था जिसमें वह न्यायाधिकारियों से घाये हुए अभियोगों का अन्तिम निर्णय करता था। इस प्रकार वह राष्ट्र का सर्वोच्च न्यायाधीश भी था। मेघस्थनीय से पता होता है कि सभान् अग्रपुत्र स्वयं अभियोग मुनकर दंड विधान करते थे और न्यायाधिकारियों से घात हुए निर्णय के सम्बन्ध में भी अपना विचार देते थे।^३ अभिमान पाण्डु तल से यह ज्ञात होता है कि राजा नित्य ही एक विविष्ट समय पर न्यायासन पर बैठकर न्याय व्यवस्था किया करता था।^४

बर्माशास्त्र के अनुधार न्यायपूर्वक प्रजा की रक्षा करना राजा का परम कर्तव्य है जो राजा प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता उसका दंड धारण करना धर्म है।^५ और केवल राजदंड ही लोक और परलोक में रक्षा करता है।^६ इसलिए राजा क पुत्र और धनु का निष्पन्न न्याय करना चाहिए। विरुद्ध अपने पिता से न्याय

(१) अस्वया धर्मशास्त्रेण शास्त्रेण वा व्यावहारिकम् ।

यस्मिन्मार्गे विरुद्धेन बर्मेनार्ये विनिर्णयेत्—१—

शास्त्रे विरुद्धिपर्यंत बर्मेन्यायेन केनचित् ।

न्यायस्तत्र प्रमार्ये न्यायतत्र पाठो ही मर्यति—२—

बर्माशास्त्र कीटिल्य १/१/५१ ५७

(२) बर्मा १/१२९

(३) प्रथम अक्षर

(४) एतिए ट इतिव्या वैविद्वत्

(५) अभिमान पाण्डु तल कालिदास अक्षु ५/५

(६) 'राज स्वयमे स्वर्गीय प्रजा बर्मेण रक्षितुं धरतिपुत्रीं सेतुं न विष्णान्बमनोर
न्याय । धर्मशास्त्र १/१/५१

(७) 'वही हि केवलो लोकं पञ्च वैशं च रक्षति

बर्माशास्त्र १/१/५५

चाहता है। प्रसेनजित कहता है कि मैं यहाँ पिता नहीं राजा हूँ। इसी प्रकार सम्राट अश्वमेध अपने गुरु की हत्या का प्रयत्न करने वाले पिता का स्वाम्य करना चाहता है। इन उदाहरणों में क्षमा से स्वाम्य को महत्व दिया गया है। परन्तु धर्मग्रन्थ प्रसाद ने क्षमा को इतना महत्व दे दिया है कि धर्मशास्त्र और रीतिनीति दोनों उसके प्रभाव से खिल गये हैं। धर्माधिकारी विद्वान् को राजबोध के लिए प्राण बंद की व्यवस्था देता है। परन्तु प्रत्यक्ष रूप से मन्त्रिका एवं धर्मरोज रूप से बुद्ध से प्रभावित प्रसेनजित कहता है, धर्माधिकारी पिता का हृदय क्लिप्तता संभव होता है कि निमग्न उसे क्रूर नहीं बना सकता। मेरा पुत्र मुझे य क्षमा भिक्षा चाहता है। धर्मशास्त्र के उस पत्र की समझ तो मैं एक बार धर्मग्रन्थ क्षमा कर चुका। उसे न करने से मैं पिता नहीं रह सकता मैं भीषित नहीं रह सकता^१। इसी प्रकार स्वाम्यमुक्त के व्यापारिक के समय देखनी चाहती है बस आज तुम्हारे धुम महाभियोग में एक बूब भी रक्त न बिरे। तुम्हारी माता की भी यह संकल्प कामना है कि तुम्हारा धातन बंद क्षमा के संकेत पर क्षमा करे^२। इन दोनों उदाहरणों में क्षमा को बंद व्यवस्था से ऊपर रखा दिया गया है। पहले उदाहरण में तो क्षमा स्पष्ट ही बुद्ध के व्यक्तित्व एवं बौद्ध धर्म से प्रभावित होने के कारण है किन्तु दूसरे उदाहरण में इस क्षमा का समर्थन बुद्धनीति के आधार पर किया जा सकता है जहाँ रीतिनीति में भी क्षमा के महत्व का प्रतिपादन किया गया है।^३

प्रसाद के केवल दो माटकों में व्यापारिकरण शब्द का प्रयोग हुआ है, एक चन्द्र मुक्त और दूसरे एकमुक्त में। अश्वमेध में केवल एक स्थान पर इस शब्द का प्रयोग मातृवाचक अर्थ में एक व्यक्ति (सम्राट) में केन्द्रित स्वाम्य व्यापारिकरण गत्या की धीरे संकेत करता है। धर्मग्रन्थ यह स्वाम्य संस्वान का अर्थ घोषित करता है। एकमुक्त में भी इसी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग हुआ है। व्यापारिक सभी स्थानों में राजा ही है। कारकीर के व्यापारिकरण में मातृमुक्त व्यापारिक है। यह भी यहाँ का मातृ ही है पर यहाँ उसे कुमारामात्य कह कर सम्मानित किया गया है। प्रसाद द्वारा चित्रित व्यापारिकरण के चार अर्थ हैं

१ स्वाम्य कर्ता राजा या कुमारामात्य

(१) अश्वमेध ३/१५९

(२) एकमुक्त २/८५

(३) क्षमायावत् पुण्य स्यात्तस्मिन् बंद निपातनात्।

स्वप्रसादवदमातृय रूप राज्ञो भविष्यति। बुद्धनीति ४/५१

२ अधिमोक्ष विस्तृक्त चापवध और कमला

३ अधिवृक्त धसका, मीर-सेनापति राघव भटार्क सर्वनाग और विजया

४ राजकर्मचारी स्वनामक

गुप्तकालिक नाटक में श्यामात्मक और श्याम विधान की वर्षा श्यामल विस्तृत रूप से हुई है।^१ वही श्यामकर्ता राजा से मिल है और 'अधिकरधिक' कहा गया है। अधिमोक्षता और अधिवृक्त भयम' वर्षा प्रत्यर्थी है। राजकर्मचारियों में घण्टी, कामरुध नगर रत्नाधिकारी शकार और श्रीचन्द्र को गिनाया जा सकता है। बातों से यह ज्ञात होता है कि राजा स्वयं श्यामकर्ता होता था।^२ वर्षाघातन में श्याधिकरण के स्वान पर वर्षास्वीय और श्यामाधीन के लिये 'वर्षमस्व' शब्दों का प्रयोग हुआ है।^३ वैष्णवी की मृगार्थों में 'श्यामा पिष्टाणाधिकरण का उल्लेख मिलता है। गुप्तकालीन कर्तों एवं मृगार्थों में भा परममन्टारकवादीय कुमारामात्य अधिकरण^४ प्रयोग पाया जाता है। महा अधिकरण का शब्द श्यामात्मक है।^५

प्रसाद के अनुसार मानुष्य काश्मीर के भासक निपुण किये बने थे और राजवर्तिवर्ण भी इसका समर्थन करती है। इतिहास मानुष्य की किसी उपाधि से परिचित नहीं। प्रसाद ने उसे कुमारामात्य की उपाधि दी है और वह भी केवल एक बार जब वह काश्मीर के अधिकरण में श्याम करने बैठा है। संभवतः प्रसाद ने गुप्तकालीन शैलों एवं मृगार्थों में अंकित कुमारामात्य अधिकरण' से प्रभावित होकर ऐसा किया हो।

'अनात्मन्' से ज्ञात होता है कि राजद्वोह के लिये मृत्युदंड दिया जाता था। प्रसाद इस दंड को शासन सम्मत भी स्वीकार करते हैं।^६ बातों में राजनीही को मूर्खी पर बढ़ने के कई प्रमाण मिलते हैं। 'अभ्रगण्ट' के अनुसार इह व्ययस्वा मन्द की व्ययस्वा में राजद्वोह का दंड पाण्डव्य कारावास है। अक्षय एवं देह से निष्कासन का दंड भी मन्द ने दिया। पर्वतेश्वर चापवध को सीमा से बाहर निकल जाने की धांसा देता है। यही नहीं बरं राजद्वोह को हाथी से कुचमचाले की बमकी भी देता है। भयम की जनता शम्भार के निरीह बामकों की हत्या के बरसे नर के बच की मांग करती है।

(१) गुप्तकालिकः सूत्रक अंक ६ १०२/४२३ जोड़बोले-पनु-राइवरपु १३०-१२

(२) जातक ६० ५/१२५ देखिये सम्बंध १/१०

(३) वर्षाघातन ३/१

(४) इतिहासिक इतिहास ५० ५६ मूल ५० ५५

(५) संस्कृत इ बलिग दिवगानी घाटी ५० ४०

(६) अनात्म ३/१२६

धर्मशास्त्र के अनुसार राज्य की कामता धन्वपुर में धम्मवत्सा सत्र यों को उमारणा सेना को राजा से कृपित कर देना याचि राजब्रोह सम्बन्धी अपराधों के लिए स्पष्ट मृत्युदंड की धात्रा थी गई है परन्तु बाह्यण को अशक्य में बासने का विधान है।^१ इसका कारण यह है कि मनु के अनुसार बाह्यण धर्म्य है और बड़े से बड़े अपराध पर भी उसको केवल निष्कासन दंड दिया जा सकता है जब (हत्या) के लिये जब का विधान भी धर्मशास्त्र सम्मत है।^२ स्कन्दगुप्त के अनुसार गुप्त साम्राज्य के विधान में कर प्रषा की रक्षा के लिये लिया जाता था, यदि उसकी रक्षा कोई अधिकारी नहीं कर सकता तो उसकी मूर्ति से काटकर पीड़ित को बन दिया जाता था और यदि वह कम अधिक होता तो राजकोष उसे देता और उक्त अधिकारी को उसका फल भोगना पड़ता था। गुप्तकामीन दंड व्यवस्था का उक्त विवरण अक्षरशः फाह्यान के भारत भ्रमण से लिया गया है।^३

(१) धर्मशास्त्र कौटिल्य : ४/११/१७

(२) 'बड़े बड़े धर्मशास्त्र ४/११/१८

(३) द्रौणस्य भाष्य फाहियान ।

रणनीति

युद्ध और संघर्षों के द्वारा अपने राज्य का विस्तार करना प्रसार के सभी माटकों के नायकों की महत्वाकांक्षा रही है। अजातशत्रु को माँ की इच्छा उसे भरत-बंद का सम्राट देखने की है।¹ अश्वपुत्र धार्याशर्त का एकच्छत्र सम्राट होने के उपयुक्त है² और इसीलिए चाणक्य का उसे धार्यग मित्रता और मिलता है कि महत्वाकांक्षा का मोटी निष्पूरता की सीपी में रहता है। एकदयुक्त अश्वस्य राज्य के प्रति उदासीन है परन्तु अकपामित और पर्वदत्त बार बार उसे सबके अधिकारों की रक्षा के लिए अपना अधिकार सुदृढित करने को उत्तेजित करते रहते हैं।³ रामगुप्त स्वयं विजिजय करने के उद्देश्य से निकलता है⁴ और हर्ष के चरणों में उत्तरायण के समस्त सम्राट गठविर है।⁵ इसके अतिरिक्त यक्षत्र ऐसे नायकों की कमी महा है जिनमें युद्ध के महत्व का प्रदर्शन हुआ है। जैसे श्री प्रसार के कपानठ धारण के इतिहास के उन युवों को समेटे चलते हैं जिनमें क्षौरता को भी एक सुन्दर कला माना जाता था⁶ और बीरों में विजय-निष्ठा का होना स्वाभाविक समझ जाता था। विजिजय, अश्वमेध और अकवर्ती जैसे अत्यंत प्राचीन धर्म भी सम्राटों के राज्य विस्तार की भावना को प्रदर्शित करते हैं। भारतीय परम्परा में सम्राटों का आशय ही अश्वमेध था⁷ और वे 'सागरपर्यन्त महीं' को विजय करना अपना धर्म समझते थे।

भारतीय रणनीति की उल्लेखनीय विशेषता है धर्मयुद्ध। यहाँ युद्ध का धर्म हुआ नहीं है। कौटिल्य के धर्मशास्त्र के अनुसार युद्ध के समय भी किसान वैदिक सिविल के समीप निर्यंक होकर रह सके ऐसी व्यवस्था आवश्यक है।⁸ यूनानी इतिहासकारों को युद्ध के समीप ही हृषिकों को निर्मय हल जलाते बेलन र अत्यन्त धारण्य हुआ था और उन्होंने इसकी बड़ी प्रशंसा की थी।⁹ यही नहीं बलिय के एक लेख के अनुसार युद्ध के पूरे

(१) अजातशत्रु	२/१०७	(२) अश्व	१/१५७
(३) अश्व	४/११६	(४) अश्व	२/५२
(५) अश्व	१/१७	(६) युद्धनीति	१/१२
(७) अश्व	२/१२५	(८) महाभारत	१२/८/१५
(९) युद्धनीति	१/११	(१०) दि सिविलिजेशन इन ऐजिएण्ट इण्डिया	
(११) अश्व-नेत्र	१२३	—मुई नेत्र—	पृ० १२३

बिरोधी बलों के नेता प्रार्थों पर आक्रमण न करने का निर्णय कर लेते थे। प्रघाव के माटकों में इस प्रकार के धर्म युद्धों के संकेत मिलते हैं—'वे हमी लोगों के युद्ध हैं जिनमें रजसूमि के पास ही कृपक स्वच्छन्दता से हम बचाता है।' हमें तब युद्ध करना जानते हैं—श्रेय नहीं।^१ कौटिल्य ने तीन प्रकार के विजयी राजा बतलाये हैं—'धर्मविजयी' 'लौभविजयी' और 'असुरविजयी'। धर्मविजयी विजित के फल समर्पण से ही संतुष्ट हो जाती है।^२ प्रघाव के अनुष्ठान धर्मविजयी के उदाहरण हैं—'अश्वमेध' और 'स्वयंसेवक' विनयादित्य। 'अश्वमेध' विक्रम के बामन होने पर विक्रम की हत्या नहीं करता और उसे जाने देता है।^३ 'स्वयंसेवक' लिखित को परास्त करने पर भी उसे भारत की सीमा के उस पार जाने का आदेश देकर छोड़ देता है।^४ 'लौभ-विजयी' के उदाहरण हैं—'हृण' जिन्हें अथवा 'अथवा' 'अथवा' 'अथवा' कहती है। 'राज्य' का स्वयंसेवक असुरविजयी का उदाहरण है जो एक छोटे प्रह्वर्मा के प्राण लेने का वद्वय करता है दूसरे कान्यकुम्भ के सिंहासन का अपहरण करता है और तीसरे राज्य' को भी अपनी कामगारों का साजन बनाना चाहता है। धर्म युद्ध में विजित राजा की समस्त सम्पत्ति का अधिकारी होते हुए भी उसकी राज्याधीन पर विजेता राजा का कोई अधिकार नहीं होता था। युद्ध बंधियों को वह पुनः समझता था।^५ 'अथवा' मारक से परास्त को परास्त करने के उपरांत अश्वमेध अपने को अश्वमेध के समस्त अधिकारों का स्वामी अथवा समझता है।^६ किन्तु वह कोना इत्यादि के साथ किसी भी प्रकार का दुर्व्यवहार नहीं करता। युद्ध में बन्दी तिरिह' शर्तों का सहार' कर रामयुद्ध ने धर्मयुद्ध के नियम की प्रबलता की भी जिसके परिणाम स्वरूप उसे अपने ही सामर्थ्य का कोय भाजन होता पड़ा था।

धर्मयुद्ध में प्राण देने के महत्व का गुण मान अत्यन्त प्राचीन काल से किया जाता रहा है। 'अथवा' धर्मयुद्ध युद्ध में मरने वाले को पतिरप से बरण करने के लिए बोझो हुई जाती है—'और उसे धर्म मोड़ प्राप्त होता है।'^७ 'धर्मयुद्ध में मरने पर स्वयं और बीठने पर पुत्री भोग प्राप्त होता है'^८—गीता के इस वाक्य ने तो न

(१) दि विविक्षितेवत इन ठे सिम्ह इच्छिया (सुई रेनु) पृ० १३२

(२) अथ० २/१४५

(३) बही ३/१५५ (४) अथवा १२/१/११-१३

(५) अथ० २/१५१ (६) अथ० ५/१५२

(७) अथ० १/४५

(८) वीसिटिकल बीट इन दि पुराणा—(अथवा) धर्मयुद्ध १० २५

(९) अथ० ३/५१ (१०) अथ० ३/५१

(११) धर्मयुद्ध ४/४५, ४/४३-४४ (१२) धर्मयुद्ध २/३७

जाने कितने बीरों को छद्म के लिए अपना बलिदान करने को प्रेरित किया। प्रसाद के नाटकों में भी इस भावना को प्रथम मिला है। अन्तका धार्मिक को मर मिटने का आरोप इसलिए होती है कि— स्वर्ग की अप्सरायें बिजयमामा लेकर खड़ी हाथी सूय-यज्ञस मार्ग बनेवा घोर उन्मत्त आलोक से मन्थित होकर गान्धार राजकुम अमर हो जायगा।^१ अन्तुवर्मा अपने बीरों को हूणों से लड़ने के लिए यह कहकर उत्साहित करता है कि—'उनकी विश्वविजयिणी बीर-गाथा सुर-मुन्दरियों की बीणा के साथ मर ध्वनि से मग्न में गूँज उठेगी।'^२

प्रसाद ने अपने नाटकों में समा के लिए बाहिनी^३ तथा 'सेना' दोनों का प्रयोग किया है परन्तु सेना शब्द दो विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। मुरयत्त यह शब्द सम्पूर्ण समा का अर्थ देता ज्ञात हुआ है जिसके अन्तर्गत सभी सेना के प्रकार प्रकार के बलों का समावेश हो जाता है। एक स्थल पर यह एक टुकड़ी का अर्थ देता ज्ञात पड़ता है।^४ कौटिल्य और उसके पूर्ववर्ती तथा परवर्ती सभी प्राचार्यों ने सैन्य (सेना) शब्द को सम्पूर्ण बल के अर्थ में लिया है टुकड़ी के अर्थ में नहीं।^५ हा राजसेना अथवा-सेना इत्यादि में संबोधन सेना का प्रयोग सेना के एक अङ्ग विशेष के लिए तथा है। प्रसाद के नाटकों में अतुरगिणी का प्रयोग न होते हुए भी अजसेना^६ अथवासेना^७ रबी^८ और पदाति सेना के इन चारों अङ्गों का उल्लेख हुआ है। पदाति शब्द का प्रयोग ता प्रसाद ने नहीं मिलता किन्तु अज्ञा कहीं भी सैनिक शब्द का प्रयोग बिना किसी विशेषण के हुआ है वही यह पदाति सैनिक का अर्थ देता है। अतुरगिणी सेना में पदाति सैनिकों की संख्या सबसे अधिक होती थी इसका समर्थन युक्तोक्ति से भी होता है।^९ प्यास देने की बात यह है कि सेना के इन अंगों की तथा केवल अन्तर्गुप्त और 'राज्यधी नाटकों के उन्मत्त में ही हुई है। इतिहास से ज्ञात हुआ है कि मन्थ की सेना में २००००० पदाति सैनिक ८००० रथ ८०००० घोड़सवार ४६६ सैनिक तथा १००० हाथी थे।^{१०} अन्तर्गुप्त मौर्य की सेना में १००००० पदाति सैनिक १०००० घोड़सवार और ६००० हाथी थे।^{११} एवं हर्ष की सेना में आरम्भ में ५००० पदाति सैनिक २००० घोड़सवार एवं ५००० हाथी थे।^{१२}

- | | | | |
|--|--------------------|--|-------------------|
| (१) अन्तु० | ४२० | (२) स्कंद० | ३/१०१ |
| (३) स्कंद० | १/४५ अन्तु० १/७८ | (४) अज्ञात० | २ ८७ राज्यधी १/१६ |
| (५) अन्तु० | १/७९ | (६) अर्थशास्त्र | ६/२/९ |
| (७) अन्तु० | २/१२२ राज्यधी ३/५८ | (८) वही | २/१२२ वही ३/५८ |
| (९) वही | २/१२२ | (१०) पाराशर स्वर्ण आग्नेयाराधनमन्त्रमिमा'युक्तनीति | |
| (११) प्युटार्ड ऐज ट्रांसलैटेड बाई मेकिडल इन इन्डियन यू, ३१० | | | |
| (१२) फ्लॉरेंस ऐज कौटेल वाद शास्त्री इन 'एक प्राक मन्थान ऐज' मोर्यात्र ४० १८८ | | | |
| (१३) ऐजर्सेस प्राक हुमायुनाम (बीस) १/५ | | | |

बहुविधनी सेना के घटिरिक्त जससेना या 'नी-बल' का भी प्रघाव ने जम्बेक किया है।^१ जस उस्सेल केबल सिग्न्दर के बेने धीर मालकों की बल-सेना के ही सम्बन्ध में हुआ है। फ्लुटार्क ने सिग्न्दर की बल-सेना के साथ मासकों के नी-बल के युद्ध का विवरण दिया है।^२ क्रीटिमीय धर्मशास्त्र के नावाध्यय प्रकरण से ज्ञात होता है कि व्यापार कार्य से लेकर युद्ध तक प्रायः सभी कार्यों में लौकाय काम में लाई जाती थी।^३ साहित्य धीर इतिहास दोनों से इस बात के प्रचुर प्रमाण मिलते हैं कि नीयंत्र कास के पश्चात् भी नी सेना का प्रयोग किया जाता था। रघु ने अपने विगिबन्ध में नीयंत्र के कारण धर्मय समझे जाने वाले बंध देश को भी नीयंत्र लिया था।^४ धर्मशास्त्र की मारुर्षे मन्त्र की बृष्ण के विषय में समझे माझे सिध हुए पांच छः वैदिक एक नाम में मदी पार करते हुए दिखाये गये हैं।^५ धर्मार्थ्य है कि बन्धुगुप्त नाटक के घटिरिक्त गुप्तकास के किसी भी नाटक ने प्रसाद ने 'नी-सेना' की बर्चा नहीं की है—यद्यपि स्फंबपुष्प नाटक में इसके पश्चात् धर्मसर ने।

युद्ध के लिए बिलेय रूप से काम में लाई जाने वाली लौकायो को प्रघाव ने 'हितिका' कहा है।^६ 'हितिका' धर्म का प्रयोग क्रीटिस्य ने भी ठीक इस धर्म में किया है।^७ स्पष्ट है कि प्रघाव ने मालकों की हितिकाओं के वर्णन में क्रीटिस्य को आधार माना है।

धुम्क धीर क्रीटिस्य ने 'नीयंत्र सेना' 'सुर्य सेना' धारि के रूप में वैदिकों के छ मेंलों का वर्णन किया है। प्रघाव ने नाटक में इन सबकी तो बर्चा नहीं की किन्तु मान्ति रखकों एवं धरीर रखकों की बर्चा धर्मय की है। धान्ति रसाङ्क वैदिकों को हम आधुनिक पुसिध का पूर्ण रूप मान सकते हैं धीर धरीर रखङ्क वैदिक तो धर्मशास्त्र में 'धरयङ्क' ही हैं जो सम्राट या किसी प्रमुल धनिकायी की रसा के लिए तिमुरत किने जाते थे। धुम्कगीति के अनुसार विभिन् धामुर्षों का प्रयोग उंकर किया जाता है जन्हीं बरस कहते हैं धीर धरस से भिन्न धरस कहलाते हैं।^८ बाग धीर धरक धरस है जन्हीं धरस धीर परधु धरस। प्रघाव ने धरस धीर धरस का प्रयोग एक ही धर्म में किया है यही नहीं उन्हींने डास तक को धरसों में निगा दिया है।^९

शस्त्रास्त्र

- (१) बन्धु० २/१३६
- (२) साहज्य (प्लुगर्क) पृ ११२ लाईछ प्राठ ऐमेनबैंडर
- (३) धर्मशास्त्र २/२८/२१
- (४) रघुबंध ४/३६
- (५) वेदिकाग्र धर वि बुद्धिस्ट केर टिप्पण्य घोठ बजन्ता (विदित्त्य) केर न० १०/७२
- (६) बन्धु० २/१४३/
- (७) बौद्धकासीय मारत (अतार्थन मट्ट) पृ० ६०
- (८) सुधनीति ४/२४-२५
- (९) स्फंब १/६ ६

घस्त्रों में वनस्पत घोर बाण का उल्लेख अजातशत्रु घोर वनस्पत में मिलता है। 'अजातशत्रु' में प्रसाद ने मस्त्रों के विरुद्ध वनस्पत की वनस्पत नाम विद्या का उल्लेख किया है।^१ यह विवरण अक्षरशः अजातशत्रुओं से वनस्पत है। वनस्पत का कौशल कुछ-काल में अत्यन्त प्रचलित था। तथापि म वनस्पत की भी विद्या भी जाती थी। वनस्पत मौर्य के काल तक भी वनस्पत बाण अत्यन्त महत्व पूर्ण अस्त्र समझे जाते थे। ग्रीक इतिहासकारों के अनुसार भारतीय वनस्पत बड़े वनस्पत नाम में जाते थे। वनस्पत की कोटि को पुष्पो पर रखकर पीर से दबा दिया जाता था तब अस्त्र का बड़ाई जाती थी। इन वनस्पतों द्वारा छोड़े गये बाण वनस्पत होते थे घोर मस्त्र से मोटे कबजों का भी पार कर जाते थे।^२ वनस्पत-बाणों का अस्त्रकार बहुत पीछे तक होता रहा है। प्रसाद ने कुछकालीन तथा परवर्ती माटकों में इसका उल्लेख नहीं किया है।

घस्त्रों में अक्षर घुरी कटार घोर भाले का उल्लेख हुआ है। अक्षर अत्यन्त प्राचीन अस्त्र है घोर तथापि म अक्षर संघासन की विद्या भी जाती थी।

कीटिस्य ने अर्धघात में अक्षर तीन प्रकार के बतलाए हैं प्रसाद ने अर्धघात अस्त्रों पर अक्षर के लिए उल्लेख का प्रयोग किया है। उसके साथ ही "म्यान" अक्षर का प्रयोग भी किया गया है परन्तु उल्लेख घोर म्यान अक्षर म्यानहूनी घाती के अक्षर ही भारत में आये। अक्षर प्रसाद के माटकों में इन अक्षरों से कामचमरूप आ जाता है। प्रसाद ने 'घुरी' अक्षर का प्रयोग कई अस्त्रों पर किया। कीटिस्य ने 'घुरी' के साथ साथ 'अक्षर' (घुर के समान) घस्त्रों का वर्णन किया है घोर उनमें परन्तु अक्षर, अक्षर व अक्षर अक्षर का विवरण है। घुर के समान अक्षर पार होने के कारण इनको यह नाम दिया गया है।^३ प्रसाद ने 'अक्षर' का भी प्रयोग कुछ अस्त्रों पर किया है परन्तु यह अक्षर प्राचीन नहीं प्रतीत होता। अक्षर "अक्षर" भारत का अत्यन्त प्राचीन अस्त्र रहा है तथापि प्रसाद ने इसका उल्लेख केवल अक्षरों के सम्बन्ध में ही किया है।^४ कीटिस्य ने अक्षर के लिए 'अक्षर'।

(१) अजात० ५।७५

(२) इतिहास (ऐरियन) पृष्ठ १९

(३) निम्नलिखित अक्षरों का अक्षर—अर्धघात २/१८/११

(४) अक्षर १/३४

(५) अक्षर १/३५ अक्षर १/३६

(६) अर्धघात २/१८/१५

(७) अक्षर २/४५

(८) अक्षर २/१२०

(९) अर्धघात २/१८/८ ७

सम्बन्ध का धीरे-धीरे कालिदास ने 'मस्मा' का प्रयोग किया है। यूनानी तो युद्ध में नाके का प्रयोग करते ही थे।

उपयुक्त घटनाओं के घटित होने के कारण दुर्घटनाओं के घटने का भी उल्लेख किया है।^१ ये सब घटनाओं के घटने की घटना में घाते हैं, घटनाओं में नहीं। घटनाओं में उस घटे घटने का उल्लेख है जो परती में पाइए जाते हैं। इसमें 'सबलोग' और 'आमद' दुर्घटनाओं के बहुत उपयुक्त घटनाएँ गयी हैं क्योंकि ये चारों ओर घूम घूम कर मार करते थे तथा बीच के छेद से बड़े-बड़े गोले फेंकते थे।^२ प्रसाद ने कौटिल्य के समान मन्त्र और घटना दोनों के लिए "आयुध" शब्द का प्रयोग भी किया है।^३

राजधर्म और सैनिक धर्मों के रूप में पताकाओं का उल्लेख बहुत प्राचीन है। रामायण और महाभारत काल में भी पताकाओं का उपयोग मिलता है।

कालिदास ने रघुवंश में सेना की पताकाओं का उल्लेख करते हुए पताका 'मस्मिन्' "पत्रबद्धकेतो" जैसे शब्दों का प्रयोग किया है।^४

मुद्रों के प्रसार पर किसी विशेष चिन्ह से उपलब्ध पताकाओं का स्वरूप और परपक्ष दोनों की दृष्टियों से अध्ययन महत्व होता था अपनी पताका को ऊँचा फहराकर अपने पक्ष के योद्धाओं का उत्साह बढ़ाया जाता था और अपने पक्ष को हारवादाहित करने के लिए अपने पक्ष की पताका को बागु का सन्ध बनाया जाता था।^५ पताकाएँ राजकीय भी होती थीं और व्यक्तिगत भी।^६ प्रजातन्त्र में कोषाल की विजयिनी पताका^७ "अग्निपुत्र" में "पौरव पर्वतेश्वर की पताका" तथा मयभ की पताका^८ का उल्लेख है पर उनके ऐतिहासिक स्वरूप का कोई विवरण नहीं मिलता। मुद्र साधको के "मस्मिन्" का उल्लेख "स्वयंपुत्र

(१) रघुवंश ४/६३ ७/५५ ९ ६६

(२) अग्नि २/१४९ (३) अर्धशास्त्र २/१७/६

(४) अन्तः २/१४९ कौटिल्य "आयुधामाराधन प्रकरण"

(५) रघुवंश ३/५६।९ ४५।७ ४०/१८।३०

(६) दि स्टेट्स ऑफ ए ग्रेट गार्ल्ड इन दिस स्पोक्स ऑफ एव दि धनहोम्बर ऑफ दि हॉम धार्मी --- वि प्लेग पोस बाज ऑफ्टन दि फुस्ट धोम्बिटन सीट ऑफ दि कोज रोड। अथ दि धिम्बस कोम्स दि होम पार्टी कोम्स इटु डिस्से एव डिस्कोर्डर—होम्बिस इन बी० ए० धो० ऐस १३ पृ० २४३

(७) वे (परीक्ष) बार नीट हाउवर नेसनल बट इ दिविज्य धन --- वही पृ० २४३

(८) अन्तः १/१५४

(९) अग्नि १/९९

(१०) अग्नि २/१२१ ६

में कई बार हुआ है।^१ परदम्बज पुत्र साम्राज्य की पताका है और पर्यवस जैसे और क्षत्रीय महदम्बज को बाने कर सना का संधान किया करत है। पुरपुर पुत्र साम्राज्य की पताका महदम्बज को बग क मैदान म पहराना चाहता था। युद्ध में पताका धागे धागे जमती थी और इसकी रखा के लिए पृथक् सना नियुक्त की जाती थी सैनिक पताका के सम्मान की सुरक्षा के लिए अपने प्राणों तक का उत्सव कर दता था और साम्राज्य के ध्वज की छाया में मर मिटने की कामना लक्षित का परम बम समझा जाता था। युद्ध क्षमकों के गिलासकों और सनकी मुद्राओं में इस बात की पुष्टि होती है "महदम्बज उनका उग्र बिल्ह या और उनके धामन काल में इस ध्वजा का सम्मान सम्मान था। समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त दोनों की मुद्राओं में इन बातों को स्वयं ध्वजा लिए हुए चित्रित किया गया है।^२

प्रसार के माटकों म प्राय सभी युद्धों म रणवाघों क बनने का उल्लेख हुआ है परन्तु अधिकतर स्वर्णों में "राज-बाघ"^३ मात्र लिखकर वे मौन हो गए हैं। वे बाघ क्या होते थे किस प्रकार क होते थे इस विषय म उग्रान कुछ नहीं रण-बाघ लिखा। कुछ ही स्वर्णों म स्वर्णन रूप से कुछ रण-बाघों का उल्लेख हुआ है जिनके द्वारा प्रमाण ने प्राचीन युद्ध परिपाटी की झलक दे की है। प्रसार म युद्ध के प्रारम्भ होने से ठीक पूर्व "भारतीय और यवन रणवाघ का बनना सूचित किया है।^४ भारतीय युद्ध म रणवाघों का "बाघ प्रत्यस्त प्राधान है। महाभारत में युद्ध के पूर्व द्वाए जान बाल धनेक रणवाघों का उल्लेख हुआ है।^५ बाघाघर में बालिचाम के युग म भी सना के प्रमाण तथा युद्ध शैली धर्ममरों पर रण-बाघों के बजाय जाने का उल्लेख मिलता है।^६ प्रसार के माटका में निम्न रण-बाघों का उल्लेख हुआ है—उग्र^७ तुरही^८ राज मेरी^९ तथा त्र्यं^{१०}। त्र्यं और तुरही ममानासक हैं। ध्रुवस्वामिनी सामन्तकुमरों को संकेत देने क लिए युद्ध-बाघन करती हैं^{११} तथा स्कंदपुराण में मानक सैनिकों को इतदृष्ट करन के लिए तुरही बजाता

- (१) स्कंद० १/६ ३ ६२ ३/१०२ ३ ९५]
 (२) समुद्रगुप्त की ध्वजशाली स्वर्ण युग धनुष्यन द्वितीय की धनुषर वाली मुद्रा
 —ईशिताय श्रीठ इ विपत श्रीठ ब इन रिटिष म्बुविपम
 —(ऐकेन)

(३) चन्द्र	४/२३५-२३८	(५) महाभारत	७/१०५
(४) चन्द्र	३ १५४	(६) स्कंद	२/५२
(५) रघुवज		(७) चन्द्र०	१/१२८
(६) ग्री	३/१ ७	(८) ग्री	२/४५
(७) ध्रुव	२/४५ ३		



है ? निरवध ही प्रसाह के ध्यान में कौटिल्य का सर्वसास्त्र रखा होना जिसके अनुसार सेनापति रण के लिए प्रस्तुत ब्रूहन्नर सेना को विशेष प्रकार के सुरही नाव आदि से सभैत करता था ।^१ रणभेरी महाभारत काल से राजपूत काल तक के युद्धों में बराबर उपयोग में आई जाती रही है ।

संघों का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन है । महाभारत में युद्ध के पूर्व बचामै जाने वाले अमान्य बाघों के साथ 'संघों' का उल्लेख हुआ है ।^२ संघनत संसामर युद्ध के प्रारम्भ का प्रथम संकेत होता था । महाभारत में युद्ध के प्रारम्भ की सूचना भीष्मपितामह ने ही सर्वप्रथम सस कूककर दी थी ।^३ कामिबास ने भी रण-बाघों में संघ को स्थान दिया है ।^४ सस युद्ध के प्रारम्भ तथा अन्त दोनों में बचाया जाता था पर अन्त में केवल बिकेता ही बचाता था ।^५ प्रसाह ने स्पष्टतः संघ को रणबाघ नहीं मिखा है केवल ब्रह्मासित की युद्ध सम्बन्धी उक्ति से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ये 'संघ' की रण-बाघ मानते हैं ।^६

प्रसाह ने अपने नाटकों में स्थान-स्थान पर युद्ध से स्त्रियों का प्रत्यक्ष संबंध जोड़ा है । 'घजातघनु' के अतिरिक्त अन्य सभी नाटकों में स्त्रियाँ युद्ध-क्षेत्र में विभिन्न कार्य करती हुई प्रदर्शित की गई हैं । प्राचीन संस्कृत बाङ्गमय तथा अन्य ऐतिहासिक साधार प्रसाह के उक्त मत की पुष्टि करते बात होते हैं ।

प्रसाह द्वारा चित्रित प्राचीन भारतीय समाज की स्त्रियाँ युद्ध में 'असपाय और भैपज्य सेवा' का सबसे महत्वपूर्ण कार्य करती हैं ।^७ प्रसाह के उल्लेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्रियों का दस एक नियमित सेवा विभाग युद्ध में स्त्रियों की भाँति युद्ध-क्षेत्र में सेनापति के आधीन कार्य करता था । 'असपाय और भैपज्य सेवा' करने वाली स्त्रियाँ मासविका को अपना प्रधान बुनती हैं और मासवों की युद्ध-परिवर् के गणमुक्त इनके इस निर्णय

(१) स्कंद० ३/१०७

(२) सर्वसास्त्र १०/९/४६

(३) भीमर् भाववत १/१३

(४) वही १/१२

(५) रघु० ७/६३-६४

(६) वही ७/६३

(७) स्कंद० २/५२

(८) चन्द्र० २/१४०

को स्वीकृति देते हैं।^१ इससे यह सिद्ध होता है कि वह दम स्वतन्त्र न होकर सेना का एक अङ्ग होता था। मानविका अन्तर्गुप्त को सूचना देती है कि वह — स्कंधावार के पृष्ठ भाग में घबने साबन रखती है तथा एक भूत माण्डार उसके उपरान में भी रखेता।^२ अन्तर्गुप्त विचार करने के उपरांत^३ ही उस इन्दी अनुमति देता है। अन्तर्गुप्त यातव-सूत्रकों की सम्मिलित सेना का महाबसाविहृत^४ है और उसकी आत्मा शैलिक नियन्त्रणों से सम्बन्ध रखने वाली प्रस्नों पर आवश्यक है। प्रसार के नाशकों के अनुसार युद्ध काल में आहूतों की सेवा का समस्त प्रबन्ध य स्थिरा ही किया करती थी।^५ हर्ष के काल में भी स्थिरा युद्धभूमि में हताहतों की सेवा इत्यादि का प्रबन्ध करती रही होंगी ऐसा राज्यधी से ध्वनित होता है।^६

उक्त विचारों के लिए प्रसार कौटिल्य के धृष्टी हैं। सेना के प्रयास के स्वरूप और प्रकार का उल्लेख करते हुए कौटिल्य कहते हैं—स्कंधावार के पृष्ठभाग में विहितकों एवं विचित्रा सम्बन्धी दास्य और शौर्यवियों के साथ-साथ पुत्रों की सम्पत्तान प्राप्ति पहुँचाने तथा उनही सेवा करने के लिए स्थिरा भा हानी चाहिये।^७

आर उल्लेख हो चुका है कि स्कंधावार के पृष्ठभाग में ही मानविका घन घायन रखती है। घनघायन शैल्य से सम्बन्धित शोल के कारण यह आवश्यक प्रतीत होता है कि वे स्थिरा उक्त कार्य में विद्यमान्य में निहित एवं दम होती होंगी।

प्रसार के विचित्र और स्कंधावार दोनों में स्थिरा की सम्मिलित स्थिति भी है। शौर्यों के विचित्र के सम्बन्ध में 'अन्तर्पुर की महिमाओं'^८ का उल्लेख हुआ है। आत्मी सुद्धों से दूर रहने के लिए विचित्र की सब स्थिरा स्कंधावार में आत्मी के साथ था रही है।^९ कानौलिया स्कंधावार में न आकर घबने दिना के साथ रहा (विचित्र) में रहने का निश्चय^{१०} करती है।

पर्ययास के अनुसार स्कंधावार के पीछे घबने भाग में अन्तर्पुर और उसके पीछे ही उनही रखर सेना होगी चाहिए।^{११} इससे यह स्पष्ट है कि स्कंधावार में

(१) अन्० २/१४०

(२) वही २/१४४

(३) वही १/१४४

(४) अन्० २/१४०

(५) वही १/१४४

(६) राज्यधी ३/५०

(७) पर्ययास १०/१/१२ प० ४७४ (संघापिक)

(८) अन्० २/१४४

(९) वही २/१०५

(१०) वही २/१०५

(११) पर्ययास १०/१/ ५ ४१७

मुठ स्वयं के समीप या कुल घर पर ही गवायों के घण्ट-पुर की स्त्रियों भी रहा करती थीं। बाण की साक्षी के अनुसार घना के घमिघान में एक छिबिर के लठठे समय सोये हुए प्रेमियों को बसाठी हुई 'गामचेटी' का उल्लेख हुआ है।^१ इससे भी सपयुक्त निष्कर्ष की पुष्टि होती है। इसके अतिरिक्त विक्रमर की विषयों के विवरणों से स्पष्ट है कि भारत में भी उसके साथ स्त्रियोंवातों में विहित राज्यों की स्त्रियाँ रही हैं।^२ प्लूटार्क ने लिखा है कि फारस में बाण की पत्नी व बन्ध्याओं के अतिरिक्त कई शोक स्त्रियाँ तक उसके सेनानिवेष्टों में थीं।^३

प्रसाद ने कई स्त्रियों पर स्त्रियों का योडाओं को रन का लिए प्रेरित करना प्रवर्धित किया है। अयमासा के उत्साहवर्द्धक वाक्य, एक चार्च भारतीय मारी के सामान्य उद्गार है। अलका धर्म पताका लिए हुए लसधिला के नागरिकों को मुठ के लिए उत्तेजित करती है।^४ मन्वाकिनी लकनान के विरुद्ध जाते हुए सामन्त कुमारों के धारो उत्साहवर्द्धक गीत गाती हुई चलती है। वे दोनों उवाहरण कोटिभ्य के पूर्व उद्भूत विद्येवण पुस्पाशामुखर्पगीवा की ओर पाठक का ध्यान आकषिप्त करते हैं।

प्रसाद ने मुठ में सक्रिय रूप से भाग लेती हुई स्त्रियों का भी विवरण किया है। कल्याणो का पुरुष वेध में गान्धार मुठ में मगध की एक सेना का सेनापतित्व प्रसाद की कहना मान है।^५ किन्तु उन दिनों स्त्रियों को भी मुठ सम्बन्धी शिक्षा दी जाती थी। इसका समर्थन ग्रीक इतिहासकारों ने किया है। षठ जाति की नारियों ने ग्रीक सैनिकों से सहाय्य प्रसन्नकर मुठ किया था।^६ अलका ने मालव युव के परस्वेटे में बाण-वर्षा वर मिनन्दर के कई सैनिकों को मार गिराया था और उनी मुठ में विक्रमर भी बायल हो गया था।^७ इसका आभार भी ग्रीक इतिहासकारों का उल्लेख ही प्रतीत होता है।

मुठ के पूर्व सेना के निवास स्थान के लिए प्रसाद ने स्त्रियोंवात^८ छिबिर^९ सेनानिवेष्ट^{१०} तथा छावनी^{११} का प्रयोग किया है। मुठभूमि के समीप ही सेना के

(१) हर्षचरित-गामकिन्वा (अ ४ पृ. १३७, पं० ५ मूल)

(२) साईम्य-प्लूटार्क (साईफ धाक एमकजेडर) (३) वही

(४) अं० ४/२१७

(५) अं० २/११७

(६) रि सिबिसिडेथन धाक ऐ लिए ट इषिया (मुई रेनु) पृ० १२३

(७) अं० २/१५०

(८) अं० ४/६३१ राज्याधी २/३५

(९) वही ४/२३५ अं० १/२४

(१०) वही ४/२३६, राज्याधी ३/५६ (११) राज्याधी ३/५६

साक्षात् के अर्थ में स्कंधाचार तथा चिबिर दोनों का प्रयोग प्राचीन सिबिर
 है।^१ अर्धशास्त्र के संप्रामाणिक अभिकरण का पहला अर्थ्याय ही
 स्कंधाचार 'स्कंधाचार निवेश' का है। फलतः सेना निवेश की साक्षी भी
 उपलब्ध है। छावनी शब्द अत्यन्त प्राचिनिक है और संभवतः सुसक्त

मार्गों के धारण के उपरान्त ही इसका प्रयोग भारत में होने लगा होगा। स्कंधाचार
 तथा चिबिर शब्दों के प्रयोग में प्रसार विशेष स्पष्ट नहीं है। आगामी युद्धों से दूर
 रहने के लिए चिबिर की सब स्थितियाँ स्कंधाचार में साम्राज्य के साथ आ रही हैं—
 इस अर्थ में चिबिर और स्कंधाचार दो विभिन्न अर्थों का बोध करा रहे हैं परन्तु—
 'बन्धुगुप्त को सिन्धु के उस पार जाता होगा—यवन स्कंधाचार पर आक्रमण करने'^२
 तथा 'यवन बन्धुगुप्त की सेना सिन्धु के उस पार पहुँच जाय तब तुम्हें घीकों के प्रधान
 चिबिर की ओर आक्रमण को प्रेरित करना होगा' आणख्य के एक ही प्रसङ्ग में
 बड़े हुए इन दो वाक्यों में चिबिर और स्कंधाचार एक ही अर्थ का बोध कराते हैं।
 'चिबिर घाणका समीप' है^३ में चिबिर शब्द लम्बे के अर्थ में प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता
 है। वहाँ बड़े बड़े चिबिर पड़े दिखाई दे रहे हैं^४ से यह स्पष्ट हो जाता है कि समय ल
 वाक्यों में प्रसार में स्कंधाचार शब्द का कौटिलीय अर्थ में तथा चिबिर का साधारण
 लम्बे के अर्थ में प्रयोग किया है परन्तु समीप स्थलों पर प्रसार इस अन्तर को नहीं
 मिटा सके हैं। 'अस्म का चिबिर'^५ जैसे प्रयोगों में यह अन्तर है परन्तु शीकों का
 चिबिर^६ एक चिबिर^७ इत्यादि प्रयोगों में चिबिर और स्कंधाचार में कोई अन्तर नहीं
 किया गया है। सेना-निवेश का प्रयोग भी छावनी या स्कंधाचार के अर्थ में ही किया
 गया प्रतीत होता है। ऊपर 'यवन स्कंधाचार और शीकों के प्रधान चिबिर का
 सम्बन्ध हो चुका है। यवन सम्राट सिन्धु के इस पार अपने सेना निवेश में घायल
 भरे बन्दी नहीं^८—इस वाक्य में सेनानिवेश का प्रयोग उसी अर्थ में हुआ है। एक
 अन्य वाक्य में बृहन्नमि के समीप तथा उससे दूर विभिन्न स्थलों पर बने हुए कई
 सेनानिवेशों की ओर संकेत किया गया है।^९

अर्धशास्त्र में स्कंधाचार के निर्माण की विधि विस्तृत रूप से दी गई है।^{१०}
 प्रसार के माटकों से प्रतीत होता है कि स्कंधाचार में अलग अलग गुम्बों के लिए
 भिन्न भिन्न चिबिर होते हैं।^{११} सम्भवतः प्रधान चिबिर से प्रसार का अभिप्राय राजा

(१) वि विविभिन्नैषान् प्राक्त एतिए ट इण्डिया (सुई रेणु) पृ १२३

(२) बं० २।१८ (३) बं० ४।२३५ (४) बं० ४।२३५

(५) राज्याधी ४२३३

(६) बं० ३।१४

(७) बं० २।३६८

(८) बं० २।१२०

(९) पं० १२८

(१०) बं० ३।२३६

(११) बं० ४।२३६

(१२) अर्धशास्त्र १।१ संप्रामाणिक प्रकरण

(१३) बं० २।३६८

के विषय से था। स्कंदपुराण में उज्जयिनी के गुप्त स्कंधावार में की गई मंत्रणाओं इत्यादि से प्रतीत होता है कि स्कंधावार में मंत्रणा, प्राणाद्य इत्यादि के लिये विभिन्न स्नान होते थे। प्रसाद ने प्रायः सभी स्कंधावारों में शीघ्र घबरा घारठीन स्त्रियों को चित्रित किया है। घट स्कंधावार एक ऐसा सुदृढ़ स्नान समझा जाता होमा जिसमें घण्ट 'पुर की महिसाए' भी सुरक्षित रह सकती थी। ये स्त्रियाँ वासियाँ घबरा पुत्रों को उत्साहित करने वाली मान नहीं हैं बरन् साम्राज्ञी उनापति की पुत्री राजपुत्रियाँ (मलका) इत्यादि हैं। स्कंधावार के पण्ड भाग में घण्टपान और भयव्य विभाग का उल्लेख पहले ही चुका है।

स्कंधावार प्रयाण के सम्बन्ध में कौटिल्य लिखते हैं—घागे घान नावक मध्य में कलत्र व स्वामी पार्ष्व में घण्ट सेना चक्रवर्त्त में हाथी " फिर मित्र-बल उदुपरान्त कलत्र का स्नान, घण्ट में उनापति का स्नान।^१ इससे जो बातें स्पष्ट हैं—एक स्कंधावार के मध्य में राजा तथा इसके घण्ट-पुर की स्थिति दूसरे उधका घण्टार नाम। प्रसाद ने घण्टार का नामोल्लेख नहीं किया है पर घण्ट-पुर की स्थिति स्पष्ट कर दी है। इसमें शंभेह नहीं कि इन शब्दों के प्रयोग में प्रसाद ने घण्टार का ही प्राधार मिला है पर कही कही इनके निश्चित अर्थ का निर्वाह ने नहीं कर पावे हैं।

कौटिल्य ने दूत को राजा का मुख बतलाया है और विस्तार से उसके कर्तव्यों का उल्लेख किया है जिनमें राजकीय सम्बन्ध-बहुल संचि का पासन कराना, प्रयाप का प्रकाशन राजा के लिए मित्रों का उपग्रह करना, सुदु दूत और घर के मित्रों में पूट बालना आदि मुख्य हैं।^२ प्रसाद के माटकों में प्राए हुए दूत इनमें से बहुत से कार्य करते हुए पाए जाते हैं। सिद्धन्वर का दूत माकनों के संचिभिप्राहक विहरण के पास और शकराज का दूत रामगुप्त के पास "पुठ या मंत्री" का उल्लेख डेकर जाता है।^३ दूत बालवेश बंधुवर्मा का दूत मामक की रक्षा के लिए रकवदुष्ट से उद्य सहायता माँगने आया है।^४ मालव और मगध साम्राज्य में पहले एक संचि हुई थी यही दूत का उद्देश्य उसी 'संचि की रक्षा के लिए प्रयत्न करना है। बिगिस का वो दूत घण्टसेवी के पास उपहार डेकर जाता है यह दूत के तीम कार्य करता हुआ देखा जाता है। एक ठा यह मगध की पुण्ड-परिवर्ध और हूनों के बीच की मई पुण्ड संचि का पासन कराना चाहता है दूसरा बहु घबघर घाने पर अपने प्रयाप को प्रकट करने की बमकी भी देता है जिसके भय से

(१) 'पुरस्तान्नायक'। मध्ये कलत्रं स्वामी च। पार्ष्वं वीररक्षा—बाहूत्सार चक्राणोपु इति। प्रसारवद्विर्वा सर्वत। वनाजीव'। स्वरेष्ठापणायतिर्वाविधि'। मित्रबलमाधारः। कलत्रस्नानमप्रसार पदवात सेनापति पर्यायानिचिसेत।

(२) 'दूतमुत्ता व राजनसक चाये च' अर्थ १/१६ ४६-५०

(३) अर्थ० २/१४४ अर्थ २/३६

(४) स्कंद० १/१७

बटाईं उसे यह आश्वासन देता है कि यह ठीक धनसुर पर स्कन्दगुप्त का बोझ देकर तुम्हें को सहायता देगा। इस प्रकार यह मूहूदमेर का कार्यसाधन करने में भी समर्थ हुआ है।^१ सिन्धुकुसुम का दूत साहजिकतः चन्द्रगुप्त के पास दूत धीर वीची का सन्देश लेकर जाता है और इसके लिए सिन्धुकुसुम का प्रताप प्रकाशित करना नहीं भूलता।^२ कौटिल्य ने वहाँ एक धीर दूत के लिए आदेश दिया है कि प्रायश्चित्त की घोषणा करते हुए भी उसे अपने स्वामी का सदैव स्पष्टता और निर्भीकता से कहना चाहिए।^३ वही राजा के लिए भी स्पष्ट विधान किया है कि सत्त्व उठाने पर भी दूत धनसुर होता है।^४ चक्रराज का गुप्त-समाप्त के पास महादेवी प्रथम स्थायिनी की माँग ब्रह्मी अपमानजनक शर्त सेठाने जाता है और स्पष्ट कह देता है कि— 'उम्हें वो में से एक करना ही होगा। या तो अपने प्राण बँधव्यथा मेरे संधि के नियमों को स्वीकार करें'। इतने बट सन्देश को केवल इसलिए मुनना पड़ा कि दूत धनसुर होता है।^५ यह धनसुरता स्वभावतः दूत को सुरक्षा की ओर भी संकेत करती है। सिंहरत्न यवन दूत की रक्षा के लिए ही रत्नकों को उन्ने सीमा तक पहुँचाने की घोषणा देता है।^६ परन्तु कट्टु एवं अपमानजनक सन्देश मुनकर शेष पर नियन्त्रण रखना कठिन हो जाता है। ऐसे अवसरों पर ब्रह्मी-कर्मि दूत के लिए बंध या बंधन की भी घोषणा हो सकती है। ऐसे अवसर पर आशय स्पष्ट कह देते हैं कि यदि ऐसी घोषणा हो तो विस्मित होते ही तत्काल निद्रम मागने की चेष्टा करनी चाहिए।^७ खिगिस अपमानजनक सन्देश लेकर गया था—घट चक्रराज को उसके बन्धी होने की धंजा होने मगती है।^८ एक स्वयं पर प्रसाद के नाटकों में दूत विवाह का सम्बोध लेकर भी जाते हैं।^९ राजाधों के विवाह सम्बन्ध के लिए दूत-संग्रम यम की परम्परा का उत्सव संस्कृत साहित्य में प्रायः मिलता है।

धरों का उत्सव प्रसाद के नाटकों में कई स्वरों पर हुआ है और उम्हें कही धर^१ कहीं पुण्ड-धर^२ तथा कहीं दूत धनुधर^३ कहा गया है। साधारणतः प्रसाद

- (१) स्कन्द० ३।१२२ (२) बम्भ० ४।२३३
 (३) घासनं च यथोक्तं ब्रूयात् । प्राणावापत्रिणं हृष्टे ।—धर्मशास्त्र १।१६।११-१५
 (४) तस्माद्दुष्टत्रिणं वस्तुषु यथोक्तं बन्धनस्तीयामस्तावमायिनाऽऽवृथ्यात् ।
 —धर्मशास्त्र १।१६।१७
 (५) मूय० १।३५ (६) बम्भ० २।१४४
 (७) घासनामहाशयुक्ततया बन्धनजनकमया विस्तृष्टो व्यगपथ्येत् प्रत्यया नियम्यते ।
 (८) धर्म० १।३५ (९) बम्भ० १।३५
 (१०) बम्भ० ३।१५३ १५६ राज्यामी १।३५
 (११) बम्भ० १।२२ २।११३
 (१२) बजात० २।६७

ने ऐसे व्यक्तियों को ही चर या गुप्तचर कहा है जो धनुषका के
 चर
 रहस्यों का उद्घाटन करने तथा गुप्त-सूचनाएँ देने का काम
 करते थे। सुत्रनीति में गुप्तचरों के लिए 'गुह्यचार' शब्द का
 प्रयोग हुआ है बिनाक काम-क्षम-वेष्ट में रहकर राजा की रक्षा करने से लेकर
 राजकर्मचारियों एवं प्रजा के भेद मात्तम करना वा।^१ अर्धशास्त्र में इन्हीं को गुह्य
 पुरुष कहा गया है। ये गुह्यपुरुष कर्मवेष्ट, संकेत शब्द एवं अन्य कई प्रकार से सम्-
 भिन प्रजा सभी के भेदों एवं वृद्धियों का पता चलाकर राजा को सूचित करते थे।
 अपराधियों को पकड़ने से लेकर राजा राजा की समा इत्यादि के भेद जानने तक का
 कार्य इन्हीं को सौंपा जाता था।^२ कालिदास ने गुप्तचर के लिए चर अपसर्प तथा
 प्रणिधि शब्दों का प्रयोग किया है^३ और विशालदत्त के केवल चर का।^४ कौटिल्य
 ने गुप्तचरों के दो भेद किए हैं—संस्था और सचार। जो एक स्थान पर ही
 सम्पासी या नापटिक वेष्ट में रहकर गुप्त-रहस्यों की खोज किया करते हैं उन्हें
 'संस्था' कहा गया है और सभी प्रायः विभिन्न वेष्टों में इपरचर घूमकर अपना कार्य
 किया करते हैं उन्हें 'सचार'।^५ प्रसाद ने इस तरह का कोई अन्तर नहीं किया है
 तथापि उनके सभी गुप्तचर 'सचार' ही बड़े जा सकते हैं। इसी प्रसंग में प्रसाद
 का अप्त प्राणधि'शब्द विचारणीय है। यह उच्छस्तर के गुप्त चर के अर्थ में आया हुआ
 प्रतीत होता है। प्रसाद ने जो स्वर्णो पर 'गुप्त प्रणिधि' शब्द का प्रयोग किया है और
 दोनों स्वर्णों पर इनका सम्बन्ध महत्वपूर्ण व्यक्तियों से जोड़ा गया है
 साधारण गुप्तचरों से नहीं। 'अवातस्य म राजा का भिन तथा
 विश्वासपात्र समुपगुप्त कापी में मन्त्र का गुप्त प्रणिधि बनाकर भेजा गया है।^६
 'अन्तगुप्त' में राजस चालक्य जैसे विद्वान को लक्षणा में मन्त्र का गुप्त
 प्रणिधि बनाकर भेजना चाहता है।^७ इस तरह के असाधारण गुप्त-प्रणिधियों का
 सम्बन्ध न ता सुत्रनीति से जोड़ा जा सकता है और न अर्धशास्त्र से। अर्धशास्त्र में

(१) सुत्रनीति १/१६

(२) अर्धशास्त्र १/१११—२—३—४

(३) रत्नसंघ १/४१३ ३२ १/७४८ कुमारसंभव २/६१७

(४) सुत्रशास्त्र अक्ष १

(५) अर्धशास्त्र १/१११८—९

(६) अवात० २/१६

(७) अक्ष० १/८५

'प्रतिधि' शब्द स्वतन्त्र पारिभाषिक धर्म में नहीं किन्तु दूत-प्रतिधि^१ (दूत से सम्बन्ध रखने वाले कर्तव्याकर्तव्य) राज प्रतिधि^२ (राजा के कर्तव्याकर्तव्य) निष्ठा प्रतिधि^३ (राजि सुरसा के सम्बन्ध रखने वाले कर्तव्याकर्तव्य) जैसे शब्दों में विशेष रूप से पाया है। वहीं प्रतिधि का न दूत धर्म से सम्बन्ध है न चर धर्म से। कामिदास में प्रथम 'प्रतिधि' शब्द 'गुप्त धर्मिकर्ता' के धर्म में प्रयुक्त हुआ है।^४ इस धर्म में प्रतिधि के साथ 'गुप्त' विशेषण अनावश्यक है और यदि इसका धर्म विशिष्ट दूत (सौजन्य हस्तौय या एमिसरी) से तो ऐसा विशिष्ट दूत 'गुप्त' हाकर नहीं रह सकता। पठ प्रसा^५ के इस प्रयोग का विशेष समर्पण नहीं किया जा सकता।

प्रसार के सभी गुप्तचर-संचार-धर्म के हैं। अतः समय समय पर इनके बेगान्तर करने की और भी उम्हूनि संकेत किया है। बाणभय घादि पर्वतारोह के स्तंभाधार में गट बटी सपेरा और ब्रह्मचारी पनकर जाते हैं।^६ 'अग्निगुप्त' इन्द्रजातो के बेग में यम सेना में प्रवेश करता है।^७ बाणभय का चर लपकक बेग में पीन गाठा हुआ पीन माँदा है और उस पीन के द्वार ही अग्नी मिहिरम को सन्देश दे जाता है।^८ धर्मशास्त्र के 'कटक-शोदन' प्रकरण में बतसाया है कि गुप्तचरों का विशेष परिस्थिति में किस प्रकार का बेग भाग्य करना चाहिये। ये गुप्तचर मित्र भावव सन्ध्यामी ऐन्द्रजातिक नट भाण आदि का बेग चारम करते थे।^९ धर्मशास्त्र में भी गात्र श्य धनपक और सपेरे के लिए प्रमात्र समस्त 'मुनाराम' के श्रुति हैं।

'अग्निगुप्त' नाटक में स्त्री गुप्तचरों का भी उल्लेख हुआ है। मानविका कर्तवी के बेग में राजस का आसी पत्र और उसकी मुद्रा सहर मन्द के पास जाती है।^{१०}

मुकामिनी भी गुप्तचर बनकर सिन्धुवन की बंदिनी हो जाती है। स्त्री गुप्तचर और नार्नेलिया के पास रहने लगती है।^{११} रोटिस्य शिखर है

है— यदि द्वार पर मिथुनी बेग में स्त्री गुप्तचर को राक दिया

जाय तो वह शिखरकारिका बटी या दानी के रूप में मगीन बन्दिता पाठ बाघ या गुड किंग द्वारा अपना गुप्त मन्थ्य मुक्ति कर दे।^{१२} इसमें भी स्त्री गुप्तचरों का उपयोग में माने की पुष्टि होती है। रोटिस्य उन्हें 'मुद्रा (स्त्रियाँ) कहते हैं।^{१३} मय

(१) धर्मशास्त्र	१/१९/१	(२) वही	१/१९/१
(४) वही	१/२०/११	(४) कुमार०	२/९
(५) अग्नि	२/१५७	(५) अग्नि०	२/१२८
(७) वही	२/१३३	(८) धर्मशास्त्र	४/४/९
(९) अग्नि०	१/१०२	(१) अग्नि	४/२२२

(११) विद्य की प्रतिपेक्षे डा-स्वयम्भवात मालाविशुद्ध्यन्वता शिखरकारिका' नृपतीमवा दास्यो वा गीत-गात्र-बाध माण्ड मुद्राक-संश्रामिर्वा चार दिहार्देनु

धर्मशास्त्र १/२२/१५

(१२) धर्मशास्त्र ७ १२/५/७०

पूजा को पराधित करने के लिए परम रूप यीशनामि स्त्रीभिः' का उपयोग भी किया जाता था ।

धर्मशास्त्र के प्रमाणों के अनुसार ब्रूत और चर दो स्वतन्त्र पद हैं और उनके कार्य भी एक दूसरे से भिन्न हैं । असावधानी या किसी भी कारण से प्रसाद में कई स्त्रियों पर इस अन्तर को घुमाकर एक ही व्यक्ति के लिये कही 'चर और कही ब्रूत कह दिया है । स्कन्दगुप्त के पास प्राये हुए मासनेत्र के ब्रूत के लिए वे 'चर का प्रयोग असा रंगचकित देते हैं ।^१ नगरहार के द्वारा स्कन्धाचार से भेजे गए सेनापति क्षिगत के ब्रूत को 'चर और 'ब्रूत दोनों मंशाएँ एक साथ भी कई हैं ।^२ 'राज्यधी' के देवगुप्त के लिए उसके मंत्री का युद्ध सम्बन्धी पत्र ब्रूत जाता है, ' यद्यपि यह कार्य चर का होना चाहिए था । स्वामीश्वर से प्रभाकरवर्द्धन के निघण्टु की सूचना भी देवगुप्त को ब्रूत से ही मिलती है ।^३ राज्यवर्द्धन को काम्यकुम्भ दुर्ग के भीतर ही सैन्य सम्बन्धी कुप्त सूचना भी ब्रूत ही देता है ।^४ सामारण व्यवहार में प्रायः त्र्येक सन्देधानाहक के लिए 'ब्रूत' शब्द का ही प्रयोग होता है अतः संभवतः है कि आस उक्त स्त्रियों पर इन शब्दों के पारिभाषिक धर्म को भ्रम गये हैं ।

(१) धर्मशास्त्र	१२/२/१८
(२) स्कन्ध	१/१२
(३) स्कन्ध०	२/२२ ९९
(४) राज्यधी	१/१६
(५) राज्यधी	१/२४
(६) राज्यधी	२/१६

सैन्य योजना और युद्ध

प्रसाद ने सेना के लिए 'सेना'^१ तथा "बाहिनी" ^२ शब्दों का प्रयोग किया है और सेना की एक टुकड़ी के लिए 'गुप्त' ^३ का। सेना का साधारण अर्थ "सपूर्व सैन्य-शक्ति है और "बाहिनी" शब्द का प्रयोग भी प्रसाद ने सैन्य इसी अर्थ में किया है। पारिभाषिक अर्थ के अनुसार एक बाहिनी में ८१ हाथी ८१ रथ २४३ घोड़े और ४०५ पदाति होते थे। यह घाबरन की "बटालियन के समकक्ष करी या सजती है" ^४ पर प्रसाद ने इस विविष्ट अर्थ को ग्रहण नहीं किया है।

डा० मधुसूदन के अनुसार प्राचीन काल में सेना का सबसे छोटे भाग का 'पति' करते थे जिसमें एक हाथी एक रथ तीन घोड़े और पांच पैदल होने थे। तीन 'पति' का एक "सेनामुख" और तीन "सेनामुख" का एक "गुप्त" होता था। इस प्रकार एक गुप्त में नौ हाथी नौ रथ सत्ताईस घोड़े और पैंतासीस पैदल हुआ करते थे।^५ प्रसाद ने राज्य विषय की सैनिक टुकड़ियों को 'गुप्त' कहा है जैसे— मगध गुप्त 'पंचनर गुप्त' "अश्वकों के गुप्त" आदि। पर "गुप्त" का उपयुक्त अर्थ मानने पर प्रसाद के उक्त प्रयोग अत्यन्त से प्रतीत होते हैं। क्या पर्वतराज घाबरन हर्ष को घाबरता के लिए एक ही मगधगुप्त घाबरन पचनर-गुप्त भेजना पर्याप्त माना जा सकता है? बहुवचन में होने के कारण 'अश्वकों के गुप्त' के सम्बन्ध में यह घासेप नहीं किया जा सकता। प्रसाद के नाटकों में सेना के तीन अर्थ प्रकारों का भी उल्लेख मिलता है—मासीर सेना^६ रक्षित सेना^७ और रथक सेना^८। इनका प्रयोग प्रसाद ने क्रमशः युद्ध में सबसे आगे सड़ने वाली सेना (मान-मार्ड) मासीर सेना की भूमि करने वाली सेना (रिजिफ) और राजा सेनापति अन्त-पुर आदि की रक्षा करने वाली सेना (गार्ड-मार्ड) के अर्थों में किया है। इनके प्रतिरिक्त एक स्थान

(१) स्कंद० ३/६४ १/९ (२) अश्व १/७८

(३) अश्व २/११८ राज्यसी २/३४ अश्व २/१४३

(४) हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन—(मधुसूदन) ५० १४०

(५) वही ५० १४०

(६) स्कंद० १/६ १/१२ अश्व ४/२३५

(७) अश्व २/११८

(८) अश्व २/११८

पर दुर्ग रक्षक सेना^१ का भी प्रयोग हुआ है। इसका सामान्य अर्थ ही लिया जाना उचित है।

प्रसाद के नाटक^२ में सेना के निम्नलिखित अधिकारियों का उल्लेख हुआ है— महाबलाधिकृत महासेनापति, बलाधिकृत सेनापति गायक और नीत्तिक। मुद्रकाल में सेना विभाग के प्रधान अधिकारी की उपाधि महाबलाधिकृत^३ थी। छास्टोर के मत से मुद्रकाल की सेना में महासेनापति ही सबसे प्रधान सेनाधिकारी अधिकारी होता था और उची भ थी के एक अल्प अधिकारी को महाबलाधिकृत भी कहते थे।^४ परन्तु वे इन दोनों के संबन्ध को निर्धारित नहीं कर सके हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि युद्ध संघामन के निमित्त समस्त सेना का सर्वोच्च अधिकारी तो महासेनापति होता था किन्तु जो समस्त युद्ध विभाग का अधिकारी राजा के साथ युद्ध सम्बन्धी मंत्रणा में भाग लेता था वह महाबलाधिकृत होता था। महाबलाधिकृत को हम आधुनिक रक्षा-मंत्री के समकक्ष रथ सकते हैं। संभवतः मुद्रकाल में महासेनापति ही महाबलाधिकृत रक्षा-मंत्री भी होता हो जबकि महाबलाधिकृत महासेनापति की एक प्रायः उपाधि हो किन्तु इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी महासेनापति कहना कठिन है। महाबलाधिकृत अल्प वस्तुतः उत्तर-मौर्य कालीन है और 'अश्वस्त' में इस पदाधिकारी का उल्लेख नहीं है किन्तु मुद्रकाल में इसका प्रचुर उपयोग मिलता है। प्रसाद ने मौर्य कालीन नाटक 'चन्द्रगुप्त' में भी इसका प्रयोग किया है।^५ सिक्खर की सेना से युद्ध करने के लिए चन्द्रगुप्त को मासक-सुदृकों की सम्मिलित सेना का 'महाबलाधिकृत' निर्वाचित किया गया था और भी उसे सेनापति ही कहा गया है।^६ पहले तो यहाँ ऐतिहासिक दोष स्पष्ट है दूसरे यहाँ महाबलाधिकृत को सेनापति का पर्याय मान लिया गया है। अगर हम बिच निष्कर्ष पर पहुँचें हैं उसके अनुसार भी यहाँ महासेनापति का प्रयोग ही समीचीन था। इस नाटक में महासेनापति का कहीं उल्लेख न होने से सेनापति को महासेनापति का समानार्थक नसे ही मानें पर युद्ध विरोध के लिए नियुक्त सेनापति को महाबलाधिकृत नहीं कहा जा सकता। स्फंदगुप्त में भी महाबलाधिकृत का प्रयोग हमारे उपर्युक्त निष्कर्षों के अनुसार नहीं हुआ है कुमारगुप्त के कालमें भटार्क महाबलाधिकृत है^७ वह स्वयं कहींभी यद्यपि नैतृत्व और संघामन नहीं

(१) राज्यधी १/२०

(२) देखिये महाराज हरिदत्त का तात्पर्य ५१०-११ ई०

- प्लोट - सी० घाट० घाट (२१) पृ० १०२

(३) नाटक हम दि गुप्ता एव - छास्टोर) प० २६४

(४) अश्व २/१४०

(५) वही २/१४५

(६) स्क ६० २/११७

सेनापति का कौटलीय धर्म न लेकर कालिदास के समान ही उसे सेना का प्रथम संचालक माना है। केवल एक ही स्थान पर 'मगध-गुप्त' के अधिकारी को उन्हीं सेनापति कहकर संबोधित किया है।^१ 'अमरमुष्ट' में वहाँ उपयुक्त उल्लेख हुआ है, वहाँ यह वस्तुतः मगध-गुप्त नहीं मगध से आई हुई स्वतन्त्र सेना है जो परंतेवर की सहायता के लिए आई है। अतः यहाँ शेष 'सेनापति' के प्रयोग में नहीं 'गुप्त' के प्रयोग में है परन्तु अन्वये ही वाक्य में उक्त 'मगध नायक' कह दिया गया है।^२ कौटिल्य के अनुसार दस सेनापतियों के ऊपर एक नायक होता है और वही पूर्व शेष अथवा पताका धारि द्वारा स्पृहबद्ध सेना को विशेष संकेत देकर युद्ध आरम्भ करने की सूचना देता है।^३ यहाँ यह कहना कठिन है कि 'नायक' शब्द का प्रयोग विशेष धर्म में किया गया है अथवा साधारण 'नेता' या 'सेनापति' के धर्म में परन्तु इनका तो निश्चित है कि 'सेनापति' का प्रयोग नायक प्रसाद ने नहीं ही कौटलीय धर्म में नहीं किया है। वहाँ यह 'नायक' से निम्नस्तर का माना गया है। महाबलिष्ठ पराजित से युद्धसेना की नायक सेनाके नायक ने सहायता मांगी है^४ किन्तु उक्त ही स्वतन्त्र नाटक में 'नायक' शब्दनाम पूरे एक गुप्त का संचालन करता है और उसका सहायकी नायक को केवल महाबलिष्ठ के अधीन मानता है।^५ इन उल्लेखों से यही प्रतीत होता है कि प्रसाद के सामने 'नायक' का कोई पारिभाषिक स्वरूप नहीं है और वे सेनापति अथवा महाबलिष्ठ के अधीन सेना के एक अनिश्चित भाग के संचालक को नायक मान लेते हैं। यहाँ 'अनिश्चित' इसलिये कहा है कि प्रसाद ने 'गुप्त' के अधिकारी को भी नायक कह दिया है जिसके लिए अन्वय स्वयं उन्हीं 'गौतमिक' शब्द का प्रयोग किया है^६ और यही उचित भी है।

प्रसाद ने सेना के अधिकारियों में महासंघिषहक और 'महाबलिष्ठनायक' को भी गिनाया है। महाबलिष्ठ के समान ही प्रसाद ने उन्हें संघिषहक का उचित माना है। समुद्रमुष्ट की प्रथमप्रवृत्ति में संघिषहक हरिवेण का नाम है और उसे महासंघिषहक कुमारामात्य और महाबलिष्ठ नायक कहा है। संघिषहक का कार्य युद्ध और संघिषहक का कार्य रक्षा है। 'हर्षचरित' के अनुसार संघिषहक का एक और कार्य वासक की घोषणाओं का प्रसारण करना भी है^७। मौर्य-काल में इस प्रकार के किसी भी अधिकारी का उल्लेख नहीं मिलता परन्तु शास्त्र का मत है कि गुप्तकालीन 'संघिषहक' उपाधि कौटलीय संघिषहक अथवा संघिषहक का ही रूपान्तर

(१) अमर०	२/११७
(२) अर्थशास्त्र	१०/१/४८ ४९
(३) स्कंद०	१/१९
(४) हर्षचरित—वाच	पृ० १८७

(२) अमर०	२/११७
(४) स्कंद०	१/९
(६) राज्यधी	२/१४

है।^१ लोपक है ऐसा ही हो फिर भी संविधिषक" उपाधि यौवकाशोत्त नही है। पर प्रकाश का विहरस को "याज्ञिकी का सवि-विषयक-ध्याय" कहना एक ऐतिहासिक त्रुटि है।^२ "स्कंदपुराण" में पृथ्वीकृत सविविषयक है और कुमार कुण्ड और उसके आर्वाणाय के आठ होता है कि यह युद्ध और सवि सम्बन्धी नामों में रहत है।^३ कुण्ड और विद्याओं के धारण सविविषयक बुद्ध और ध्यायि का मन्त्री है।^४ यहदण्डनायक का सम्बन्ध सता की ध्याय प्रशासन से धारिक है।

ध्याय परने पर कभी कभी स्वयं सम्राट भी माहाय्य का ऐतिक धारिकार केर येनापति के रूप में युद्ध के लिए मस्तुन होते हैं। ऐसे प्रसङ्ग प्रायः इन मन्त्री आठकों से जाये हैं। बोध व यों में भी इसके पणति उगाहरण मिलते हैं। आठकों से ज्ञान होता है कि प्रयत्नित ध्यायताबु, पर प्रयोग और विरुद्धक इन सबने सेना का नेतृत्व करते हुए युद्ध के लिए प्रभाव किया। शोक इतिहास से भी राजा युद्ध के स्वयं युद्ध काय का समवेत होता है। स्कंदपुराण तथा ध्याय कुण्ड राजाओं के दिग्भाषेयों में भी पुन मन्त्राओं द्वारा स्वयं यद्ध यज्ञानन के विषयम मिलते हैं। हर्ष स्वयं ध्यायि सेना केर उतागम्य म विरुद्ध करने के लिए निकला था। यह ध्यायधक पही होगा था कि स्वयं ऐग्य संधानन करत हुए भी सम्राट हा सेनापति हा। माहाय्यक उतापति सम्राट न धिय काई ध्याय ध्यायि होता था। कतिनास से भी इगकी कुटि होती है।^५

विशुद्धस से बुद्ध के लिए ध्याय करते समय चंगुन देम में बोधया करवादेता है कि ध्यायिषय में ध्याय ध्याय करने में आ समक है वैकिक है और विजयी मन्त्राति है वह युद्ध विषय की है।^६ इन मन्त्रा ज्ञानी बोधया में युद्ध-विषय का उल्लेख हुआ है। इसका विवरण प्रकाश में चंगुन की सुधिका में इस प्रकार दिया है—
युद्ध-विषय 'सेना विषय के ध्यायक व विनाशों में पाँच मन्त्र रहते थे। प्रथम विषय भी देश का था दूसरा विषय युद्ध सम्बन्धी योजन था यह लड़ने काय ध्याय और आठकों के ध्याय का प्रथम करता था। तीसरे धर्म के ध्याय ध्याय वैकिक रहते थे। चौथा विषय ध्यायध्यायों का था। पाँचवा युद्ध

(१) काण्डक इन दि बुद्धा एव (मास्तीर) पृ० २२६ (१) अष्ट० १/१२४

(२) स्कंद० १/१०

(३) काण्डक इन दि बुद्धा एव (मास्तीर) पृ० २२६

(४) इतिहास इन काण्डकय (आध्याय) पृ० १६२

(५) अष्ट० ४/२३६

रथ की रैल भाल करता था । छटा युद्ध के हाथियों का प्रबंध करता था ।^१ धर्मशास्त्र के धम्मल प्रचार धर्मिकरण में इन सबका स्वतंत्र रूप से उल्लेख हुआ है । स्मिथ ने भी मेघास्थनीय और कौटिल्य दोनों के आधार पर इन विभागों का इसी क्रम से बर्णन किया है ।^२

प्रसाद ने रण-भ्यूह का उल्लेख भी एक दो स्थानों पर किया है ।^३ धर्मशास्त्र के 'सामिक प्रकरण' में विभिन्न प्रकार के युद्ध भ्यूहों का उल्लेख मिलता है । प्रसाद के यज्ञ-बर्णनों में भ्यूह-योजना का संकेत तो मिलता है, परन्तु भ्यूह भ्यूह और युद्ध के कोई निश्चित स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाते । प्रसाद सेना को चारों ओर से घेरने^४ पृच्छ-भाव से आक्रमण करने^५ इत्यादि का बर्णन करते हैं परन्तु ये बर्णन इतने नहीं हैं कि कौटिलीय भ्यूहों से उनकी तुलना कर उनका विवेचन किया जा सके ।

धर्मशास्त्र में मंत्र-युद्ध अथवा कूट-युद्ध की महत्ता के सम्बन्ध में कहा गया है कि— एवं हन्यास वा ह्यारिष्टो सिप्तो भनुष्यता । प्राज्ञेन तुमतिः सिप्ता ह्य्यात्प्रभंगतानपि^६ युक्तीति में भी ठीक इसी प्रकार के भाव मंत्र युद्ध प्रकट किये गए हैं ।^७ धर्मशास्त्र के मंत्रयुद्ध प्रकरण में इसके निम्नलिखित प्रकारों का उल्लेख है—सन्तु के सेनापति को मिसाकर उसकी सेना को दुर्जन कर देना विभिन्न देशों में घुड़ पुरुष भेजकर सन्तु सेना में घात क फैला देना अथवा प्रत्यक्षद्वारे करवा देना और उनके द्वारा ही सन्तु राजा एवं उसके प्रमात्थों में विद्रोह और द्वेष उत्पन्न करवा देना धन लेकर सन्तु राज्य में विद्रोह करवा देना सबल होने से पूर्व ही दुर्जन राज्य पर आक्रमण कर उसे विजय कर लेना आदि ।^८ प्रसाद के मतका मंत्र कूटयुद्ध या मंत्रयुद्ध प्रणाली की भी चर्चा यत्र-तत्र हुई है । अजातसन्तु कौशल के सेनापति शीर्षकायमन के मिल जाने से दुर्जन हुई सेना पर आक्रमण करता है और सन्तु राजकुमार विद्रुह से मंत्री कर लेता है^९ अग्रमुत्त मन्थ का इन्द्रजाली बनकर यवन सेना में घात क फैला देता है और यवन सेना यह जानकर माने बढ़ता प्रस्वीकार कर देती है कि सत्तत्र के तट पर कई नाव कुर्षे

(१) अं० (सुमिका) पृ० ४५-४६

(२) धर्मशास्त्र भाग इन्द्रिया (स्मिथ) पृ० १३२

(३) अं० २:१३५-३६

(४) वही ४:२३५

(५) वही ४:२४०

(६) धर्मशास्त्र १:१५५

(७) युक्तीति ४:८

(८) धर्मशास्त्र १:२१२ प्रकरण १६३ 'मंत्रयुद्ध'

(९) अजात० २:१०८

बोझा उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।^१ चाणक्य अपने बरों एवं शासकिका की सहायता से मन्त्र और अमात्य राक्षस में मनोमार्मिन्म उत्पन्न कराकर अपना काम निकाल लेता है और अन्त में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देता है कि स्वयं अन्त की प्रकाश ही मन्त्र के विषय विरोध कर देती है जिसके कारण बन्धकों के शेष में मन्त्र में एकत्र बन्धुत्व की सेवा को विजय प्राप्ति का सुयोग मिल जाता है।^२ 'स्वर्गपुत्र' में लिखित दुर्गपत्तियों की धन लेकर मन्त्र साम्राज्य में जन विरोध कराने का प्रयोग किया है।^३ और राज्यधी में देवदत्त की सेवा प्रजाजनों के शेष में काम्यकुम्भ पुत्र में प्रवेश कर उसे विजय कर लेती है।^४ स्त्रीशेष में बन्धुत्व का अर्थ पुत्रों में जाकर अकाल का अर्थ करवा भी कूट बन्ध है। इसका समर्थन इतिहास तथा साहित्य दोनों करते हैं। इस प्रकार के स्त्रीशेषवारी पूत्र पुत्रों की कीटिम्य याचकों कहते हैं।^५ मित्ररत्नामी ने काम्यक नीति में इस प्रकार छान छ भी धनु को जीतने का उपाय किया है।

प्रवाद के नाटकों में बहो राजनीतिक संघर्ष हुए हैं वहाँ उनके परिणाम स्वयं विरोधी अन्तों में लड़ियाँ भी हुई हैं। प्रायः सभी प्रकार की संविधा में एक समानता दिखाई देती है और यह है कन्या सम्प्रदान अथवा विवाह-सम्प्रदाय प्रतेनत्रित में अपनी कन्या का विवाह कर अन्तस्य से सन्धि की सन्धि भी यह एक ऐतिहासिक घटना है और प्रवाद के नाटक 'अन्त' में इसकी चर्चा हुई है।^६ नाभारबरेय ने पर्यटनर के साथ सन्धि की पत्नी में अपने पुत्र धार्मीक के लिये पर्यटनर की कन्या की मांग की थी पर्यटनर ने सिद्धर को पौत्र होने पर सिद्धर ने पर्यटनर और धार्मीक से सन्धि करवा दी और उसे हृद करने के लिये धार्मीक ने अपनी बहिन अन्त का विवाह करके घर में करने का उपाय दिया।^७ सिद्धर ने मालवों के साथ जो सन्धि की जयमें सिद्धर की धार से धार्मीक ने ही अपनी बहिन अन्त का विवाह सिद्धर से कर दिया।^८ मित्पुत्र-बन्धुत्व की संधि में दो बान्धुका पुत्रों कपारों के बीच एक निम्न स्त्रीशेषकी का होना आवश्यक माना है।^९ हमीनिप भारत की सीमा निम्न-अन्तमाता तक बढ़ा लेने के साथ सिन्धुवन की कन्या का बन्धुत्व से विवाह

(१) अन्त २।१२५ (२) अन्त ३।१०२

(३) स्वर्ग ३।१२ (४) राज्यधी १।२५ (५) अन्तस्य २।१।५४

(६) अन्त १।१३४

(७) अन्त १।१४

(८) वही २।१३३

(९) वही ३।१५५

(१०) अन्त ६।२५०

हुमा बा। प्रवस्वामिनी स्वयं धाम समुद्रगुप्त की विजय-यात्रा में उपहार स्वयं गुप्त हुमा में घाई की।^१ 'स्कंदगुप्त नाटक में गुप्त के उपरान्त म सही वाचन और गुप्त साम्राज्य की मंत्री को पुष्ट करने के लिये बेवसेना और स्कंदगुप्त के बीच विवाह सम्बन्ध की समाजना और बन्धुवर्मा की इच्छा का उल्लेख भी प्रसाद ने किया है।^२ केवल वो मुर्तों के उपरान्त इस तरह के सम्बन्ध नहीं हुए हैं एक ठो स्कंद गुप्त म हूण-गुप्त के उपरान्त और दूसरे 'राज्यभी' में बेवगुप्त के आक्रमण के बाद परन्तु दोनों मुर्तों में संघियों के लिए कोई स्वाम ही नहीं है। दोनों भातता यियों में से एक ठा समूल मष्ट कर दिया गया है और दूसरे को पूर्णतः पराजित कर बेध की सीमा से बाहर खदेड़ दिया गया है। यहां महत्वपूर्ण घटनाओं की पराजय और उत्पत्त्यात् की गई सधि जैसे प्रबंध हैं ही नहीं। भव यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रसाद ने सभी संघियों में परिचय या कम्पा सम्प्रदान का महत्व दिया है।

उपगुप्त बितनी भी संघियों का उल्लेख हुआ है उनमें से कई ऐतिहासिक घटनाएँ हैं फलतः उस काम में इस प्रकार की परम्परा सम्भाव्य मानी जायगी। इसके अतिरिक्त प्राचीन स्मृति तथा नीति ग्रंथों में भी संघि के उक्त प्रकार का उल्लेख हुआ है। मुद्रगार्थ संघि के सम्बन्ध में लिखते हैं कि बसवान से सधि संघि के लिये उपहार और उपहार के साथ धनका उसके अतिरिक्त धन की सेवा कम्पादान भरती और धन का बाग से दुर्बल तथा हारे हुए राजा के करणीय हैं।^३ 'धर्मशास्त्र' से भी इसकी पुष्टि होती है। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रचलित में अन्य कई प्रकार की सन्धियों के अतिरिक्त 'कम्पोपायनदान' का उल्लेख भी हुआ है। स्पष्ट है कि सन्धि की यह परम्परा गुप्तकाल में प्रचलित रही होगी। इतिहास के अनुसार विन्वसार से लिच्छवि-कुमारी बेलहवा के साथ तथा पद्मगुप्त प्रथम म लिच्छवि-कुमारी कुमारबेबी के साथ विवाह सम्बन्ध लिये। ये विवाह गुप्त-विजय की सन्धि के परिणाम म होकर केवल मंत्री बधि के लिए की हुई राजनीतिक सन्धियों के स्वरूप हैं।

'प्रवस्वामिनी नाटक में विचार स्वामी कहता है—'राजनीति के सिद्धान्त में राष्ट्र की रक्षा सब उपायों से करने का आदेश है। उसके लिये राजा रानी कुमार और समाज सब का विसर्जन किया जा सकता है।^४ एक प्रकार से विचारस्वामी के उपगुप्त मत का समर्थन करते हुए फ्रीटिस^५ और लुक्^६ अन्तिम स्थिति में विजित राजा को धन धान की रक्षा करने की आज्ञा देते हैं राज्य की नहीं।

(१) अ.प. १/२३

(२) स्कंद० ५/१४०

(३) मुद्रनीति ४/७१-७२-७३-७४

(४) धर्मशास्त्र १२/१/१६ (धर्मनीयस)

(५) प्र.प. १/२४

(६) परप्रसन्न इरेवम्य-तत्प्रमथ्योपायत

रखो स्वबैहू न पनं का ह्यदित्ये बने गया—धर्मशास्त्र १२/१/३७

(७) धारमार्जगापनेस्काके ह्यवमिर्धेपु बुद्धिमान् ।

बहिना सहयोदयमितिमास्ति निर्दणतम् ।—लुक् २/७७

कौटिल्य ने मूठ के लिये अभिप्राय से दुर्ग दुर्गवालों तथा सीमान्त के द्वारों में
 मन्वशान्तों की स्थापना कर और सीमान्त बनों में भी रक्षकों को नियुक्त कर सब
 प्रकार सीमा की रक्षा करने का ध्यान दिया है। प्रसाद के नामों
 सीमाप्रान्त में स्वात स्वात पर सीमाप्रान्त के महार का उल्लेख हुआ है।
 और बरंर सिन्धुदिवियों के रक्त में पृथ्वी का मान कर होना के सीमा
 दुर्ग प्रान्त में गति स्थापित करने के उमय म दग्धुम को विजय
 विरह मिलता है।^१ बन्धुवृष्ट श्रीग सिन्धुवृष्ट की पत्निय में निपट
 बन्धुवृष्ट को भारत की वैनयिक सीमा मानता भी उल्लेखनीय है।^२ स्कन्दपुराण
 में उल्लेख की सीमा की रक्षा को परदन्त महार दिया गया है और दक्षके दोषिण
 दृष्ट शिग स्कन्दवृष्ट उसकी रक्षा के लिए पय य।^३ बाल्यदुग्ध के सीमान्त की रक्षा
 को प्रह्वर्मा ने इतना ध्यान महार दिया कि मयस्य मना के बजा बन्धु जान से
 दुर्ग धारित हो गया और देवदुष्ट से उसकी रक्षा न की जा सके।^४ मुञ्जनीति "
 पञ्चदश " तथा पञ्च प्रकों में भी दुर्गों के विभिन्न प्रकारों उल्लेख प्राकारों (पर
 कोटा) उसकी समुचित रक्षा तथा उनके बन्धु भावों का विवरण मिलता है। प्रसाद
 के नामों में भी स्वात स्वात पर दुर्ग दुर्गपति " परकोटा" तथा दुर्ग के मुखर्त
 द्वारों" का उल्लेख हुआ है।

(१) बर्षगात्र २/१/६ १/१/२४ (२) पञ्चाठ १/५४ (३) बंर ४/२४१
 (४) स्कंर १७११ २/७२ (५) पञ्चमी १/२६ (६) मूठ ४/५०/६
 (७) बर्षगात्र २/१/७ (८) स्कंर १/१२ (९) बंर २/२४२ (१०) बंर २/१५१

प्रसाद के नाटकों में सत्य का स्वरूप

प्रसाद नाटककार के साम्यवाद इतिहास के विद्वान भी थे। प्रता उनके ऐतिहासिक नाटकों के प्रतिक्रमिक स्वरूपों पर 'इतिहास के सत्य' का पूर्ण निर्वाह हुआ है। इतिहास के अर्थ-सिद्ध एवं सम्भाव्य स्वरूपों में ही प्रसाद ने काव्यमय तत्वों की योजना की है। नाटकों के कथानकों पर विचार करने इतिहासकार से इस निष्कर्ष पर प्रवृत्ति तरह से पहुँचा जा सकता है कि उनके कथानकों की सामान्य रूपरेखाएँ पूर्णतः ऐतिहासिक हैं। प्रसाद का सत्य कबु बन्धुगुप्त अथवा ममिनी स्कन्दगुप्त और राज्यभी सभी के कथानकों के गीत तत्व चाहे प्रसाद ने कहीं से लिये हों किन्तु उनकी प्रभाव पटनाएँ इतिहास सिद्ध हैं। प्रसाद इतिहासकार के सत्य की रक्षा करने में प्रवृत्ति तरह से की है। प्रसाद ने कहीं कहीं भी परिवर्तन किये हैं वे परिवर्तन इतिहास की अर्थ-सिद्ध या सम्भाव्य मान्यताओं में ही किये हैं।

'कथानक' संबंधी परिच्छेद में इस संबंध में पूर्ण विचार किया जा चुका है कि प्रसाद ने अपने कथानकों में जो परिवर्तन किये हैं वे उचित न प्रकटा नही। उसी से यह भी सिद्ध हो जाता है कि ऐतिहासिक सम्भाव्यता का इतना अधिक ध्यान उन्होंने रखा है कि हम इस प्रकार के सामान्य कथन का प्रयोग कर सकते हैं कि प्रसाद ने मन्त्र ही इतिहासकार के सत्य की रक्षा का प्रयास किया है।

प्रसाद ने कुछ परिवर्तन नाटककार के स्वानुभव के सत्य की रक्षा के लिए भी किये हैं नाटककार के स्वानुभव का श्रेष्ठ अत्यन्त विज्ञान होता है और इस विज्ञानता में उसके सभी पात्र उसी सभी पटनाएँ या जाती स्वानुभव हैं। प्रसाद कबु का बचिरा से पूवराम, बन्धुगुप्त का कान्ठिया से प्रणय देवगुप्त की राज्यभी के प्रति प्रार्थना, बालक्य की एक स्त्री के प्रति अनुरक्ति राजस का इस कारण आशय से विरोध स्कन्द का अशुभ प्रणय के कारण आजीवन कामार-वत ऐसी ही पटनाएँ हैं, जो ऐतिहासिक तो नहीं हैं, पर जिनको प्रसाद ने ऐतिहासिक-भावभूमि में सा खड़ा किया है। पर यह है कि ऐसा उन्होंने क्यों किया? कारण यही है कि इनसे उनकी कथाकृतियों प्राणवान बन सकी हैं और मनमें वास्तविक कथात्मकता का धुवन हो सका है। इन नवीनताओं प्रकटा परिवर्तनों को हम नाटककार के स्वानुभव सत्य के अन्तर्गत रखते हैं। नाटककार अपने व्यक्तिगत अनुभव से यह प्रकटा है कि किस प्रकार का

ऐतिहासिक पात्र किस प्रकार के कास्मनिक पात्र घपवा बटना के सम्पर्क में थाकर अपने चरित्र के प्रत्येक पक्ष को अपनी से अपनी तरह प्रकाशित कर सकेया । इन ज्ञान को यह इतिहास से नहीं पा सकता बरन् अपने व्यक्तिगत जीवन से प्राप्त करता है । प्रसाद में सौन्दर्य और प्रथम की जो कास्मनिक अनुभूतियाँ भी सबसे प्रभावित होकर हमें अपने नाटकों में कितनी ही बटनाओं और कितने ही पात्रों का सृजन किया जिनको कास्मनिक कहने में भी संकोच होता है । 'अम्बुगुप्त' की मासडिवा 'द्रुव स्वामिनी' की कोमा 'स्कन्दगुप्त' की देवदेना और इन सबके मुक्त पर कोमल प्रणय विराट सत्य प्रतीत होते हैं । इसका कारण यही है कि ये नाटककार के स्वामुम्ब के विराट सत्वों की बीबन्त प्रतिमाएँ हैं । प्रसाद की स्वयं की यह भाव्यता ही प्रतीत होती है कि नारी, पुरुष के जीवन में सबसे बड़ा योग दे सकती है वह सबका निर्माण कर सकती है और मान नी । इस सत्य की उम्क उम्क नाटकों में सर्वत्र मिलती है ।

नाटकीय परम्पराओं के सत्य की रक्षा के लिये भी प्रसाद ने इतिहास में कई परिवर्तन किये हैं । सबसे बड़ी बात प्रसाद के नाटकों का अन्त व्यक्तिगत दृष्टिकोण में न होकर बरणा की सार्वभौम व्यापक पीठिका पर हाता है ऐसा प्रतीत होता है कि ऐतिहासिक घटना की छद्म-साधी होने हुए भी प्रसाद ने अपने नाटकों को दुःखान्त बनाने में यथाशक्ति बचाने का प्रयास किया है । 'अजातशत्रु' नाटक की बटना का इतिहास के अनुसार इतना सुन्दर अन्त नहीं हुआ था, कितना प्रसाद ने चित्रित किया है । यह सत्य है कि नाटक में भी अन्त में बिम्बसार को सङ्कटा कर विरते हुए चित्रित किया है किन्तु अजागत पीठम की अमय-मुद्रा के विषय धातोक में अपने सभी परिवर्तनों से विरे हुए राजा की मृत्यु की कटुता या लोम लिये हुए नहीं है व्यापक कण्ठा की उशतता नियं हुए है । अम्बुगुप्त के अन्त का करणापूर्ण होगा तो सम्भव ही न था किन्तु काण्वय और सौर्व सेनापति के कापाय चहुँ से नाटक के अन्त में हर्ष के माय साम शेराम्य पूर्ण सात्विकता का समावेश हो गया है । द्रुवस्वामिनी का अन्त रामगुप्त की मृत्यु में तो हुआ है पर स्वष्ट रूप से प्रसाद ने वहाँ भी रामगुप्त की मृत्यु का उत्तम न कर उसके विरते का ही उत्तम किया है और जो कुछ भी सहायुभूति घपवा कटुता उसकी मृत्यु से उत्पन्न होती वह अम्बुगुप्त द्रुवस्वामिनी की अयशर में छिप गई है । स्कन्दगुप्त का अन्त मामिक है और दुःखान्त भी सबसे बल होता है कि स्कन्द और देवदेना ने मावता से वरुण्य का ऊँचा समया । इसी बटना का दूसरे प्रकार का करणापूर्ण अन्त रामगुप्त यन्त्रीक करणा उपम्यास में देखा जा सकता है । प्रसाद ने वहाँ हुए मुक्त ने स्कन्द की विरय रिखाई है, उसकी मृत्यु नहीं । अन्त यहाँ भी ने उसका अन्त वास्तविक अन्त

नहीं करना चाहते थे यद्यपि स्कंदमुप्य का धारा रचना विधान भासवी का है । राज्यधी का धन्त भी प्राध्यायिक जाति का ही सूचक है । इससे यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि अपने नाटकों में कम से कम धन्त में तो प्रसाद ने भारतीय परम्परा के इस सिद्धांत को अपनाया ही स्वीकार कर लिया है कि नाटक बुद्धान्त नहीं होना चाहिये । इसको किसी प्रकार का नाटकीय प्रयोग प्रबन्ध प्रसाद की शार्सनिकता कहकर नहीं टाला जा सकता । यह निश्चय ही नाटकीय परम्परा के सत्य की रक्षा का प्रयास है—चाहे यह प्रयास जान दूझकर किया गया पश्चात् प्रबन्ध अपनाया ही व्यभिच हो गया हो ।

सोक-मानस का सत्य प्रसाद के नाटकों की प्रस्तावों में रह रहकर उभर आता है । प्रसाद के सुष्ट और क्रूर ऐतिहासिक चरित्र स्वभावतः सुष्ट और क्रूर हैं और

उनकी रक्षा करने का नहीं प्रयास नहीं किया गया है । काव्य

सोक-मानस न्याय की कसौटी में वे सब धन्तों तरह से बसकर बहिष्कृत किये जा सके हैं । प्रजातन्त्र की हार और अन्तिम आत्मग्लानि को कम न कर उसे बढ़ा दिया गया है और इस प्रकार उसे सच्चे मानवोचित गुणों को ग्रहण करने का अवसर दिया गया है । मानसी बंसी कपलबिठा नारी के गर्भ को प्रसाद ने बुर बुर करकेही धम लिया है चाहे इसमें उन्हें इतिहास को भी भ्रष्ट करना पड़ा है । वेदवत का धन्त ऐतिहासिक है और वह सचमुच कभी गुपरा भी न था । बिम्बसार और वासवी का अन्तिम क्षणों का मुक्त सम्पूर्ण जीवन के दुःखों पर छा जाता है ।

हृदय परिवर्तन प्रसाद को बहुत प्रिय है । इसलिये प्रसाद ने अधिकतर पात्रों के हृदय परिवर्तन के सिद्धे योग्य परिस्थितियों की योजना भी की है ताकि सोक-मानस उसे स्वीकार कर सके । राजस का हृदय परिवर्तन मन्त्राराधन पर आधारित है । धाम्नीक को बेमद्रोह की सभा दूसरे ही प्रकार से मिली । उसने अपने रक्त से अपना कर्मक प्रोया को इतिहास के अनुकूल नहीं है । तन्त्र के पात्रों का बढ़ा बढ़ा रहा और धन्त में तन्त्र के हार्थों ही फूटा क्योंकि उसी के साथ उसने सबसे अधिक धारणा किया था । स्कंदमुप्य में कल्पवृक्षा धन्तदेवी और बिम्बया पत्न की अन्तिम सीमा पर ही थाकर रहे हैं और उनका जो धन्त हुआ उस पर कोई असन्तोष नहीं कर सकता क्योंकि वह धन्त न्यायोचित है । देवमुप्य और तरेन्द्रमुप्य के धन्त ऐतिहासिक हैं पर शक्तिमिथु और सुरमा स्वयं अपने अन्तिम क्षणों की काला में अपना जाति की खोज में पुन देवी राज्यधी के चरणों में ही नत मस्तक हुए । शक्ति मिथु और सुरमा के लिये कोई एक विधानप्रसाद ने नहीं किया, यह धाम्य कुछ प्रबन्ध सकता है । निम्न इसमें प्रसाद ने बीड़ बर्म के धमा सिद्धांत की ही रक्षा नहीं की है बल्कि सोक-मानस को इस सिद्धांत की प्राप्ति में बहता भी दिया है ।

अज्ञान की शक्ति-पूर्ण नहीं हो सकता यह लोकमानस की मान्यता है। अतः समस्त धीर जनसंघों के साधन काल में देश की दुर्दशा के जो विचित्र प्रकार ने खींचे हैं वे इस धीर पर्याप्त उचित करते हैं।

काम-न्याय के संबंध में प्रभाव पर यदि कहीं धारण नवाया जा सकता है तो वह 'अज्ञान' की कस्बाही धीर मानविका 'अज्ञानमित्री' की कामा धीर 'अज्ञान' की बेबेहता के सर्वप्रथम हैं। यदि बेबेहता के लिए हम यह मान भी लें कि उसे तो प्रसार ब्रह्मका प्राण से ही रहे वे पर उसने कथम के लिए उसे स्वयं ही धीरता कर दिया तब भी कस्याही मानविका धीर कोमा के सुन्दर-मुकुमन की कस्याजनक परिस्थिति के लिए प्रसाद स्वयं ही जिम्मेदार हैं। कस्याही के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि उसे ध्यात्महत्या से अन्त के पापों का प्रायश्चित्त कराया पड़ा कोमा को सकलता की प्रियतमा होने के कारण उसकी महत्त्वपूर्णताओं का विचार होना पड़ा मानविका धर्म 'स्वर्गीय कुमुद' की धीर उसकी हत्या के लिए प्रसाद का श्राद्ध्य धरणी है धर्मः स्वयं प्रसार भी धरणी है।

राष्ट्रीय राष्ट्र के एक अत्यन्त प्रचलित विश्वास पर प्रसाद ने एक नई पीढ़ी छोटी पायी है। उन्होंने जन-मानस में अत्यन्त मध्य धीर धीर माने जाने वाले परवैश्वर को कालांतर में एक साधारण मध्य धीर विभागी के रूप में चित्रित कर दिया है। यह ठीक है कि प्रसाद ने मुद्राच्छय की विपन्नता से धार्मिक करने वाले राजा परवैश्वर धीर धीरों के पुर (परवैश्वर) को एक मानकर स्वाभाविक कारण-कार्य योजना प्रस्तुत की है किन्तु एक तो यह बात ऐतिहासिक नहीं धीर धीर जन-मानस इस बात की स्वीकार करने की कदापि प्रस्तुत नहीं हो सकता कि विष्णु के सामने बंही-भवसा में भी मस्तक न झुकाने वाला महावीर पुर नैतिष्ठता से अपना पिछा हुआ होया। जिस प्रकार विष्णुमण्डल को ल्यावरहित, राजा भोज को यज्ञानी तथा हृषण धीर मुक्त को पचकनहीन स्वीकार करने को लोक मानता प्रस्तुत नहीं उही प्रकार पुर (परवैश्वर) को विभागी, काबर धीर मध्य मानने को भी नहीं। प्रसाद के इस विश्वास को किसी प्रकार भी सत्य नहीं माना जा सकता।

प्रसाद के नाटकों में काल-क्रम दोष

अधिकोष्ठ ऐतिहासिक नाटकों की तरह प्रसाद के नाटक काल-क्रम दोष से सर्वथा मुक्त नहीं हैं। उक्त दोष प्रायः सभी नाटकों में उपसम्भ हो जाते हैं। काष्ठ घटना घीर बगवानरण सभी में कहीं न कहीं प्रसाद व्यतिक्रम कर ही गये हैं किन्तु इनके साथ-साथ उक्त दोष के सबसे महत्वपूर्ण स्वरूप 'मनोवैज्ञानिक काल-क्रम दोष' से भी वे अपने भाग को मुक्त न रह सके।

अनातहतु' नाटक में राजकुमार बिरहक को शास्त्रों का संहार करते हुए चित्रित करके प्रसाद ने काल-क्रम सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण व्यतिक्रम किया है। राज-कुमार बिरहक ने अपने पिता प्रसन्नचित्त के बीबल-काल में ही काल-क्रम शास्त्रों पर चढ़ाई नहीं की थी; उक्त घटना बाद की है।

'कर्मगुप्त' में चित्तूकस की कन्या कर्नैलिया का पूर्ण यौवना वस्था में (अथवा किशोरवस्था में) चित्तूर के शास्त्रज्ञ के समय भारत घाना भी कास-दोष का ही स्वरूप है। कथानकों पर विचार करते हुए हम देख चुके हैं कि कर्नैलिया (?) का अश्वत्थुप्त विनाह चित्तूकस की पराजय के उपरान्त हुआ था। इन दोनों घटनाओं के बीच बाइस-तेईस वर्षों का अन्तर होने से इन दोनों घटनाओं के बीच कास की संभाव्यता नहीं रह जाती। 'स्कंदगुप्त' नाटक में कुमारगुप्त के बीबल-काल में ही मालवा में हूणों को शास्त्रमख करते हुए चित्रित किया गया है। हम देख चुके हैं कि हूणों ने मालवा पर बहुत बाद में आक्रमण किया था और अस्तुत' वही उनका अधिकार स्कंदगुप्त के बीबल-काल में नहीं हो पाया था। इसी प्रकार का एक महत्वपूर्ण दोष राज्यधी में भी पाया जाता है। यहाँ प्रसाद का घटना-क्रम पूर्णतया इतिहास विरोधी हो गया है। काम्यकुम्भ के कारागार से मुक्त होकर देवी राज्यधी विन्ध्यावटी में भाग गई थी। हर्ष और मंडि का मिताप काम्य कुम्भ में हुआ और तुरन्त ही वह अपनी बहिन को खोजने निकल पड़ा। राज्यधी की रक्षा के बहुत समय उपरान्त उद्यते उत्तर भारत को विजय किया और अन्त में बालुभय से हार कर बापस सौटा। प्रसाद ने इस क्रम में इतना व्यतिरेक कर दिया है कि न तो वह इतिहास ही रह गया है और न उसमें घटनाओं की संभाव्यता की ही रक्षा हो सकी है। नाटक में हर्ष पहिले बालुभय से लड़ता है और तब राज्यधी को खोजने जाता है। इन दो घटनाओं के बीच कास का इतना अधिक अन्तर है कि घटनाएँ बराबर कुछ ही नहीं पायीं। इसी प्रकार दिवाकरमित्र और राज्यधी के सम्बन्ध में टना क्रम को बदल दिया गया है। मूल घटना में हर्ष एवं दिवाकरमित्र दोनों

उत्साहित भी करती थी। यह ठीक तो है किन्तु अधिक धन्य होता यदि प्रचार 'अन्नगुप्त' की तरह इन स्त्रियों के मुँहोत्साह को एक सीमा में ही रहने देते और खान-पान का काम बैठे घरवा 'स्कन्धगुप्त' की बेबसेना और जयमाता की तरह या मासब युग में सिद्धर के सैनिकों से लड़ती हुई प्रसका की तरह उन्हें भीरता और साहस के प्रतीक नर बना देते जो प्रापतिकाल में अपनी रक्षा प्राप्त करने में समर्थ हों। किन्तु भारत की स्वतंत्रता से पूर्व का प्रच के बाबेस्टीयरो के प्राये-प्राये गीत पाटी हुई चलने वाली नारी सुदूर इतिहास के कालों में अपनी अस्तित्व नहीं खिपा पाती। काम-कर्म-बोध का यह स्वरूप संसार के प्रायः सभी ऐतिहासिक नाटककारों में पाया जाता है क्योंकि कोई भी कवि या नाटककार अपने युग के प्रभावों से मुक्त नहीं हो सकता।

मूल्यांकन

प्रचार भारत वर्ष के उन चोड़े से नाटककारों में से है जिन्होंने भारतीय इतिहास और संस्कृति को अपने नाटकों का उपबोध्य ही नहीं बनाया बरन् स्वयं इतिहासकार की संज्ञना और कुतलता के संयोग से इतिहास के अज्ञान अस्पृहात प्रगों की पुनरचना भी की। प्रमाद की ऐतिहासिक दृष्टि पूर्णतः भारतीय ही नहीं अत्यन्त अमानक और उदार भी थी। बस्तुतः प्रचार का पुन एक बिराट सांस्कृतिक पुर्नजापरण की चेत्ना से प्रभावित था। बिदेसी और बिदेयकर प्रवेज इतिहासकारों में भारतीय इतिहास और संस्कृति को पाश्चात्य इतिहास और संस्कृति से परोसाहुतबाह का और विद्यदा हुपा मिद्ध करके लिये इतिहास की उस बैज्ञानिक-अबैज्ञानिक पद्धति का अक्षय लिया जिसके कारण इतिहास को पुरातत्व संबंधी प्रमाणों के बिना कल्पित एव अशामाणिक माना जाने लगा। बिन्नेट स्मिथ और उनके पूर्ववर्ती अफिकांस इतिहासकारों तथा उनसे प्रभावित भारतीय इतिहासकारों में भी बौद्धजान से ही भारतीय इतिहास का बैज्ञानिक अक्षेयण किया। इसका कारण यह था कि उस समय तक भारतीय पुरातत्व अनुसंधानों में परब्रम की यत्न प्रतिभा तथा परबर्ती बौद्ध कानीन सामी शोध भी थी। परब्रम की प्रतिभा को अज्ञातयु के काल तक पहुँचाकर तथा बौद्ध इतिहास संबंधी अमिनेखों को पुरातत्व प्रमाणित मानकर बैदिक काल से लेकर एटी-आतबीं शठी ईसवी पूर्व तक के भारतीय इतिहास को मात्र पीरालिक कहकर भारतीय मनीया को अज्ञाने का सारा अक्षेय अक्षेय इतिहासकारों की अरणा को ही बना है यद्यपि उनमें भी मात्र प्राप्प-बिद हुए हैं।

भारत की स्वतंत्र मनीया का विकास प्रचार के समय तक ही हुआ था। अर्यन इंडोलोजिस्ट्स में बैदिक आह्वण और उपनिषद्कानीन बाह मय के अक्षयन की तबीन कुनीती को स्वीकार किया और पुर्नजापरण कानीन दृष्टि-आक्षेप का उक्त जित किया। बाधो राजी आदनबाम अस्टेकर, अडारकर कम इतिहासकों में भारतीय इतिहास का मात्र पुरातत्व के अक्षय पर नहीं बरन् भारतीय बाह मय के अक्षय पर निरूपित करना आरम्भ किया। बैदिक आह्वण उपनिषद सामावरण और महा भारत काय को ऐतिहासिकता प्रदान की गई उनके काल कम और उनकी विविधों को निर्धारित करने का प्रयास किया गया और इस मिथ्या प्रचार को स्पष्ट किया गया कि भारतीय संस्कृति का अक्षय पुनामी संस्कृति अदबा अछने पूर्ववर्ती अक्षय एटिपाई अक्षय अक्षेयिनीय दीपना बाइबिली संस्कृति से हुपा। अारे बैदिक साहित्य

को 'मिथ' मानना अस्वीकार किया गया और क्रमशः बंबिक सम्राटों राजाओं तथा राज्य-संघों का ऐतिहासिक रूप उद्घाटित किया जाने लगा। रामायण और महाभारत को हिन्दू सभ्यता के इतिहास प्रबंधों के रूप में प्रस्तुत किया गया और पुराणों को भी हिन्दू इतिहास के संदर्भ प्रबंधों के रूप में देखा जाने लगा। प्रायों के प्रादि देश के संबंध में बड़ी बड़ी बहस हुई और तिसक जैसे विचारकों की साम्यताओं के विरोध में भी भारतीय मनीषा ने भारत को ही प्रायं जाति और प्रायं-सभ्यता का जगज मान लिया।

इतिहास-दृष्टियों के इस सारे उदा-मोह पर प्रसार की दृष्टि गई और उन्होंने पूर्ववर्ती और समसामयिक इतिहासकारों का गंभीरता से अध्ययन कर, भारतीय बाह्य-मय का विवेचन-विश्लेषण प्रारम्भ किया। इस अध्ययन के परिणाम स्वरूप उन्होंने भारतीय इतिहास की जो रूपरेखा गड़ी वह अद्भुत थी। उन्होंने बंबिक इन्द्र को प्रायं-वर्त का प्रथम सम्राट सिद्ध करने का प्रयास किया। वेद और परवर्ती प्रबंधों से अनेक प्रमाण लेकर उन्होंने यह सिद्ध किया कि इन्द्र ने असुरों पर अपनी अप्रतिम विषयों के फलस्वरूप प्रायं-वर्त को एक प्रायं-साम्राज्य में परिवर्तित कर दिया और स्वयं सम्राट की उपाधि ग्रहण की। शतपथ ब्राह्मण के प्राचार पर वेद जाति के अर्थ प्रसंग जो उन्होंने मानव सभ्यता के इतिहास का प्राकृतिक बिन्दु मान एक इतिहासकार की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि से सहस्रों वर्षों के व्यापक अन्तराल से उभरे इतिहास की रेखाओं में रंग भरना प्रारम्भ किया और सांस्कृतिक बरातन पर इतिहास की ब्रह्मणिकता प्रकट होने लगी। प्रायों का प्रादि देश जहाँ से विश्व की समस्त सभ्यताओं का जन्म हुआ अतएव अन्तःकाल से मानवता की जन्मभूमि रहा है। इस रूप में भारत और प्रायं-वर्त को प्रस्तुत कर उन्होंने इतिहास की भारतीय दृष्टि को स्थापित किया।

बंबिक बाह्य-मय को इतिहास की सीमारेखा में माने के उपरान्त प्रसार ने साहित्यिक और पौराणिक सामग्री की ओर ध्यान दिया। वेद सभ्यता के अर्थ और मानव सभ्यता के प्रारम्भ का इतिहास कामायनी में चित्रित कर ने महाभारत के प्राख्याओं की ओर उन्मुख हुए। प्रसार जानते थे कि ब्रह्मण के प्राचीनतम इतिहास के मूल में पौराणिक उपारण ही है, जिन्हें कासास्तर में इतिहास मान लिया गया और जहाँ के साहित्य में अमरत्व प्रदान किया गया। 'मिथ' इतिहास बनता है और कई बार इतिहास भी 'मिथ' बनकर रह जाता है। इस प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए प्रसार ने 'प्राचीन' साहित्य और पुराणों से इतिहास को जोड़ना प्रारम्भ किया। पुराणों के ऐतिहासिक घटनाक्रम में प्रमुख प्रतीकों की इतिहास परक व्याख्या के बिना यह कार्य असम्भव था अतः प्रसार ने महाभारत के कतिनय प्रतीकों को स्पष्ट करने का प्रयास किया। जनमेजय के नायज में नायों को नामजाति के

सबसुख ऐसा प्रतीत होता है कि प्रजातन्त्र नाटक में प्रजातन्त्र की कथा तो एक माध्यम मात्र है प्रसार का उद्देश्य तो तत्काल की प्रगति और कल्याण का बीड़ा ही जयपोष करना है उसी तत्काल के प्रवर्तण के समय का । कथा-सापेक्षता के स्थान पर कास और मुनश्म-सापेक्षता को प्रकृत करने में प्रजातन्त्र की सार्थकता प्रतीत होती है । उसमें तीन कथाएँ हैं, तीन दिशाओं से चलती हैं काशी में केन्द्रित होती हैं और तीनों मिश्र मिश्र दिशाओं में जाकर समाप्त हो जाती हैं उनको एक सूत्र में जोड़ने वाली कड़ी तत्काल की धारणा और उनकी उद्देशित कर देने वाली कक्षा है जो कूरता और मूर्खता को ब्या और सहानुभूति में परिवर्तित करने की क्षमता रखती है । यह इतिहास का सत्य है मुनश्म और संस्कृति का सत्य है और मानव-चेतना का भी उनाशन सत्य है । यही इतिहास संस्कृति से और ये दोनों कथा से धनायास जुड़ जाते हैं ।

क्या इतिहास पूरी तरह तटस्थ और बिपयगत वैज्ञानिकता सिद्ध हो सकता है ? यह प्रश्न विवादास्पद है, विवादास्पद इस धार में कि बिस्व की सभी सम्मताओं के इतिहास राष्ट्रीय सांस्कृतिक या धार्मिक छूकाव से कहीं न कहीं उदे प्रभाव्य होते हैं प्रत्येक देश का राष्ट्रीय इतिहास अपनी राष्ट्रीय चेतना धारणा और धार्मिकता के प्रति सजग और सतक रहता है । इसी प्रकार साहित्य और बिशेषकर पुनस्तान या पुनश्मरण का साहित्य राष्ट्रीय-ऐतिहासिक-सांस्कृतिक विरासत के उदात्त मूर्खों की प्रतिष्ठा के प्रति बड़ा सजग रहता है । यही नहीं, अपने सम-सामयिक युग से भी बह प्रेरणा पाता है और उसका प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव उसकी रचनाएँ ग्रहण करती हैं । प्रत्यक्ष में तो वह वर्तमान को घटीत में प्रलेपित करता है और परीक्ष म वह घटीत से काम-व्यापारों के ऐसे आयात चुनता है जो वर्तमान संघर्षों की ओर भी इ गित कर सकने में समर्थ हों । प्रसार का इतिहासकार और साहित्यकार भी इस सहज कर्मण का उबरण नहीं कर सका है । हमारे स्वयं के निष्पत्त इसे प्रमाणित करते हैं— 'बह काशी के व्यक्तित्व के प्रसार का युग का और उसका प्रधान युग बर्म पर कमल बढ़ता बना जा रहा था । प्रजातन्त्र का मायक भाड़े कोई हो इसमें सन्देह नहीं कि प्रारम्भ से सेवर संत तक उसकी समस्त घटनाओं को मोड़ने की कुची बुद्ध के स्वयं के धरना उसकी मुद्रिमती शिव्या यस्सिका के व्यक्तित्व में पाई जाती है । यहाँ १९-१९ पर बुद्ध के सिद्धान्त कसौटी पर उतारे गये हैं और प्रत्येक इन्द्र के उपरान्त वे चरे उतरे हैं । प्रस्त में बिस्वक के यौवराज्याधिकार की पुन प्रतिष्ठा समस्त धार्मिक स्वर्णों एवं धम्म बिस्वामों के बिस्व बुद्ध सत्व-गुण प्रदान प्राचीन भारतीय बिचारों की बिजय ही नहीं बुद्ध के प्रकाशमान व्यक्तित्व की बिजय भी है । गांधी जी की बड़ी मात्रा और धार्मिकताओं की पद्धति के बिपरीत उनका अहिंसामय प्रसह्योब धान्दोमन उनकी राजनीतिक बिजय का ही सूचक नहीं, प्राध्यात्मिक बिजय का भी सूचक है ।'

सैनिक बल से पराभूत तो होता ही पड़ा भारत के नग्न तपस्वी सांख्यिक के हावों उसे साम्प्रदायिक दृष्टि से भी हार बानी पड़ी ।

प्रसाद के उपर्युक्त सभी निष्कर्ष इतिहास से प्रमाणित हैं और ऐसे ही इतिहास ने समय समय पर भारत को प्रेरणा भी दी है । यह दूसरी बात है कि 'अन्नपुत्र' नाटक में प्रसाद ने नाटकीय त्वरा और संक्षिप्तता के स्वान पर विस्तार और व्यापकता को प्रसन्न किया है सुधीर्ष नाम में बटी अनेक छोटी-बड़ी घटनाओं का प्रक्रम किया है और अनेक काव्यमय प्रसंगों की प्रवृत्तारण भी की है । सबसे भी यही स्पष्ट होता है कि परम्परागत रचना प्रक्रिया से हटकर एक 'इण्डि-ड्रामा' प्रस्तुत करना उन्हें पसंद आया है । 'इण्डि-ड्रामा' क्यों इसका उत्तर यही है कि प्रसाद सांस्कृतिक इतिहास के एक सम्पूर्ण युग को प्रकृत कर चुकने में इस नाटक की भी सार्थकता समझते हैं । उनकी दृष्टि में ऐतिहासिक नाटक का प्रथम उत्कर्ष इसी में है कि वह एक युग को अपनी समग्रता में चित्रित कर उसकी महत्ता बरिमा और उदात्तता को ऐतिहासिक चरित्र के बराबर पर सम्पूर्ण रूप से उजागर कर दे । व्यक्तियों से अधिक उनकी दृष्टि में वे सांस्कृतिक मूल्य महत्वपूर्ण हैं जो किसी युग को अभिनवनीय बनाते हैं, इसीलिए उनका आशय अन्नपुत्र से कहीं ऊँचा है क्योंकि वह उस युग के समस्त उदात्त मूल्यों को प्रारण करने वाला है, उसकी पत्नीया ही मूल्यों को निर्धारित और स्थापित करती है । उनकी प्रकृता मनुहुता कल्याणी से कहीं महान् है क्योंकि वह अपने स्वार्थ को राष्ट्रीय स्वातंत्र्य के प्रारम्भ में चित्रीय कर देती है । पर्वतेश्वर से साम्प्रदायिक ऊपर उठ जाता है क्योंकि पर्वतेश्वर स्वातंत्र्य के प्रारम्भ से जनक व्यक्तिकेन्द्रित स्वार्थपरता के स्तर पर उतर जाता है और साम्प्रदायिक और स्वार्थ से हटकर, पञ्चायत की व्याप्ता से मुक्त हो, राष्ट्र-राज्य में अपनी प्राकृति से बैठा है । ये कतिपय मूल्य हैं जिन्हें प्रसाद की चेतना ने सांस्कृतिक बराबर पर स्वीकार कर नाटक में स्थापित किया है ।

साम्प्रदायिक इतिहास प्रसाद के समकालीन युग की ओर सीधा संकेत करता है, इसीलिए प्रसाद ने उसे साम्प्रदायिक मर निचोड़ा भी है । मूलनी बीरता (पारम्पर्य बीरता) के स्वान पर सांख्यिक बीरता (पौरुषत्व बीरता) का उद्घोष एक स्वतंत्र चेतना भारतीय इतिहासकार की दृष्टि है और साधक एवं गुणमय मनोवृत्तियों पर कथित प्रहार भी । आत्मिक की दृष्टि से विक्रम की पराभव प्रसाद युग का बहुत बड़ा स्वप्न रहा है और गांधीजी के नेतृत्व में यह स्वप्न पूरा हुआ । सांख्यिक में प्रसाद ने गांधी जी को नहीं देखा था ऐसा कहना कठिन है । प्रसाद सांख्यिक को लंगोटी बाँधे गांधी के चरणों में झुका हुआ है तभी देखा चुके थे । सांख्यिक की महिम्न बाणी भी सब हुई सांख्यिक का उद्घाटन भारतीय ही हुआ एक विदेशी नहीं ।

किया है और इन बड़े प्रमाणों के द्वारा सांस्कृतिक मूल्यों की एक संकल्पित को जन्म दिया है। इतिहास में यह संकल्पित ठीक इसी रूप में बटित नहीं हुई। द्र. बस्वामिनी चन्द्रमुप्त की प्रमुखता किन्तु राममुप्त की विवाहिता पत्नी भी और इतिहास से जो प्रमाण दिये जा सकते हैं उनसे नहीं जात होता है कि राममुप्त की मृत्यु के उपरान्त चन्द्रमुप्त के शासक बनने पर द्र. बस्वामिनी चन्द्रमुप्त की पट्टमहिषी बनी। यहाँ प्रसाद ने इतिहास पर एक प्रश्न चिह्न लगा दिया है। उन्होंने राममुप्त के विरुद्ध एक कल्पित करवा भी है राममुप्त को राज्याधिकार से श्युत करवा दिया है और द्र. बस्वामिनी का राममुप्त से विवाह-मोक्ष बिलका दिया है। इतनी बड़ी राजनीतिक-सामाजिक-धार्मिक कल्पित भारतीय इतिहास में कभी नहीं की जा रही यह कहना कठिन है किन्तु उपलब्ध इतिहास के आधार पर प्रसाद के निष्कर्षों को चुनौती देना भी असंभव है। एक इतिहासकार की सम्पूर्ण प्रतिभा से प्रसाद ने इतिहास के अज्ञात और अस्पष्ट अर्थों की जिस प्रकार सम्युक्ति की है वह अपने ध्यान में पूर्ण सम्भाव्य है।

यहाँ भी प्रसाद इतिहास से अपने धुप को आलोचित करते हैं और उभयतः इस नाटक में उनके इतिहासकार की दृष्टि अपने धुप पर सबसे अधिक है। इतिहास की जटिलता को विविध प्रमाणों से पुष्ट कर उन्होंने धार्मिक भारतीय नारी के लिये विवाह-मोक्ष के अधिकार की शास्त्रीयता और सार्थकता दोनों को सिद्ध कर दिया है। यह निश्चय ही एक सचेतन इतिहासकार की दूरगामी दृष्टि है जो नाटक में प्रवेश पाते ही सामाजिक संघर्षों को मनायास ही पा लेती है। यह ठीक है कि द्र. बस्वामिनी धार्मिक संघर्ष में समस्या नाटक नहीं है क्योंकि संघर्ष में समस्या का बौद्धिक स्वरूप नहीं है ऐतिहासिक भावना अथवा और शास्त्रीय स्वरूप है किन्तु इतिहास के परिप्रक्ष्य में एक स्वरूपबद्धतावादी (स्वामी) साहित्यकार ने जो भी प्रश्न उठाया है वह यदि ऐतिहासिक और शास्त्रीय है तो भी वह समस्या मूलक तो है ही।

स्कंदमुप्त संबंधी इतिहास के लिये प्रसाद ने स्मिथ, ऐमेन, जयसनाथ भागो बाबी, हरप्रसाद शास्त्री पत्नीट राजसहास बगरीं तथा कीप की कृतियों अनेकलिता लिखीं ताद्वयार्थ स्तंभसेखों तथा सिक्कों एव भावा सप्तशती कामकाचार्य कया प्रबंध कोय राजाकसी, जैसममेरका इतिहास मुक्ति मुक्तावनी सुभाषितावनी, परा कमबाहु अरिष एवं कालिदास के प्रकों का प्रचुर उपयोग किया है। बस्तुतः स्कंदमुप्त नाटक में इतिहास होते हुए भी उसका बहुत बड़ा प्रक्ष कल्पित है किन्तु स्कंदमुप्त संबंधी इतिहास की भी प्रसाद ने अपने जग से पुनर्रचना की है, मुप्तकाल के अथवा स्थित उत्तराधिकार नियम से विभिन्न स्कंदमुप्त की उपासीयता को प्रसाद ने नाटक में चारित्रिक गुण बनाकर अमूर्तता की उपासीयता कर र्हे- है। मुप्तकाल और अतस्तवैरी द्वारा किये गये पत्रपत्रों के लिय प्रसाद ने कोई प्रमाण नहीं दिये हैं किन्तु इतिहास

भाष्यार्थ तब और भी बढ़ जाता है, जब अन्त तक उनका इतिहासकार विजयी बना रहता है। बेबसेना उनकी बड़ी ही सुन्दर कल्पना है किन्तु उसे भी उन्होंने इतिहास को समर्पित कर दिया है। जैसा मैं एक स्थान पर लिख चुका हूँ—‘इतिहास स्वरूपा का उन्मेष करता है, बेबसेना का नहीं किन्तु यदि इतिहास नहीं चाहे तो प्रसाद की बेबसेना को मांगकर अपने इतिहास में रख सकता है और यह निश्चित है कि इतिहास में आकर भी बेबसेना कालान्तरिक नहीं मासूम पड़ेगी वह इतिहास की एक कल्पना कोमल बड़ी बन आयी और कोई उसके अस्तित्व को चुनौती नहीं दे सकेगा।

‘राज्यधी’ के निचे प्रसाद मूलतः हर्ष अरिठ तथा जूनसौय के भारत अमल के वृत्तांतों के लए हैं किन्तु उन्होंने अनेक विलालेखों सिक्कों और ताम्रपात्रों से भी अपनी सामग्री ली है। राज्यधी में इतिहास स्पष्ट है और उसमें कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन भी नहीं किये गये हैं, केवल कारण-कार्य परम्परा में बहो कही भी कारण नहीं मिला पाया है बहो प्रसाद ने दो कल्पित पात्रों जातिमिथु (विकट घोष) और सुरमा का सहाय ले लिया है। बस्तुतः इस नाटक में भी प्रसाद का उद्देश्य इतिहास की घटनाओं का चित्रण करना ही अधिक प्रतीत होता है। उन्होंने उच्च मुन की घटनाओं से कुछ प्रसंग चुन लिये हैं और उन्हें वे अचित्र की तरह परे पर बड़ी हीयता से अलाते हुए प्रतीत होते हैं, कई सेनेरियो तथा ‘सीक्वीस’ ठेकी से अलने के कारण सम्बन्ध प्रतीत होते हैं किन्तु वे अचमुच इसने सम्बन्ध नहीं हैं बिखरे हुए हैं। यह ठीक है कि समयम सभी इतिहास द्वारा प्रमाणित हैं, किन्तु उनमें बीबन्धता अधिक नहीं था पायी। परिचाम यह होता है कि समय नाटक का प्रभाव अन्तिम अंक और दृश्य में आकर केन्द्रित हो जाता है जहा प्रसाद का सांस्कृतिक इतिहासकार आकरक है। बीड बर्म की गरिमा अमिताय की अम्भूमि, महाबाग का वह पौरवलाभी दृश्य जिसे बीमी यात्री ने अपनी आँसों देखा था सारे नाटक में समय प्रभाव की अ्यन्तना करता है। आरम्भिक रचना होते हुए भी प्रसाद के इतिहासकार की पुनस्तानकारी दृष्टि की आर्षकता यहाँ भी स्वतः सिद्ध है।

प्रसाद के इन सभी नाटकों में अिन सांस्कृतिक मूर्त्यों की प्रतिष्ठा है वे एक ओर तो राष्ट्रीयता और देश प्रेम के धोर का स्पर्श करते हैं और दूसरी ओर त्याग विविधा कल्या अमा म्वाय सहिष्णुता और व्यापक मानवता के आदर्श को समेटे हुए अलते हैं। प्रसाद की दृष्टि में भारतीयता ज्ञान की गरिमा से कुछ हृदय की अशात वृत्तियों से पोषित और समय मानवता की अत्याय कामना से परिपूर्ण दृष्टि है। उन्होंने अर्थ जाति अस्कार और आडम्बरों से हीन मानवोचित अस्तुति को ही अपना आदर्श माना है। उनकी अस्तुति की परिमाया बड़ी अशात है मारी को वे परिमाययी ही देयना चाहते हैं जिसमें कल्या अर्थात् अर्थात्

कीमतता, समर्पण, विश्वास, धीम ही नहीं किन्तु धन्याय का प्रतिकार करने की सामर्थ्य तथा स्वाभिमान एवं गर्व भी है। पुण्य का धारण स्वाभिमान धीरता धीर त्वात् तथा कर्तव्य पर मर मिटने की शक्ति है। पशुता का विरोध धीर विश्वास भी सामर्थ्य धीर सहज मानव गुणों द्वारा करता ही उन्हें अभिप्रेत है।

इतिहास की सीमाओं में भी प्रसाद ने सामाजिक न्याय और काव्य न्याय दोनों को स्वीकार किया है। संभवतः कुछ भासवी सिद्धने में प्रसाद इसलिये समर्थ न हो सके मद्यपि भासवी के रचना तंत्र को वे ग्रहण करते रहे हैं और बड़ी कुशलता से उन्होंने उसका उपयोग भी किया है। उन्होंने इतिहास के तथ्यों को ही इन रूप में ग्रहण किया है कि भासवी के जाने जाने होते हुए भी नाटक बंधक इन्द्र के स्तर पर कम किन्तु राष्ट्रीय-सांस्कृतिक-मानवीय इन्द्रों के स्तर पर अधिक प्रस्तुत हुए हैं। यही कारण है कि उनके नाटक राष्ट्रीय-सांस्कृतिक इन्द्रों एवं जाकाशा अभिप्रायों के नाटक हैं। व्यक्ति केन्द्रित परतंत्र्यों और व्यक्ति बनाम निबन्ध के समर्थ को उन्होंने उत्तम व्यापक परिवेद्य में कहीं कहीं बड़े बड़े रंगों से चित्रित किया है। व्यक्ति के अपने भास, भय और उसकी जाकाशा-अभिप्रायों पर उन्होंने नाटक नहीं लिखे हैं।

यस में इतना कह देना पर्याप्त होया कि प्रसाद ने इतिहास का चित्रण व्यापक और बहुरूप अभ्ययन किया उतना ज्ञायक ही किसी नाटककार ने किया हो वस्तुतः उन्होंने अपने हुए से भारतीय इतिहास की व्याख्या की उसके सांस्कृतिक पद की परिभा को पहिचाना साहित्य में उसे प्रतिष्ठित किया और अपने युग के समग्र परिवर्तन में उन समस्त अंशों को व्यापित किया जिनमें अतिरिक्त मृत्यों पर उनकी भासा भी।



कोमलता, समर्पण, विश्वास सीमा ही नहीं किन्तु प्रत्याय का प्रतिकार करने की सामर्थ्य तथा स्वाभिमान एवं गर्व भी है। पुण्य का घातन स्वाभिमान बीरता और त्याग तथा कर्तव्य पर मर मिटने की शक्ति है। पशुता का विरोध और विरह मंत्री साम्य और सहज मानव मुण्डों द्वारा करना ही उन्हें अभिप्रेत है।

इतिहास की सीमाओं में भी प्रसाद ने सामाजिक न्याय और काव्य न्याय दोनों को स्वीकार किया है। संभवतः गुड भासदी मिश्र ने में प्रसाद इसलिये समर्पण हो सके यद्यपि भासदी के रचना तंत्र को वे प्रहण करते रहे हैं और बड़ी कुशलता से उन्होंने उसका उपयोग भी किया है। उन्होंने इतिहास के तथ्यों को ही इन रूप में प्रहण किया है कि भासदी के जाने बाने होते हुए भी नाटक वैयक्तिक इन्द्र के स्तर पर कम किन्तु राष्ट्रीय-सांस्कृतिक-मानवीय इन्द्रों के स्तर पर अधिक प्रक्षेपित हुए हैं। यही कारण है कि उनके नाटक राष्ट्रीय-सांस्कृतिक इन्द्रों एवं प्राकाशा अभिजातियों के नाटक हैं। व्यक्ति केन्द्रित प्रसङ्गों और व्यक्ति बनाम निमित्त के संघर्ष को उन्होंने उक्त व्यापक परिच्छेद में कहीं कहीं बड़े हस्के रसों से पूरा कर दिया है। व्यक्ति के अपने पास यम और उसकी प्राकाशा-अभिजातियों पर उन्होंने नाटक नहीं लिखे हैं।

यद्यपि इतना कह देना पर्याप्त होगा कि प्रसाद ने इतिहास का जितना व्यापक और सहज अध्ययन किया उतना सामर्थ्य ही किसी नाटककार ने दिया है। वस्तुतः उन्होंने अपने रूप से भारतीय इतिहास की व्याख्या की उनके सांस्कृतिक पक्ष की परिभा को पहचानना साहित्य में उन्हें प्रतिष्ठित किया और अपने युग के समस्त परिच्छेद में उन समस्त संदर्भों को स्थापित किया जिनमें अभिहित मुण्डों पर उनका घाता भी।